प्रकाशक :—
भारती साहित्य सदन,
३०/९० कनॉट सरकस,
नई दिल्ली।

प्रथम संस्करण : जुलाई १९५४

मूल्य ७)

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनॉट सरकस
नई दिल्ली

पत्नी का अंतरग साथी होने से अपने व्यवहार में अधिक न्याययुक्त होगा। ऐसा माना गया है।"

"महापडित नाकेश इस विषय में हमको क्या सम्मति देते है।" महाराज ने अपने बायें हाथ की ओर घूम कर पूछा।

"क्षत्रिय-कुलप्रवर ! यह बालक अपराधी नहीं है । इसने कोई अपराध नहीं किया। भोग स्त्री-पुरुष का स्वभाविक कर्म है । इसके लिये किसी को प्राणदड न्यायोचित नही है ।"

"परतु पडित ! यह दंड सभोग के कारण नही है। गुरु-पत्नी से सम्भोग दडनीय है। अपनी विवाहिता पत्नी से सम्भोग वैध है ।"

"परन्तु महाराज ! वेश्यायों से सम्भोग, पत्नी से अतिरिक्त होते हुए भी, दंडनीय नहीं है ।"

"ठीक है, परन्तु वे किसी की भार्या नही होतीं। साथ ही गुरु-पत्नी माता तुल्य होने से वर्जित है ।"

"यह बंधन मनुष्य निर्मित है। यह धर्म नही है। अधर्म तो वह कर्म होता है, जो प्रकृति से मनुष्य के न करने के लिये बना हो। जैसे, मनुष्य का अग्नि में कूद जाना अथवा मात्रा से अधिक खाना अधर्म है।"

"न्यायपति इस विषय में क्या कहते है।"

"धर्म, अधर्म की व्याख्या जो महा पडित नाकेश ने की है, वह मनुष्य के प्राकृत धर्म की है। मनुष्य के कुछ सामाजिक धर्म भी है। इस बालक ने समाज से नियत धर्म का उल्लघन किया है । इस कारण यह दंड का भागी है।"

महाराज ने पुनः नाकेश की ओर देखा। उसने हार न मानते हुए कहा, 'जब समाज कोई नियम ऐसा बना दे जो प्रकृति के नियमो के विरुद्ध हो तो समाज अपराधी है, न कि प्रकृति की पुकार सुनने वाला मनुष्य।"

"प्रकृति की पुकार क्या है ?"

"पुरुष-स्त्री में सम्भोग प्रकृति से नियत कृत्य है। प्रकृति ने इसकी सीमा

बांधी है। यह सीमा अरुचि, थकान, आयु और जाति है । जाति से मेरा अभिप्राय गधा, घोड़ा कुत्ता इत्यादि है।"

"यह ठीक है।" न्यायपति का कहना था, "परन्तु समाज में सुव्यवस्था रखने के लिये भी कुछ कर्मों की सीमा बांधी गई है। गुरु पत्नी से सम्भोग इस सीमा से बाहर है । माता तथा भगिनी से भी सम्भोग वर्जित है ।"

"क्यों वर्जित है ?"

"समाज में दुर्व्यवस्था रोकने के लिये।"

महाराज ने इस वाद-विवाद को रोकते हुए कहा, "महा पंडित नाकेश के कथन में सत्य है या नहीं, यह मेरे अथवा इस सभा के विचार का विषय नहीं। नाकेश पंडित चाहते हैं कि प्रचलित धर्म-व्यवस्था बदल दी जावे। उनका कहना है कि धर्म-व्यवस्था केवल प्रकृति के नियमों के आधार पर होनी चाहिये । इसको स्वीकार अथवा अस्वीकार करना धर्मशास्त्रियों का काम है। हम इस सभा में धर्मशास्त्र के अनुकूल ही राज्यकार्य चलाने के लिये बैठे हैं। अतएव मुझ को आप मंत्रीगण सम्मति दें कि प्रचलित धर्म-शास्त्र के अनुसार नगरपाल की यह प्राणदंड की आज्ञा न्यायसंगत है अथवा नहीं ?"

नाकेश ने महाराज से विनीत भाव से कहा, "महाराज! न्याय वह है जो लोकहित में हो। इस दंड के देने से कौन लोकहित सिद्ध होगा ?"

इस पर महाराज का कहना था, "यह विषय दया करने के समय विचार कर लिया जावेगा।"

न्यायपति ने कहा, "जहा तक न्याय का प्रश्न है, नगरपाल की आज्ञा यथोचित है । इस समय प्रश्न केवल क्षमा याचना का उपस्थित है। इस अपराधी को क्षमा करने के अर्थ, जनता में इस प्रकार के अपराध करने को प्रोत्साहन देना होगा। इस कारण क्षमा प्रदान नहीं करनी चाहिये ।

"क्षमा से अतिरिक्त प्रार्थी दया की याचना भी कर रहा है । अपराध क्षमा के योग्य नहीं है । बालक तथा बालक के माता-पिता दया के भागी

हो सकते हैं। इस का निर्णय महाराज स्वय अपने अतरात्मा की प्रेरणा से ही कर सकते है।"

इस समय महाराज ने पुन वालक के वृद्ध पिता से पूछा, "ब्राह्मण देवता ! तुमने इस विषय में और कुछ कहना है क्या ?"

"महाराज आप भगवान् का अवतार हैं। इस वृद्ध तथा वृद्धा पर दया करिये।"

महाराज ने अपनी आज्ञा सुना दी, "नगरपाल की आज्ञा न्यायोचित हैं। अपराध किया हुआ क्षमा नहीं हो सकता। दया भगवान के हाथ में है। उससे प्रार्थना करो।"

इतना कह काशीराज शूरसेन अपने आसन से उठ खडा हुआ। यह इस बात का संकेत था कि सभा समाप्त हो गयी है। यह देख वृद्धा चीख मार, अचेत हो गिर पडी। महाराज ने प्रतिहार को आज्ञा दी, "इस देवी को आतुरालय मे ले जाओ।"

यह आज्ञा दे महाराज अपने निवासभवन को चले गये।

अपराधी वदी गृह में लेजाया जाने लगा तो पडित नाकेश उसके पास आकर खड़ा हो गया। ब्राह्मण कुमार की ओर देखकर पूछने लगा, "क्या नाम है वालक ?"

"मनोज, भगवन् !"

"महाराज की आज्ञा सुनी है ?"

"मै उनका आभारी हू।"

"क्या मिल रहा है, तुमको, इससे ?"

"इस पतित कलेवर से छुट्टी।"

नाकेश मुस्कराया और यह कहता हुआ, "तुम इस योग्य हो हो," चल पडा।

नाकेश जव सभाभवन से वाहर निकलने लगा तो एक युवक पूर्ण कौशेय वस्त्र पहिने, तथा पांवो में वहुत ही कोमल चर्म की पादुका पहिने, सम्मुख आ खडा हुआ। वह हाथ जोड़ कर वोला, "भगवन् ! दर्शन की चिर-

सञ्चित अभिलाषा पूरी हुई है । अवन्ति के कुमार का प्रणाम स्वीकार हो।"

"आप श्रीमान् कुमार देव हैं ? नाम और ख्याति तो सुनी है । कैसे आना हुआ है ?"

"तीर्थाटन के लिये घर से निकला था। काशी में पहुंचा तो भारत के विख्यात विद्वान्, महर्षि चार्वाक के परशिष्य श्रीमान् नाकेश के दर्शन के बिना, तीर्थयात्रा का फल सशित मान, निवासस्थान पर गया था।

"द्वार पर खड़ी सुन्दरी से पता चला कि महा-पंडित राज्य-सभा में पधारे हैं। सभा का प्रयोजन जानने पर, काशी के न्याय का स्तर जानने के लिये, एक पंथ दो काज की कहावत सार्थक करने, यहां चला आया हूं।"

इस समय नाकेश सभाभवन से निकल कर बाहर पथ के तट पर खड़े एक रथ के समीप पहुंच गया था। यह रथ नाकेश का था। सारथि तरुण अश्वों की लगाम पकड़े खड़ा था। राज्यभवन के बाहर भारी भीड़ खड़ी थी। खड़े हुओं के मुख पर ब्राह्मण बालक के क्षमा न किये जाने के कारण भारी शोक छाया हुआ था। नाकेश, उनकी ओर ध्यान दिये बिना, रथ तक पहुंचा और कुमार से बोला, "श्रीमान रथ में पधारें और ब्राह्मण का आतिथ्य स्वीकार करें। केवल दर्शन तो मूर्खों के लिये होता है। आपसे तो अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध का सौभाग्य प्राप्त होना चाहिये ।"

"सेवक इस अपार कृपा के लिये कृतज्ञ होगा।"

इस पर पंडित नाकेश रथ पर सवार हो गया और कुमार को अपने समीप बैठा कर सारथि से बोला, "निवास गृह पर चलो।"

सारथि के रथ पर बैठते ही रथ हवा से बातें करने लगा और पलक की झपक में पंडित नाकेश के निवास स्थान पर जा खड़ा हुआ। रथ के द्वार पर पहुंचते ही वह खुल गया। दो अति सुन्दर युवतियां हाथों में गुलाब की पंखुड़ियों से भरी टोकड़ियां लिये हुए निकल आयीं और पंडित तथा कुमार के द्वार में प्रवेश करते ही, पथ पर बिखेरने लगी। पंडित बिना इस ओर ध्यान दिये कुमार को साथ लिये हुए उन पुष्प पंखुड़ियों पर चलता हुआ भवन में एक कुसुम उद्यान में जा पहुंचा।

पंडित नाकेश के भवन में प्रवेश करते ही कुमार ने अनुभव किया कि वहां की वायु भांति-भांति की सुगन्धि से भर रही है । द्वार के भीतरी उद्यान में कुसमित पेड़ो की शोभा से तो वह चकित रह गया । उद्यान के प्रवेश पर, एक जगली जाति के पुरुष की सर्वथा नग्न मूर्ति, हाथ में भाला लिये खड़ी दिखाई दी । कुमार की दृष्टि उधर गयी तो पडित ने मुस्करा कर कहा, "यह इस उद्यान का प्रहरी है । इस मूर्ति को यवन देश के प्रसिद्ध मूर्तिकार फरऊन ने बनाया है । इसके लिये मुझको दो सहस्र स्वर्ण मुद्रा व्यय करनी पड़ी थीं ।"

कुमार ने एक क्षण तक उस मूर्ति को देखा और कहा, "भगवन् ! इसमें क्या सौन्दर्य है ?"

"यह गोड जाति के एक वीर का सर्वथा प्रतीक है । उस जाति की प्रत्येक विशेषता, इस मूर्ति में अकित है । नीचा मस्तक, चपटी नाक, कृष्ण-वर्ण, छोटी-छोटी आंखें, झुके हुए कधे, लम्बी टांगें और छोटी-छोटी परन्तु चपल भुजाएं, अर्थात् उस जाति की सब बातें मूर्तिकार ने बहुत यत्न से यहां सत्य बना दी है । "

"यह किसी कुरूप पुरुष की सत्य मूर्ति हो सकती है, परन्तु इस कुरूपता का निरूपण करने के लिये मूर्तिकार ने अपनी कला का और शक्ति का अपव्यय नही किया है क्या ?"

"तुम अपने विचार से ठीक कहते हो कुमार ! परन्तु प्रकृति जैसी है उसको वैसा ही दिखा सकना कला का एक मुख्य उद्देश्य है । तुम आदर्शवादी हो । मै प्रकृति में विचरने वाला जीव हू । तुम प्राप्त को निकृष्ट समझ त्याग करते हो, मै भविष्य की चिन्ता न कर वर्तमान को लम्बे-लम्बे घूंट भर पीता हूं ।"

अभी बात समाप्त नहीं हुई थी कि दोनो वाटिका में जा पहुचे । घास के मैदान थे । पुष्पो की क्यारियां थीं । बीच-बीच में छोटी-छोटी पुष्करणियां बनी थीं, जिनमें जलप्रपात बहुत बारीक-बारीक फुआर फेंक रहे थे । घास के मैदानो में पुष्पित लताओ के निकुज बने थे ।

कुमार को वह मैदान बहुत पसन्द आया। उसने चारो ओर दृष्टि दौड़ायी और बहुत आनन्द अनुभव किया। पडित न उसके मन के भावो को अनुभव कर अनुमान लगा कर पूछा, "श्रीमान् विश्राम यहां करेंगे अथवा गृह के भीतर ?"

"जहां आप को रुचिकर हो।"

"तो पधारिये।" नाकेश कुमार को एक निकुज में ले गया। वहा पत्थर की चौकियो पर मखमल के गद्दे लगे थे। पडित ने कुमार को एक पर बैठने का सकेत किया और एक दूसरे पर स्वयं बैठ गया। बैठते हुए पंडित ने पूछा, "श्रीमान् क्या पान करेंगे सुरा, माधवी अथवा आसव ?"

"भगवन्! मै तीर्थाटन करने आया हूं। इससे इन वस्तुओ का त्याग किये हुए हूं। साथ ही मुझ को मद्य पान में रुचि नही है। न ही यह हमारे यहा पीनी उचित समझी जाती है।"

"ठीक है। हम दोनो के दृष्टिकोण में भेद है। देखो कुमार! तुम गंगा में स्नान करते हो अपने पाप धोने के लिये और मैंने गगाजल से सींच कर इस मनोहर उद्यान का सृजन किया है। तुम इसके जल का पूजन करते हो, मै इससे माधवी प्रस्तुत कर पान करता हू। तुम को इससे शीतलता मिलती है जिससे इन्द्रियां कुण्ठित हो ससार का स्वाद भूल जाती है और मै इससे उत्तेजना प्राप्त करता हू जिससे ससार का स्वाद मन भर कर पाता हूं।"

कुमार इस महापडित की युक्तियां और मनोद्गार सुन कर चकित रह गया। इस समय एक अति सुन्दर युवति, सुन्दर आभरण पहिने, आई। नाकेश ने उसका परिचय कराया।

"यह मेरी धर्मपत्नी है। यह गन्धर्व देश के एक प्रकाण्ड विद्वान् सुमतिदेव की सुपुत्री मदाकिनी देवी है और मेरी विचारधारा को श्रेष्ठ मानती है।"

"देवी," नाकेश ने अतिथि का परिचय कराया, "आप है अवन्ति के वर्तमान महाराज पालक देव के कनिष्ठ भ्राता कुमारदेव। तीर्थाटन करते

हुए काशी पधारे हैं। यहा आने पर इस क्षुद्र ब्राह्मण को दर्शन देने की कृपा की है ।"

मदाकिनी ने मुस्कराते हुए हाथ जोड नमस्कार किया और कहा, "अतिथिवर ! इस गृह की प्रत्येक वस्तु सेवा के लिये उपस्थित है ।" "आर्य," उसने अपने पति की ओर देखकर पूछा, "पूज्य अतिथि के मनोरजन के लिये क्या आयोजन किया जाये ?"

"जैसी श्रीमान् की रुचि हो। ये मद्यपान नहीं करते। इस कारण इनके जलपान के लिये शुद्ध गंगा जल आवे । ये तीर्थाटन पर घर से निकले हैं। इस कारण निरामिप भोजन परसा जावे। सुन्दरिया नृत्य तो करें परन्तु इनको छूएं नहीं। संगीत में शुद्ध साम वेद गान हो। आज पूर्णिमा है। रात को जल विहार हो। अपना बजरा तैयार रहे। इनको गंगा दर्शन से मोक्ष मिलेगा। मुझको कथित स्वर्ग का स्वाद, इसी लोक मे प्राप्त होगा।"

मदाकिनी ने मुस्कराते,हुए कहा, "जैसे आर्य आज्ञा करें। इस पर भी इतना तो निवेदन कर देना ठीक रहेगा कि समाज की कृत्रिम श्रृंखलाओ में बधे हुए मानव को इस प्रकार झझकोरने से मुक्त नही किया जा सकता। इसको तो प्यार से, कोमल थपकियां देकर, नीद से जगाने की आवश्यकता है। एकदम झटका देकर जगाने से तो हृदय की गति भी रुक सकती है।"

"तुम इनको नही जानती मदाकिनी देवी ! ये बहुत शूरवीर हैं। तीन वर्ष में तीन बार अवन्ति पर हुए आक्रमण को विध्वस करने वाली शूर सेना के ये शूर सेनापति रहे हैं। इनके भाई महाराज पालकदेव तो केवल भक्त व्यक्ति हैं। प्रात से सायं तक उपनिषदो की कथा सुना करते हैं। भोजन से पूर्व एक सहस्र मुद्रा नित्य दान करते हैं। आधी रात तक भगवत् भजन करते हैं। राज्य कर्म के लिये तो उनके पास समय ही नही। मन्त्री एक अन्य भक्त है। सब काम चौपट करते रहते हैं । इस दुर्व्यवस्था को देख मल्ल राज्य वाले आक्रमण करते हैं परन्तु कुमार सेनापति की चतुराई और शौर्यता के सम्मुख परास्त हो लौट जाते हैं।"

"परन्तु आर्य, जो लोहे से लड़ते है वे कोमलागी की लता समान मृदुल भुजाओ का बन्धन तोड नही सकेंगे । समुद्र में तैरने वाले, प्रायः चुल्लू भर जल में डूब जाते है। इन पर दया करो भगवन् !"

इस विवाद को सुन कुमार हंस पड़ा। एकाएक उसका ध्यान मदाकिनी के अभी तक खड़े होने पर गया। उसने देखा कि वहां पर कोई तीसरा आसन नहीं है । इससे उसने खड़े हो कर कहा, "क्षमा करें देवी जी! आप आसन ग्रहण करें।"

"ओह! मै तो भूल ही गया था।" पंडित नाकेश ने उसको अपनी जांघ पर बैठने का संकेत कर दिया। मंदाकिनी लपक कर पंडित जी की वायी जंघा पर बैठ गयी।

कुमार विस्मय से दोनो का मुख देखता रह गया। पंडित जी ने कह दिया, "श्रीमान् के विस्मय करने की कोई आवश्यकता नहीं । आपने कभी चित्रो में पार्वती को शिव जी की गोदी में बैठे नही देखा क्या ?"

कुमार की पुन. हंसी निकल गयी। उसने कहा, "मै कहने वाला था कि देवी जी के मेरे आतिथ्य की चिन्ता करने से मेरा हृदय उनका अत्यंत आभारी है परन्तु मै आज मध्यान्ह पश्चात् यहां से प्रस्थान करने वाला हूं। मै यह सब वैभव और ऐश्वर्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हू। रात को सम्भवतः इसकी पराकाष्ठा देखने को मिलती। इस पर भी यदि महापंडित नाकेश इसका रहस्य वता दें तो मै उसको समझ कर देखने से अधिक सतोष प्राप्त कर सकूंगा।"

पडित ने प्यार से मदाकिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "रहस्य सरल है। इसके समझने के लिये वहुत वेद-शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति के अध्ययन ने एक नवीन मार्ग हमारे सामने उपस्थित किया है। इस मार्ग का वीज रूप में दर्शन महामुनि कणाद ने अपने वैशेषिक शास्त्र में कराने का यत्न किया है । उस बीज का विकास हो कर वृक्ष रूप में यह वाम मार्ग आप के सामने उपस्थित है। इतना सुन्दर, सुलभ और रसमय मार्ग अन्य कहीं नहीं है ।

नाकेश ने श्वेतांग की ओर देख कर पूछा, "क्या विचार है ?"

"मुझ को अवन्ति के लिये अपनी सेवायें देने में अति हर्ष होगा और मैं तुरंत चलने के लिये तैयार हूं।"

जब भोजन परसा गया और सब इस को ग्रहण करने लगे तो कुमार ने अपने मन में उठ रहे संशयो का समाधान करना चाहा। उसने पूछा, "श्वेतांग मंदाकिनी देवी के पुत्र प्रतीत नहीं होते।"

"नहीं ! इसकी माता अब नहीं है।"

"तो यह आपका दूसरा विवाह है ?"

इस प्रश्न पर नाकेश और मंदाकिनी दोनो हंस पड़े। इस हंसी पर कुमार विस्मय में उनका मुख देखता रह गया। इस पर भी उसके विस्मय का निवारण किसी ने नहीं किया। बात बदलने के लिये श्वेतांग ने पूछ लिया, "तो श्रीमान् कब लौट रहे हैं।"

"अवन्ति ? मैं अभी तो अयोध्या जी, पश्चात् नैमिषारण्य, वहां से मुक्तेश्वर, हरिद्वार और फिर बद्रिकारण्य में अनेकानेक तपस्वियो और मुनियो के दर्शन करते हुए मथुरा वृन्दावन होते हुए उज्जैयिनी एक वर्ष तक पहुंचने का विचार रखता हूं।"

"क्या लाभ होगा इससे श्रीमान् !" नाकेश ने स्वादिष्ट भोजन को चबाते हुए पूछा।

कुमार इसका उत्तर अभी सोच ही रहा था कि श्वेतांग कह उठा, "दो चार जूते घिस जायेंगे। दस-बीस सहस्र स्वर्ण मुद्रायें कल्पना के जगत् में रहने वालो में बट जायेंगी। अमूल्य जीवन का एक वर्ष व्यर्थ में व्यतीत हो जावेगा और तब तक मल्ल राज्य वाले पुनः आक्रमण की तैयारी पूर्ण कर लेंगे।"

कुमार श्वेताग के इस व्यंगपूर्ण कथन को सुन कुछ कहने ही वाला था कि मंदाकिनी ने तिरछो दृष्टि से कुमार की ओर देखते हुए कहा, "प्रतीत होता है कि श्रीमान् का हृदय अभी किसी मृगनयनी की उलझन में उलझा नहीं।"

कुमार का मुख इस उल्हाने से लाल हो गया। इस पर नाकेश ने कहा, "शायद श्रीमान् का चुनाव अभी अल्पवयस्क है, और उसके सज्ञान होने की प्रतीक्षा में तीर्थाटन कर रहे है।"

'ऐसी कोई बात नहीं भगवन्! मैंने दृढ निश्चय कर रखा है कि पैंतीस वर्ष की आयु तक अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। आपके आशीर्वाद से बीसियों सुन्दरिया अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये उद्यत है, परन्तु मेरी प्रतिज्ञा की अवधि में अभी पांच वर्ष और है।"

"तो ब्रह्मचारी जी महाराज!" मंदाकिनी ने अपने सौंदर्य की पूर्ण शोभा कुमार पर प्रकट करते हुए कहा, "तो उन बीसियो सुन्दरियो को सुहाग से वंचित रखने का पाप भी तो वहन करना पड़ेगा। कितनी ही उनमे तड़प तड़प कर अपना कलेवर जीर्ण कर चुकेगी।"

"उन बेचारियो पर मुझ को दया आती है।" नाकेश ने हंसते हुए कहा।

"और आपको क्या मिलेगा महाराज?" श्वेतांग ने गम्भीर और आदर-युक्त भाव मे कहा, "युवावस्था का एक तिहाई भाग व्यर्थ की आदर्शवादिता में व्यतीत हो जावेगा। संभव है कि संयम की अति हो जाने पर आप किसी रोग में ग्रस्त हो जावें और शेष दो-तिहाई युवावस्था उस रोग से पीड़ित अवस्था में व्यतीत करने में विवश हो जावे।"

कुमार इस संभावना से चिन्ता अनुभव करने लगा, इस कारण वह चुप रहा और उसने किसी को उत्तर नहीं दिया। इस पर नाकेश ने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उसने कहा, "मुझ को बहुत प्रसन्नता होगी यदि महाराज आज की रात यहा मेरा आतिथ्य स्वीकार करे।"

"मै आपका बहुत धन्यवाद करता हू। परन्तु जब तक मेरे मन मे निर्णय नही हो जाता कि मेरा मार्ग क्या है तब तक तीर्थाटन के व्रत को भंग करने का विचार नहीं रखता।"

पश्चात् कुछ विचार कर कुमार ने कहा, "यदि श्वेतांग इतने लम्बे भ्रमण पर मेरे साथ नही जा सकता तो आज से एक वर्ष पश्चात् वह उज्जैयिनी में निसंकोच आ सकता है।"

. ४ .

कुमार जब नाकेश के गृह से अपने ठहरने के स्थान पर पहुचा तो वह अपने ब्रह्मचर्य के व्रत पर सदेह करने लगा था। उसके मन पर सबसे अधिक प्रभाव राजसभा में महाराज शूरसेन के एक सुकुमार बालक को जीवित चिता पर जलाने की आज्ञा देने का हुआ था। वह इस भयानक आज्ञा को स्मरण कर काप उठता था। इसके साथ-साथ श्वेताग के कटाक्षो ने भी अपना काम किया था। श्वेताग का कहना था कि वह नयम के प्रति हो जाने पर किसी रोग में ग्रस्त हो सकता है और शेष जीवन किसी रोग पीड़ा में व्यतीत करना पड़ेगा। यह एक और भयानक सभावना थी, जिसको वह सहन नही कर सका।

मध्याह्न में उसके मनमें विचार आया कि जिस स्त्री ने ब्राह्मण बालक को इस घोर दंड का भागी बनाया है उसको और उसके पति की अवस्था को जानना चाहिये। क्या यह उचित नही कि वह स्वय महाराज के सामने उपस्थित हो अपने अपराध को स्वीकार कर बालक को मुक्त कर देने की प्रार्थना करे? इस विचार के आते ही कुमार अपने दो भृत्यो को साथ ले मनोज के गुरु का निवास स्थान ढूंढता हुआ वहा जा पहुचा।

पंडित भृगुदेव, यह मनोज के गुरु का नाम था, के घर पहुच कर कुमार देव ने देखा कि गृह के बाहर एक प्रौढ अवस्था का ब्राह्मण सिर से नगा, आंखो से आसू बहाता हुआ भूमि पर बैठा है। उसके समीप कुछ अन्य लोग तथा विद्यार्थी शोकातुर बैठे थे। कुमार उनको इस प्रकार बैठे देख विस्मय में कुछ अंतर पर खड़ा रह गया। उसे खड़ा देख एक विद्यार्थी अपने स्थान से उठा और उसके समीप आकर पूछने लगा, "श्रीमान्! किस प्रयोजन से पधारे है?"

"पंडित भृगुदेव से मिलने आया हूं।"

"पंडित जी वह बैठे है। इस समय शोकातुर है। क्या कार्य है उनसे आपका?"

"शोक का कारण क्या हुआ है ?"

"तो आप नहीं जानते ? शायद आप परदेसी है ?"

"क्या नही जानता ? मै अवन्ति का रहने वाला हूँ।"

"तभी ! काशी में तो यह बात विख्यात हो चुकी है। माता जी से एक विद्यार्थी का अनुचित सम्बन्ध हो गया था। वह विद्यार्थी देश के नियमानुसार मृत्युदंड का भागी हुआ है और माता जी अपने को इस कृत्य से इतना अपमानित अनुभव करने लगी थीं कि उन्होंने अपने ऊपर तैल डालकर अपनी हत्या कर ली है।"

कुमारदेव इस समाचार से चकित रह गया। वह मन में विचार कर रहा था कि इस स्त्री के पति ने अवश्य इससे घृणा की होगी तभी वह आत्म हत्या करने पर विवश हुई होगी। इस पूर्ण घटना पर मनन करता हुआ वह अपने पंथागार, जहां वह ठहरा हुआ था, लौट आया।

आज की घटनाओ और नाकेश तथा श्वेतांग के कथन ने उसको अपने भावी जीवन पर विचार करने पर विवश कर दिया।

कुमारदेव के रथ अयोध्या के लिये प्रस्थान करने के लिये तैयार खडे थे। वह अपने निश्चित आयोजन के अनुसार रथ पर बैठ अयोध्या की ओर चल पड़ा। उसके पीछे तीन रथों पर उसके भृत्य थे। रथ पर बैठा हुआ भी वह उस दिन की घटनाओं पर विचार कर रहा था।

उसको यह बात भली भांति समझ आ रही थी कि नाकेश की विचार-धारा के अनुसार न तो मनोज को दंड मिलना चाहिये था और न ही ब्राह्मण स्त्री के लिये आत्महत्या करने की आवश्यकता थी। इस कार्य को एक स्वाभाविक कृत्य मान समाज को इस ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिये था।

इस विचार के आने पर उसको नाकेश पंडित की आधारभूत बात स्मरण हो आई। उसने कहा था कि न भूत था न भविष्य होगा, वर्तमान ही सब कुछ है। संसार को सुन्दर, कल्याणमय और दीर्घ बनाना ही एक कर्तव्य है। इसी कारण वह अपने मार्ग को वाममार्ग कहता था। उसका

कहना था, कि उसका मार्ग अति सुन्दर है।

इस विचार ने उसके मन में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। वह अयोध्या जो जा रहा था, परन्तु मन की वर्तमान अवस्था मे वह इसकी निस्सारता को अनुभव करने लगा था। वह मन से पूछ रहा था कि इस सब में क्या प्रयोजन है? अध्यात्म ज्ञान के अर्थ ही क्या है, जब आत्मा नाम की कोई वस्तु ही नही? जब परलोक ही नहीं, तो साधु-संत-महात्माओ के दर्शन से क्या लाभ होगा?

एकाएक उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि वह एक व्यर्थ के प्रयास में अपना धन, समय और शक्ति का व्यय कर रहा है। न आत्मा है न परमात्मा। प्रकृति अपने स्वभाव से भिन्न-भिन्न रूपो में प्रकट हो रही है। प्रकृति जैसी प्रबल शक्ति के मार्ग में बाधा डालने से विपत्ति मोल लेने के अतिरिक्त और कुछ नही होगा।

प्रकृति का नियम है कि निकटस्थ मार्ग से लक्ष्य-सिद्धि हो। न्यूनाति न्यून विरोध का मार्ग स्वीकार किया जावे। जब ऐसा ही है तो, उसके मन में प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वह क्यो इस मार्ग का, जो समीपतम नहीं अथवा जो सुगम नही, अवलम्बन कर रहा है?

इस सब विचार के स्वभाविक परिणाम स्वरूप यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि वह क्या करे? क्या मल्लों को अवन्ति पर अपनी राज्य सत्ता जमाने का अवसर दे दे। महाराज पालकदेव दुर्बल प्रकृति का मनुष्य है। वह युद्ध में विजयी नहीं हो सकेगा। अतएव प्रकृति के नियमानुसार दुर्बल को एक ओर धकेल दिया जाने दे। अथवा वह स्वयं राजसत्ता अपने हाथ में ले ले और मल्लो के भय को सदा के लिये निर्मूल कर दे।

कुछ भी हो, उसको व्यर्थ के तीर्थाटन में समय गंवाना नही चाहिये। अपने राज्य में चल कर अपने साथियो के लिये अथवा वहां के वीर बहादुरों के लिये सुख-शान्ति का मार्ग खोल देना चाहिये।

इस विचार के उत्पन्न होते ही उसने सारथि को आज्ञा दे दी, "रथ खडा कर दो।"

सारथि ने घोड़ों की लगाम खैंच ली । रथ रुक गया । पीछे आरहे रथ जब समीप आये, तो वे भी ठहर गये । कुमारदेव ने सारथि से पूछा, "काशी से हम कितनी दूर हैं ?"

"आठ कोस महाराज !"

"अगला पड़ाव कितनी दूर है ?"

"अभी दस कोस होगा ।"

"तो लौट चलो । हम रात काशी जी में व्यतीत करेंगे ।"

"महाराज क्या बात है ? स्वास्थ्य तो ठीक है ?"

"मै सर्वथा स्वस्थ हू । चिन्ता की कोई बात नहीं । मेरा विचार शीघ्र ही घर लौट चलने का हो गया है ।"

"महाराज, कल मध्याह्न तक अयोध्या जी पहुंच जावेंगे । वहा से लौटने का सीधा मार्ग भी है ।"

"मै वहा जाने में अब कोई लाभ नहीं समझता । लौट चलो ।"

: ५ :

काशी वापिस लौटने तक आधी रात जा चुकी थी । पूर्णिमा की चांदनी छिटक रही थी । जिस गति से रथ गये थे उस गति से लौटे नहीं । इस कारण पहुंचने में अनुमान से अधिक समय लग गया । जब ये लोग काशी में प्रवेश कर रहे थे, एक वृद्ध, हाथ में लाठी लिये तथा एक स्त्री और एक युवक रथों के लिये मार्ग छोड एक ओर हट कर खडे हुए दिखाई दिये । कुमार ने उनको देखा तो ऐसा अनुभव किया कि यह वही वृद्ध है जिसके पुत्र को प्रात. राज्य परिषद् ने प्राण दड दिया था । वैसे ही वस्त्र, वह और उनकी स्त्री पहिने हुई थी जैसे राज्यसभा में उपस्थित अपराधी के माता-पिता पहिने थे । कुमार के मन मे उनसे पूछने की इच्छा हुई । इस कारण उसने रथ खडे करने की आज्ञा दे दी ।

रथ खड़े होते होते कुछ दूर निकल गये थे । अतएव कुमार ने भृत्य भेज उनको बुलाया । सेवक गये और उनको बुला लाये । जब वे रथ के

समीप पहुंचे तो कुमार देव ने बालक को भी पहिचान लिया और आश्चर्य प्रकट कर पूछने लगा, "देवता! इस बालक को तो प्राण दंड दिया गया था न?"

"हां महाराज!" सेवको ने कुमार देव का परिचय ब्राह्मण को दे दिया था। ब्राह्मण ने बात समझाते हुए कहा, "काशीराज और महारानी ने इस पर दया कर इसे प्राणदंड से मुक्त कर दिया है और देश-निर्वासन की आज्ञा दी है।"

"सत्य? प्रातः सभा में तो कुछ नहीं कहा था।"

"जी हां। तीसरे प्रहर वे महारानी सहित बदी गृह में पहुंचे और मनोज से कहने लगे। 'बालक तुम को जीवन दान दिया जाता है, जिससे तुम अपना जीवन समाज सेवा में लगा सको। तुम को हम दस वर्ष तक देश से निर्वासन की आज्ञा देते है। आठ प्रहर के भीतर काशी की सीमा के बाहर चले जाओ।'

"यह बालक नो शरीर को बदल देना चाहता था, परन्तु जब महाराज ने कहा, उन को हम वृद्धो पर दया आती है तो बालक हमारे लिये जीवित रहने के लिये उद्यत हो गया। महाराज ने इसको किसी दूसरे नगर में जा कर बसने के लिये एक सौ स्वर्ण मुद्रा भी दी है।

"हम तो इसके जीवन से निराश हो गये थे, परन्तु दिन के तीसरे प्रहर यह आया और हमने काशी छोडने की तैयारी कर दी।"

कुमार इस वृत्तान्त को सुन कर अवाक् मुख बैठा रह गया। वह ब्राह्मण और उसके परिवार के लोग नीचे भूमि पर खड़े थे। कुमार को चुप देख ब्राह्मण ने हाथ जोड जाने की स्वीकृति मांगी।

इस पर कुमार ने कहा, "उज्जयिनी में बसने के लिये चलोगे?"

"यदि आज्ञा हो तो वहां भी चल सकते है।"

"वहां आ जाओ और कुमारदेव सेनापति को पूछ लेना। मै तुम को बसने में सहायता दूंगा।"

"चिरंजीव हो महाराज!" ब्राह्मण ने आशीर्वाद दे दिया। जब रथ चले

गये तो ब्राह्मण ने उत्तर का मार्ग छोड़ पश्चिम की ओर मुख कर दिया।

काशी के पंथागार में पहुंचते समय मध्य रात्रि का घड़ियाल बजा। उस समय विश्राम करने का निश्चय कर कुमार ने सेवकों को विदा कर दिया। स्वयं वह बिस्तर पर लेटा लेटा अपने जीवन को सुखमय और शोभनीय बनाने के लिये योजनायें बनाने लगा।

उसने श्वेतांग को साथ ले चलने का निश्चय कर लिया। इस अर्थ उसने प्रातःकाल पुनः नाकेश पंडित के गृह का द्वार जा खटखटाया। नाकेश को इससे विस्मय नहीं हुआ। उसने द्वार पर आ कुमार का स्वागत किया और भीतर ले जाकर एक सुसज्जित आगार में बैठाया। "तो आप अयोध्या जी नहीं गये ? मैं यही आशा करता था।"

कुमार मुस्कुराया और बोला, "आपने इस आशा का परिचय कल नहीं दिया था। इस पर भी आप की बुद्धिमत्ता की मैं श्लाघा करता हूं। वास्तव में मैं नियत समत पर काशी जी से चल पडा था, परन्तु एक तो उस बालक को राज्य परिषद् की ओर से प्राण दंड, दूसरे उस बालक की सहवासिनी की आत्महत्या ने मेरे मन में ऐसी उथलपुथल मचाई कि मैं पड़ाव पर पहुचने से पहले ही लौट आया। इन्हीं विचारों में मैं रात भर सो नही सका और अब वापिस उज्जयिनी लौट जाने का विचार कर लिया है। जाते समय आपके दर्शन करने और श्वेतांग को साथ ले चलने के विचार से ही इस समय आपको कष्ट दिया है।"

"मुझ को आपके विचारो में परिवर्तन का समाचार पा अति प्रसन्नता हुई है। मैं तो कल ही यह समझ गया था कि श्वेतांग की चुभती हुई युक्तियां अपना प्रभाव उत्पन्न किये विना नही रहेंगी। तो क्या मैं अब आशा कर सकता हू कि श्रीमान् एक-दो दिन मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे ?"

"केवल एक ही शर्त पर कि श्वेतांग मेरे साथ चलेगा और भगवान् मेरा पथ प्रदर्शन करेंगे।"

"किस विषय में ?" नाकेश ने पूछा।

"मेरे भावी जीवन के विषय में। मैं तपस्या से उब गया हूं और

अब जीवन का लक्ष्य सुख और शान्ति निश्चय कर उसकी उपलब्धि के लिये यत्न करना चाहता हूं।"

"श्वेतांग आप की सहायता करेगा। समय समय पर मैं भी सेवा के लिये उपस्थित रहूंगा। आपके इस निर्णय के लिये मैं आपकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता। दृढ़ निश्चय से संसार की कोई वस्तु भी नही, जो प्राप्त न की जा सकती हो।"

इस समय नाकेश के सूचना भेजने पर मदाकिनी और श्वेताग आगये और वे कुमार देव को अभी काशी में देख कर विस्मय करने लगे, "तो आप अयोध्या जी नही गये?" मंदाकिनी देवी ने पूछा। पश्चात् उसने नाकेश की ओर देख कर कहा, "रात आप हमारे यहा होते तो जीवन सफल हो गया समझने लगते। सुरा और माधवी की यमुना और गगा वहने लगी थी। काशीराज भी यहा विराजमान थे। सुख भोग तो वे भी करते हैं, परन्तु जहा हम इसको जीवन का ध्येय मानते हैं वहा वे इसको जीवन की भूल समझते हैं। ऐसी भूल वे प्राय. करते हैं और फिर भूल का शोधन जप संध्या इत्यादि से करते रहते हैं।"

कुमार ने देखा कि मदाकिनी की आखें अभी भी अलसाई हुई हैं। इससे वह अनुमान लगा सकता था कि कितने लम्बे लम्बे घूंटो से उसने रात भोग विलास का आनन्द पिया है। इसके सर्वथा विपरीत श्वेतांग और नाकेश सतर्क और सजग थे। इस विषमता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये वह उत्सुक था, परन्तु नाकेश ने बात बदल दी। उसने श्वेताग को सम्बोधन कर कहा, "श्वेतांग! महाराज कुमारदेव तुम को अपने साथ उज्जयिनी ले जाने के लिये आये हैं। ये अपने जीवन में कुछ कर दिखाने के लिये वहां जा रहे हैं। और तुम से उसमें सहायता चाहते हैं।"

"मैं श्रीमान् की सेवा के लिये तत्पर हू। कब चलना होगा?"

उत्तर कुमार ने दिया, "शीघ्रातिशीघ्र, जब आप चल सकें।"

नाकेश ने पुनः कहा, "श्रीमान, दो दिन तक हमारा आतिथ्य स्वीकार कर रहे हैं। तब तक तुम अपनी तैयारी कर लो।"

कुमार देव की आयु तीस वर्ष की हो चुकी थी और इस भावना के आश्रय कि उस ने पैंतीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी रहना है, वह अनेको प्रलोभनो से वचता चला आया था। उसका यह कहना सत्य था कि अनेको सुन्दरियें उससे विवाह करने को उद्यत थी परन्तु वह ब्रह्मचर्य की महिमा पर मोहित, विवाह टालता चला आता था। नाकेश की जीवन-मीमांसा ने उसके व्रत भंग करने में युक्ति उपस्थित कर दी। वह हिम आच्छादित पर्वत के शिखर पर पहुंचा तो नाकेश ने पर्वत के चरणो मे सुन्दर हरी भरी घाटी का दर्शन करा दिया। उसकी समझ मे आगया कि शिखर की शीत में ठिठुरने में लाभ नही। नीचे सुख-सुविधा सम्पन्न घाटी में चलना चाहिये। उसके फल फूलो से भरे उद्यानो में रमण करना चाहिये। वहां की सुरभित उष्ण वायु का स्वाद लेना चाहिये। वह शिखर से वादी की ओर चल पडा। वह चला तो फिसल गया। दो रातें जो उसने नाकेश के निवास स्थान पर व्यतीत कीं वे उसमें भारी अतर उत्पन्न करने वाली सिद्ध हुईं।

रात व्यतीत हो जाने के पश्चात् जब वह सोकर उठता तो ऐसा अनुभव करता जैसे वह एक विराट स्वप्न से जगा है। उस स्वप्न में वास्तविकता और स्थायी कुछ भी नही होता था। इस पर भी जब तक वह स्वप्न रहता था वह इतना सुख और आनन्द अनुभव करता था कि उससे बाहर होने पर वह वियोग अनुभव करने लगता था और पुनः उसको प्राप्त करने के लिये लालायित रहता था। इस काल में उसको पूजा-पाठ और भक्ति-भावना की विचित्र व्याख्या मिली। वह अनुभव करने लगा कि सुख-वासना पर मन केंद्रित करना कितना सुगम है? पलक की झपक में दो दिन व्यतीत होगये।

एक वार तो वहां से विदा होने में उसके हृदय में टीस उठी, किन्तु यह विचार कर कि वह शीघ्र ही अपने नगर में पहुच अपने जीवन के इस नवीन अध्याय को चालू करने वाला है, उसको संतोष हुआ था। श्वेतांग और कुमार एक ही रथ पर बैठ दिनों के पीछे दिन, भावी योजनाओ पर विचार करते हुए पश्चिम की ओर चलते गये।

श्वेताग ने उसको बताया, "सुख और शाति चाहिये, परन्तु इनकी

प्राप्ति के लिये साधनो की आवश्यकता होती है और साधन जुटाने के लिये किसी न किसी को मेहनत करनी पडती है । जो मेहनत करेगा उसको कष्ट होगा और कष्ट करने वाले को न सुख मिलेगा न शान्ति ।

"इस कारण सुख प्राप्ति का रहस्य है दूसरों को कार्य पर लगाना और उनके मन में ऐसी भावना उत्पन्न कर देना कि वे कष्ट भोगने में भी सुख अनुभव करने लगें। इस कर सकने का नाम ही राज्य कला है ।"

इस भूमिका के साथ उज्जयिनी की राज्य-व्यवस्था पर विचार विनिमय होने लगा ।

: ६ :

उज्जयिनी भारत में विज्ञान की राजधानी थी। ज्योतिष, भूगोल, भूगर्भ विद्या, रसायन इत्यादि अनेक प्रकार के विज्ञानो के विद्वानो का वह केन्द्र था। घड़ी, पल, मुहूर्त्त इत्यादि जैसे यहा के विद्वान् निश्चय करते थे, वैसे पूर्ण ससार में माननीय होते थे । देश, विदेश से विद्वान् लोग यहाँ पढने आते थे और उच्च कोटि की विद्या यहा से प्राप्त कर जाते थे।

यह नगरी विशाल भवनो और गगनभेदी मन्दिर-कलशो के लिये विख्यात थी। अवन्ति राज्य धनधान्य से भरपूर और सुख-सम्पदा से सम्पन्न था। सुखी जनता नित्य ज्ञान, ध्यान की वृद्धि में लीन, नये आविष्कारो के करने में यत्नशील रहती थी।

महाराज पालकदेव और उनसे पूर्व उनके पिता की यह इच्छा रहती थी कि अवकाश का समय, जो विज्ञान में उन्नति के कारण जनता को मिल रहा था, धर्म, कर्म और परमात्मा की उपासना में व्यतीत हो। इसके लिये राज्य की ओर से बड़े-बडे यज्ञ, सत्र, कथा, कीर्तन होते रहते थे। महाराज पालकदेव ने अपने काल में दो महान धार्मिक सम्मेलन भी बुलाये थे, जिनमें उन्होंने पूर्ण परिचित ससार से विद्वानो को आमन्त्रित किया था । इन अवसरो पर बृहद् यज्ञ कर अपना सर्वस्व दान कर दिया था। महल खाली कर दिये थे। अपनी पत्नी तथा राजकुमार के साथ न्यूनतम वस्त्र पहिन शेष सब लोक-हित, विज्ञानोन्नति और ब्राह्मणो के पालन-पोषण के लिये दे

दिया था। राज्य-भवनो को भी लोक-हित कार्यो में लगा अपने निवास के लिये नये भवन बनवावे थे।

महाराज पालकदेव की धर्मनिष्ठा और सत्यभावना न केवल अवन्ति राज्य के भीतर विख्यात थी, प्रत्युत देश-देशान्तर में भी इसकी धूम थी। जो वस्तु विस्मयजनक थी वह, धन का सेना और दुर्गो पर व्यय न होकर भी मल्लो के तीन आक्रमणो का विफल किया जाना था। सब धन मन्दिरो और विज्ञान-भवनो पर व्यय हो रहा था।

नियमित सेना बहुत कम थी, परन्तु पूर्ण जनता राज्यभक्त थी और आक्रमण के समय सब लड़ने-मरने पर तैयार हो जाते थे। कुमारदेव के नेतृत्व में, यह छोटी सी सेना प्रजा की सहायता से मल्ल राज्य की भारी सेना को परास्त कर कीर्तिलाभ कर चुकी थी। इससे कुमारदेव की राज्य में बहुत महिमा थी। पालकदेव भी अपने छोटे भाई का बहुत मान करता था। इस कारण जब वह तीर्थ से, समय से पूर्व, लौट आया तो सबको चिन्ता हुई कि कहीं वह बीमार न हो गया हो। महाराज पालकदेव ने सुना तो तुरत अपने महामात्य को उसके भवन में भेज कर समाचार मगवाया।

कुमारदेव एक पृथक् भवन में रहता था। यह भवन विशालता में और सौन्दर्य में महाराज के भवन से कुछ ही कम था। कुमार देव यद्यपि अविवाहित था तो भी इस भवन में रणवास था, जो अभी तक खाली पड़ा था। इसके आगार, इनमें बसने वालो की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसके अन्य भागो में सेना के कुछ कर्मचारी रहते थे।

महामात्य कुमारदेव का समाचार लेने गया और उसने आकर बताया, "महाराज कुमारदेव मव प्रकार से स्वस्थ हैं और दो-तीन दिन तक विश्राम करने के पश्चात् सेवा में उपस्थित होगे। महाराज!....."

महामात्य कहना-कहता रुक गया। उसको अपना वाक्य समाप्त किए बिना ही चुप करते देख महाराज ने पूछा, "चुप क्यो कर गए महामत्री!"

"महाराज! क्षमा चाहता हूँ। बात साधारण है। उसमे किसी प्रकार

का वैचित्र्य नहीं। कुछ खटकी इस कारण है कि यह सब अवन्ति के लिए नवीन है । महाराज कुमारदेव कई वस्तुएं अपने साथ लाये है । वे वस्तुएं अवन्ति में निकृष्ट मानी जाते है।"

महाराज पालकदेव चिन्ता अनुभव करने लगे थे और व्याकुलता से पूछने लगे, "हा ! हां ! बताओ महामात्य ! कैसी वस्तुए है जो यहाँ उपादेय नहीं मानी जातीं और कुमारदेव कष्ट कर अपने साथ ले आये है ?"

काशी से चार्वाकीय पडित, वैशाली से कुशल माधवी-निर्माता, लक्ष्मणपुर से नर्तकियाँ और यवन देश के मूर्तिकार।"

"हमारे देश में इन वस्तुओं का अभाव था। सो कुमारदेव पूरा कर रहे हैं। इसमें विस्मय करने की बात कुछ नहीं।"

"ठीक है महाराज ! परन्तु तीर्थयात्रा पर गए व्यक्ति के लिए ये वस्तुएं लेकर लौटना अवश्य आश्चर्यजनक है । ये मन की एक अवस्था की सूचक है, जो उस मार्ग की ओर आह्वान करती है, जो हमारे यहा अनुसरणीय नहीं।"

"महामात्य ! मै तुम्हारी दूरदर्शिता की सराहना करता हू । परन्तु उन सभावित दुर्घटनाओ को, जिनकी तुमको आशंका है, घटने से रोकने के उपाय करो। तुम अवन्ति को और यहा के गणमान्य जनो को रुई में लपेट कर नहीं रख सकते । आस-पास के देशो में चल रहे चलन से अस्पृष्य कैसे रख सकोगे इनको ?

"देखो ! कल मै कुमारदेव से भेंट करूंगा । पश्चात् उसके मन के रोग का निदान कर चिकित्सा कराने का यत्न करूगा।"

अगले दिन महाराज पालकदेव कुमार के प्रासाद में जा पहुचे। कुमारदेव अभी सोकर नहीं उठा था। रात तीसरे प्रहर तक नाच-रंग और मद्यपान होता रहा था। इससे कुमार प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न अपने शयनागार में पड़ा था।

पूर्ववत् महाराज जब उसके शयनागार में जाने लगे तो एक युवति शयनागार के द्वार पर मार्ग रोक कर खड़ी हो गई। महाराज के साथ आये

पधारने का निमंत्रण देता हूं और यदि वहां का कार्य आपको रुचिकर हुआ तो उसमें आपको स्थान मिल जावेगा।"

"यह सब श्रीमान् कुमारदेव महाराज की इच्छा पर निर्भर है।"

इस समय कुमारदेव अलसाई आंखो के साथ वहां आ उपस्थित हुआ। कुमार देव ने महाराज के चरण-स्पर्श किये और महाराज ने उसको उठा कर गले से लगा लिया।

"कुमार!" महाराज ने कहा, "शीघ्र लौट आये हो। स्वास्थ्य तो ठीक है?"

"हां दादा! काशी में इन के पिता महापंडित नाकेश से मिलने का सौभाग्य मिला और उनके सद्-उपदेश से मेरे मन को यह प्रेरणा मिली कि तीर्थयात्रा से अधिक उपकारी कार्य करने को यहा पर है। मुझको उज्ज-यिनी को सुन्दर और सब प्रकार से सुखदायिनी बनाना है। मैंने अपनी यात्रा में अनेको नगर देखे हैं और उनको देख उज्जयिनी बहुत घटिया प्रतीत हुई है। वहां के नागरिको के वस्त्र, भूषण, गृह और नगर के सार्वजनिक भवन, आगार और वहां की सार्वजनिक सस्थायें देख मेरे मन मे ईर्ष्या होने लगी है। मेरे मन में आया कि इस यात्रा में आयु व्यर्थ खोने के स्थान पर यहां कार्य करना अधिक लाभकारी होगा।"

: ७ :

महाराज को कुमारदेव की बातो में कोई दोष प्रतीत नही हुआ। उनकी सद्भावना पर विश्वास कर, उसके देशोन्नति के लिये चिन्ता करने से महाराज को संतोष ही अनुभव हुआ। इस कारण कुमारदेव के तीर्थयात्रा से लौट आने पर राज्य में एक भारी उत्सव मनाने का आदेश दे दिया।

महारानी पद्मावती से महाराज ने जब महामात्य की आशंका का वर्णन किया तो महारानी का कहना था कि कुमार का विवाह शीघ्र होना चाहिये। उसके लिये भारत खंड मे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ढूंढनी चाहिये। तब ही वह वेश्याओं के मोह-जाल से छुटकारा पा सकेगा। अन्यथा ब्रह्म-चर्य भंग हुए मनुष्य की अवस्था अति हीन और पतित हो जानी स्वाभाविक है।

महाराज ने इस बात को समझा और इसके लिये राज्य-परिषद् का अधिवेषन बुला लिया। इस परिषद् में महारानी पद्मावती भी उपस्थित थी।

कुमार सेनापति होने के अधिकार से राज्य-परिषद में आया था। महाराज पालकदेव के विशेष निमंत्रण पर श्वेताग को भी उसमें बुलाया गया।

विचार-विनिमय उत्सव से आरम्भ हुआ। महाराज का आशय तो बहुत साधारण था। उनका कहना था कि एक बृहद् यज्ञ किया जावे। ब्राह्मणों के लिये भोजन-वस्त्र, दान-दक्षिणा इत्यादि का प्रबन्ध किया जावे। विद्वानो को सत्कारार्थ उपाधियां प्रदान की जावे और जनसाधारण के लिये खेल, तमाशे और भोजन का प्रबन्ध हो।

राज्य-परिषद् ने महाराज की योजना की सराहना की, परन्तु कुमारदेव ने इसमें अपना सुझाव, जो वह घर से ही विचार कर लाया था, बताया। उसने कहा, "यज्ञ तो यहां सदैव होते हैं। बडे-बडे यज्ञ भी यहां कई हो चुके हैं। उनपर इतना खर्च हो जाता है कि राज्य कोष मे एक रजत भी नहीं रहती। इससे देशोन्नति की योजनायें चल नहीं सकीं। इस कारण मैं यज्ञ करने को पसन्द नहीं करता।"

इस पर महामात्य सुदर्शन का प्रश्न था, "क्या सेनापति यज्ञ को देशोन्नति नहीं समझते ?"

"मुझको इसमें कोई लाभ की बात प्रतीत नहीं होती। सैकड़ो मन घी, सहस्रो मन सामग्री और पेट भर खाये हुओं को खाने को खीर, जिन घरो में कपड़ो के अम्बार लगे हो उनको कौशेय वस्त्र, जिनके पास गौओं की भरमार हो उनको ही और गौएं देना, यह सब व्यर्थ है। इसका कुछ लाभ नहीं है।"

"परन्तु श्रीमान् को यह बात विस्मरण नहीं कर देनी चाहिये कि यज्ञो में सम्मिलित होने से आत्मोन्नति होती है। आत्मा मनुष्य में शक्ति का अधिष्ठाता है। इसके उन्नत हुए बिना, शरीर कुछ भी अर्थ नही रखता।"

"आत्मा है। इसका क्या प्रमाण है ? जो है नही उसकी उन्नति के कुछ अर्थ नहीं। असत्य वस्तु की उन्नति असत्य ही हो सकती है । इससे लाभ भी असत्य ही होगा। सत्य है यह ससार और संसार है भोजन, वस्त्र, सुख, सुरक्षा। इनकी उपलब्धियो में ये यज्ञ साहायक नहीं हो सकते।"

इस विवाद को बंद करते हुए महाराज ने कहा, "यह परिषद् इस कार्य के लिये नही बनी। इसमें आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व पर विवाद के लिये स्थान नहीं है। राज्य परिषद् तो उन निर्णयो को मानेगी जो विद्वान् लोग इन विषयो पर देंगे। रहा आगामी उत्सव का कार्यक्रम। यह उत्सव कुमार के सम्मानार्थ मनाया जा रहा है। इस कारण इसमें कुमार की रुचि के अनुसार ही कार्य होना चाहिये ।" इस आज्ञा के पश्चात् अब किसी को कहने को कुछ नही रहा था। पूर्व प्रथा के अनुसार इस उत्सव पर एक लक्ष स्वर्ण व्यय करने का निश्चय किया गया।

इस समय श्वेताग ने कहा, "यदि मुझ को कुछ कहने की स्वीकृति दी जावे तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि इस उत्सव का प्रबध श्रीमान् सेनापति जी को स्वय करने को दे दिया जावे। अन्य किसी का इसमें हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये।"

"हम को यह स्वीकार है।" महाराज का कहना था।

इस समय महारानी पद्मावती ने कुमार के विवाह का प्रस्ताव कर दिया। इस प्रस्ताव पर महामात्य ने कहा, "लड़की ढूँढने का कार्य आरम्भ होना चाहिये ।"

"लडकी तो है, परन्तु उसको स्वीकार कौन करेगा ?"

"राज्य-परिषद्।" महामात्य का कहना था।

"इस विषय में मैं स्वतन्त्रता चाहता हू।" कुमार का आग्रह था।

महाराज ने इस समय फिर सुझाव दिया। "शास्त्र से स्वयवर का अधिकार लडकी को होता है। परन्तु प्रथा से राज्य परिवार के सदस्यो का विवाह राज्य-परिषद् के अधीन हो गया है ।

इसके उत्तर मे कुमार ने कहा, "मैं अपनी स्वतंत्रता के नाते यह अधिकार अपने अधीन रखना चाहता हूं।"

न्यायाधीष प्रबोध ने महाराज पालकदेव के मत का समर्थन किया। उसने कहा, "कुमार को अपनी अर्धांगिनी निर्वाचित करने का अधिकार मिलना चाहिये, परन्तु इनकी पत्नी का आदर-सत्कार और मान-मर्यादा का तो राज्य-परिषद् ही निश्चय कर सकती है। यदि राज्य-परिषद् को कुमार-देव की पत्नी, किसी कारण से ठीक समझ न आयी तो उसको महारानी का पद नहीं मिल सकेगा। साथ ही सेनापति का पद किसी अन्य को देने की बात भी हो सकती है।"

श्वेतांग ने इस समय पुनः वार्तालाप में भाग लिया और कहा, "न्यायाधीष महोदय का कहना यथार्थ है। यदि सेनापति अपना विवाह अपनी इच्छा से करना चाहते हैं तो उनका अधिकार नहीं रह जाता कि अपनी पत्नी को विना राज्य-परिषद् की स्वीकृति के महारानी की पदवी से अलंकृत करें। परन्तु यह बात तो विवाह के पश्चात् देखी जावेगी। अभी तो विवाह के लिये लड़की का निर्वाचन करना है। महारानी जी जिस लड़की के लिये कह रही हैं उसको श्रीमान् कुमारदेव जी की स्वीकृति के लिये लावें।"

इस प्रकार कुमारदेव के तीर्थयात्रा से लौटने का उत्सव होना तो निश्चय हो गया परन्तु विवाह की बात स्थगित हो गयी। कुमारदेव ने उत्सव की तैयारी के लिये श्वेतांग को नियुक्त कर दिया।

उत्सव की विधि निश्चित हुई और कार्यक्रम बन गया। इस उत्सव से अवन्ति में नवीन युग का आरम्भ हुआ और इसमें वे बातें करने का निश्चय हुआ जो सैकड़ो वर्षों से इस राज्य में नहीं हुई थी।

कार्यक्रम की घोषणा हो गई। एक दिन कुमार देव प्रजा-परिषद् का उत्सव करेंगे और प्रजागण कुमार को भेंट देंगे। उसी दिन मध्याह्न पश्चात् कुमार देव की सवारी निकलेगी जिसमें सेना का प्रदर्शन होगा।

सायंकाल नगर की सजावट होगी और लोग दीपमाला करेंगे। स्थान-स्थान पर नृत्य और संगीत के प्रदर्शन होंगे ।

एक सप्ताह पूर्व से उज्जयिनी के विज्ञान भवन में अवन्ति के शिल्पियों से निर्मित विशेष वस्तुओ का प्रदर्शन होगा। सर्वोत्तम वस्तु निर्माण करने वाले को पुरस्कार दिया जावेगा। इसी प्रकार उस उत्सव में नृत्य और संगीत की प्रतियोगिता होगी और उच्च कोटि का नृत्य तथा संगीत करने वालों को पुरस्कार दिये जावेंगे ।

इस प्रकार पूर्ण कार्यक्रम में भगवद् भजन, दान-दक्षिणा, पूजा, यज्ञ, उपासना अथवा वेद-शास्त्रों के विद्वानों का नाम तक नहीं था। कार्यक्रम की तैयारी आरम्भ हो गयी। जो वस्तु अवन्ति में उपलब्ध नहीं थी उसके लिये विदेशों में लिखा गया, दूत भेजे गये और भारी पुरस्कारों का प्रलोभन दे कर वे वस्तु मंगवायी गयीं।

इस तैयारी के साथ-साथ श्वेतांग ने अवन्ति और भारत-खण्ड के अन्य भागों से कलाकारों, शिल्पकारों और व्यापारियों के प्रतिनिधियो को बुला कर, इस उत्सव का महत्व और उससे उनको लाभ होने की बात बतायी। वह कहता था, "परस्पर प्रतियोगिता होगी, जिससे आपके व्यवसाय में उन्नति होगी और आपको लाभ होगा।"

जौहरियो को भूषण, ताम्बे और पीतल के बर्तन वालो को अपने बर्तन, यंत्रादिक बनाने वालो को यंत्र, स्वादिष्ट भोजन बनाने वालो को मिठाई प्रदर्शनी में लाने को कहा गया। इसी प्रकार जोवन में प्रयोग के प्रत्येक पदार्थ बनाने वालो को इस उत्सव में आकर अपने कला-कौशल का प्रदर्शन करने के लिये बुलाया गया।

सेनानायकों को अपने वीर युवा सैनिको को ला कर खेल-कूद तथा बाण चलाने की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिये कहा गया।

जैसे वर्षो से सूख रहे घास में एक चिन्गारी सब को प्रचण्ड अग्नि में लिप्त कर लेने की सामर्थ्य रखती है, वैसे ही जीवनोपयोगी वस्तुओं और ललित कलाओ में प्रतियोगिता की बात भी लोगो ने ग्रहण कर ली।

जब स्वार्थ सिद्धि की आशा मन में बन जाये तब मनुष्य में जो स्फूर्ति आती है वह अवन्ति की जनता में सूखे जंगल में आग के समान फैल गयी। घर-घर में यह चर्चा चल पड़ी। जनता में असीम उत्साह और प्रसन्नता दौड़ गयी।

महाराज पालक देव और महारानी पद्मावती को भी इसमें कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं हुई। केवल महामात्य सुदर्शन को इस योजना में छिद्र दिखाई दिये। उसने महाराज के समक्ष अपने संदेहो को उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "महाराज! जब से श्रीमान् के परिवार का राज्य इस देश में स्थापित हुआ है, तब से ही राज्य के प्रत्येक कार्य में परमात्मा को मुख्य मान उससे ही कार्यारम्भ किया जाता रहा है। हम आस्तिक हैं और प्रत्येक कार्य में भगवान् को ही कारण मानते हैं। इससे प्रत्येक शुभ कार्य में उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते है और प्रत्येक अशुभ कार्य में भगवान के कोप की शान्ति के लिये प्रार्थना करते है।"

"ठीक है महामात्य! यह तो तुम इस कार्य-क्रम में अभाव की बात कह रहे हो न? इसमें कोई बुराई की बात तो नहीं है।"

"वह भी है महाराज! आप के स्वर्गीय पितामह ने अवन्ति में मद्यपान और मद्य निर्माण का निषेध किया हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश में मद्य बनाने वाले ही नहीं रहे थे। अब पडोस के राज्यो से मद्यनिर्माता बुला कर उनसे बनाई मद्य में भी प्रतियोगिता होगी।"

"सब देशो में यह पी जाती है। इसी कारण आज वर्षो हुए मैंने इस के पीने में निषेध की आज्ञा वापिस ले ली थी। इस पर भी इसके पीने और बनाने वाले पैदा नहीं हुए थे। अब भी निर्मित मद्य में प्रतियोगिता इस के प्रसार में सहायक नहीं होगी। एक व्यक्ति मद्य पीता तब है, जब उसके मन में विकार उत्पन्न हो जाता है। हमें जनता के मन में विकार उत्पन्न होने नहीं देना चाहिये।"

"परन्तु महाराज, जब कुमारदेव स्वयं स्वाद ले-ले कर यह निर्णय देंगे कि कौन सा मद्य पुरस्कार पाने योग्य है तो लोग पीयेंगे। यदि आज

तक पीने की प्रथा इस राज्य में नहीं चली तो वह इसलिये कि राज्य परिवार के लोग इसको छूते तक नहीं थे।"

"यही तो मै कह रहा हूं कि मद्य-निर्माण के विषय में प्रतिबन्ध से कुछ लाभ नहीं होगा। यदि मद्य पीने की प्रथा के प्रसार को रोकना है तो कुमार देव को समझाओ कि इसके पीने से हानि होगी।"

महामात्य को उत्सव के विषय में और भी बहुत सी बातें कहनी थीं, परन्तु जब उसने देखा कि महाराज उसकी बात समझने का यत्न ही नहीं कर रहे तो चुप कर रहा।

: ८ :

कला-कौशल के प्रदर्शन के लिये एक विशाल व्यवसाय गृह निर्माण किया गया, जिस में एक सौ से ऊपर आगार थे। उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ प्रदर्शन के लिये रखे गये थे।

जहां उस व्यवसाय-गृह में पदार्थ-प्रदर्शन का भाड़ा लिया जाता था वहां उनकी बिक्री से पदार्थ लाने वाले को लाभ भी होता था। इस बिक्री पर भी राज्य कर लेता था। इसका परिणाम यह हो रहा था कि जहां पीतल-ताम्बे के बर्तन, सोने-चान्दी के भूषण, सोने चादी से काढ़े गये वस्त्र, स्त्रियों के आभरण, तलवार, भाले और अन्य प्रकार के शस्त्रास्त्र खूब बिक्री किये जा रहे थे, वहां मद्य और मास के पकवान, सुन्दर सुडौल गाय, भैंस, बकरी, अश्व तथा हाथी की बिक्री भी हो रही थी। सबसे अधिक आकर्षण वहा था जहा दास और दासियो का क्रय होता था।

एक अन्य गृह में नृत्य और संगीत की प्रतियोगिता का प्रबन्ध कर दिया गया था ; एक खुले मैदान में खेल-कूद, मल्लयुद्ध तथा धनुष-बाण चलाने इत्यादि का प्रदर्शन हो रहा था। यहां न केवल कलाकारो और मल्लयुद्ध इत्यादि में भाग लेने वालों से शुल्क लिया जा रहा था, प्रत्युत इन प्रतियोगिताओ को देखने वालो से भी शुल्क लिया जाता था।

उत्सव को देखने के लिये देश-देशान्तर से धनी-मानी लोग आये थे।

ये लोग प्रदर्शनी से सामान भी क्रय कर रहे थे। इस प्रकार उत्सव में जहां खर्चा हो रहा था वहां भारी आय भी हो रही थी।

इस सब व्यवसाय का आरम्भ तो परिषद् के उत्सव से एक सप्ताह पहिले ही हो गया था। व्यवसाय भवन के उद्घाटन करने के लिये उस दिन सायकाल कुमारदेव और श्वेतांग नियुक्त परीक्षक समिति के साथ प्रदर्शनी देखने गये। कुमार ने स्वयं कई वस्तुएं क्रय कीं, जिससे व्यवसाय-गृह में विक्रय आरम्भ हो गया।

कुमारदेव ने एक विशेष प्रकार का धनुष-बाण खरीदा। बहुत सुन्दर सोने-चान्दी के काम की जाजमें खरीदीं और दो विदेश से आयी हुई लड़कियां खरीदीं।

निश्चित दिन प्रात.काल प्रजा सभा हुई और उसमें कुमार ने प्रजा से भेंट स्वीकार की। सभा के आरम्भ में उसने एक छोटा-सा भाषण दिया जिस में उसने प्रजागणो को बताया कि वह अपने राज्य में नवीन युग का श्रीगणेश कर रहा है। वह ऐसा प्रयत्न कर रहा है जिससे प्रजा में व्यवसाय की वृद्धि हो। सब लोग धन-धान्य सम्पन्न हो और सब सुख और शान्ति का भोग करें। उसने आशा प्रकट की कि प्रजा उसको सहयोग प्रदान करेगी।

उसी दिन मध्याह्न में कुमारदेव की सवारी निकली। इससे पहिले महाराज की सवारियों में सदैव सहस्रों ब्राह्मण वेदपाठ करते हुए जाते थे। इस सवारी में ब्राह्मणो का चिन्ह मात्र भी नहीं था। वेदगान के स्थान में पाच सौ से ऊपर नर्तकियां और नट अपने करतब दिखाते हुए सवारी के साथ साथ जा रहे थे।

सायंकाल राज्य के दो सौ मुख्य-मुख्य व्यक्तियो को एक भोज पर आमंत्रित किया गया था। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेठी और कर्मकार सब प्रकार के लोग आमन्त्रित थे। सबको पृथक्-पृथक् परन्तु एक ही बड़े आगार में स्थान दिया गया था। आगार की दीवार के साथ भोज में सम्मिलित होने वालो के लिये आसन लगाये गये थे और मध्य में एक चौकोर खुला स्थान रिक्त रखा गया था। इसके एक ओर एक ऊंचे स्थान पर कुमार-

देव विराजमान थे। उसके दाहिनी ओर श्वेतांग था और बांई ओर अन्य मित्र थे। दो लड़कियां, जिनको कुमारदेव प्रदर्शनी से क्रय कर लाया था, उसके पांव के समीप बैठी थीं। नगर के लोग इन नवीन बातों को देख-देख कर चकित हो रहे थे। सब उन सुन्दर लड़कियों को प्रश्नभरी दृष्टि से देख रहे थे। लडकियां कुमारदेव के मुख पर देख रही थीं।

कुमारदेव के दाहिनी ओर ब्राह्मण और क्षत्रिय थे। बांई ओर वैश्य समाज के लोग थे और शूद्र सामने थे।

कुमारदेव के संकेत पर भोजन परसा जाने लगा। यह काम स्त्रियां कर रही थी। स्वच्छ वस्त्र पहिने वे पंक्तियों में भोज्य पदार्थो को लिये हुए आयी और सब के सम्मुख सोने-चान्दी के बर्तनों में परसने लगी। कुमार देव ने खाना आरम्भ किया तो सब खाने लगे। केवल कुछ ब्राह्मण लोग थे, जो चुपचाप अपने सामने रखे भोज्य पदार्थो को देख रहे थे और खा नहीं रहे थे।

इसके साथ पीने के लिये मद्य वितरण होने लगी। यह ठीक था कि मद्य की गंध सुगन्धियुक्त थी और यदि वह बताया न जाता कि यह मद्य है तो बहुतो को पता भी न चलता। ब्राह्मण वर्ग में एक सुखदर्शन नाम का गणित का प्रकाण्ड विद्वान् वहां बैठा था। उसने भी भोजन को हाथ नहीं लगाया था। वह चुपचाप उसको देख रहा था। कुछ अन्य ब्राह्मण थे जिन्होने भोजन तो किया, परन्तु मद्य पान नही किया। क्षत्रिय लोग और वैश्य वर्ग के लोग तो बहुत मजे में खा और पी रहे थे। शूद्र वर्ग वालों ने मद्य पान पर बहुत जोर दिया। उनको मद्य घर पर बनाने और पीने का स्वभाव था, परन्तु घर की बनी मद्य में न तो वह स्वाद होता था और न ही वह सुगन्ध जो इस मद्य में थी। अतएव उन पर मटके पर मटके खाली होने लगे थे।

इस समय वे लड़कियां जो कुमारदेव के चरणो में बैठी थी, उसको मद्य पिलाने लगीं। ज्यो ज्यो मद्य सिरको चढ़ने लगी, लोग जी खोल कर बातें करने लगे। निश्चित योजना के अनुसार इस समय भोजन करने

वालों के मध्य में रिक्त स्थान पर गणिकायें नृत्य के लिये आ गयीं। मृदंग, वीणा, भेरी, दुंदुभि इत्यादि वाद्य बजाने वाले आकर अपने-अपने वाद्यों के साथ बैठ गये। उज्जयिनी की मिरिका नर्तकी का नृत्य आरम्भ हुआ।

नत्य का शीर्षक था "नमस्कार" और इसको नाचने वाली नें बहुत ही कुशलता से निभाया। उत्सव के प्रधान व्यक्ति को नमस्कार करने के पश्चात् भगवान् की वंदना हुई। इस नृत्य के पश्चात् नर्तकी रिक्त स्थान के बीचों-बीच बैठ गयी और एक लोक-गीत गाने लगी।

उसने गाया,

"मत जैयो रे बालम,
मधु मास आया।
मै विरह की मारी बेचारी
तोरे दरस भिखारी, दुखियारी
बैठ रहियो रे,
मधु मास आया।

इस गीत के पश्चात् पुनः उसका एक नृत्य हुआ। इस बार नृत्य का शीर्षक था, "चली आ रही मदमाती, यौवन भार लिये।" युवा अवस्था की मस्ती में एक स्त्री कैसे निर्लज्ज हो कर संसार में विचरती है, यह नृत्य का आशय था। इसमे वस्त्र पहिनने और अपनी लज्जा और शील को ढकने की भी सुध न रहने का दृश्य जब उपस्थित किया गया तो दर्शकों के हृदय प्रज्वलित हो उठे। सबको ऐसा प्रतीत होने लगा कि साक्षात् कामदेव उस सभा के बीच खड़ा हुआ सब पर काम-बाणो की वर्षा कर रहा है। मद्य से उत्तेजित कुछ लोग तो सभ्य समाज की सीमा उल्लघन करने पर उद्यत हो गये। कुमारदेव अपने चरणो में बैठी लड़कियो से कलोल करने लगे। कुछ आमंत्रित गण भोजन वितरण करने वाली औरतो से नोक झोंक करने लगे।

इस समय पंडित सुखदर्शन, जिसने न तो एक ग्रास भोजन किया था

और न ही एक बूंद मद्य ली थी, अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और हाथ ऊंचा कर बोला, "ठहरो।"

सब विस्मय में पंडित की ओर देखने लगे। नाचने वाली ठहर कर उसका मुख देखने लगी। मृदंग-वीणा आदि वाद्यों के बजाने वाले रुक गये। भोजन वितरण करने वाली सुन्दरियां अपना काम बंद कर पंडित के मुख की ओर देखने लगी। जब सब उस की ओर देखने लगे तो उसने कुमारदेव को संबोधन कर कहा, "श्रीमान्! मैं व्यवस्था देता हूं, कि इस निर्लज्जता के प्रदर्शन को बंद किया जावे।"

कुमार ने समझा कि पंडित मात्रा से अधिक पी गया है, इस कारण यह धृष्टता कर रहा है। इस अर्थ वह हंस कर इस बात को टालने लगा। पंडित ने कुमार देव के हंसने का आशय समझ कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमान् समझ रहे हैं कि मैंने मात्रा से अधिक मद्य पी कर कुछ अविचार-शीलता की है। मै श्रीमान् को विश्वास दिलाना चाहता हू कि ऐसी कोई बात नही। मैंने एक बूँद भर भी मद्य का पान नही किया। मैं पूर्णरूप से अपने कथन को समझता हुआ यह कहता हूं कि इस सभा को समाप्त कर दो। जितना कुछ हुआ है उसको ही पचाने का यत्न करो। कहीं अजीर्ण हो गया, तो कष्ट हो जायगा।"

अब कुमारदेव गम्भीर हो गया। उसने आंखें फाड़-फाड़ कर उस पंडित को ओर देखा। बात उसकी समझ में नहीं आयी। इस कारण उसने पूछा, 'क्या मै श्रीमान् पंडित महोदय का नाम जान सकता हूं?"

"सुखदर्शन गणनाचार्य। मार्तण्ड-भवन का अधिष्ठाता, शनि की गति का दर्शन करने वाला और अवन्ति के प्रसिद्ध परिवार वात्सायन में उत्पन्न, पूर्ण भारत के ब्राह्मणों में श्रेष्ठ माना जाता हू।"

"यह ठीक है भगवन्! परन्तु आप को व्यवस्था देने का अधिकार किसने दिया है? आप प्रकृति के उन खिलौने, सूर्य, चन्द्रादि को देख-देख कर अपना चित्त प्रसन्न किया करिये। आपको राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप करने का अधिकार नही है।"

"मैं राज्य-कार्य में हस्ताक्षेप नही कर रहा। यह राज्य-कार्य नहीं है। यह भ्रष्टाचार है। इसका सम्बन्ध जनता के आचार-विचार से है। हम लोग जो ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाता है वे भारतीयो के संस्कारो की रक्षा करने का अधिकार रखते है।"

अभी भी कुमारदेव ने इस बात को हंसी में उडा देने का यत्न किया और कहा, "आज इस सभा में, इस सभा काल के लिये हम आपके इस अधिकार को वापिस लेते है। यदि आप को यह स्वीकार नहीं तो आप सभा के बाहर जाकर जो इच्छा हो करिये।"

"श्रीमान्!" पडित सुखदर्शन ने अति विनम्र भाव से कहा, "यह अधिकार श्रीमान् ने नही दिया। वह अधिकार मुझ को मेरी शिक्षा और ज्ञान ने दिया है। जो वस्तु आप ने दी नहीं, उसको आप वापिस ले भी नही सकते। आप को मानने अथवा न मानने का तो अधिकार है, परन्तु एक ब्राह्मण द्वारा दी गई व्यवस्था को न मानने के परिणामो का भी ज्ञान आप को होना चाहिये।"

"तो तुम मुझ को श्राप दे दोगे?"

"श्राप देने की प्रथा नही रही भगवन्! श्राप के स्थान पर राज-दंड की प्रथा चल पड़ी है और वह श्राप से भी भयानक बात है। श्रीमान्....।"

कुमारदेव अपने स्थान से उठ खडा हुआ और सुखदर्शन को बीच में ही रोक कर कहने लगा, "राजदंड तो......।"

परन्तु इससे आगे वह कह नही सका। श्वेतांग ने समीप आ उसको कहने से रोकते हुए बोला, "ब्राह्मण देवता! तुम्हारी व्यवस्था एक प्राचीन काल की बात हो गयी है। अब युग-परिवर्तन हो गया है, इस कारण हम को विश्वास है कि तुम्हारे इस व्यवहार को प्रजा मानव-स्वतन्त्रता पर आघात मानेगी और तुम्हारी व्यवस्था को निस्तेज कर देगी। अब तुम यहा से चले जावो और राज्य-दंड का द्वार खटखटाओ।"

सुखदर्शन ने कुमार के मुख पर क्रोध की लालिमा देखी तो वहां से

चला जाना ही उचित समझा। जब सुखदर्शन उस भवन से निकला तो प्राय: ब्राह्मणवर्ग उसके साथ बाहर चला गया।

ब्राह्मणों के चले जाने के पश्चात् क्षत्रिय वैश्य और शूद्र रह गये। इनमें से प्राय: ब्राह्मण-कोप से घबरा रहे थे। इनमें से बहुत से उठ कर ब्राह्मणों के पीछे जाने वाले थे, परन्तु श्वेतांग ने परिस्थिति को सम्भाल लिया। उसने सब को सम्बोधन कर कहा, "अवन्तिनिवासियो! जो लोग हमारे इस उत्सव में नहीं बैठना चाहते उनको हम बलपूर्वक बांध कर यहां रखना नहीं चाहते। हां, इतना बता देना चाहते हैं कि आज का यह उत्सव और इसमें हो रहा कार्यक्रम राज्य सभा में स्वीकार होने के पश्चात् किया जा रहा है। इस कारण किसी को भयभीत होकर यहां से जाने की आवश्यकता नहीं। हमारा अधिकार है कि जिस प्रकार से भी चाहें हम अपना मनोरंजन कर सकते हैं। इस अधिकार पर केवल एक ही सीमा है। वह यह कि अपना मनोरंजन करते समय हम को दूसरो की मानसिक स्वतंत्रता छीननी नहीं है। अतएव जो जाना चाहते हैं वे जा सकते हैं। जो नहीं जाना चाहते, उनको यह विदित होना चाहिये कि ब्राह्मण देवता की व्यवस्था अथवा श्राप कुछ प्रभाव नहीं रखते।"

श्वेतांग के इस वक्तव्य से लोग शान्तचित्त हो पुन: खाने-पीने लगे और ज्यों-ज्यो मादकता बढ़ती गई अधिक और अधिक अनाचार होने लगा।

बहुत रात गये तक उत्सव चलता रहा। पश्चात् बहुत से लोग अशक्त हो जाने से अपने-अपने घर नहीं लौट सके और सो गए अथवा अचेत हो पड़े रहे। जो गये वे नगर मे कुमारदेव की विशालहृदयता और स्वतंत्र प्रवृत्ति की भूरि-भूरि प्रशसा करते गए।

पंडित सुखदर्शन कुमारदेव के भोज से लौट कर शान्त नहीं रहा। उसने अगले दिन महाराज के सम्मुख एक प्रार्थनापत्र उपस्थित कर दिया। उसमें उसने लिखा कि कुमारदेव पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जावे और उसे उचित दड दिया जावे।

महाराज पालक देव को सब सूचना मिल चुकी थी। प्रदर्शनी में पांच सौ से ऊपर दास-दासियों का विक्रय हुआ था और उनमें से सब से पहिली दो दासियां स्वयं कुमारदेव ने क्रय की थीं। पिछली रात भोज में हुए वाद-विवाद का समाचार भी महाराज के पास पहुंच चुका था। महाराज ने सुखदर्शन से प्रार्थनापत्र लिया और उसको यह आश्वासन दिया कि प्रार्थना पर राज्य-परिषद् में विचार होगा।

: ६ :

श्वेतांग भी सतर्क था। वह रात के वाद-विवाद के परिणामों पर विचार कर रहा था। उसको समझ आ रही थी कि वह समय, जिसके लिये वह तैयारी कर रहा था, आ पहुंचा है।

श्वेतांग में एक गुण था कि वह अपनी शक्ति से अधिक व्यसन में नहीं फंसता था। यही कारण था कि वह सदैव सतर्क और सचेत रहता था।

रात उसने भी मदिरा पान की थी, परन्तु उत्सव की समाप्ति पर वह अपने निवास स्थान पर गया तो उसके भृत्यों ने उसके स्नान के लिये उष्ण जल तैयार किया हुआ था। उसने स्नान कर वह एक प्रहर तक नींद ले कर उठा तो वह कार्य में लग जाने के लिये स्वस्थ तथा सबल था।

उसने उत्सव में ब्राह्मणों के विद्रोह पर विचार किया और उसकी प्रतिक्रिया जानने के लिए गुप्तचर नगर में और राज्य-भवन में भेज दिये। उनसे उसको सुखदर्शन के महाराज के पास पहुंचने और महाराज के आश्वासन का समाचार मिल गया। इसके परिणामों पर विचार कर श्वेतांग ने इसके उत्तर में योजना बना ली और कुमारदेव से, उस पर स्वीकृति लेने के लिये, भेंट करने चल पड़ा।

कुमारदेव बहुत दिन चढ़ने पर जागा और स्नानादि से निवृत्त हो जब बाहर आया तो उसने पूर्ण समस्या और उस पर अपना सुझाव उसके सम्मुख रख दिया। श्वेतांग का सुझाव था कि राज्य-परिषद् में इस प्रश्न के उपस्थित होने पर उसको झगड़ा कर बाहर निकल आना

चाहिये और पश्चात् अपनी योजना को कार्य रूप में लाने का यत्न करना चाहिये ।

"इसके लिये तैयारी पूर्ण हो चुकी है क्या ?"

"आप आज्ञा करिये तो मैं अपनी योजना को एक सूत्र से पकड़ कर इसको अंत तक खेंच सकता हूं ।"

"तो हो जावे । नित्य की खच-खच समाप्त हो ।"

"राज्य-परिषद् में मैं नहीं जा सकूंगा । वहां झगड़ा आपको ही अंतिम परिणाम तक पहुंचाना होगा । नगरसेठ यादव और कर्मकारों के पंच मोहन राज्य-परिषद् में आपका साथ देंगे ।"

इस समय अल्पाहार के लिये कुमारदेव को सूचना मिली । उसने श्वेतांग से पूछा, "मित्र ! अभी अल्पाहार हुआ है या नहीं ?"

"अभी नहीं महाराज ! आप से इस विषय में स्वीकृति लेने की आवश्यकता थी ।"

"तो आओ । अल्पाहार हमारे साथ ही कर लो । पूर्ण योजना को एक वार फिर विचार कर लेंगे और समझ लेंगे । मेरी दोनो क्रीतदासियां भी अल्पाहार पर आ रही हैं । दोनो बहुत अच्छी है । हम उन दोनों से प्रसन्न है ।"

श्वेतांग अल्पाहार पर जाने के लिये तैयार हो गया । उसने महाराज के पीछे-पीछे जाते हुए पूछा, "दोनो में कौन अच्छी लगी है महाराज ?"

"मेरी तो अभी भी वही सम्मति है, जो उनको क्रय करने के समय थी । छोटी अधिक सुन्दर है । लम्बी कुछ अधिक चतुर प्रतीत होती है ।"

श्वेतांग मुस्कुराया और चुप रहा । दोनों आहार गृह में पहुंचे तो दोनों दासियां वहां पहिले ही विद्यमान थी । वे पहिले तो पंडित श्वेतांग को आता देख घबरायीं, परन्तु कुमारदेव के कहने पर कि वह उनका मंत्री है और अल्पाहार उनके साथ लेगा, निश्चिन्त हो गयीं । कुमारदेव ने कहा, "मैंने इनके अपने नाम रखे हैं । यह किरण है , जो तुम ने पसन्द की थी और जिसको मैंने अच्छा समझा था, रेखा होगी ।"

श्वेतांग फिर मुस्कुराया और किरण के माथे पर एक क्षण के लिये

चढ़ी त्योरी को देख समझ गया कि किरण को रेखा से मुकाबिला पसन्द नहीं।

कुमार अल्पाहार के लिये अपने आसन पर बैठा तो दोनो लडकियां उसके दोनो ओर बैठ गयीं और श्वेतांग किरण के साथ बैठ गया। जब अल्पाहार परसा जा रहा था, श्वेतांग ने अपनी पूर्ण योजना पुन दुहरा दी और इसमें उस भाग को, जो कुमारदेव ने निभाना था, भली भांति वर्णन कर दिया।

कुमारदेव का कहना था, "मित्र आज यह महान् कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिये।"

"श्रीमान् को दृढता धारण करनी पड़ेगी। शेष सब तैयार है।"

इस समय अल्पाहार परसा गया और कुमार ने आरम्भ किया तो वे भी खाने लगे। खाते हुए कुमारदेव रेखा से बातें करने लगा। रेखा पूछने लगी थी, "कैसी योजना की बात हो रही है महाराज?"

"मै आज महाराज बनने का प्रयत्न करूगा?"

"सत्य?"

"हां।"

"तो मै आज पटरानी बनूंगी?"

"मैने तो तुम को वचन दिया ही है, परन्तु यह आज तो नहीं हो सकेगा। तुम्हारे पटरानी बनने से पूर्व अन्य कई बातें करनी पड़ेंगी। उनमें समय लगेगा।"

जब ये दोनों इस प्रकार अपना भावी कार्यक्रम बना रहे थे, श्वेतांग किरण से, जो उसके समीप बैठी थी, बातें करने लगा। उसने बात आरम्भ करने के लिये पूछा, "देवी! तुम इस स्थान पर कुछ अधिक सुखी प्रतीत नहीं होती?"

किरण ने इस प्रश्न पर आश्चर्य प्रकट करते हुए श्वेताग के मुख पर देखा। पश्चात् कहा, "भद्र! सुख और दुःख तुलनात्मक वस्तु है। मै, यहा आने से पूर्व जहा थी, वहां बहुत आनन्द में थी। यहां मै बहुत सुखी हूं।"

श्वेतांग इस दासी के इस प्रकार मानने पर कि वह कुमार के रणवास में क्लेश अनुभव करती है, चकित रह गया। इस कारण उसने बात और आगे चला दी। उसने पूछा, "कहाँ रहती थीं देवी जी, पहिले ?"

"मैं देवलोक की रहने वाली हूं। मेरे माता-पिता ने मुझको उनके पास दे दिया था, जिनसे महाराज ने मुझको क्रय किया है। उनका नाम उत्ताल बावा है। उन्होंने ही मुझ को शिक्षा-दीक्षा दी है।"

"तो तुम्हारा मन यहां आनन्दित नहीं है ?"

"मुझ को यहां कोई कष्ट नहीं है।"

श्वेतांग मुस्कुराया और कहने लगा, "मैं, जितना देवी समझती है, उससे अधिक बुद्धि रखता हूं। शायद देवी भूल गयी है कि उसके क्रय किये जाने के समय क्या हुआ था ?"

"नहीं ! मैं उस दिन की बात को भूल नहीं सकती। पर मैं आज तक नहीं समझ सकी कि श्रीमान् ने मुझमें क्या देखा था ? महाराज ने तो मुझ को पसन्द नही किया था। श्रीमान् ने ही उनको मेरे क्रय करने के लिये आग्रह किया था।"

"तो देवी जानना चाहती है कि मैंने उस समय क्या देखा था ? मुझको वह बताने में किंचित् मात्र भी सकोच नहीं। मैंने देवी में अद्वितीय सौन्दर्य देखा था। देवी की आंखों में एक अलौकिक आभा देखी थी। मैं समझता था कि यह अद्वितीय वस्तु अवन्ति के भावी राजा के घर में होनी चाहिये। इस कारण मैंने आपको प्राप्त करने का आग्रह किया था।"

किरण का मुख लज्जा से लाल हो गया। उसको छुपाने के लिये उसने दूध का पात्र उठा कर पीना आरम्भ कर दिया। अपने मन को काबू कर उसने दूध का पात्र सामने चौकी पर रखते हुए श्वेतांग के मुख पर देखा और पश्चात् मुख मोड कर कुमार को देखा। दोनों में अंतर का अनुभव कर उसको पुनः उस दिन की बात स्मरण हो आयी। उसको स्मरण कर उसकी आंखो में चमक दौड़ गयी। उसने पंडित की ओर कुछ झुक कर कहा, "एक बात कहूं ? मन में रख सकोगे ?"

"क्या ?"

"जब आपने मेरी आंखो में यह सब कुछ देखा तो आपने मुझ को अपने लिये क्यों नहीं क्रय कर लिया ?"

"मै स्त्रियो को मोल लेने में विश्वास नहीं रखता ।"

"तो किस बात में विश्वास रखते है ?"

"उन पर विजय प्राप्त पाने में ।"

"बलपूर्वक ?"

"नहीं अपने गुणो से ।"

किरण गम्भीर विचार में पड़ गयी । उसने चुपचाप आहार लेना आरम्भ कर दिया । श्वेतांग अपने कथन का प्रभाव उसके मुख पर देखना चाहता था । इस कारण उसकी ओर देख कर उसके मनको पढ़ने का यत्न करता रहा ।

किरण ने अपने मन के संतुलन को ठीक कर पुन- बात आरम्भ कर दी। इस समय उसकी आंखो में शरारत भरी प्रतीत होती थी । उसने कहा, "जब आप मुझ को देख कर चले गये थे तो मुझ को ऐसा समझ आया था कि आप सेनापति है, और वे आपके मोदी । इस कारण उनके आपको आगे जा कर रेखा की प्रशसा करते देख मै क्रोध से भर गयी थी ।"

श्वेतांग यह सुन हंस पड़ा। फिर कुछ गम्भीर हो बोला, "ससार में बहुत कुछ ऐसा है, जैसा हम देख नहीं सकते ।"

किरण को, अपने मन के भावो को इस प्रकार स्वीकार करने पर श्वेतांग के मन में एक नवीन भावना जागृत हो उठी । वह अब चुपचाप आहार करता रहा । किरण अपने मन में श्वेतांग के सौन्दर्य पर मनन करती रही ।

: १० :

अल्पाहार से निपट कर श्वेतांग ने तुरंत अपनी योजना पर कार्य आरम्भ कर दिया । उसने सेठ राघव और पंच मोहन को बुला भेजा ।

साथ ही उसने सेनानायको को सेनापति के नाम पर बुला लिया। जब ये सब आ गये तो उनको कुमारदेव के पास ले गया। वहां उनसे पूर्ण योजना कह दी। अपने इस काम में कारण बताते हुए श्वेतांग ने कहा, "सेनापति के इस उत्सव के कारण महामात्य सुदर्शन उनसे ईर्षा करने लगा है। उसको इनको ख्याति बढती देख इनसे द्वेष हो गया है। इस कारण वह इन को बंदी बना कर मार्ग से बाहर कराने के लिये योजना बना रहा है। महाराज पालकदेव इस समय महामात्य की बात पर विश्वास कर उसकी योजना मानने ही वाले है। यदि सेनापति बंदी बना लिया गया तो राज्य दुर्बल हो जायेगा और उस समय कही फिर बाहर से कोई आक्रमण हुआ, तो राज्य की रक्षा कर सकनी असम्भव हो जावेगी।"

यह कथा सुन सब, विशेष रूप में सेनानायक, क्रोध से लाल-पीले होने लगे। इस पर श्वेताग ने बताया, "अवन्ति की भलाई और रक्षा के लिये यह आवश्यक हो गया है कि महामात्य को मार्ग से एक ओर कर दिया जावे। कठिनाई महाराज की ओर से उत्पन्न होगी।"

इस पर सेठ राघव ने कह दिया, "देश महाराज से ऊचा नहीं है, क्या?"

सेनानायकों ने कह दिया, "हम तो सेनापति क अधीन है। हम उनकी आज्ञा का पालन करेंगे। देश के लिये यदि महाराज को भी मार्ग से हटाना पड़ें तो हम तैयार है।"

इस प्रकार बात निश्चय हो गयी और योजना पर विचार हो गया।

इस समय महाराज पालकदेव का एक संदेश आया कि श्वेतांग उत्सव का पूर्ण विवरण और आय-व्यय का ब्योरा लेकर महामात्य सुदर्शन के पास उपस्थित हों। श्वेताग इस प्रकार की आज्ञा की आशा ही कर रहा था। इस कारण वह आय-व्यय के कागज-पत्र लेकर महामात्य से मिलने चल पड़ा।

महामात्य ने श्वेताग को अपने सामने अपने से कुछ नीचे आसन पर बैठा कर बुलाने का प्रयोजन वर्णन कर दिया। उसने कहा, "आपने उत्सव में आय-व्यय का पत्रक बनाया है क्या?"

"हा श्रीमान् !" इतना कह श्वेतांग ने उचित वृत्तान्तपत्र महामात्य के सम्मुख रख दिया।

महामात्य ने उस पर साधारण दृष्टिपात कर पूछा, "इसमें आय भी की गयी है क्या ?"

"जी, तीन लाख स्वर्ण मुद्रा की आय हुई है। अभी प्रदर्शनी कुछ दिन और चलेगी। इससे आय और बढ़ने की आशा है।"

"श्वेतांग महोदय ! उत्सव में आय करने का विचार नही था। ऐसी प्रथा यहां नही थी।"

"यह श्री सेनापति जी की आज्ञा से हुआ है।"

"परन्तु इसमें आपने उनको सुझाव दिया है। ऐसा सुझाव देकर आपने ठीक नहीं किया।"

"सुझाव मेरा अवश्य है, परन्तु उनकी आज्ञा के बिना कुछ नही हुआ। मेरा विश्वास है कि इसमें हानि नहीं हुई।"

"जनता का धन एकत्रित होकर अशुभ कामो में लग गया है।"

"धन एकत्रित करने के लिये कोई विवश करने वाला उपाय प्रयोग में नहीं लाया गया। रहा इसका अशुभ कामो में व्यय होना, इस विषय में मेरा आपसे मतभेद है।"

"आपको औरतो के क्रय-विक्रय का कार्य नही कराना चाहिये था।"

"इस विषय पर हमने बहुत विचार किया है और बहुत सी बातो का विचार कर ही यह किया था। हमारा विचार है कि इससे स्त्रियों में सौन्दर्य बढ़ाने की इच्छा होगी। सुन्दर स्त्रियां धनवानों के घरों मे पहुंच जायेंगी, और जिनको सुन्दर स्त्रियां नहीं मिल सकेंगी, वे धन-उपार्जन करने का यत्न करेंगे। इन सब बातो से समाज सुन्दर और धनसम्पन्न होगा और साथ ही राज्य को अधिक कर मिलेगा। व्यवसाय-गृह में इसी व्यवसाय से राज्य को सबसे अधिक कर मिला है।"

"कुछ भी हो, स्त्रियो का क्रय-विक्रय इस राज्य में नही होता था।"

"तो अब होने लगेगा।"

"महाराज इसको पसन्द नहीं करते ।"

"परन्तु जनता ने तो इसको बहुत पसन्द किया है। पांच सौ दास दासियों में, जो यहां आयी थी, चार सौ से अधिक बिक गयी हैं। उनमें सबसे अधिक मूल्य, एक लड़की का, सेनापति महाराज ने दिया है ।"

"अब यह व्यवसाय-गृह कब तक खुला रहेगा ?"

"जब तक सेनापति महाराज आज्ञा करेंगे ।"

"कल के भोज पर जो धन व्यय किया गया है वह उत्सव के कोष में से ही है न ?"

"जी ।"

"परन्तु जो कुछ वहां हुआ है वह हमारे राज्य की नीति के विरुद्ध है।"

"यह सम्भव है। परन्तु श्रीमान् सेनापति जी महाराज का विचार है कि इस नीति से भी जनता को सुख और राज्य को धन का लाभ होगा। देखिये भगवन् ! यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है कि दिन भर के परिश्रम के पश्चात् मनोरंजन प्राप्त करे। नृत्य, संगीत, ललित-कलायें तथा मद्यपान और स्वादिष्ट भोजन तृप्ति कारक होते हैं । शारीरिक सुख मनुष्य को पहुंचाना परम उपकार है ।"

"मनोरंजन वासनामय व्यवहार से ही हो सकता है क्या ?"

"मनोरंजन और वासना पर्याय वाचक शब्द हैं। दोनों में भेद नहीं।"

"ऐसा हमारे राज्य के विद्वान् नहीं मानते। मनोरंजन मन का विषय है। वासना इन्द्रियों का। जो बात मन को आनन्दित करे, परन्तु इन्द्रियों को उत्तेजित न करे, वह मनोरंजन हमारे राज्य में श्रेष्ठ माना जाता है। जब मनोरंजन का ध्येय इन्द्रियों को उत्तेजित कर वासना की ओर ले जाने वाला हो, तब यह नीच माना जाता है और वर्जित है ।"

"ऐसा करना और हो सकना अस्वाभाविक है । मनुष्य जब अपने व्यवहार को अस्वाभाविक बनाता है तो वह भ्रम में फंस, पतन की ओर जाता है।"

"परन्तु पंडित श्वेतांग ! स्वभाव वह है जिसके करने का अभ्यास हो

जावे। यह कोई स्थिर बात नहीं। मनुष्य का स्वभाव बनाया जा सकता है। जैसा वह बन जाता है वैसा करना ही स्वाभाविक हो जाता है। इस कारण हमारे राज्य में मनुष्य में वासनामय स्वभाव न बनने देना उचित माना जाता है।"

श्वेतांग निरुत्तर होता जा रहा था। इस कारण उसने कह दिया—"आप जैसा उचित समझते हैं वैसा आदेश श्रीमान् सेनापति जी को दे दीजिये। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो उनका सेवकमात्र हूँ। जहां तक राज्य-कार्य का सम्बन्ध है, वह आप जानें आप की प्रजा।"

महामात्य ने कहा, "महाराज की आज्ञा है कि यह व्यवसाय-आगार आज से बंद हो। उत्सव समाप्त समझा जावे और उस प्रकार का भोज, जैसा रात को हुआ है, अवन्ति में पुनः न हो।"

"यह आज्ञा श्रीमान् कुमारदेव जी को मिलनी चाहिये।"

महामात्य इस उत्तर की आशा करता था। इस कारण उसने आज्ञा लिख कर तैयार रखी थी। श्वेतांग के इतना कहने पर उसने लिखित आज्ञा उसको दे दी।

श्वेतांग ने उठ कर प्रणाम किया और बाहर निकल आया। वह सीधा कुमारदेव को इस आज्ञा की सूचना देने चल पड़ा। कुमार के भवन में पहुंच उसको विदित हुआ कि वे महाराज से मिलने गये हैं। महाराज का प्रतिहार उनको बुला कर ले गया है। श्वेतांग का माथा ठनका। उसने समझा कि यह पंडित सुखदर्शन की व्यवस्था का परिणाम है। उसने अपने निजी आगार में जाकर एक पत्र उपसेनापति को लिख दिया। उसमें उसने लिखा कि, "मध्याह्न के समय हुई वार्तालाप के अनुसार कार्य करने का अवसर आगया है। आप सब सेनानायकों को कह कर तैयार रहने की आज्ञा भेज दें। शायद पूर्ण सेना की आवश्यकता पड़ेगी।" मैं अभी नहीं कह सकता कि सेनापति जी महाराज की रक्षा के लिये किस सीमा तक जाना पड़े। हमको प्रत्येक बात के लिये तैयार रहना चाहिये।

यह आज्ञा भेज वह सीधा महाराज पालकदेव के भवन में जा

पहुंचा। प्रतिहारी से पता चला कि वहां राज्य परिषद् बैठी है और पंडित सुखदर्शन के प्रार्थना पत्र पर विचार हो रहा है। श्वेतांग को अपने सदेह का समर्थन प्रतीत हुआ। उसने एक पत्र पर अपना नाम लिखकर प्रतिहार द्वारा सेठ यादव के पास भेज दिया। सेठ यादव और पंच मोहन भी राज्य-परिषद् के सदस्य थे। यह पत्र संकेत था कि भीतर बैठे हुए समझ जावें कि सेना उनका समर्थन करेगी।

राज्य-परिषद में वाद-विवाद बहुत उग्र रूप में चल रहा था। महामात्य श्वेतांग को आज्ञा दे कर सीधा परिषद् में पहुंचा। वहां सब सदस्य उपस्थित थे।

: ११ :

कुमारदेव जब परिषद में उपस्थित हुआ तो महामात्य अभी नहीं पहुंचा था। इस कारण उसको प्रतीक्षा करनी पड़ी। कुमारदेव ने कहा भी कि उसको नृत्य और सगीत प्रतियोगिता में जाना है, परन्तु महाराज ने कह दिया, "इस समय महामात्य इस सभा के विषय पर ही श्वेताग के साथ बातचीत कर रहे है।"

सेठ यादव ने कहा, "इस अवस्था में मेरा महाराज से विनम्र निवेदन है कि इस सभा को कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया जाय। महामात्य को जब अवकाश हो, हम आ जावेंगे।"

"आज का विचार्य विषय आज के व्यवहार से ही सम्बन्ध रखता है। इस कारण उस पर आज ही विचार होना चाहिये।"

विवश सब बैठे रहे। महामात्य के आने पर बात उपस्थित की गयी। महामात्य ने सुखदर्शन पंडित का पत्र पढ कर सुनाया और उस पर महाराज की आज्ञा जो महामात्य द्वारा श्वेतांग को भेजी गयी थी, सुना दी।

इस आज्ञा को सुन सेठ यादव ने कहा, "जब आज्ञा ही हो चुकी है तब इस पर विचार करने का क्या प्रयोजन है?"

महामात्य का उत्तर था, "आज्ञा दी गयी है उत्सव के भावी कार्य-क्रम को रोकने के लिये। उत्सव पर एक लाख स्वर्ण मुद्रा से अधिक व्यय हो चुका है और राज्य-परिषद् के निर्णय के अनुसार यह उत्सव एक दिन के लिये था। इस कारण जो कुछ आज हो रहा है अथवा आगे और होने वाला है वह परिषद् के निर्णय के विरुद्ध है। यदि अनाधिकार चेष्टा हुई तो उसके लिये दंड दिया जावेगा।"

इसका उत्तर कुमारदेव ने दिया, "उत्सव का प्रबन्ध मुझ को करने के लिये दिया गया था। राज्य कोष से एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा व्यय करने का अधिकार मिला था। इस उत्सव के कार्य क्रम से लाभ की कुछ आशा नहीं थी। मैंने व्यय से अधिक लाभ कर दिया है और दिन-प्रति-दिन व्यय से अधिक लाभ होता जा रहा है। इस कारण उत्सव को कुछ दिन और लम्बा करने से लाभ ही होगा और इसके रोकने में कोई लाभ नहीं।

"रही पिछली रात के भोज की अवैधानिकता की बात? मैं समझता हूं कि प्रजा की पसन्द ही विधान है। इस कारण उत्सव का पूर्ण कार्य और उसमें भोज का कार्य-क्रम प्रजा से पसन्द किये जाने के कारण पूर्ण रूप में वैधानिक है।"

न्यायाधीश प्रवोध ने विधान के विषय में अपनी सम्मति दी, "विधान के अर्थ प्रजा की रुचि नहीं है। विधान देश और जाति के हित के लिये विद्वानो से बनाये नियमो को कहते है। हमारे देश में लग भग एक सौ वर्ष पूर्व वर्तमान धर्मशास्त्र की स्थापना हुई थी। उस समय देश भर के आचार्यो ने यहां आकर यहां की विशेष परिस्थिति का अध्ययन कर इस शास्त्र को लिखा था। तब से वह विधान के रूप में चला आता है। उसमें साधारण सामयिक अदल-बदल राज्य-परिषद् करती रही है, परन्तु ये अदल-बदल स्थायी नहीं माने गये और सिद्धान्त की बातों में अदल-बदल नहीं हुए।

"उस विधान में एक नियम यह भी है कि स्त्रियो का क्रय-विक्रय नहीं होगा। स्त्रियो को विवाह से अथवा विना विवाह के अपनी इच्छा से

किसी भी पुरुष के साथ सम्बन्ध करने की स्वतन्त्रता है। संतान के उत्तराधिकारी होने के लिये माता-पिता का विधिवत् विवाह होना आवश्यक है।

"स्त्रियों का अवन्ति में जो क्रय-विक्रय हुआ है वह धर्म विरुद्ध हुआ है।"

इस पर नगर-सेठ यादव ने कहा, "आज से सौ वर्ष पूर्व की व्यवस्था इस चतुर्मुखी उन्नति के काल में करना प्रजा के साथ अन्याय है। मैं आपको नगर की अवस्था बताता हूं। उत्सव के अवसर पर उज्जयिनी में पांच लक्ष नर-नारी आये थे। उनमें एक लक्ष से ऊपर विदेशीय थे। प्रत्येक व्यक्ति ने यदि दस स्वर्ण मुद्रा भी व्यय की गई मान ली जावें, तो उज्जयिनी के व्यापारी वर्ग को विदेशियों से दस लक्ष स्वर्ण मुद्रा और अपने देश वालों से चालीस लक्ष स्वर्ण मुद्रा लाभ हुआ है। इस प्रकार इस उत्सव से देश सम्पन्न हुआ है।

"इस उत्सव में लगभग तीन सौ सुन्दर स्त्रियां विदेशों से यहां लाकर अपना ली गयी हैं। उनसे सुन्दर सन्तान होगी जो अवन्ति की शोभा बढ़ावेगी।

"यह कारण है कि अवन्ति की प्रजा इस उत्सव से बहुत प्रसन्न है। उनकी मांग है, ऐसे उत्सव प्रति वर्ष किये जाया करें।"

पच मोहन ने भी अपनी सम्मति दे दी। उसने कहा, "मैं नगर भर में घूम-घूम कर अपने वर्ग के लोगों से उत्सव के विषय में पूछता रहा हूँ। मुझको एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने उत्सव को नापसन्द किया हो। नगर में एक सहस्र मांसाहार तथा मद्यपान के निःशुल्क वितरणालय सबसे अधिक पसन्द किये गये थे।

"अब यदि इस उत्सव के आयोजक को किसी भी प्रकार का दंड दिया गया तो प्रजा रुष्ट हो जावेगी।"

कुमारदेव ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी, "किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी उस देश की सेना है। सेना मेरे आयोजन से अति प्रसन्न है। इस कारण मैंने कोई ऐसी बात नहीं की जो देश-काल के विरुद्ध हो।"

महाराज पालकदेव ने कहा, "मै समझता हूं कि देश में अभी भी सुबुद्धि का लोप नहीं हुआ। इस कारण यह विषय जनमत के लिये छोड़ दिया जावे। प्रश्न यह है कि क्या विधान-परिवर्तन के पहिले विधान का उल्लंघन करना उचित है ?"

सेठ यादव का कहना था, "जब विधान काल की गति के साथ न चले तो विधान तोड़ना ही होता है। कल के उत्सव को नगर-जनो ने सराहा है, यह इस बात का प्रमाण है कि कल्ल की बात सर्वथा वैधानिक है।"

प्रबोध ने पुनः अपने विचार प्रकट किये, "यदि विधान-निर्माण का यह ढंग है तो मै न्यायाधीश के पद पर रह कर क्या करूंगा ? यह देश रसातल में धस जायेगा और मै इस पाप का भागी नही बनना चाहता।

"मेरी सम्मति है कि कल के उत्सव के कर्त्ता को न्यायाधीन कर दिया जावे और जो भी निर्णय न्यायालय करे उसका वह भोग करे। राज्य-परिषद् न्यायालय के निर्णय के पश्चात् दया-क्षमा करने के अधिकारो का प्रयोग कर सकती है।

"यदि राज्य-परिषद् विधान में परिवर्तन चाहे तो इसके लिये आचार्यों की एक समिति बना दी जावे और जैसा वह उचित समझे करे।"

कुमार को यह सम्मति एक प्रकार का अपना अपमान प्रतीत हुई। वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "राज्य-परिवार के एक सदस्य के साथ ऐसी बातें मै सुनने के लिये तैयार नही हूं।" इतना कह वह सभा के बाहर हो गया। उसके साथ नगर-सेठ यादव और पच मोहन भी सभा से चले गये।

महाराज को कुमारदेव और यादव आदि का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया। महामात्य ने कहा, "महाराज ! यह विद्रोहात्मक प्रवृत्ति राज्य के लिये हितकर नही है। इसको आगे बढ़ने से रोकना चाहिये।"

न्यायाधीश ने कहा, "यह बात अब इतनी बढ़ गयी है कि इससे भारी उपद्रव की सम्भावना है।"

"जो है सो तो है ही। अब इस परिस्थिति में क्या करना चाहिये ?" महाराज का प्रश्न था।

महामात्य का कहना था, "राज्य-परिषद के ग्यारह सदस्यों में से आठ अभी भी उपस्थित हैं। मेरी सम्मति है कि इस उत्सव की बहुत सी बातें अवैधानिक हुई हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उन के करने वाले श्री कुमारदेव और श्वेतांग को न्यायाधीन कर दिया जावे और कुमारदेव तथा श्री यादव और पच मोहन को राज्य-परिषद् का अपमान करने के लिये परिषद् से निकाल दिया जावे।"

राज्य-परिषद् के सदस्यों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार तो कर लिया परन्तु न्यायाधीश प्रबोध ने सबको सचेत करने का यत्न किया कि कुमारदेव के सेनापति होने के कारण इस प्रस्ताव को कार्य में लाना इतना सुगम नहीं, जितना कि इसको स्वीकार कर लेना। इस कारण यह भी निश्चय हुआ कि तुरंत सेना को समझा कर कुमार देव से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जावे। महाराज पालकदेव ने महामात्य को लेकर सेना के शिविर में जाने का निश्चय कर लिया। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि कुमार और श्वेतांग को शीघ्रातिशीघ्र बंदी बना लिया जावे। इस अर्थ महाराज ने कुमार के भवन में जाना और उनको स्वयं बंदी बनाना निश्चय कर लिया।

: १२ :

कुमारदेव, यादव और मोहन राज्य परिषद् की सभा से बाहर आये, तो श्वेतांग ने सेना को सतर्क रहने की सूचना, जैसे उसने भेजी थी, की बात बता दी। इस पर कुमारदेव ने परिषद् के भीतर की घटना बता कर कहा, "हम को बंदी करने की आज्ञा होने जा रही है। इस कारण तुम शीघ्र मेरी मुद्रा लेकर सेना के शिविर में जाओ और सेना के एक भाग को अपने भवन की रक्षा के लिये, दूसरे भाग को नगर में शान्ति रखने के लिये और तीसरे भाग को महाराज के प्रासाद पर अधिकार करने के लिये भेज दो। शीघ्र करो अधिक समय नहीं मिलेगा। सैनिक कार्यों में विलम्ब हानिकर होता है।"

श्वेतांग इस बात के लिये घर से ही तैयार होकर आया था। उसने एक

लिखित आज्ञापत्र पर कुमारदेव के हस्ताक्षर ले लिये और मुद्रा लेकर रथ पर सवार हो सेना के शिविर को चल दिया।

कुमारदेव, यादव और मोहन को साथ लेकर अपने निवास स्थान पर जा पहुंचा। यहां उसने अपने भवनरक्षकों को बुला कर आज्ञा दी, "सब शस्त्र धारण कर, इस भवन की रक्षा के लिये तैयार हो जाओ।"

भवन में पहुंच कुमार ने यादव और मोहन से कहा, "आप लोग घूम-घूम कर नगर में यह विख्यात करिये कि महाराज पालकदेव ने राज त्याग कर सन्यास ले लिया है और कुमारदेव को राज्य सौंप दिया है। जब तक कुमार शतवीर बडा होकर राज्य संभालने के योग्य होगा तब तक कुमार-देव राज्य चलायेगा।"

कुमार भवनरक्षको को तैयार होने की आज्ञा देकर और यादव तथा मोहन को नगर को भेज, अन्त पुर चला गया। दासियाँ भवनरक्षकों में भाग दौड़ देख भयभीत हो रही थीं। कुमार जब अन्तःपुर में आया तो किरण और रेखा उसके पास आकर पूछने लगीं।

"क्या हो गया है श्रीमान् ?"

"मेरा राज्याभिषेक होने जा रहा है।"

"सत्य ?" किरण ने विस्मय में पूछा, "कब ?"

"उसी की तैयारी हो रही है।"

रेखा ने कुमार देव की बांह पकड़ कर कहा, "अपना वचन स्मरण रखियेगा।"

"हां ! हां ! स्मरण है।" इतना कह वह अपने शस्त्रागार में चला गया। उसके चले जाने पर किरण ने रेखा से पूछा, "क्या वचन पा गयी हो रेखा बहन ?"

"मैं पटरानी बनूंगी।"

"मैं तुम को बधाई दूंगी। मुझ को इससे बहुत प्रसन्नता होगी।"

"धन्यवाद किरण बहन ! मै तुम को सब प्रकार से सुखी रखने का यत्न करूंगी।"

किरण को इस धन्यवाद की आवश्यकता नही थी ; वह देख रखी थी कि रेखा जैसी मूर्ख दासी पटरानी बन रही है और वह बुद्धि, शिक्षा और योग्यता में अपने को उससे श्रेष्ठ मानती हुई इस विषय में कुछ नहीं कर सकी। उसको उस दिन का दृश्य स्मरण था, जब कुमारदेव श्वेतांग के साथ व्यवसाय गृह में उसको क्रय करने गया था।

उत्ताल बावा अपनी तीन विक्री के योग्य लड़कियो को लिये हुए आगार में बैठा धूम्र पान कर रहा था। वह धूम्र उपकरण से सुगन्धित धूँआ खेंचता और धीरे-धीरे उसको खिडकी से बाहर फेंक रहा था। कुमार और श्वेतांग उत्ताल बावा की दासियो के सामने खड़े हुए, तो वह अपने धूम्रपान को छोड हाथ जोड कर नमस्कार कर खड़ा हो गया। कुमारदेव ने उनको देखा और जब श्वेताग ने उसकी ओर संकेत कर कुछ कान में कहा, तो कुमार ने उसकी ओर देखा और नाक चढ़ा कर सिर हिला दिया। दोनो आगे निकल गये। आगे रेखा का स्वामी उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने रेखा को सम्मुख कर दिखाया। कुमार ने रेखा की ठोड़ी उठा कर उसका मुख देखा। पश्चात् उसकी भुजाओ की कठोरता को देखा और भाव-ताव कर उसको क्रय कर लिया।

उत्ताल बावा पुनः खिड़की मे बैठ धूम्रपान करने लगा था। किरण उसके समीप बैठी थी। उसने धीरे से उससे पूछा, "हमें कल इस नगर से चल देना चाहिये न ?"

उत्ताल बावा ने धूम्र उपकरण मुख से निकाले बिना ही कहा, "मै भी यही विचार कर रहा हूं।"

"देखो न, कुमार ने," वह श्वेतांग को सेनापति समझी थी, "मुझ को पसन्द किया था और वह कुरूप गधा उसको दूसरी दूकान में ले गया है।"

"गधो को मेवा पसन्द नहीं आता।" उत्ताल बावा ने अन्यमनस्क भाव में कहा।

इस समय कुमार और श्वेतांग पुनः लौट कर किरण के सम्मुख आ खड़े हुए। अब रेखा उनके साथ थी। कुमार ने किरण की बाह पकड़

कर खड़ा किया। रेखा को उसके साथ खड़ा कर दिया। किरण रेखा से दो अंगुल ऊंची थी। दोनों को भली भांति देख कुमार ने कहा, "मित्र! तुम कहो तो इसको भी क्रय कर लेता हूँ। इस पर भी मेरी सम्मति में पहिले वाली ही श्रेष्ठ है।"

श्वेतांग किरण की आंखों में देख रहा था। उसने कुमार के कहने का केवल यह उत्तर दिया, "अपनी-अपनी पसन्द है महाराज!"

इस पर कुमार ने किरण को भी क्रय कर लिया।

किरण को प्रासाद में आ कर पता चला कि श्वेतांग तो केवल मंत्री है और जिसको वह कुरूप सेवक समझती थी वह कुमार सेनापति है। उसने अनुभव किया कि वह अपने जीवन की बाजी हार गयी है। श्वेतांग के साथ अल्पाहार के दिन वह समझी थी कि वह एक बुद्धिमान् विद्वान् है और उसके मन में उसके प्रति सहानुभूति है।

यद्यपि कुमार किरण के व्यवहार से पूर्णतः संतुष्ट था, परन्तु वह अभी तक भी उसके हाथ बिक जाने पर प्रसन्न नहीं हो सकी थी।

इस समय तक लगभग एक सौ भवनरक्षक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित भवन के द्वार पर एकत्रित हो गये थे और कुमारदेव उनको समझा रहा था, "महामात्य सुदर्शन ने महाराज को भ्रम में डाल कर मेरे विरुद्ध कर दिया है। वह मेरी ख्याति पर ईर्ष्या कर रहा है। इस कारण मुझको बंदी करने की आज्ञा यहां आ रही है।"

भवनरक्षकों के नायक ने जयकारा बुला दिया। उसने अपना खड्ग नंगा और ऊंचा कर कहा, "महाराज कुमारदेव की जय हो।"

सबको अपने-अपने स्थान पर नियुक्त कर कुमार देव भीतर गया, तो उसको किरण मार्ग में खड़ी मिली। उसनें पूछा, "कहां से आरही हो किरण देवी!"

"किरण परछांई की भांति महाराज के साथ-साथ घूम रही है।"

"भीतर चल कर बैठो। इसमें हानि होने का डर है।"

"दासी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो श्रीमान् की सेवा में रहना चाहती है।"

कुमार ने खड़े होकर किरण की आंखों में देखा। उसने उनमें निर्भीकता देख कहा, "मैं बहुत प्रसन्न हूं किरण! परन्तु मेरे जीवन में तुम को शस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"इस भीड़ के समय श्रीमान् के मन्त्री कहा भाग गये है?"

"वह भागा नहीं है देवी! मेरे ही काम से गया है।"

किरण कुमार के पीछे-पीछे उसके आगार में जा पहुंची। वहां एक उच्च आसन पर बैठ कुमार ने किरण से पूछा, "रेखा कहां है?"

"बुलाऊं महाराज उसे?"

"हा।"

किरण चली गयी। कुमार ने अपना खड्ग निकाल कर उसकी धार को देखा और उसके तीखेपन पर संतोष अनुभव कर, पुनः उसको कवच में रख लिया।

इस समय प्रतिहार भागता हुआ आया और आगार के बाहर से ही बोला, "बड़े महाराज आये है।"

कुमार इसकी आशा नहीं करता था। इससे अनिश्चितमन खड़ा रह गया। इस समय महाराज महामात्य के साथ आगार में आ पहुंचा। कुमार बिना कुछ कहे खड़ा रहा और उनके कहने की प्रतीक्षा करने लगा। पालकदेव वहा रखे एक आसन पर बैठ गया। कुमार को अपने सामने के आसन पर बैठने को कह, पूछने लगा, "कुमार भैया, तुम वहा से चले क्यो आये थे?"

"प्रद्योत का व्यवहार अपमानजनक था। मै उसको सहन नहीं कर सका।"

"बहुत विचित्र बात है? कुमार! तुम राज्य-परिवार के एक अंग हो और तुम ही राज्य-परिषद् का अपमान करने के लिये उद्यत हो जाओ तो कैसे काम चलेगा? क्या इस राज्य में कोई भी व्यक्ति ऐसा हो सकता

है जो धर्म की अवहेलना करे और उस पर राज्य में विचार भी हो न सके ?"

"पर भैया ! मैंने धर्म की अवहेलना नहीं की।"

"तो फिर न्यायालय में जाने से डरते क्यों हो ?"

"मुझको वहां से न्याय की आशा नही है ।"

"तो कहां से न्याय मिल सकता है तुम को ?"

"मैंने वहां का द्वार खटखटाया है।"

"कहां का ?"

"जनता और सेना का।"

"तो तुम विद्रोह करोगे ?"

"यदि आवश्यकता हुई तो वह भी करूंगा।"

"तो करो। जैसा मन करे करो। परन्तु इतना स्मरण रखना कि अपने किये कर्मों के फल से बच नहीं सकोगे। मैं तो जा........।"

पालकदेव इससे अधिक नहीं कह सका । कहते-कहते उसको स्मरण आ गया कि कुमार उसका कनिष्ठ भ्राता है । उसके लिये अशुभ कामना करना उचित नही। इस कारण वह चुप कर गया। वह उठ खड़ा हुआ और आगार से जाने के लिये तैयार हो गया। इस समय किरण और रेखा वहां आ पहुंचीं। वे महाराज को वहां देख ठिठक गयी। पालकदेव ने उनको देखा और समझा। उसने पूछा, "ये क्रीत दासियां है ?"

"यह," कुमार ने रेखा की ओर देखते हुए कहा, "मेरी पटरानी बनने वाली है।"

"और यह ?" पालकदेव ने किरण की ओर देख कर पूछा।

"यह मेरी हृदय की रानी बनेगी।"

महाराज ने किरण को सिर से पांव तक देखा और कहा, "मेरी सहानुभूति तुम्हारे साथ है ।"

महाराज द्वार के बाहर ही निकलने वाला था कि श्वेतांग सेना के पांच भटों के साथ आ पहुंचा। पूर्व इसके कि महाराज कुछ कहे श्वेतांग ने

सैनिकों को आज्ञा दी, "श्री सुदर्शन ने ही देश में अव्यवस्था उत्पन्न करने का यत्न किया है। इनको बंदी बना लो।"

सैनिक महामात्य को पकड़ने के लिये लपके, परन्तु महाराज पालकदेव उसके सम्मुख खड़े हो गये और हाथ उठा सैनिकों को रोकते हुए श्वेतांग से पूछने लगे, "किस की आज्ञा से यह हो रहा है ?"

"सेनापति की, जिन्होंने देश का शासन अपने अधीन कर लिया है।"

"क्यों ? किस के कहने से ?"

"जनता की इच्छा से। नगर की वैश्य समाज और कर्मकार वर्ग के नेताओ के कहने से। इन दोनों वर्गों की जनसंख्या पूर्ण जनसंख्या की दो तिहाई है।"

"मैं इस प्रकार के विद्रोह को सहन नहीं कर सकता। मैं यहां का राजा हूं और मैं आज्ञा देता हूं कि सैनिक अपने-अपने शिविरो को लौट जावें।"

श्वेतांग ने कहा, "मुझको यह बताते हुए बहुत ही दुःख हो रहा है, परन्तु मैं विवश हूं। मुझ को सेनापति जी की आज्ञा है कि महामात्य जी को बंदी बना लिया जावे और यदि इस कार्य में कोई बाधा डाले तो उसको मार्ग में से कांटे की भांति दूर कर दिया जाये। इस कारण मैं आज्ञा देता हूं कि आप दोनो को बंदी कर लिया जाये।"

सैनिको ने एक क्षण तक कुमार का मुख देखा, परन्तु यह देखा कि वह इस आज्ञा का विरोध नहीं कर रहा है, उन्होंने महाराज पालक और महामात्य सुदर्शन दोनो को पकड़ लिया।

यह देख किरण का मुख विवर्ण हो गया। उसके होठ फड़फड़ाने लगे, परन्तु शीघ्र ही अपने को नियंत्रण में कर उसने मुख को बंद कर लिया। होठो को कस कर भींच कर अपने को बोलने से रोका।

श्वेतांग ने कुमारदेव से पूछा, "महाराज ! इनका निवास स्थान कहां-कहा होगा ?"

"यह हमारे सम्मानित अतिथि हैं। अतएव इसी भवन में इनके ठहरने का प्रबन्ध किया जावेगा।"

इतना कह कुमारदेव ने बंदियो को उसके साथ ले आने का संकेत किया और अपने शयनागार को चल दिया। वहां से एक मार्ग भूगर्भ में जाता था। वह बंदियो को लेकर उस मार्ग में चला गया।

श्वेताग अपने आगार में जाकर आज्ञायें लिखने लगा। जब से वह उज्जयिनी में आया था, तब से ही वह एक ऐसे दिन की तैयारी में लगा था। उसने नगर के सब प्रमुख नागरिको के साथ सम्पर्क बना लिया था। सेना में अनेको से उसका परिचय हो चुका था। घटनायक, नायक, उपसेनापति सब सैनिक पदाधिकारियो से उसने बातचीत कर रखी थी। यही कारण था कि जब चोट करने का समय आया तो वह तैयार था।

राजनीति, जैसी वह पढ़ा था, समय पर चूकने की राय नहीं देती थी। अवसर-प्राप्ति पर जो भावुकता के आवेश में कर्तव्य भूल जाता है, वह राजनीति में कुशल व्यक्ति नहीं माना जाता। उसने महर्षि वाल्मीकि का कथन, 'चातुर्वर्ण्यहितार्थाय कर्त्तव्यं राजसूनुना। नृशंसमनृशंसं वा प्रजा रक्षणकारणात्। पावनं वा सदोष वा कर्त्तव्यं रक्षता सता।' पढ़ा था और उस पर मनन किया था।

इस कारण बिना किसी प्रकार की शोच शका किये उसने नगर में यह घोषणा करवा दी—"सैनिक दृष्टिकोण से राज्य की भली भांति रक्षा और सर्व साधारण के सुख सुविधा के लिये, अवन्ति के मनोनीत सेनापति श्रीमान् कुमारदेव ने इसको कुछ प्रमादी और अदूरदर्शी व्यक्तियो से बचाने के लिये शासन अपने अधिकार में कर लिया है। इसमें श्रीमान् महाराज पालकदेव ने राज्य के हित के लिये अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उन्होने राज्य अपनी इच्छा से अपने भाई कुमारदेव के हाथ में सौंप दिया है।

"इस कारण यह घोषणा की जाती है कि आज मध्य रात्रि से श्रीमान् कुमारदेव अपने बड़े भाई महाराज पालकदेव की आज्ञा से राज्य कार्य चलावेंगे। सब नागरिको को यह आदेश दिया जाता है कि जब तक नवीन राज्य-परिषद् का निर्माण नहीं हो जाता, महाराज कुमारदेव की आज्ञा का पालन करें।"

नगर में स्थान-स्थान पर सैनिक बैठा दिये गये और यह घोषणा नगर के सब चौराहों पर कर दी गयी। यह परिवर्तन इतना एकाएक हुआ कि लोग इसका अर्थ समझ नहीं सके। सब अवाक् एक दूसरे का मुख देखते रह गये।

अगले दिन सूर्योदय के समय इस घोषणा को राज्य भर मे प्रसारित कर दिया गया। साथ ही राज्य-परिषद् के निर्माण तक श्वेताग को पूर्णाधिकार से युक्त महामात्य घोषित किया गया।

: १३ :

मध्य रात्रि से पूर्व ही महारानी पद्मावती को कुमारदेव की घोषणा का ज्ञान हो गया। एक दासी ने आकर बताया, "महारानी जी! मार्ग तटों पर सैनिक खड़े घोषणा कर रहे हैं कि महाराज ने राज्य भार अपने छोटे भाई कुमारदेव को सौंप दिया है।"

महारानी को विश्वास नहीं आया। इस कारण उसने दो अन्य दासियों को भिन्न-भिन्न मार्गों पर भेज इस समाचार के विषय में जांच करने को कहा। शीघ्र ही दोनो लौट आयी और कहने लगीं, "राज-प्रासाद सैनिको ने घेर लिया है और यहा से किसी को बाहर जाने नही दिया जाता।"

इस समाचार को सुनकर महारानी का मुख विवर्ण हो गया। वे कितनी ही देर तक अवाक् बैठी रही। धीरे-धीरे उसको बात समझ आगयी और उसने भवनरक्षक को बुला कर पूछा, "क्या हुआ है?"

"राज्य भवन को सैनिको ने चारो ओर से घेर लिया है और कह रहे हैं कि महाराज ने राज्य अपने छोटे भाई को सौंप दिया है।"

"यदि यह ठीक भी हो, तो क्या हम बदी बना लिये गये है?"

"मैंने पूछा है, और वे कह रहे हैं, कि महाराज कुमारदेव की आज्ञा ऐसी ही है।"

महारानी पद्मावती अपने लड़के शतवीर को शयनागार म देखने गई और उसको गहरी नींद में सोया देख बाहर आ गयी। बाहर आ उसने

एक पत्र कुमारदेव को लिखा, "मैं तुम से स्वयं मिलने के लिये आने वाली थी, परन्तु सैनिको ने मार्ग रोक रखा है । इस कारण इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नही रहा कि तुमसे कहूं कि यहां आ जाओ और जो कुछ हो रहा है उसका अभिप्राय समझा जाओ।"

चिट्ठी गई और उत्तर श्वेतांग के हाथ का लिखा हुआ आया। उत्तर था, "आदरणीय महारानी जी ! महाराज और सेनापति अभी आवश्यक राजकीय बातो के विषय में वार्तालाप कर रहे है। इस कारण दोनों में कोई भी अभी आ नहीं सकता।.भवन के चारों ओर सैनिक बैठाने का अभिप्राय यह है कि राज-परिवार की, विशेष रूप में राजकुमार की रक्षा की जावे। नगर में भारी हलचल होने की संभावना है और इससे राज परिवार को हानि पहुंच सकती है । इस कारण आप भवन में निश्चिन्त होकर रहिये। रक्षा के लिये पर्याप्त सेना भेज दी है ।"

इस पर महारानी पद्मावती ने पुनः लिखा, "मैं तुरंत महाराज और सेनापति से मिलना चाहती हूं। सेनानायक को आज्ञा भेज दी जावे कि वह मुझको आने दे और रोके नहीं।"

उत्तर तुरंत आया, "नगर में भारी उपद्रव हो रहे है और मैं आपके भवन से बाहर निकलने को पसन्द नहीं करता। महारज और सेनापति दोनों की यही सम्मति है ।"

महारानी रात भर बैठी महाराज की प्रतीक्षा करती रहीं। सूर्योदय के समय राजकुमार शतवीर उठा तो वह माता की रात भर रोने से फूली आंखें देख विस्मय करने लगा। दस-ग्यारह वर्ष का बालक राजनीतिक चालों को समझ नहीं सका। इस पर भी माता के दुःखी होने को अनुभव करता था, "मां ! पिता जी कहां है ?"

"नहीं मालूम , बेटा !"

"महामात्य से पूछा है ?"

"उनका भी पता नहीं कि वे कहां है ।"

"मै उनके घर जाकर पूछूं ?" महामात्य राज-भवन के एक पक्ष में

ही रहता था। उसके घर के लोग भी नहीं जानते थे कि वह कहां है।

राजकुमार स्वभाववश भ्रमणार्थ बाहर जाना चाहता था, परन्तु उसकी मां ने बांह पकड़ समीप बैठा कर कहा, "बेटा, तुम बाहर नही जा सकोगे।"

"क्यों ?"

"हम बंदी हैं।"

"किस के ?"

"तुम्हारे चाचा के।"

राजकुमार समझ नहीं सका। विवश वही बैठ गया। उसका मन भीतर ही भीतर क्रोध से व्याकुल हो रहा था। यह अवस्था अधिक काल तक नहीं रही। एक दासी आयी और बोली, "महाराज कुमारदेव के मंत्री श्वेतांग आप से भेंट करने आये हैं।"

"बुलाओ।" पद्मावती ने कहा।

श्वेतांग आया तो उसने झुक कर प्रणाम किया और कहने लगा, "महाराज कुमारदेव ने मुझको एक संदेश देकर भेजा है।"

"कहो।"

श्वेतांग खड़ा था और महारानी सामने आसन पर बैठी उत्सुकता से सुन रही थी। श्वेतांग ने कहा, "महाराज कुमारदेव ने मुझको आज्ञा दी है कि मैं आपको सूचित कर दूं कि पिछली मध्य रात्रि के काल से अवन्ति के राज्य को उन्होंने सम्हाल लिया है। महाराज पालकदेव इस समय महाराज कुमारदेव के गृह में बंदी हैं। इस कारण श्रीमान् कुमारदेव ने पूछा है कि आप प्रासाद में बंदी रहना चाहती हैं या अपने पति के पास ?"

महारानी इस सूचना को सुन कितनी ही देर तक बिना कुछ कहे अपने मन में मनन करती रही। इतने काल तक श्वेतांग सामने आदर के भाव से खड़ा रहा। अंत में महारानी ने पूछा, "तुम कुमारदेव के एक सेवक मात्र हो अथवा राज्य में कोई पद रखते हो ?"

"मुझ को महाराज कुमारदेव ने राज्य का महामात्य नियुक्त किया है।"

"तो तुम बताओ कि किस आधार पर राजकुमार ने राज्य अपने हाथ में लिया है ?"

"प्रजा की इच्छा के आधार पर।"

"प्रजा की इच्छा कब जानी गई है ?"

"शूद्र वर्ग और वैश्य वर्ग के नेता मन्त्री गण महाराज के पदच्युत करने के पक्ष में थे, और इन दोनो वर्गों की जनसंख्या राज्य की जनसंख्या की तीन-चौथाई है।"

"कैसे जाना कि दोनो वर्ग के लोग राज्यपरिवर्तन के विषय में, अपने नेताओ का समर्थन करते है।"

"इस बात को स्वाभाविक माना गया है।"

"मै समझती हूं कि तुम्हारा यह मानना अर्थहीन है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इतनी आवश्यक बात इस प्रकार नहीं मान सकता।"

श्वेतांग निरुत्तर हो रहा था इस कारण उसने बात बदल कर कहा, "मै महाराज कुमारदेव के प्रश्न का उत्तर चाहता हू।"

"तुम्हारे कुमारदेव का अधिकार नहीं कि वह अपने बडे भाई को बंदी कर ले और न ही वह मुझ को बंदी होने को कह सकता है।"

"पर आदरणीय महारानी जी !" श्वेताग ने नम्रतापूर्वक कहा, "बंदी तो वे और आप है। मैने तो यह पूछा है कि आप महाराज के साथ रहना चाहती है अथवा पृथक् ?"

"देश का दुर्भाग्य है कि तुम्हारे जैसा तर्कहीन व्यक्ति राज्य में महामात्य पद को ग्रहण करने जा रहा है। बंदी किसने किया है ? क्यो किया है ? महाराज ने क्या अपराध किया है जिससे वे बंदी है ? इसी प्रकार मेरी बात है। बंदीगृह का प्रश्न तो उठता ही नहीं।"

"मै तो महाराज की आज्ञा सुनाने आया हू। आप से तर्क करने नहीं।"

"तो तुम महामात्य नहीं हो ? एक प्रतिहार मात्र हो ? महामात्य तो राज्य में नीति-संचालन करने वाला होता है। महाराज भी बिना महामात्य की अनुमति के किसी कार्य को कर नहीं सकता। चले जाओ यहा

से। मूर्ख कहीं के! तुम्हारे महाराज का प्रश्न अनर्गल है और उसका कुछ उत्तर नहीं।"

श्वेतांग मूर्ख कहे जाने से क्रोध से लाल मुख हो महारानी जी का मुख देखता रह गया। बहुत कठिनाई से अपने मन पर संयम कर कहने लगा, "मेरा अधिकर नहीं कि मैं महारानी जी को राजनीति की शिक्षा दूं। इस पर भी मूर्ख महामात्य की एक बात को आप स्मरण रखें। राजनीति में सबसे बड़ी युक्ति और सबसे बड़ा सत्य शक्ति है। शक्तिहीन पुरुष राज्य नहीं कर सकता।"

"परन्तु तुम और तुम्हारे स्वामी कौन-सी शक्ति के अधिकारी बन गये हैं?

"सेना के।"

"सेना तो राज्य की वस्तु है। यह तो इसकी बाहरी शत्रुओं से रक्षा के लिये होती है। देश के भीतर राजा और राजा में यह शक्ति का रूप नहीं रखती। इस को भ्रम में डाल यदि तुम इसका प्रयोग करोगे तो घोर पाप के भागी होगे और पाप पापी पर ही विनाशकारी प्रभाव रखता है।"

श्वेतांग महारानी की युक्तियो के आगे सांप की भांति सटपटा रहा था। उसने अपने गुरुजनो से सीखा था कि राजनीति में कठिनाई के समय अपने मन के संतुलन को ठीक रखना सबसे बड़ा गुण है। इस कारण उसने अपने क्रोध को मन ही मन पी लिया और कहा, "तो फिर आपके लिये बंदी-गृह का निर्णय भी हम ही करें?"

महारानी ने उत्तर देने के स्थान वहां से उठ जाना उचित समझा। वह उठी और बिना श्वेतांग की बात का उत्तर दिये दूसरे आगार में चली गयी।

शतवीर माता के पास बैठा था। वह क्रोध और घृणा से भरा हुआ श्वेताग की ओर देख रहा था। जब वह जाने लगा तो राजकुमार ने कहा, "ए! ए! ठहरो।"

श्वेतांग जहां था वहां ही ठहर गया और मुस्कुराते हुए बालक की ओर देखने लगा। शतवीर ने कहा, "ठहरो, मैं तुम से युद्ध करूंगा। तुम्हारे

पास तुम्हारा खड्ग नहीं है क्या ? कैसे महामात्य हो तुम ? अपना खड्ग भी नही रखते ? एक प्रतिहार से ले लो और लड़ो।"

"तुम मुझ से युद्ध क्यो करना चाहते हो, राजकुमार ?"

"तुम ने महारानी जी का अपमान किया है।"

"मैंने अपनी जानकारी में तो अपमान नहीं किया। यदि राजकुमार इसको भी अपमान समझते है तो मै क्षमा चाहता हूं। मेरा ऐसा करने का किंचित्मात्र भी विचार नहीं था।"

"तो तुम मुझ से लड़ोगे नहीं ? तुम भीरु हो।"

श्वेतांग बालक की बातें सुन हंसने लगा। शतवीर उसके हंसने का अर्थ न समझ विस्मय में उसका मुख देखने लगा। श्वेतांग उसके मन में उठ रहे संशयो का अनुमान लगा कर उनको दूर करने के लिये कहने लगा, "वीर बालक, तुम्हारी आयु अभी बहुत कम है। तुम्हारा ज्ञान भी बहुत न्यून है। मेरी राय मानो। वाद-विवाद छोड़ मुझ से पढने आया करो। दश वर्ष पढ़ने के उपरान्त, यदि तुम चाहोगे तो मै तुम से युद्ध करूंगा।

"जाओ अपनी माता जी के पास बैठो। अभी तुम्हारी आयु राज्य कार्य समझने की नहीं है।"

स्वार्थपरता

: १ :

श्वेतांग ने सेना के बल पर अवन्ति में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। उस क्रान्ति के विरोधी तत्वों को उसने मार्ग से कांटे की भांति दूर हटा दिया। महाराज पालकदेव तथा महारानी पद्मावती बंदी कर लिये गये। पंडित सुखदर्शन और उसके साथ बीस के लगभग अन्य ब्राह्मण बंदी बना नाराट् नाम के दुर्ग में भेज दिये गये। शतवीर को आचार्य वामदेव के पास पढ़ने के बहाने भेज दिया गया और प्रबोध न्यायाधीश को महाराज कुमारदेव का अपमान करने के लिये प्राणदंड दिया गया।

जनता में उक्त कार्यों से ऐसा आतंक बैठा कि किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में जनता को प्रसन्न रखने के लिए, तीर्थाटन से लौटने के उपलक्ष में हो रहे उत्सव को लम्बा कर दिया गया। लोग नाच-रंग में लीन रहे और उस अन्याय को भूल गये, जो राज्य के कुछ नागरिको के साथ किया गया था।

कुमारदेव का राज्य भली प्रकार स्थापित हो गया। जहां सेना मन-मानी करने का अवसर पाने से प्रसन्न थी, वहां जनता डर से भयभीत चुप थी। नगर का वैश्य वर्ग आय में वृद्धि के कारण संतुष्ट था और शूद्र वर्ग मद्य-मास के सुलभ हो जाने से मस्त था।

किरण और रेखा कुमार की अति प्रिय दासिया थी। जहा रेखा कुमार की वासना-तृप्ति के अधिक योग्य थी, वहां किरण अपनी योग्यता, बुद्धि और कार्य पटुता से कुमार के मन पर अधिक और अधिक प्रभाव जमा रही थी।

राज्य-परिवर्तन के दो-तीन दिन पीछे कुमार किरण के आगार में जाकर कहने लगा, "किरण ! तुम पर भरोसा किया जा सकता है क्या ?"

"अपने मुख से अपनी प्रशंसा क्या करूं, महाराज ! परीक्षा कर देख लीजिये ।"

"तुम जानती हो कि मेरे बड़े भाई इसी भवन में वंदी हैं । मैं समझता हूं कि उनकी देख भाल साधारण दास-दासियों के हाथ में न दे कर, तुम्हारे हाथ में रखूं तो ठीक रहेगा । महामात्य उनका प्रबन्ध कर रहे हैं, परन्तु मेरी इच्छा है कि उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो । मैंने तुम को सभ्य और सुशील पाया है । रेखा से भी अधिक । इस कारण यह कठिन कार्य तुम को देना चाहता हूं ।"

किरण मन में विचार करती थी कि पालकदेव का वंदी किया जाना अन्याय है । कुमार ने उसको भी अपने अन्याय में भागीदार बनाना चाहा है । इस पर भी वह ना नहीं कर सकी ।

उसको महाराज कुमारदेव से रोष था । वे रेखा को पटरानी बनाने वाले थे और वह समझती थी कि रेखा फूहड़, मूर्ख और अशिक्षित है । वह अपने को सब प्रकार से उससे श्रेष्ठ मानती थी ।

श्वेतांग ने उसकी एक बार प्रशसा की थी । इस कारण पिछले दस बारह दिन से, जब से वह क्रय कर भवन में लायी गयी थी, श्वेतांग से सम्पर्क स्थापित करने का यत्न कर रही थी, परन्तु इसका वह अवसर नहीं पा सकी थी ।

आज कुमारदेव ने जब उसको अपने भाई की देखभाल का कार्य दिया, तो वह अपने को विश्वास पात्र सिद्ध करने के लिये मन लगा कर इस कार्य में लग गयी ।

उसने भूगर्भ आगारो की तालियां ले लीं और अपनी निज की एक सेविका मघीका, को लेकर पालकदेव को देखने चली गयी ।

कुमारदेव के अपने शयनागार में पूर्व की दीवार में एक द्वार था । उस द्वार को सदैव ताला लगा रहता था । द्वार खोल सीढ़ियां थीं, जो भूमि के नीचे को जाती थीं । बीस सीढ़ियां उतरने के पश्चात् एक मार्ग था और उस मार्ग के दोनो ओर कई आगार थे । इनमें से एक आगार में महामात्य सुदर्शन

और दूसरे में पालकदेव बंद थे। प्रत्येक आगार में भवन के पिछवाड़े की ओर से प्रकाश और वायु आने को गवाक्ष बने थे और आगार के साथ पायखाना और स्नानागार थे। भवन नदी के किनारे पर बना था और इन आगारों की दीवारें, जिनमें गवाक्ष थे नदी के ऊपर खुलती थी।

किरण ने पहिले पालकदेव का आगार खोला। बंदी एक चटाई पर आसन जमाये पूजा कर रहा था। इस कारण वह उसकी पूजा समाप्त होने तक वहां खड़ी रही। महाराज ने आंख खोली तो बंदी होने की रात को देखी क्रीतदासियों में से एक को सामने खड़ा देख विस्मय में उसको देखने लगा।

किरण ने अपना परिचय दिया, "मैंने महाराज के दर्शन किये हैं। अब श्रीमान् कुमारदेव ने मुझको आपकी सेवा तथा यहां का प्रवन्ध करने के लिये नियुक्त किया है। मै अब आप से यह जानने के लिये आयी हूं कि आप को क्या-क्या वस्तु चाहिये। अभी तक आप को क्या असुविधा रही है।"

"मुझको कुछ नही चाहिये। मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।"

"आप रात सोये कहां थे?"

"इस चटाई पर।"

"तो आपको सोने को पलंग, बैठने को चौकियां, पूजा के लिये सामान, वस्त्र और भोजन चाहिये। स्नानादि का प्रबन्ध इस स्थान पर है। रात को प्रकाश के लिये दीपक चाहिये।"

पालकदेव चुप रहा। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इस पर किरण ने कहा, "आप को स्वाध्याय के लिये कौन ग्रन्थ चाहियें?"

पालकदेव इस प्रश्न से किरण की ओर विस्मय से देखने लगा। किरण ने पूछा, "क्या आप 'भारत युद्ध इतिहास' का अध्ययन करना चाहेंगे अथवा 'बाल्मीकि रामायण' का पाठ? यदि रुचि हो तो कोई उपनिषद् अथवा ब्राह्मण ग्रन्थ भेज दूं?"

पालकदेव से अब नहीं रहा गया। उसने पूछा, "तुम क्या समझती हो कि मुझको इस अवस्था में कौन ग्रन्थ पढ़ने चाहियें?"

"महाराज अपनी रुचि के अनुसार ही तो कोई कह सकता है। मेरी रुचि तो 'भारत युद्ध इतिहास' की ओर है।"

"तुमने वह ग्रन्थ पढ़ा है क्या ?"

"हा महाराज ! दो बार तो आद्योपांत पढ़ा है।"

"और क्या पढा है तुमने ?"

"वाल्मीकि रामायण भी कई बार पढी है।"

"दोनो में से किस को पसन्द करती हो तुम ?"

"काव्य की दृष्टि से तो 'वाल्मीकि रामायण' श्रेष्ठ है, परन्तु मनो-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'भारत युद्ध इतिहास' एक अमूल्य ग्रन्थ है।"

पालकदेव किरण को एक शिक्षित लड़की देख चकित रह गया। इस कारण उसने पूछा, "देवी ! इतनी विद्वान् होने पर भी तुम बेची गयी हो। इसमें क्या रहस्य है ?"

"कुछ विशेष रहस्य नहीं महाराज ! मैंने सुना है कि मेरे माता-पिता बहुत निर्धन थे और उत्ताल बाबा ने मुझको उन से मोल ले लिया था। तब मै बहुत कम आयु की थी। मुझको अपने माता-पिता का धुँधला सा ज्ञान है। यह शिक्षा मुझको उत्ताल बाबा ने दी है। वे स्वय भारी विद्वान् हैं। मेरा सौन्दर्य और मेरे मन की श्रेष्ठता देख उन्होंने मुझको किसी राजा-महाराजा के योग्य दासी बनने के लिये शिक्षा दी है।"

"तो तुम अपने राजा को पा गयी हो ?"

किरण चुप रही। पालकदेव को उस रात की बात याद आ गयी, जब कुमारदेव ने दूसरी दासी को पटरानी बनाने का विचार प्रकट किया था। इस पर महाराज पालकदेव ने कहा, "मुझको यह देख बहुत शोक हो रहा है कि तुम जैसी विदुषी स्त्री क्रीतदासी है।"

"इससे क्या होता है महाराज ! अनेकों स्त्रियां जीवन भर मूर्ख पतियों की सेवा करती रहती है। वे कभी उचित मान नहीं पातीं। यह सब भाग्य की बात है कि कोई राजा की सेवा करती है और कोई रंक की।"

पालकदेव किरण के इस कथन से उसके मन में कटुता के होने का

अनुभव करता था। उसको ऐसा अनुभव हुआ कि उससे उचित व्यवहार नहीं हो रहा। इस पर भी उसने कहा, "दासी और पत्नी में अंतर नहीं मानती क्या ?"

"केवल नाम में महाराज।"

"एक छोड़ी जा सकती है और दूसरी नहीं। क्या यह कम अंतर है ?"

"पुरुष तो दोनों को छोड़ सकता है। स्त्री किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ सकती। भाग्य से किसी को अच्छा-पुरुष मिल जाता है, किसी को कर्म से पशु और नाम से पुरुष।"

पालकदेव के मन में किरण के लिये आदर उत्पन्न हो गया था। वह सोचता था कि यह विदुषी स्त्री उसके बंदी गृह की प्रबन्धिका नियुक्त हुई है। इससे प्रसन्न हो उसने कहा, "देवी! मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि तुम जैसी योग्य प्रबन्धिका से मेरा सम्पर्क हो रहा है। इससे मेरे मन में आशा उत्पन्न हो गयी है कि मेरा बंदी काल भी कुछ अधिक कष्टमय नहीं होगा।"

"मैं आप को सुखी रखने का यत्न करूगी।"

"क्या महारानी पद्मावती का समाचार मिल सकेगा ?"

"यद्यपि यह बात मेरे कार्य का भाग नहीं है, तो भी मैं महाराज को इस विषय में समाचार लाकर देनें का यत्न करूगी।"

: २ :

किरण जब पालकदेव से मिलकर आयी तो उसके मन में एक टीस अनुभव हुई। वह श्वेतांग के व्यवहार को, पालकदेव के बंदी बनाये जाने के दिन देख चुकी थी। उसको कुछ ऐसा भास हुआ था कि भाई-भाई के झगड़े में श्वेतांग ही कारण है। साथ ही जिस प्रकार श्वेतांग ने आतंक जमा कर जनता के मन की भावनाओं को दबाया था वह ठीक नहीं समझती थी। बंदियों की सेवा और प्रबन्ध का काम उसको देना और श्वेतांग के हाथ से ले लेना, उसको विचित्र प्रतीत हुआ। उसने यह भी देखा कि अभी तक बंदियों के साथ वैसा व्यवहार नही हो रहा जैसा कि अवन्ति के भूतपूर्व महाराज के

साथ होना चाहिये था। इससे उसके मन में जहा श्वेतांग के विषय में अच्छे बने हुए विचार बिगड़ रहे थे, वहा कुमारदेव के लिये उसके मन में दया के भाव उत्पन्न हो रहे थे। वह समझती थी कि श्वेतांग अपने ईश्वरदत्त सम्मोहिनी प्रभाव के कारण कुमारदेव को भ्रम में फंसा रहा है ! वह समझ रही थी कि वदियों का प्रवन्ध उसके हाथ से निकल जाने के कारण वह चिन्तित अवश्य होगा और उसके पास इसका कारण पूछने आयेगा।

उसका अनुमान ठीक निकला। उसी दिन मध्याह्न के भोजन के पश्चात् उसकी दासी मघोका यह सूचना लेकर भीतर आयी कि महामात्यजी भेंट के लिये आये हैं। किरण वाहर के आगार में आ गयी। श्वेताग वहां बैठा था। वह कुछ चिन्तित था और किरण ने उसका अभिवादन कर पूछा, "क्या आज्ञा है श्रीमान् ?"

"महाराज ने अभी वताया है कि किरण देवी वंदी गृह की प्रवन्धिका नियुक्त हुई है।"

"महाराज ने इस विषय में मेरा विश्वास कर मेरा भारी सम्मान किया है।"

"परन्तु यह कार्य वहुत कठिन है। इस में बहुत वड़ा उत्तरदायित्व है।"

"मैं जानती हू श्रीमान्।"

"पालकदेव के भाग जाने की सम्भावना को भी विस्मरण नहीं किया जा सकता।"

"ठीक है। क्या यही आपकी चिन्ता का विषय है ?"

"जव से मैंने सुना है, तव से ही भारी चिन्ता में हूं। अभी नगरनिवासियों के मन में पालकदेव के लिये न केवल मान है, प्रत्युत भक्तिभाव भी विद्यमान है। यदि वे जनता में जा पहुंचे तो भयकर प्रतिक्रिया उत्पन्न होने की सम्भावना है।"

"सत्य ही यह ध्यान रखने की वात है, श्रीमान् ! इसको रोकने का उपाय करना महामात्य का काम है।"

"इसी लिये तो आया हूं। महाराज कुमारदेव का राज्य अभी नवीन है।

एक सुकुमार पौदे की भांति इसकी रक्षा होनी चाहिये।"

"तो क्या श्रीमान् देश में शान्ति रखने के उपायों पर मुझ से राय करने आये हैं?"

"सो तो नहीं। आपसे तो केवल यह कहने आया हूं कि महाराज पालकदेव को भागने नहीं देना। ऐसा होने पर देश में उपद्रव उत्पन्न हो जावेगा।"

"मैं यह समझती हूं और ऐसी बात को रोकने का पूर्ण यत्न करूंगी।"

"पर प्रश्न तो यह है कि क्या तुम अकेले में कर सकोगी?"

"आप क्या समझते है कि मैं कर सकूंगी अथवा नही?"

"मैं समझता हूं कि अकेले इतना आवश्यक और कठिन कार्य करना तुम्हारी शक्ति से बाहर है।"

"तो महाराज से कह कर इस काम पर किसी ऐसे की नियुक्ति करवा दीजिये, जो इस कठिन कार्य को कर सकता हो।"

"देखो किरण, महाराज में इतनी योग्यता होती तो बात ही क्या थी? मैंने उनसे यही बात कही तो बोले, कि मैं स्वयं देख लूं। देखो न, नियुक्ति तो उन्होंने स्वयं की और मैं तुमको हटाने पर लगा दिया गया हूं। यही तो अयोग्य व्यक्तियो का काम है।"

"पर मैं पूछती हूं कि ऐसे अयोग्य को आपने राज-गद्दी पर बैठाया क्यों?"

श्वेतांग इस बात को सुन कर खिलखिला कर हंस पड़ा। किरण इस हंसी का कारण नहीं जान सकी। किरण को प्रश्नभरी दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए पा, श्वेतांग ने अपनी हंसी का कारण बता दिया, "तो आप नहीं जानतीं। मेरा हित कुमारदेव के महाराजा बनाने में था।"

"तो मुझको बंदियो के प्रबन्ध करने के कार्य से हटाने में भी आपका हित है क्या?"

"यह कार्य आपका नहीं है। स्त्रियों को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये।"

"अच्छी बात," किरण ने कहा और उठ खड़ी हुई। श्वेतांग तो बदी-

गृह की ताली लेने आया था। इस कारण किरण के मान जानेपर भी विना ताली दिये जाते देख वोला, "देवी ! वंदी-गृह की ताली।"

"वह मैं महाराज को लौटाने जा रही हूं। आप उनसे जाकर ले लीजिये।"

श्वेताग किरण से हार गया। उसने अनुभव किया कि वह उसके सम्मोहिनी प्रभाव, जिसके लिये वह विख्यात था, में नहीं लाई जा सकी। इस पर उसने अपनी बात वदल दी। उसने कहा, "यदि इन छोटी बातो के लिये महाराज के पास भाग कर जाने लगे तो राज्य कार्य हो चुका। देखो किरण, मैं तुम्हारे विषय में वहुत अच्छे विचार रखता हूं। तुम्हारे सौन्दर्य से मैं इतना प्रभावित हुआ हूं कि मैं तुमको अवन्ति की महारानी वनाने का निश्चय कर चुका हूं। यह सव कुछ मैं इस अभिप्राय से ही कर रहा हू। तुम मेरे साथ सहयोग दोगी तो तुमको भी लाभ होगा और मुझको भी। मैं महाराज कुमारदेव जैसे व्यक्ति को तुम्हारे हित में करने के लिये ही तुम्हारा सहयोग चाहता हू।"

"मैं आप की वहुत आभारी हू। आपने मुझ पर कृपा कर इस महान् व्यक्ति के साथ बांध दिया है और अव आपने मुझको महारानी वनाने के लिये इन महान् महानुभाव को अवन्ति का महाराज वना दिया है। अव यह सव आयोजन मुझ को महारानी वनाने के लिये हैं। आपका मैं धन्यवाद करती हूं। मेरा रोम-रोम आप के अहसान के नीचे दवा हुआ है। आप विश्वास रखें कि यदि मैं पटरानी वन गयी तो आपके इन सब शुभ प्रयासो को स्मरण रखूंगी।"

श्वेताग समझ गया कि किरण उस पर व्यग कस रही है। वह अभी इस व्यंग का उत्तर सोच ही रहा था कि किरण ने फिर कहना आरम्भ कर दिया, "श्रीमान् जी ! देखिये, जव आप लोग मेरा क्रय कर रहे थे मैं आप को तो महाराज समझी थी और उनको आपका भृत्य। मैं तो अव भी मन में यही चिन्तन करती रहती हूं कि कहीं यह उलट पुलट हो जाये तो मुझको कितनी प्रसन्नता होगी। रात के समय जव वे मुझको अपनी दृढ़ भुजाओ में पीस रहे

होते हैं तो मैं आप के कोमल आलिंगन के लिये लालायित रहती हूं।"

यह किरण का अंतिम प्रहार था जो श्वेतांग सुन फडक उठा। अब तो उसको पहिली बात भी सत्य और हृदय से कही गयी समझ आने लगी। इस सब बात ने उसके मस्तिष्क में एक आंधी उत्पन्न कर दी। वह समझ गया कि किरण ने उसको एक मार्ग का निर्देश किया है। इससे उसने अपना ढंग बदला। उसने कुछ समीप हो धीरे से कहा, "देवी! तुमने मेरे मन की बात कही है। परन्तु इस बात को करने का समय नहीं आया। अभी तो पालकदेव को जनता से पृथक् रखने का प्रश्न है। मैं समझता हू कि कुमार देव पालकदेव का भ्राता है। ऐसा समय आ सकता है जब वह स्नेह और दया में प्रभावित हो भाई को मुक्त कर दे। यही कारण था कि मैं उसको यहां से हटा कर किसी दुर्ग में बंदी रखने के लिये ले जाना चाहता था। इसी कारण तुम से ताली मांगी थी। यह बात महाराज को बताये बिना ही करनी चाहिये।"

"आपका कहना तो ठीक ही है, परन्तु कैदियो को यहां से हटा देने पर महाराज को पता लग जावेगा और उनसे झगड़ा आरम्भ हो जायेगा। मेरा विचार तो यह है कि महाराज पालकदेव को यहां से हटाया न जाये, परन्तु उन पर देख-भाल अच्छी प्रकार की जाये। मैं वचन देती हूं कि मैं इस विषय में कोई कसर उठा न रखूँगी। यदि महाराज ने कभी बंदियो को छोड़ने का विचार भी किया, तो आपको तुरंत बता दूँगी।"

श्वेतांग को समझ आ गया कि किरण से झगड़ा करना न लाभप्रद है न ही सम्भव। उसने किरण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और कहा, "मैं देवी का पूर्ण विश्वास करता हूँ।"

इतना कह वह जाने को तैयार हो गया। इस समय किरण ने उसको रोक कर पूछा, "श्रीमान्, महारानी का क्या हुआ।"

"उनको मैंने पूछा था कि वे कहा रहना चाहती है। इस पर उन्होंने कहा कि वे वदी नही है। वे अपनी इच्छा अनुकूल विचरना चाहती हैं।"

"उनको भी यहां ही ले आवें तो ठीक नहीं होगा क्या?"

"बात तो ठीक है। अपनी इच्छा से कोई बंदी नहीं बनता। जब तक बंदी हैं तब तक जहां रखा जावे रहना होगा। मैं रात के समय महारानी जी को यहां मंगवा लूंगा।"

अपराह्न में कुमारदेव किरण के आगार में गया तो उसको कपड़े, बिस्तर, पुस्तकें और अन्य मनोरंजन के साधन वहां एकत्रित मिले। उस समय किरण सामान का निरीक्षण कर रही थी। इससे महाराज ने आश्चर्य में पूछा, "यह क्या हो रहा है किरण ?"

"महाराज! बंदियों के लिये वस्त्र आदि तैयार कर रही हूं।"

"मैंने यह सब कुछ भाई साहब को भेजने के लिये कहा था, परन्तु महामात्य ने कह दिया था कि यदि ये सब सुख-सुविधा उनको देनी है तो फिर वे बंदी ही कैसे हुए।"

"महाराज! उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, जिस कारण उनको कष्ट दिया जाये। इसमें कोई प्रयोजन नहीं। बंदी रहने मात्र से भी तो दुःख उनको होता है। मैं यत्न करूंगी कि यह भी उनको कम से कम हो।"

"तुम बहुत अच्छी हो किरण। तुम मेरा आशय भली भांति समझ गयी हो। यही कारण है कि मैंने उनको अपने आगारों में रखा है। मैं चाहता हूं कि उनको शीघ्र ही छोड़ दूं। मैं उनसे केवल यह आश्वासन चाहता हूं कि वे राज्य छोड़ किसी तीर्थस्थान पर जा कर रहें। उनके रहने तथा खर्चे का प्रबन्ध कर दूंगा। मैंने यह कार्य तुम को सौंपा है। आशा करता हूं कि तुम मेरी इच्छा को समझ कर उसके अनुकूल कार्य करोगी ?"

"मैं तो आपकी दासी हूं महाराज! जैसे आप कहेंगे वैसा ही करूंगी। मैं तो एक भाई के हृदय में दूसरे भाई के प्रति स्नेह की भावना का अनुमान लगा कर ही कार्य करने लगी थी। मुझको विश्वास था कि आप जैसे योद्धा, विशाल हृदय से युक्त ही होंगे। आपको अपने अनुमान से कुछ अधिक ही पाकर मुझे अति हर्ष हुआ है।"

"देखो किरण! हमारे महामात्य भैया से मिलने न पावें। इन दिनों में उन्होंने भाई जी से रूखेपन का व्यवहार किया है।"

"ऐसा ही होगा महाराज। आप निश्चिन्त रहें।"

"एक बात और है। यह रेखा पटरानी बनने की बात कह रही है।"

किरण इस प्रश्न का अभिप्राय नहीं समझ सकी। उसने बहुत विचार किया, परन्तु उसकी समझ में यह नहीं आया कि यह प्रश्न उससे क्यों किया गया है? इस पर भी उत्तर न देना वह उचित नहीं समझती थी। उत्तर न देने में भी उसको कुछ कहना ही चाहिये अन्यथा उसके चुप रहने से कुछ भी अर्थ लिये जा सकते है। इस प्रकार विचार कर उसने कहा,

"महाराज वह आप की सर्वप्रिय दासी है। उसके विषय में आप मेरी सम्मति माग कर मेरा उचित से अधिक सम्मान कर रहे हैं। इसके लिये कृतज्ञ होते हुए भी मै यही कहूंगी कि यह प्रश्न मेरे से पूछने का नहीं है। यह अपने महामात्य जी से पूछिये।"

कुमारदेव खिलखिला कर हंस पड़ा और बोला, "इतना कुछ तो मै पहिले ही जानता हूं। मै तो यह जानना चाहता हूं कि यदि तुम रेखा के स्थान पर होती तो क्या चाहती?"

"मै पटरानी बनाये जाने के लिये आप से कभी न कहती।"

"क्यो?"

"एक क्रीतदासी पटरानी बन जायेगी तो जनता में महारानी के लिये मान कम हो जावेगा। पटरानी जनता के पूजन की वस्तु है।"

"यदि तुम महामात्य होतीं तो मुझ को क्या करने को कहतीं?"

"मै आप को राय देती कि आप रेखा की बात न मानिये।"

"और यदि तुम मेरे स्थान पर होती तो क्या करती।"

"यह अति कठिन बात है महाराज! मै तो शायद न राजा बनना चाहती और न किसी को पटरानी बनाना चाहती। इस पर भी एक बात तो है कि यदि आपका प्रेम रेखा से बहुत अधिक है तो आपको उसके लिये राज्य त्याग देना चाहिये। आप है महाराजा। आपकी प्रियतमा को पटरानी बनना ही चाहिये। वह पटरानी बन नहीं सकती अर्थात् आपके बराबर उठ नहीं सकती, तो महाराज आप ही भूमि पर आ जाइये।

यह प्रेम की विजय होगी, आने वाली सन्तानें प्रेम के गीत गाती हुई आप का नाम स्मरण किया करेंगी । अभी तक तो इस विषय में राधा का नाम लिया जाता था। भगवान कृष्ण के प्रेम में उसने बहुत कुछ सहा था। भविष्य में जहा स्त्रियों में राधा प्रेम का प्रतीक मानी जावेगी, वहा पुरुषों में आपका नाम स्मरण हुआ करेगा।"

"क्या लाभ होगा इससे ? शायद तुम्हारे मन में कोई महत्वाकाक्षा नही है। तभी, तुम इस प्रकार से कहती हो।"

"नहीं महाराज ! ऐसी बात नही । मेरे मन में भी आकाक्षाए है, परन्तु वह संसार में बडा बनने की नही। मैं श्रेष्ठ, उदार, दयावान, सत्य और न्याययुक्त आचरण रखने वाली बनना चाहती हू । यह कोई छोटी बात नही है।"

कुमारदेव मुस्कुराया और बोला, "तो तुम भी एक भ्रम में फस कर दु ख और कष्ट भोगना चाहती हो ?"

: ३ :

पालकदेव के मन पर किरण के व्यक्तित्व का प्रभाव पड रहा था। अभी उनको बदी हुए कुछ मास ही हुए थे कि वे उससे राज्य-कार्य और आत्मा-परमात्मा के विषय में बातचीत करने लगे थे। इस समय तक महारानी पद्मावती भी वहा आ चुकी थी। किरण उनकी आवश्यकताओ को जानने के लिये नित्य दो बार बदीगृह में आती थी। जब यह पूछगोछ समाप्त हो जाती तो पालकदेव उसको बैठा लेते और बाहर के जगत् के विषय में पूछने लगते। वह खुल कर उनसे अपने मन की बाते करती। इस प्रकार कार्य चलते हुए कई मास व्यतीत हो गये।

एक दिन जब नित्यप्रति की पूछगोछ समाप्त हो गयी तो पालकदेव ने पूछा, "किरण देवी ! यह अवस्था कब तक चलेगी ?"

"महाराज ! बाहर प्रजा में कुछ दिन तक तो बेचैनी रही, परन्तु अब धीरे-धीरे प्रजा इसको एक अनिवार्य परिस्थिति मान चुप करती जाती

है। साथ ही जनता को शारीरिक सुख और भोग अधिक सुगमता से प्राप्त होने लगे हैं, जिससे वे आपको भूलते जाते है। मेरा अनुमान है कि छः मास के पश्चात् लोग आपका नाम भी भूल जायेंगे।"

"तब तो हमको राज्य से हटाये जाने पर शोक नहीं करना चाहिये। हमने प्रजा को सुखी रखने के साथ-साथ धर्मपरायण रखने का यत्न किया था। परिणाम कुछ अच्छा नहीं हुआ।"

"पर आपने राज्य-कार्य अपने स्वार्थ के लिये तो चलाया नही था। यदि प्रजा आप को नहीं चाहती तो आप को कर्त्तव्य से छुट्टी मिल गयी, समझ लेना चाहिये ?"

"तुम हंसी कर रही हो किरण ?"

"नहीं महाराज ! मैं अपने सत्य हृदय से अपने मन की बात बताती हू। मनुष्य के लिये कर्त्तव्यपालन करना सर्वोपरि है। जब कर्त्तव्य से मुक्ति मिल गयी तो प्रसन्न होना चाहिये। जब मनुष्य कार्य से मोह कर, उससे चिपटा रहना चाहता है तो वह स्वार्थरत होकर पतन को प्राप्त होता है।

"आपका कार्य, राजा के रूप में, इस देश में समाप्त हुआ। यदि प्रजा को आपके कार्य की आवश्यकता होती तो वह इतनी जल्दी आप को भूल न जाती। ऐसी अवस्था में यही मानना पडेगा कि आप का कार्य समाप्त हुआ। अब तो आपको अपना परलोक बनाने की ओर ध्यान देना चाहिये।

महारानी पद्मावती समीप बैठी इन दोनों की वार्तालाप सुन रही थी। उससे नहीं रहा गया। महारानी, जो अपने विचारो में लीन प्रतीत होती थी, कहने लगी, "किरण देवी ! यदि बुरा न मानो तो एक बात कहू ?"

"कहिये महारानी जी !"

"क्रीतदासी होना और ऐसे ज्ञान-ध्यान की बातें करना कहा तक मेल खाता है ?"

किरण का मुख लज्जा से लाल हो गया और उसकी आंखें भूमि की ओर झुक गयीं। उसको चुप देख महारानी समझी कि उसने इस दासी को अपने स्थान पर लेजा कर बैठा दिया है। उसका विचार था कि अब वह अपने से

बडो को शिक्षा देने का यत्न नहीं करेगी । वास्तव में महारानी ने किरण के आन्तरिक भावो का अनुमान मिथ्या लगाया था । पालकदेव किरण के भावो को समझने के लिये उसके मुख के उतार-चढाव देख रहा था । उसने देखा कि किरण की मोटी-मोटी आखो में आसु झलक उठे हैं । इनसे उसने बात बदलने के लिये कहा, "महामात्य जी भली भाति है ? किरण !"

किरण ने इस व्यर्थ की बात की ओर ध्यान न देकर अपने आचल से आखो को पूँछ डाला और आखें नीचे किये धीरे से पूछा, "क्या महारानी जी सत्य ही इस बात का उत्तर चाहती हैं ? मैं तो समझी थी कि शायद आप जैसी बुद्धिमति स्त्री को ऐसे प्रश्नो का उत्तर स्वय ही सूझ जाता होगा ।"

"मुझ को तो तुम्हारी यह धृष्टता प्रतीत हुई थी ।"

"सो तो नहीं थी । आप महारानी हैं । क्यो ? सौन्दर्य में, शिक्षा में, ज्ञान मे और शायद अनुभव में आप मुझ से श्रेष्ठ प्रतीत नही होती । इस पर भी आप महारानी हैं और मैं क्रीतदासी हू । इसमें कारण नही जानती आप क्या ? पूर्व जन्म के कर्मो से ही ऐसा नहीं हुआ क्या ? मैंने अपने बिगडे भाग्य को इस जन्म में बनाने का यत्न किया है । कहा तक सफलता मिलेगी कह नही सकती ।"

"कैसे यत्न कर रही हो ?" पालकदेव ने बात बीच में ही काट कर पूछा ।

"अपने मन, वचन और कर्म से दूसरो की भलाई का यत्न करके । इसमें बाधाये आती हैं और मैं यत्न करती हू कि उन बाधाओ को पार कर सकूँ ।"

"तो देखो !" महारानी ने व्यग के भाव से कहा, "कुछ हमारे साथ भी भलाई कर दो न ?

"बताइये, क्या चाहती हैं आप ? मेरे वस की बात हुई तो कर दूँगी ।"

"बस की क्यो नहीं है ? चाहो तो कर सकती हो । हम को यहा से निकल जाने दो ।"

किरण महारानी की बात सुन मन में विचारने लगी कि यह औरत

कितनी स्वार्थरत है ? इसके मन में यह क्यों नहीं आया कि इसका परिणाम मेरे साथ क्या हो सकता है ? इस पर भी वह सोचने लगी कि इनको भाग जाने दे। इस जन्माभिमानी स्त्री को बता दे कि जिनको वह नीच समझती है, वे उससे अधिक विशाल हृदय और निस्वार्थ भावना रखते हैं। कितनी ही देर तक अपने मन में विचार करती रही। पश्चात् उसने गम्भीर हो धीरे से कहा, "अच्छी बात है। आज रात आप जा सकेंगी। आप के आगारों का मार्ग कुमारदेव के शयनागार में खुलता है। मैं यत्न करूंगी कि रात को वे अपने शयनागार में न सोवें। यदि मैं उनको इस बात के लिये तैयार कर सकी तो मध्य रात्रि के समय आप के आगार का द्वार खुला रहेगा। यदि द्वार खुला हो तो आप शयनागार से निकल कर भवन के पिछले द्वार में से जाइयेगा। वहां प्रहरी रहेगा। मैं उसके साथ निश्चय कर रखूंगी। जितना धन वह मांगेगा, महाराज के शयनागार में उनके पलंग के ऊपर पड़ा होगा।"

इतना बताते हुए किरण का मुख विवर्ण हो रहा था। वह यह कह उठ खड़ी हुई और विदा होने ही वाली थी कि महारानी ने पूछा, "परन्तु बाहर जाकर हमारा क्या होगा?"

"मैं इस विषय में कुछ कह नहीं सकती। इस पर भी यह तो निश्चय ही है कि यदि आप महामात्य श्वेताग के गुप्तचरों के हाथ लग गयी तो चुप-चाप परलोक भेज दी जायेंगी और यदि आप किसी धर्मात्मा दयालु के हाथ में गयीं तो वह आपको राज्य के बाहर निकल जाने में सहायता देगा।"

न तो महारानी को और न ही पालकदेव को विश्वास आया कि किरण यह करने का साहस करेगी। इस पर भी पालकदेव यह विचार करता था कि यदि वह बाहर चला जावे तो क्या होगा? बाहर जाकर क्या कोई सहायता करेगा? अथवा क्या कोई उसको पुनः महामात्य के हाथ में दे देगा? यदि वे बच कर निकल भी गये तो क्या प्रजा उसको पुन राजा मानेगी? उसके मन में किरण के विषय में विचार आया। उसके साथ कैसी बीतेगी, यह विचार कर वह कांप उठा। उसके मुख से अकस्मात

निकल गया, "यदि हम बदीगृह से आलोप हो गये तो किरण फांसी पर लटका दी जावेगी।"

"आप भी बहुत सीधे आदमी हैं। इस क्रीतदासी की आंखो में दो बूंद जल देख आप उस पर विश्वास करने लगे हैं।"

"मैंने तो यह नहीं कहा कि वह द्वार खुला छोड ही देगी। मैं तो यह कह रहा था कि यदि हम यहा से भाग निकलने में सफल हो गये तो उसकी हत्या हो जावेगी।"

"मेरे पास इस प्रकार की अनहोनी बात विचार करने को न तो समय है न ही शक्ति। मैं तो कहती हूं कि आप कितना विश्वास करते थे अपने भाई का और कितना कुछ आपने किया है आपने प्रजा के हित में? क्या परिणाम हुआ है उसका? किंचित् मात्र के प्रलोभन में आकर सब प्रेम और भक्ति विलुप्त हो गयी है।"

पालकदेव इस प्रकार के प्रलाप में कुछ लाभ नहीं समझता था। अतीत के विषय में विचार करना व्यर्थ की बात समझ वर्तमान और भविष्य के विषय में विचार करना चाहता था।

उस सायंकाल किरण पुनः आई। बंदियों के रात के भोजन की व्यवस्था कर जब जाने लगी तो महाराज से बोली, "जब मध्य रात्रि के समय जाने लगें तो इस बगल के आगार का द्वार केवल कुंडे से ही बंद पायेंगे। यदि आप महामात्य सुदर्शन को अपने साथ लेजाना चाहें तो ले जायें।"

प्रातःकाल की किरण की बात से उसको विश्वास नहीं आया था। वह उस समय की बात को भूल गया था, परन्तु अब पुनः किरण को उसी विषय पर बात करते हुए सुन वह गम्भीर हो गया। उसने किरण के मुख की ओर देखा तो उसके मुख पर किसी भी विचार की झलक न पा विस्मय करने लगा। वह अभी उसके मन के भावो को समझने का यत्न कर ही रहा था कि किरण चली गयी।

भोजनादि से निवृत्त हो महाराज ने महारानी से कहा, "एक प्रहर विश्राम कर लो, पीछे रात भर भाग दौड़ करनी पड़ेगी।"

"तो आपको विश्वास है कि हम आज छूट सकेंगे ?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं। प्रातःकाल की किरण की बात भूल गयी हो ? उसने कहा था कि भवन के द्वारपाल से वह निश्चय कर रखेगी, परन्तु, द्वार के बाहर की बात वह नहीं जानती।"

"परन्तु अब तो वह ऐसे कह गयी है जैसे उसने सब प्रबन्ध पूर्ण कर रखा है।"

"होगा। इस पर भी तुम सो जाओ। इस समय, मैं अपने मन में पूर्ण बात पर विचार करना चाहता हूं। अभी सब बात मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट नहीं हुई।"

महारानी पद्मावती समझती थी कि स्वतन्त्रता एक अमूल्य वस्तु है। इसकी प्राप्ति के लिये जो कुछ भी किया जावे कम है। इस प्रकार विचार कर वह अपने पलग पर लेट गई और पालकदेव गम्भीर विचार में लीन हो गया।

: ४ .

किरण को महारानी पद्मावती का उलाहना कि, "कुछ हम पर भी भलाई कर दो।" असह्य हो उठा। वह जानती थी कि सेनापति के भवन से वे दस पग भी जा नहीं सकेंगे। श्वेतांग के गुप्तचर उनको पकड़ लेंगे और उनका काम समाप्त कर देंगे, परन्तु इस चेतावनी के देने से महारानी को समझ नहीं आया और वह यही समझती रही कि किरण शेखी मारती है और वास्तव में वह यह करना नहीं चाहती।

वह यह चाहती थी कि अपनी ओर से सब प्रबन्ध ठीक ढग से कर दे। इस पर भी यदि वे बच न सकें तो उसका कोई दोष न हो। इस कारण उसने न केवल भवन के द्वाररक्षक से निश्चय कर दिया परन्तु भवन के बाहर तीन तीव्रगामी अश्वों का भी प्रबन्ध कर दिया।

बंदियों से निपट कर वह रेखा के आगार में जा पहुंची। रेखा शृंगार कर रही थी। किरण ने मुस्कुराते हुए पूछा, "सखी, कैसी तैयारी हो रही है आज ?"

"देख नहीं रही हो तुम ? महाराज की सेवा के लिये तैयार हो रही ।"

"तो उन्होंने विशेष आप से समय निश्चय किया है क्या ?"

"विशेष तो नहीं। पर तुम क्यों पूछ रही हो ?"

"नहीं ! कुछ विशेष बात तो नहीं। मुझ को ऐसा समझ आया था कि महाराज को आज मेरी सेवा की इच्छा थी । उन्होंने कहा था कि मैं उनके शयनागार में रहूं ।"

रेखा ने व्यंग के भाव से कहा, "तब तो मैं तुमको बधाई देती हूं। पर देखो किरण यदि तुमने पटरानी बनने के लिये कोई चाल चली तो मैं तुम्हारी सब से बड़ी शत्रु हूंगी ।"

"पटरानी बनने में क्या मिलेगा मुझको । नहीं सखी ! इस बात की तुम चिन्ता न करो ।"

रेखा को इस आश्वासन पर भी शान्ति नहीं हुई । वह पूर्ण शृंगार कर और किरण को महाराज से एकान्त में मिलने का अवसर न देने के विचार से, कुमारदेव से मिलने के लिये उसके आगार में जा पहुंची। कुमारदेव महामात्य से मिल कर आया तो बैठक में रेखा को सोलहो शृंगार किये खड़ा देखा । उसने उससे आलिंगन किया और मुख चूमते हुए पूछा, "आज यह तैयारी किस प्रयोजन से है रानी ?"

"आप को रात के भोजन का निमन्त्रण देने आयी हूं ।"

"क्या है वहां ?"

"आज श्रीमान् की सेवा के लिये मन व्याकुल हो रहा है ।"

कुमार हंस पड़ा । फिर कुछ विचार कर बोला, "तो किरण को भी वहां ही बुला लूं ।"

"नहीं महाराज !" रेखा ने लाड में अपनी साड़ी का छोर अपनी उंगली पर लपेटते हुए कहा ।

"कितनी अच्छी है बेचारी । कभी कुछ कहती ही नहीं ।"

"ठीक है, मैं उसको कब बुरा कहती हूं । मेरा तो केवल यह कहना है

कि मैंने आज आप के लिये विशेष प्रबन्ध किया है।"

"अच्छी बात है। एक दिन में क्या अन्तर पड़ जाता है।"

बात तय हो गयी और भोजन के समय रेखा स्वयं आकर महाराज को ले गयी। उसने नगर की एक विख्यात नर्तकी मिरिका को नृत्य के लिये बुलाया हुआ था।

किरण ने अपनी योजना की सफलता का विश्वास कर बंदियों के आगारों के द्वार बाहर से खोल दिये। भूगर्भ मार्ग का द्वार, जो कुमार के शयनागार में खुलता था, खोल कर कुमार के निजी कोष में से पांच सौ स्वर्ण, एक थैली में कुमार के पलंग पर रख एक पत्र भी साथ ही रख दिया। इस पत्र पर तीन अश्वों का चित्र भवन द्वार के बाहर खड़े हुए बना कर रख दिया।

इस प्रकार तैयारी कर वह श्वेतांग के आगार में चली गयी। श्वेतांग उसको देख प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगा। किरण उसके सम्मुख बैठ गयी और उसका मुख देखती रही। श्वेतांग ने उसको चुप देख पूछा, "क्या है देवी ?"

"मैं आप से झगडा करने आयी हूं।"

"क्यों ?"

"आपने मुझ को इस पशु के हाथ बिकवा कर मुझ से घोर अन्याय किया है।"

"क्या हुआ है आज ?"

"मैं रात-रात भर व्याकुल पडी रहती हू और रेखा के आगार में नित्य नाच-रंग जमा रहता है।"

"मैं जानता हूं, पर क्या कर सकता हू। मैं तुम से प्रेम करता हूं। यही कारण है कि महाराज को तुम को खरीदने की सम्मति दी थी। यदि तुम स्वीकार करो तो हम इस विषय में एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं।"

"यही तो मैं चाहती हू, परन्तु एक बात आप को समझ लेनी चाहिये कि एक क्रीतदासी अपने स्वामी के अतिरिक्त किसी से प्रेम करे तो मृत्यु दंड

की भागी होती है। क्या आप इतने शक्तिशाली हो गये है कि महाराज की आज्ञा के विरुद्ध मेरी रक्षा कर सकेंगे । मैं उस समय की प्रतीक्षा में हू जब आप ऐसा कर सकने की शक्ति प्राप्त कर लेगे।"

"तुम ठीक कहती हो किरण ! उस काल के लिये तुम को एक दो वर्ष की प्रतीक्षा करनी पडेगी।"

"तैयार हू। पर आप विद्वान् है, इससे आप से इतनी सहायता चाहती हू कि कोई औषधि मुझ को ऐसी दें, जो मै लूं और रात भर शान्ति से सो सकूं।"

"यह तो मै तुम्हारे लिये कर सकता हू। कभी-कभी सीमा से अधिक विषय रत होने से नीन्द नही आती तो मै एक वस्तु शराब में मिला कर पिया करता हू। वह मै तुम को दे सकता हू। तुम अपने स्थान पर चलो, मैं तुम को वह, एक प्याला मदिरा में मिला कर, भेज दूंगा। उसके पान से तुम रात भर खूब मजे में सो सकोगी।"

"तो शीघ्र करिये। मै कई रातें न सो सकने के कारण बहुत दुखी हू। यदि कुछ दिन और ऐसा ही चलता रहा तो पागल हो जाऊगी।"

किरण अपने आगार में लौट आयी। वह अभी सोने की तैयारी कर ही रही थी कि रेखा की एक दासी आयी और बोली, "श्रीमान् ने यह मद्य आप के लिये भिजवाई है।" इतना कह उसने आख मे संकेत कर दिया।

किरण समझ गयी। एक बात का उसको सदेह था। उसका विचार था कि श्वेताग ने यह मद्य रेखा की दासी के हाथ क्यो भिजवाई है ? इसके हाथ से भिजवा कर कौन नीति की बात की है ? इस कारण उसने पूछा, "पर तुम तो रेखा देवी की सेवा में हो न ?"

वह दासी मुस्कुराई और झुक कर नमस्कार कर बोली, "दोनो की सेवा में हूं, देवी !" किरण समझी कि रेखा और श्वेताग से उसका अभिप्राय है। इस कारण अपनी योजना को चालू रखा। उसने आधा प्याला भर मद्य नाली में बहा दी और आधी वहा चौकी पर रख पलग पर लेट गयी। उसको नीद नहीं आ रही थी। इस पर भी वह सोने का नाटक करती रही।

इस प्रकार रात व्यतीत होने लगी। मध्यरात्रि का घडियाल बजा।

उसने ध्यान से सुनना चाहा कि क्या हो रहा है। कोई किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं दिया। इस प्रकार घड़ी के पश्चात् घडी व्यतीत होने लगी और सेनापति भवन पूर्ण रूप से शान्त रहा। इस पर भी उसे नींद नहीं आयी। ब्रह्म मुहूर्त्त का घंटा बजा। वह अभी भी जाग रही थी और सोने का बहाना कर रही थी।

दिन पर्याप्त चढ़ आया था, जब उसकी विश्वस्त दासी मधीका भागी हुई आयी और उसको जोर-जोर से हिला कर उठाने लगी। किरण एक दम नहीं उठी। उसने आधी बेहोशी का बहाना कर कहा, "सोने दो मुझे।"

इस समय दासी ने किरण के समीप मुख ले जा कर कहा, "देवी! बंदी-गृह का द्वार खुला है।"

दासी को कई वार यह कहना पडा। तब किरण ने आंखें खोली और बितर-बितर दासी का मुख देखने लगी। दासी ने फिर धीरे से कहा, "देवी! महाराज के शयनागार में बंदियों का द्वार खुला हुआ है।"

किरण ने आश्चर्य प्रकट कर पूछा, "सत्य?" फिर वह झटका मार कर उठी, परन्तु चक्कर खा कर भूमि पर लौट-पोट हो गयी, मानो वह अभी भी अर्ध अचेतनता की अवस्था में थी। पश्चात् वह सिर को दोनों हाथों में पकड़ कर भूमि पर ही बैठ गयी। कुछ समय तक अपने को सम्हालने का यत्न कर उसने दासी से पूछा, "महाराज कहां हैं?"

"वे रेखा देवी के आगार में हैं।"

"तो मुझ को आश्रय दे उठाओ। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मुझ को किसी ने विष दे दिया है। मेरा मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा।"

दासी ने चीख़ की सी आवाज़ में पूछा, "विष?"

किरण ने चिन्तित भाव में कहा, "चुप रहो। मुझ को महाराज के शयनागार में ले चलो। जल्दी करो। न जाने क्या अनर्थ हो गया है?"

दासी के कंधे पर हाथ रख कर लंगड़ाती हुई वह महाराज के शयनागार में पहुंची और भूगर्भ के आगारों के मार्ग का द्वार खुला देख वह वहीं बैठ गयी और सिर धुनने लगी। उसने एक ही दृष्टि में देख लिया कि पलंग पर

मुद्राओ की थैली नही है। इस पर वह पुनः उठी और दासी को आगार मे छोड कर स्वय द्वार में चली गयी और सीढ़ियो से उतर आगारों में जा पहुची। महामात्य सुदर्शन का द्वार बाहर से बद था। कुडा चढा था परन्तु ताला भूमि पर रखा था। पहिले वह पालकदेव के आगार में गयी। उसने समझा कि पालकदेव और महारानी ने महामात्य को साथ लेजाना उचित नहीं समझा। उनके आगार का द्वार भिचा हुआ था परन्तु बाहर से कुडा नहीं लगा हुआ था। ताला-भूमि पर यहा भी पड़ा था। किरण ने द्वार खोला और महाराज तथा महारानी को चटाई पर आसन जमाये पूजा मे बैठे देख अवाक् मुख खडी रह गयी। केवल एक ही क्षण लगा और उसने अपने कार्य का निर्णय कर लिया। उसने बाहर निकल द्वार बद कर कुडा चढाया और ताला लगा दिया। पीछे महामात्य के द्वार को भी ताला लगा भागती हुई बाहर निकल आयी। महाराज के शयनागार मे पहुच उसने वहा के द्वार को भी ताला लगाया और दासी से बोली, "भगवान् का धन्य-वाद है कि बंदी भागे नही। यह कैसे हुआ मै नहीं जानती। रात रेखा के आगार से कोई सुरभित मद्य मेरे लिये लाया था। मैने आधा प्याला ही पिया कि मुझ को नीद आने लगी। ऐसी नींद आयी कि मुझको ज्ञान नही रहा कि मै कहा थी। शेष तो तुम ने देखा है। देखो मधीका ! किसी से कहना नही, व्यर्थ में द्वेष बढेगा।" दासी को चुप रहने पर राजी कर उसने अपने आगार में जा शेष मद्य, जो अभी प्याले में पड़ी थी, दासी के सम्मुख ही उठा कर नाली में फेंक दी।

: ५ :

किरण आश्चर्य कर रही थी कि महाराज और महारानी भागे क्यो नही ? वह विचार कर रही थी कि यदि वे नही गये तो स्वर्ण मुद्रा की थैली कहा गई। इस कारण वह यह सब कुछ जानने के लिय बहुत उत्सुक थी। अतएव स्नानादि से निवृत्त हो वह बदियो को देखने गयी। सबसे पहिले महामात्य के आगार में गयी। वह अपने अल्पाहार की प्रतीक्षा कर रहा था। इसके आने में देरी हो गयी थी। किरण ने महामात्य से क्षमा याचना की,

"मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इस कारण प्रातः जागने में देरी हो गयी थी। परिणाम स्वरूप पूर्ण कार्यक्रम मे ही देरी हो रही है। आशा है कि आप क्षमा करेंगे।"

महामात्य सुदर्शन अचम्भे में किरण का मुख देख रहा था। वह समझता था कि वह रात के विषय में कुछ पूछेगी। परन्तु जब उसने कुछ नहीं पूछा तो उसने स्वय ही जानने का यत्न किया। उसने पूछा, "देवी! महाराज के आगार से हो आयी हो क्या?"

"नहीं, अभी नहीं। आपका भोजन हो जाये तो वहा जाऊगी।"

"पहिले वहां भोजन पहुचा दो। उनको कष्ट नहीं होना चाहिये।"

"अच्छी बात है। आप भोजन कर लीजिये। शेष आकर पूछती हू।"

महामात्य मुस्कुरा कर चुप हो रहा। किरण समझ गयी कि कुछ रहस्य की बात अवश्य है। जब वह महाराज पालकदेव के आगार में पहुंची तो वे पूजा से उठ वस्त्र पहिन रहे थे। वे किरण को देख खिलखिला कर हंस पड़े। किरण ने ही पूछना उचित मान प्रश्न कर दिया, "महाराज क्या हुआ था रात को।"

महाराज गम्भीर हो कहने लगे, "एक बात की परीक्षा हो रही थी। वह हो गयी। एक बात का भय लग रहा था, उसका निवारण हो गया।"

"किस बात की परीक्षा कर रहे थे, श्रीमान्! और किस बात का भय था आपको?"

"परीक्षा हो रही थी तुम्हारी, किरण देवी! महारानी कहती थीं कि तुम हम से हंसी कर गयी हो, परन्तु जब द्वार खुले देखे, धन भी वहा, जहा तुमने कहा था, पडा पाया, द्वारपाल को भी जाने में सहायक पाया और फिर बाहर अश्व भी तैयार देखे, तो तुम्हारी परीक्षा समाप्त समझी गयी और हम लौट आये।"

"यह क्या किया महाराज आपने? इससे अच्छी रात और नहीं मिल सकेगी।"

"मैं इस बात को समझता हूं। कितना यत्न किया होगा तुमने! महारानी

जो तुम पर सदेह करने पर लज्जित हूं। तुम्हारे साहस और चतुराई की जितनी भी प्रशंसा की जावे कम है। द्वारपाल भी कहता था कि बाहर जा कर लौट आना भारी भूल है और वह तो तुम से दिया हुआ धन भी वापिस कर रहा था। वह कहता था कि मार्ग में हमको धन की आवश्यकता पड़ेगी। उसने आश्वासन दिया था कि वह राजभक्त है और कभी भी तुम को फसने नहीं देगा। परन्तु किरण मेरी आत्मा नहीं मानी। मैं तुम जैसी स्त्री का बाल भी बाका नहीं होने देना चाहता। यह विचार कर कि तुम्हारे साथ कैसी बीत सकती है, हम लौट आये।"

"इससे महारानी जी को बहुत दु:ख हुआ होगा?"

"हां, परन्तु किरण! वह दुख लज्जा में बदल गया है। मैं समझती थी कि तुम हमारी हंसी कर रही हो, परन्तु जब सब कुछ ठीक पाया तो मैं विस्मय में अवाक् खड़ी रह गयी। महाराज ने कहा कि हम को तुम्हें फसा कर यहां से भाग नहीं जाना चाहिये। इस पर सिवा वापिस लौट आने के और कोई चारा ही नहीं रहा।"

किरण जब महामात्य सुदर्शन के आगार में गयी, तो उसने कहा, "हमें बंदी गृह में देख तो तुम को शान्ति मिली होगी किरण?"

"नहीं! मुझ को आपको यहां देख अति दु:ख होता है, परन्तु यह मेरे वस की बात नहीं है। जो कुछ मैं कर सकती थी मैंने किया, परन्तु आपके महाराज ने अपने मुक्त होने के प्रतिकार में अपनी आत्मा का हनन स्वीकार नहीं किया।"

"तुम क्या समझती हो कि हमारे भाग जाने से तुम को कष्ट दिया जाता?"

"मुझ को बिना भोजन दिये तड़पा-तड़पा कर मार डाला जाता अथवा शिकारी कुत्तों से नुचवा दिया जाता।"

"तब तो हमारा न जाना ही ठीक रहा।"

"यह विचार करना आपका काम था। मैंने तो यत्न कर ही दिया था।"

"किरण देवी! तुम कितनी अच्छी हो। तुम को तो किसी भद्र पुरुष

की गृहिणी बनना अधिक शोभा देता। वहा तुम सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकती और सुन्दर सभ्य सुशील सन्तान की मां होने का सौभाग्य प्राप्त होता।"

"पर श्रीमान्! क्या सौभाग्य, बिना सौभाग्यशाली होने के, मिल सकता है?"

"क्रीतदासी की प्रथा बहुत ही दोषपूर्ण है।"

किरण रात भर जागते रहने के कारण बहुत ही थकावट अनुभव कर रही थी और चिन्ता के अब मिट जाने के कारण शान्ति अनुभव करने में चुपचाप अपने आगार मे गयी और गहरी नीद सो गयी। बहुत दिन गये वह जागी।

अब वह अपने विषय में विचार करने लगी। वह यह अनुभव करते हुए अति दुःख मानती थी कि वह किसी पुरुष की गृहिणी क्यो नहीं बन सकी। शुभ, वीर लक्षण युक्त सन्तान की मा होने की बात से उसके मन में गुदगुदी उत्पन्न होने लगी, परन्तु इसको एक असम्भव स्वप्न मात्र समझ वह मन मसोस कर रह गयी।

इस समय दासी ने आ कर कहा, "महाराज बुला रहे हैं।"

वह उठी और कपड़े पहिन महाराज की बैठक में जा पहुंची। महाराज के पास श्वेतांग बैठा था। महाराज कुमारदेव ने किरण को सामने आसन पर बैठाया और पूछा, "देवी! आज दिन भर कहां रही हैं।"

"महाराज रात भर किसी की प्रतीक्षा में जागती रही थी। इस कारण दिन में सोने की आवश्यकता अनुभव हुई थी। अभी सोकर जागी ही थी।"

कुमारदेव प्रतीक्षा की बात सुन हस पड़ा। श्वेतांग गम्भीर बना बैठा रहा। उसको गम्भीर देख किरण ने चिन्ता प्रकट करते हुए पूछा, "महामात्य कुछ चिन्तित प्रतीत होते हैं। इसका मेरे से सम्बन्ध है क्या?"

"हां!" श्वेतांग ने किरण की आंखो में देखते हुए कहा, "मैंने देवी को नींद लाने के लिये सुवासित मद्य भेजी थी। देवी ने आधी पी थी और प्रातः जब उठी थी तो चक्कर खाकर गिर पड़ी थीं।"

किरण इस सब रहस्य के खुल जाने पर घबड़ाई नहीं। वह यह तो समझ गयी थी कि श्वेतांग के गुप्तचरो ने पूर्ण प्रासाद का भेद जाना है। इस पर भी वह नहीं जानती थी कि महामात्य कितना जान गया है। इस कारण चुप थी और अभी और सुनना चाहती थी।

श्वेतांग ने उसको चुप देख फिर पूछा, "तो देवी जी इस पर कुछ और प्रकाश डालना नहीं चाहती ?"

किरण को उत्तर देना पडा। "जब श्रीमान् जी इतना कुछ जानते है तो पूछने की आवश्यकता क्या है ? वह मद्य कहीं से आयी थी। पीते ही मस्तिष्क चक्कर खाने लगा था। मुझको सदेह हो गया तो मैंने वमन कर दिया। प्रात. वह मद्य मैंने नाली में फेंक दी जिससे कोई दासी उसको पी न ले। मुझको विश्वास है कि यदि मैं वमन न कर पाती तो इस कलेवर से छुट्टी पा जाती। परन्तु मुझको किसी को दंड नहीं दिलवाना। इस कारण चुप हू।"

"यह तो ठीक बात नहीं, किरण देवी ! आप को पूर्ण बात बतानी चाहिये।"

"जब आपको सब कुछ मालूम है तो आप को यह भी विदित होगा कि आपसे भेजी हुई मद्य में किसने विष मिलाया होगा और क्यों मिलाया होगा ?"

"पर यह तो तुम जानती हो कि मद्य कौन लाया था ?"

"जिसके हाथ आपने भेजी थी ?"

"तुम उसको नहीं जानती क्या ?"

"जानती हू। इसी कारण तो कहती हू कि वही थी जिसके हाथ आपने भेजी थी।"

"और मै कहता हू कि वह नहीं थी। मार्ग मे अदला-बदली हो गयी थी।"

"तब भी आप से भेजी दासी तो जानती होगी कि किससे अदला-बदली हुई है और किसके कहने पर हुई है। आप मुझ को इसमें क्यों घसीटते है ?"

"देखो किरण देवी !" महाराज ने कहा, "आज तुमको विष देने का यत्न किया गया है, कल मुझको दिया जा सकता है। इस कारण जो इन हत्यारों को बचाने का यत्न करता है वह भी अपराधी ही माना जावेगा।"

"महाराज ! मै अभी दास दासियो के नाम नहीं जानती। चेहरे से तो पहचान जाऊंगी। इस पर भी मै तो किसीको फासी दिलवाने के लिये कुछ नहीं कहूंगी।"

"यदि तुम मर जाती तो ?"

"तो इस पतित जीवन से मोक्ष प्राप्त कर जाती।"

श्वेतांग हंस पडा और बोला, "महाराज ! यह भी मूर्ख आस्तिको की भांति मुक्ति, स्वर्ग और नरक के झगड़े में फंसी है। इनसे आप आशा नही कर सकते। यह भी धर्मभीरु श्रेणी की प्राणी है और संसार को नीच और अयोग्य मानती है।"

"तो महामात्य, तुम को अपनी जाच जारी रखनी चाहिये।"

महामात्य ने किरण से कहा, "तुम से मैं पृथक में बातचीत करना चाहता हूं। इस कारण एक घडी भर मे तुम्हारे आगारो में आऊंगा। अभी तुम जा सकती हो।"

जब किरण चली गयी तो श्वेतांग ने महाराज कुमारदेव से कहा, "श्रीमान, मेरा अनुमान है कि किरण ने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया है। इसी कारण वह यह नही बताना चाहती कि मद्य किसने ला कर दी थी।"

"पर आत्महत्या में क्या कारण हो सकता है ?"

"कल रात के पहिले प्रहर मे वह मुझ से मिलने आयी थी। उस समय इसकी आखो में वासना की तृषा और असंतोष की झलक दिखाई देती थी। मुझसे उसने सुवासित मद्य, जिसके पीने से वह सो सके, मागी थी। मैंने वह मद्य उसको अपने एक सेवक के हाथ भेजी। वह सेवक इसकी निजी सेविका के हाथ दे आया। मधीका से मैंने पूछा है। वह कहती है कि मद्य उसको नहीं मिली। प्रातः की कथा मैंन आप को बता दी है।"

"मित्र ! इस बात की भली भांति जांच करनी चाहिये। मै इस प्रकार

की अनियमित बात अपने ही प्रासाद में सहन नही कर सकता। रही किरण देवी के असन्तोष की बात। सो मै उसको आज रात के पीछे छुट्टी दे दूंगा। वह जिस के पास चाहेगी जा सकेगी। मै रेखा को पसन्द करता हू। यह ठीक है कि उसकी मुख की आकृति इससे श्रेष्ठ नहीं। इस पर भी वह शरीर से विकसित और गठित इससे अधिक है। मैं उससे प्रसन्न हू। किरण एक कोमल फूल के समान है जो मेरे उद्‌गार युक्त प्यार को सहन नहीं कर सकती।"

"वह स्वभाव और विद्या से महारानी बनने के योग्य है।"

"तो तुम उससे विवाह कर सकते हो। हम उसको रानी की पदवी से विभूषित कर देंगे।"

"आप उसका मूल्य मुझ से ले लें।"

कुमार ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारे विचार में वह एक अमूल्य वस्तु है न? इस कारण मैं तुम को उसे बिना मूल्य ही देता हूं।"

"आप मेरा आशय नही समझे। किरण यद्यपि क्रीतदासी है तो भी वह दुराचारिणी नहीं। वह तब तक मेरे पास नहीं आवेगी, जब तक वैधानिक ढग से मेरी नही हो जावेगी।"

"तो हम उससे पूछ कर उसका मूल्य निश्चय करेंगे।"

: ६ :

"किरण!" श्वेताग पूछ रहा था, "भवन के पिछले द्वार पर घोड़े किसके लिये खड़े थे?"

"मुझको नहीं मालूम कि वे घोडे किसके थे?"

"तो तुम नहीं जानती?"

"मैं भवन के बाहर कभी गयी नहीं। भवन में, प्रागण की पुष्करिणी के समीप बैठने के अतिरिक्त मै और कही नहीं जाती।"

"देखो किरण! कल से तुम्हारा व्यवहार मेरी समझ में नही आ रहा। रात को तुम्हारा नींद लाने की औषधि मागने आना, उस मदिरा में विष मिला लेना और फिर उसमें से आधी पी शेष छोड़ देना। प्रात. काल

बच जाने पर शेष मदिरा को नाली में फेंक देना । तुम से बात पूछने पर बताने के स्थान छुपाने का यत्न करना और अब अश्वों की बातों में झरने की बातें करने लगना। ये सब क्या है ? तुम ऐसा व्यवहार क्यों करने लगी हो ?"

किरण ने मुस्कुरा कर कहा, "तो आप नहीं समझे क्या ? लीजिये मैं बताती हूं।"

दोनों किरण के शयनागार के बाहर बैठक में बैठे बातचीत कर रहे थे। श्वेतांग अपने गुप्तचर से यह सूचना पा कि किरण को रात किसी ने विष दे दी थी, जांच कर रहा था। उसने मषीका से पूछा था । मषीका ने केवल इतना बताया था कि उसकी स्वामिनी प्रातः रुग्ण थी। जांच करते समय उसको यह पता चल गया था कि महाराज की अश्व-शाला के तीन अश्व महाराज का नाम लेकर वहां मंगवाये गये थे। वे वहां खडे रहे। महाराज की प्रतीक्षा करते प्रातःकाल हो गया तो लौट गये। अब किरण बताने लगी तो वह समझा कि रहस्य का उद्घाटन हो जायेगा। इससे उत्सुकता से सुनने लगा।

"महामात्य जी, सुनिये। यदि बात पसन्द न हो तो धृष्टता के लिये क्षमा कर दीजियेगा। मैं एक क्रीतदासी हूं। महाराज कुमारदेव से क्रय की हुई हूं। महाराज के महामात्य मुझ पर संदेह करते हैं और मुझको किसी उत्तर-दायित्व पूर्ण कार्य के योग्य नहीं मानते। उनको मेरी बंदियों की देखभाल का काम पसन्द नहीं। किसी कारण से महाराज बंदियों की देखभाल का काम महामात्य के अधीन करना नहीं चाहते।

"महामात्य यह समझते है कि महाराज के इस अविश्वास में मैं ही कारण हूं और वे मुझ को मार्ग का एक कांटा मान निकाल देना चाहते हैं। इस कारण मद्य में विष मिला कर भेज दी प्रतीत होती है। मैंने अभी कुछ दिन और जीना है इस कारण पीते-पीते मुझ को संदेह हो गया। मैंने शेष छोड दी और बच गयी। केवल रातभर अचेत रही और प्रातः को चक्कर आ गया।

"दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से मैं महामात्य से प्रेम करती हू। महामात्य को फसता देख मैंने निश्चय कर लिया है कि उनको किसी प्रकार हानि होने नहीं दूंगी। जिसको हृदय दिया है उसको फासी पर लटकने नही दूंगी।

"महामात्य बहुत चतुर व्यक्ति है। वे विष से मार सकने में असफल हो, मुझको फासी पर लटकवाना चाहते हैं। अब यह अश्वो की बात बना बैठे है। मेरा उनसे यह निवेदन है कि अब भी उनको मुझ से भय नहीं करना चाहिये। मेरे उनके प्रति प्रेम में कुछ भी अतर नहीं पड़ा।"

श्वेताग किरण की मोतियो की भाति लड़ी में पिरोई कथा को सुन चकित रह गया। वह जानता था कि इस कथा में उसका भाग सत्य नहीं है। इस पर भी वह निश्चय नहीं कर सका था कि किरण ने क्या यह कथा उसके ठगने के लिये बनायी है अथवा उसने भ्रम वश ऐसा समझा होहै। कुछ भी हो, वह उसकी चतुराई पर आश्चर्य करता था। उसकी कथा में ढूंढने पर भी छिद्र मिल नही रहा था। उसने केवल मात्र यह कहा, "झूठ सत्य से भी सुन्दर और लुभायमान होता है।"

"इसी कारण तो अनेको निरपराध व्यक्ति न्यायाधीश द्वारा फासी चढा दिये जाते है।"

श्वेताग इस सतर्कता से दिये उत्तर को सुन हंस पड़ा। फिर कुछ सोच वह कहने लगा, "देखो किरण, हम एक दूसरे को भली भांति जानते हैं। इस कारण यदि हम इकट्ठे रह कर चले तो शीघ्र ही अपने लक्ष्य की सिद्धि पा लेंगे।"

अब हंसने की बारी किरण की थी। उसने कहा, "ठहरिये! मैं द्वार बद कर दूँ। कहीं कोई सुन लेगा तो महामात्य का सिर फांसी के फदे में लटकता दिखायी देगा।" किरण उठ कर द्वार बद करने चली गयी थी, इस कारण उसने महामात्य के मुख पर अपने कथन से उत्पन्न भय के लक्षण नहीं देखे। द्वार बद कर वह महामात्य के सम्मुख बैठ बोली, "मुझको इस भवन में आये कई मास हो चले है और अभी तक मुझ को कोई ऐसा नहीं मिला, जिससे मन की बात खोल कर कह सकू। आप ही मेरे

साधन हुए थे। इस कारण जब आप कहते हैं कि हम इकट्ठे होकर चलें तो आप से बात करने में चित्त करता है। इस पर भी मैं अबला हूं और निर्भय अनुभव नहीं करती। इस कारण द्वार बद कर बात धीरे-धीरे करना चाहती हूं।"

"देखो सुन्दरी! मै भी तुम से प्रेम करता हू। तुम्हारे रूप-रंग के लिये, तुम्हारे विशाल मस्तक के लिये और उसमें सुलझे हुए मस्तिष्क के लिये तथा तुम्हारे उच्च विचार और शुद्ध भावनाओ के लिये मैं तुम पर मोहित हूं। मै जब भी तुम्हारे विषय में विचार करता हूं तो तुम्हारे गुरु उत्ताल बाबा की प्रशंसा किये बिना नही रहता।"

"यह सब ठीक हो सकता है श्रीमान्, परन्तु इस प्रकार बैठने के अवसर को इन व्यर्थ की बातो में गवाना बुद्धिमत्ता नही हो सकती।"

इसके आगे वह कह नहीं सकी। श्वेतांग ने उसकी कमर मे हाथ डाल उसको अपनी ओर खीच लिया और उससे आलिगन कर उसका मुख चूम लिया। यह सब कुछ उसने इतना अकस्मात् किया कि किरण के पास समय ही नहीं था कि वह इसका विरोध कर सके। किरण को जब श्वेताग के ऐसा करने का ज्ञान हुआ तो उसने यत्न कर अपने को छुड़ाया और मुस्कुराते हुए कहा, "आपके इस आदर के लिये मैं धन्यवाद करती हूं। परन्तु मैंने द्वार किसी दूसरे प्रयोजन से बंद किया है। बताइये आप के जीवन में क्या लक्ष्य है, जिसकी सिद्धि के लिये आप मुझ से सहयोग चाहते है?"

"मैं यहां का राज्य अपने हाथ मे करना चाहता हू।"

"वह तो इस समय भी है।"

"इस समय कुमारदेव की तलवार सिर पर लटक रही है। दिन रात चिन्ता लगी रहती है कि कही यह सिर पर न आ गिरे।"

"पर राज्य मिल जाना और छिन जाना तो भाग्य से होता है। यह यत्न करने से नहीं हो सकता। साथ ही राजा बन जाने पर भी तो जनता के भय की तलवार सिर पर लटकने लगेगी। इस समय तो आपको केवल कुमारदेव को प्रसन्न करना पड़ता है परन्तु राजा बनने पर तो लक्ष-लक्ष

जनता को प्रसन्न करना पड़ेगा।"

"जनता को तो अब भी प्रसन्न करना पड़ता है।"

"इस समय तो जो कुछ आप करते हैं वह कुमारदेव के नाम पर करते हैं। कुमारदेव की सेना में ख्याति है और धन-सम्पदा के प्रसार से जनता में भी ख्याति होती जाती है। यदि थोड़ी सी चतुराई से काम लें तो महाराज को प्रसन्न कर अपना जीवन सुख और शान्ति से व्यतीत कर सकते हैं।"

"अभी कल रात ही तो देवी जी ने कहा था कि महाराज की आज्ञा की अवज्ञा करने की शक्ति होनी चाहिये।"

"इसके अर्थ यह कैसे हो गये कि आप स्वयं राजा बन जायें?"

"मैंने यही समझा था।"

"मुझ को आपकी समझ पर दया आती है। मेरा अभिप्राय तो यह था कि आप महाराज को अपनी सेवाओं से इतना प्रसन्न करें कि वे आपकी प्रत्येक बात को उचित मानने लगें। यह है शक्ति प्राप्त करने के अर्थ।"

"यह तो हो गया है। यदि ऐसा ही देवी जी का आशय था तो आप को यह जान कर प्रसन्न होना चाहिये कि महाराज ने देवी को मुझ को दे देने का वचन दे दिया है।"

"सत्य?"

"हां, वे समझते हैं कि तुम रानी बनने योग्य हो। वे स्वयं तो रेखा को पटरानी बना रहे हैं। इस कारण उनकी इच्छा है कि यदि मैं तुम से विवाह कर लूं तो तुम रानी बन सकोगी। वे तुम को एक मूल्य पर मुझ को दे देंगे।"

"पर आप ने एक बार यह कहा था कि आप स्त्रियों को धन से मोल नहीं लेते।"

"वैसे तो मैंने तुम को विजय कर लिया हुआ है। अब तो तुम पर वैधानिक अधिकार प्राप्त करने के लिये यह किया जा रहा है।"

"मुझ को महाराज की उदारता पर उनका कृतज्ञ होना चाहिये। परन्तु इस विषय में मैं उनसे ही बात करूंगी। आप से तो यह कहना चाहती हूं कि आप अपना जीवन लक्ष्य बताने की कृपा करें, जिससे मैं देख

सकूं कि आप का और मेरा जीवन लक्ष्य एक है या भिन्न-भिन्न।

"यदि आप राज्य प्राप्ति के लिये यत्न कर रहे है तो मेरा मार्ग आप का मार्ग नही है। यदि आप अपना कार्य राज्य के हित में कर अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं तो हम दोनो का मार्ग एक हो सकता है। इस पर भी कुछ बातें और है, जो विचारणीय है। 'सुखमय' शब्द के अर्थों को भी समझने की आवश्यकता है। देखना यह है कि आपका सुख और मेरा सुख एक हो सकते है या नहीं ?"

श्वेतांग को किरण के इस विश्लेषणात्मक वक्तव्य से आश्चर्य हुआ। वह समझता था कि ये सब अज्ञानता के लक्षण है। वास्तविक ज्ञान के अभाव में ही मनुष्य भविष्य से ऐसे डरता है जैसे कि वह अंधे कुंए में कूद रहा हो। उसने गम्भीर होकर कहा, "मैं समझता हूं कि तुम बच्चों की सी बातें करती हो। देखो मैं तुम को एक ज्ञान की बात बताता हूं। इसके सम्मुख वेद-वेदांग भी फीके प्रतीत होते है। मै तो भावी जन्म को मानता नहीं; यदि उसका अस्तित्व मान भी लें, तो भी इस जन्म में उस जन्म की बात के पूर्ण रूप में विस्मरण हो जाने से उस जन्म की चिन्ता करनी अब व्यर्थ की बात हो जाती है। इस कारण हम को तो इस जन्म की ही चिन्ता करनी रह जाती है। मैं तो इस जन्म को सुखी बनाने में ही चिन्तित रहता हूं। अपने को प्रत्येक प्रकार से प्रसन्न और सुखी रखना ही मेरे जीवन का ध्येय है। जहां तक दूसरो का सम्बन्ध है उनको मेरे अनुरूप ही रहना चाहिये। जो मेरे सुख का विरोध करेंगे मैं उनसे किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं रख सकता। मैं इस सिद्धात का मानने वाला हूं कि 'तुझ को पराई क्या पड़ी अपनी निबेर तू।'

"यह है मेरे जीवन की मीमांसा। मैं चाहता हूं कि तुम भी मेरे अनुरूप हो जाओ। हम दोनो मिल कर बहुत कुछ कर सकेंगे। अन्यथा दो तेज तलवारो की भांति एक दूसरे के विरुद्ध लड़ कर अपनी धारें ही खराब करेंगे। बस, इसी में सब कुछ समझ लो।"

किरण ने इस जीवन-मीमासा को सुन कर मन में शान्ति अनुभव

नही की। इस पर भी उसने कहा, "श्रीमान्, मैंने आप की बात सुन ली है। अब इसको समझने का यत्न करूंगी। इस में समय लगेगा। अल्पबुद्धि स्त्री ही तो हूं और फिर चिर सचित सस्कारो के कारण दूसरे ढंग से सोचने में समय लगता है। मै इस विषय में फिर कभी उत्तर दूंगी!"

: ७ :

किरण ने श्वेतांग को उक्त प्रश्न का उत्तर नही दिया। वह समझती थी कि मैं क्रीतदासी हू और कहीं रानी बनने के लोभ में इस जन्म को और भावी जन्म को भी बिगाड न लूं। इसके साथ ही वह यह समझने लगी थी कि श्वेतांग की स्वार्थपरता की नीति जब श्वेतांग को लेकर डूबे तो कहीं उसको भी साथ ही रसातल में न ले जावे। इस कारण वह चुप थी। उसने न तो महाराज कुमारदेव और न ही श्वेतांग से इस विषय में बातचीत की।

दिन के पीछे दिन और मास के पीछे मास व्यतीत होते गये और बात वहां ही रही जहां वह थी। किरण क्रीतदासी ही रही और पालकदेव इत्यादि बंदियो का प्रबन्ध करती रही। महाराज कुमारदेव अनिश्चित मन से न तो किरण को मुक्त कर सका और न ही अपने भाई इत्यादि के विषय में कोई अंतिम बात विचार सका। श्वेतांग अपनी नीति के अनुसार राज्य-कार्य चलाता रहा। अवन्ति में धन धान्य की वृद्धि होती रही। जनता में सुख भोग की लालसा बढ़ती गयी और राज्य की ओर से नागरिको के सुख और आराम के अधिक और अधिक साधन जुटाये जाते रहे। लोग भी नित नये उपाय आनन्द-भोग और वासनातृप्ति के करते रहे।

एक दिन किरण भोजन, जो वह प्रायः अकेली अपने आगार में ही लिया करती थी, लेकर बैठी ही थी कि महाराज कुमारदेव उससे मिलने चले आये। कई मास के पश्चात् महाराज के दर्शन का सौभाग्य उस को प्राप्त हुआ था। इससे विस्मय में वह उठ कर उनकी आवभक्त करने लगी। जब वह महाराज का सम्मान करने के लिये खड़ी हुई तो कुमार-देव ने उसको सिर से पैर तक देखा। उसको वह एक विचित्र प्रकार के

ओज और सौन्दर्य की पुंज दिखाई दी। इस ओज के सम्मुख कुमारदेव घबड़ा उठा और अपने मन की बात को एक ओर रख क्षमा याचना करने लगा। "देवी!" उसने कहा, "मै तुम से क्षमा याचना करता हू।"

"क्या अपराध हो गया है मुझ से महाराज! जो मेरा ऐसा अपमान कर रहे हैं?"

"तुम जैसी सुन्दरी की पूजा होनी चाहिये, वह मै कर नही रहा। आज कई मास पश्चात् मुझको तुम्हारी सुध आई है।"

"इस पर भी मै अपना सौभाग्य ही मानती हूँ। यदि महाराज अब भी सुध न लेते तो मै क्या कर सकती थी?"

"मैंने तो देवी जी को एक बात में सम्मति लेने के लिये स्मरण किया है।"

"इससे तो महाराज मेरा और भी सम्मान कर रहे है। इस तुच्छ दासी को किसी योग्य तो समझा है।"

"देखो किरण! रेखा ने बताया है कि उसके बच्चा होने वाला है इस कारण मेरा उससे विवाह अनिवार्य हो गया है।"

"तो मैं महाराज को बधाई दूँ क्या?"

"आज रात विवाह होगा। मेरी इच्छा है कि विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में तुम्हे महामात्य को दान-दक्षिणा में दे दूँ।"

"बिना मेरी इच्छा के?" किरण का मुख पीला पड़ गया। फिर कुछ विचार कर कहने लगी, "महाराज मै आप की क्रीतदासी हूं। आप मेरा प्रयोग जैसा चाहें कर सकते है, परन्तु मै एक प्राणी भी हूं। कोई भूषण, वसन इत्यादि वस्तु नहीं हूं। इस प्रकार तो जब महामात्य मेरे भोग से ऊब जावेंगे तो वे भी मुझको अपने किसी सेवक के पास दे देंगे। क्या आप की यही इच्छा है महाराज?"

"तुम क्रीतदासी हो किरण! मेरा अधिकार है कि मै तुम्हे जिस को चाहूं दूं।"

"ठीक है महाराज! पर मैं किसी दूसरे के पास जाने से पहिले आत्म-हत्या भी तो कर सकती हूं।"

"मुझको तो यह बताया गया है कि तुम महामात्य से प्रेम करती हो।"

"पर मैं उसकी वासना-तृप्ति के लिये वेश्या नहीं हूं।"

"तो फिर तुम ऐसी ही रहना चाहती हो जैसी हो?"

"यदि आप मुझको ऐसा नहीं रखना चाहते, तो मुझको स्वतंत्र कर दीजिये। पश्चात् मैं जिससे चाहूं, विवाह कर लूंगी।"

कुमारदेव इसके परिणामों पर विचार करने लगा। पश्चात् कुछ विचार कर बोला, "किरण! मैं तुम से कुछ काम भी तो ले रहा हूं। वह कौन करेगा?"

"आप मुझ को स्वतंत्र करने के पश्चात् सेविका के रूप में रख लीजियेगा। कुछ वेतन दे दीजियेगा। मैं आप का कार्य पूर्ववत् करती रहूंगी।"

"परन्तु जब तुम अपनी इच्छा से विवाह करोगी और वह पुरुष हमारे अनुकूल न हुआ, तो तुम्हारे लिये बहुत कठिनाई उत्पन्न हो जावेगी।"

"मैं किसी ऐसे से विवाह, भला क्यों करूंगी, जो आप के अनुकूल नहीं होगा? आप मेरे पर इतनी कृपा करेंगे कि मुझको दासता से मुक्त कर देंगे, तो मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूँ कि आप के उपकार को भूल जाऊंगी।"

"अच्छी बात है, विचार करेंगे।"

किरण मन में विचार करती थी कि उसको कुमारदेव की सहायता क्यों करनी चाहिये? उसके लिये वह पालकदेव को बंदी बना कर क्यों रखे? वह महामात्य सुदर्शन को क्यों बाहर जा कर कुमारदेव के विरुद्ध काम करने नहीं देती? वह महामात्य श्वेतांग से प्रेम करती हुई भी उसकी महत्वाकांक्षाओं को क्यों पसन्द नहीं करती?

श्वेतांग ने उसको एक दिन बताया था कि उत्ताल बाबा की दूषित शिक्षा के कारण ही वह विपरीत दिशा में विचार करती है। क्या यह ठीक है?

किरण अपनी विशेष परिस्थिति में इस प्रकार के अनेकों प्रश्नों की उलझन में फंसी हुई थी। इससे वह महाराज के कहने का कि वे उसको

बात पर विचार करेंगे, कुछ उत्तर नहीं दे सकी। वह अभी तक अपने मन में भी अपना भविष्य स्पष्ट देख नहीं सकती थी।

महाराज ने जाने से पूर्व एक बात और कही, "किरण! मैं समझता था कि मैं तुम्हें उसको देकर तुम्हारे द्वारा उससे कई कार्य कराऊंगा।"

"क्या कराना चाहते हैं आप मुझ से ?"

"महामात्य मेरे राज्याभिषेक में ढील कर रहे हैं।"

"आज्ञा हो तो, ऐसे ही, मैं उससे इस कार्य को करवाने का यत्न करूं?"

'हो सके तो करवाओ। इसके हुए विना मैं समझता हूं कि मेरा भविष्य अनिश्चित ही है।"

"इतनी सी बात के लिये आप को बहुत चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं इसका प्रबन्ध करवा दूंगी। जब विवाह हो रहा है तो राज्याभिषेक भी होगा।"

"तुम इसको छोटी सी बात मानती हो किरण ?"

"महाराज! यह बात बहुत बडी हो तो भी होगयी ही समझनी चाहिये।"

: ८ :

किरण आज महामात्य के आगार में गयी। उसकी सूचना पहुंचते ही महामात्य अपने आगार से बाहर आ आदर से उसको भीतर ले गया।

वहां कुछ ब्राह्मण बैठे थे। महामात्य ने उनके वहां होने का प्रयोजन बताया।

"महाराज का रेखा से विवाह हो रहा है। नगर का कोई भी ब्राह्मण इस विवाह को कराने के लिये तैयार नहीं होता। इस कारण आचार्य वामदेव जी के आश्रम से इन को बुलाया है। ये पंडित नीलकंठ हैं। आचार्य जी के परम प्रिय शिष्य हैं।"

किरण को अचम्भा हुआ। वह समझ नही सकी कि क्यों इस विवाह के करने में न की जा रही है। उसने पूछा, "यहां के ब्राह्मण विवाह क्यो नहीं कराते ?"

"प्राचीन विधि से विवाह कराते समय कोई कन्यादान करने वाला होना चाहिये।

"मैंने कहा था कि कन्यादान मैं कर दूंगा, परन्तु वे नहीं माने। वे कहते थे कि कोई सम्बन्धी होना आवश्यक है। इस प्रकार तो कोई भी किसी की कन्या को पकड़ कर, विवाह दिया करेगा।"

"पर बिना विवाह के तो कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष के पास स्वेच्छा से रह सकती है?"

श्वेतांग ने हंस कर कहा, "मैंने यह बात उनसे कही थी। उनका कहना है कि एक वेश्या की सन्तान अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं होती। विवाह से जो सन्तान होती है उसका अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकार होता है। इस कारण विवाह के समय भारी सावधानी प्रयोग में लाई जाती है। जब कोई सम्बन्धी कन्यादान करता है तो इसका अभिप्राय यह माना जाता है कि वह लड़की कहीं से बरगला कर अथवा अपहरण कर नहीं लायी गयी।"

"तो फिर क्या होगा?"

"महाराज का विवाह होगा। विवाह श्री आचार्य वामदेव जी के ये शिष्य करायेंगे। इनका कहना है कि लड़की सज्ञान हो तो वह अपनी इच्छा से जिस से चाहे विवाह कर सकती है और उस विवाह का उतना ही मान होना चाहिये जितना कि माता-पिता से कन्यादान की हुई कन्या के विवाह का।"

इस प्रकार की बातें होते हुए देख नीलकंठ ने किरण का परिचय पूछा। श्वेताग ने परिचय दिया तो नीलकंठ ने उठ कर नमस्कार किया और कहा कि देवी की ख्याति वहां तक पहुंची हुई है। आचार्य जी के आश्रम में देवी जी के विषय में चर्चा होती है।"

"क्या चर्चा होती है, भगवन्? मेरा नाम कैसे पहुंचा है वहां?"

"आपका यहां विक्रय कर, श्री उत्ताल बाबा आचार्य जी के दर्शन के लिये वहां गये थे और उन्होंने आप के विषय में बताया था। तब से

'आचार्य जी आपके विषय में जानकारी रखते आये हैं।"

"पर यह सब क्यों? एक क्रीतदासी के विषय में इतनी रुचि क्यों रखी जाती है। संसार में अनेकों स्त्रियों को छोड़ कर मेरे पर यह कृपा-दृष्टि किस प्रयोजन से की जा रही है?"

"यह बात तो गुरु जी ही बता सकते हैं। इतना मैं जानता हूं कि एक बार उन्होंने आपके विषय में कहा था कि आप की जन्म कुण्डली, जो उत्ताल बाबा ने उनको दी थी, यह बताती है कि आप एक महान् यश की भागिनी सन्यासिनी बनने वाली हैं। इस कारण ही शायद वे आपका ध्यान रखते हैं।"

"मैं सन्यासिनी?" किरण खिलखिला कर हंस पड़ी।

नीलकंठ ने बात बदल दी और कहा, "आचार्य जी की अनुमति से हम इस राज्य में विवाह की प्रथा में यह परिवर्तन करने जा रहे हैं, कि भविष्य में सज्ञान लड़कियां अपना विवाह स्वय कर लिया करेंगी।"

"यह परिवर्तन कैसे होगा और इसकी मान्यता कैसे होगी?"

"जो बात राज्य में राजा कर ले, वह प्रथा हो जाने से धर्म मानी जाती है।"

"मुझ को भय है कि कहीं विवाह-विच्छेद की प्रथा भी राजा से ही न आरम्भ करनी पड़े।" किरण ने मुस्कुराते हुए कहा।

"शुभ-शुभ बोलो देवी जी।" नीलकठ ने आंखें फाड़-फाड़ कर देखते हुए कहा।

किरण ने कहा, "महामात्य जी! मैं तो आपसे मिलने आयी हू।"

"मैं जानता हूं। आपके आने का प्रयोजन भी जानता हूं। चलिये दूसरे आगार में बातचीत करेंगे।" श्वेताग किरण को लेकर एक दूसरे आगार में चला गया। वहा पहुंच उसने किरण को एक आसन पर बैठा कर कहा, "मैं चाहता हूं कि अब हम अपने विवाह के विषय में भी बातचीत कर लें। बताइये, कब यह हो जाय। यदि नीलकंठ जी से ही यह सम्पन्न हो सके तो क्या अच्छा न होगा?"

"मैं आप की बात नहीं समझी। अभी मैं विवाह करने योग्य नहीं हूं।

मैं महाराज की क्रीतदासी हू। अभी आप मुझ से विवाह की बात कैसे कर सकते है ?"

"तो महाराज ने आप को नही बताया ?"

"बताया है। इसी प्रयोजन से तो मैं यहां आयी हूं। मैं यह जानना चाहती हूं कि विवाह के लिये तो इतनी जल्दी मचाई जा रही है पर राज्याभिषेक का क्या होगा ?"

"किसका विवाह और किसका राज्याभिषेक ? मैं तो आपके अपने साथ विवाह की बात कह रहा हू।"

"और मैं महाराज के विवाह की बात कह रही हूं। साथ ही उनके ही अभिषेक की बात पूछ रही हूं।"

"तो महाराज ने आपको मेरे पास इस प्रयोजन से भेजा है ?"

"नही! मैं ही महाराज के विवाह की बात सुन कर आयी हूं। मैं समझती हूं कि राज्याभिषेक की तिथि विवाह से पूर्व निश्चय हो जानी चाहिये।"

"किरण! इस सब बात का अभिप्राय समझ नही आ रहा। आपकी इसमें क्या रुचि है ?"

"राजनीति में सब बाते इस प्रकार समझ नहीं आतीं, श्रीमान्! पालकदेव जी को पदच्युत किये आज दो वर्ष हो चुके है और उनके उत्तराधिकारी का राज्याभिषेक होने में ही नही आता।"

"आज किरण देवी लडने के लिये तैयार होकर आयी प्रतीत होती है ?"

"कुछ समझिये। मै आपके, इस आवश्यक बात को इस प्रकार टालने को उचित नही समझती।"

"पर मैं तो इसको ठीक ही समझता हूं। अभी राज्याभिषेक नहीं होना चाहिये।"

"जब दो व्यक्तियों में मतभेद हो जावे, तब निर्णय कैसे हो ?"

"किरण देवी, बात क्या है ? विस्तार से समझाओ तो मैं भी कुछ

कहने का यत्न करूं। इस प्रकार तो बात हो नहीं सकेगी। चलो महाराज के सामने बात करें।"

"मैं तो चलने को तैयार हूं, परन्तु जब आपको यह विदित हो जावे कि वहां भावी राजकुमार के पिता के सम्बन्ध में चर्चा चल सकती है, तब आप शायद, बात करना पसन्द नहीं करेंगे।"

श्वेतांग इस बात को सुन अवाक् किरण का मुख देखता रह गया। किरण ने अपनी बात को कुछ और विस्तार से कहा, "जब मनुष्य के कामो का मूल्य स्वार्थ की तराजू में लगाया जावे तब क्या कुछ होगा, मैं कह नही सकती। क्या मैं नहीं जानती कि मेरे प्याले में विष किसने और फिर किस प्रयोजन से मिलाया था ?"

श्वेतांग समझ गया कि किरण सीमा से बहुत कुछ अधिक जान गयी है। इस कारण उसने कुछ नरम हो जाना उचित समझा। उसने कहा, "देखो किरण, हम परस्पर एक दूसरे को भली भाति समझते हैं। इससे हम दोनो मिल कर अपना कार्य क्यो नहीं चला सकते ? क्या मूर्खो को राजगद्दी पर बैठा कर अपने सिर पर तलवार लटकती रहने देना उचित है ?"

"वास्तव में आप मुझको नहीं समझे। यदि आप मुझको भी उतना ही जानते होते, जितना मैं आप को जानती हूं तो कभी झगड़ा न होता।"

"इसी कारण तो मैं आपसे विवाह करना चाहता हूं। तब हम एक हो जावेंगे और एक दूसरे को भली भांति समझ सकेंगे। ऐसा हो जाने पर हम अपनी योजना भी सुगमता से चला सकेंगे।"

"यह तो विना विवाह के भी हो सकता है। आप जिनके महामात्य हैं, मैं उनकी दासी हूं। इस कारण हमारे कार्यो में समन्वय होना स्वाभाविक ही है।"

"पर मैं उनको इस स्थान पर रहने देना नही चाहता। हमारा सम्बन्ध पहिले बन जाना चाहिये।"

"मेरी सम्मति है कि राज्याभिषेक पहिले हो जाना चाहिये।"

"हां, यदि तुम वचन दो तो अपने कार्यक्रम में परिवर्तन भी कर सकता हूं।"

"तो राज्याभिषेक की घोषणा हो जानी चाहिये। यह विवाह से तीन मास पश्चात् होगा और उसकी तैयारी अभी से आरम्भ हो जावेगी।"

"जब तुम कहती हो तो मैं करूंगा, परन्तु हमारा विवाह?"

"राज्याभिषेक के पश्चात् निश्चय होगा।"

: ६ :

पालकदेव को बंदी हुए दो वर्ष हो चुके थे। वे अपना समय प्रायः पूजा, पाठ और स्वाध्याय में व्यतीत करते थे। महारानी पद्मावती बीमार रहने लगी थी। उसके रुग्ण रहने में सबसे बडा कारण उसके मन की दुखित अवस्था थी। वह सदैव भगवान् को कोसती रहती थी और कभी-कभी महाराज को भी कहती थी, "आप उस समय भाग जाते तो आज तक हम पुनः राजगद्दी पर बैठे होते।"

"भगवान् जाने क्या होता? जो ठीक समझ आया वह कर दिया। किरण बहुत ही भले विचार की दासी है। उसको अपने स्वार्थ के लिये बलि देना मुझ को पसन्द नहीं था।"

"इसी कारण अपने आपको, मुझ को और उससे भी बढ़ कर राज्य को बलि देना पसन्द किया है आपने?"

"पद्मा देवी! हमारा कष्ट किरण के कारण तो हुआ नहीं। इसलिये हमारे कष्ट के प्रतिकार में उसका कष्ट कैसे हो सकता है। देखो, एक उदाहरण देकर समझाता हूं। एक पुरुष की स्त्री का अपहरण हो जाये तो क्या वह किसी दूसरी स्त्री का अपहरण करने का अधिकारी हो जाता है?"

पद्मावती युक्ति से तो कुछ कह नहीं सकती थी, परन्तु मन में कुढ़ती रहती थी। यही कारण था कि शिर पीड़ा और मदाग्नि अनुभव करने लगी थी। आज वह बिस्तर से बाहर नहीं निकली थी। कुछ

ज्वर अनुभव करने लगी थी ।

पालकदेव चिन्ता अनुभव करने लगा था। जब किरण नित्य के कार्य से आयी तो वह महारानी के पलंग के समीप बैठा था। किरण ने चिन्ता में पूछा, "महाराज, क्या बात है ?"

"पद्मा को ज्वर आ गया है ।"

"मै वैद्यराज को बुलाती हूं।"

"इस रोग की चिकित्सा किसी वैद्य के पास होगी क्या ?"

"क्या रोग है ? महाराज !"

"इसको बंदी होने का शोक है । इस शोक में ही वह गली जाती है। वैद्य इस में क्या करेगा ?"

"तो महाराज स्वतंत्रता के लिये यत्न करना चाहिये । कहिये तो जैसा अवसर एक दिन पहिले दिलवा सकी थी, पुन. दिलवाने का यत्न करू ?"

"नहीं ! वैसा नही। मै स्वतंत्रता अपना अधिकार मानता हू और उसी के आधार पर मुझको यहा से मुक्ति मिलनी चाहिये । किसी दूसरे को फसा कर अथवा कष्ट देकर स्वतत्रता तो बहुत छोटी वस्तु है, स्वर्ग-लोक का राज्य भी नही लेना चाहता।"

किरण इस प्रकार के विचारो को पहिले भी सुन चुकी थी। आज वह एक बात, जो वह पहिले कई बार विचार कर चुकी थी, कहने के लिये तैयार होगयी। उसने पूछा, "महाराज स्वतत्रता तो जन्मसिद्ध अधिकार है, परन्तु राज्य करना तो नही है ? अवन्ति का भूतपूर्व महाराज बंदी है, न कि कोई नागरिक।"

"तो क्या तुम समझती हो कि कुमार को राज्य करने का अधिकार मुझसे अधिक है ?"

"मै आप दोनो भाइयो मे तुलना नहीं कर सकती । इस पर भी जब मै प्रजा को सतुष्ट और प्रसन्न देखती हूं तथा उसके आपको भूल जाने की बात पर विचार करती हूँ तो इस परिणाम पर पहुंचने पर

विवश हो जाती हूं कि किसी बात में तो छोटा भाई बड़े भाई से अधिक योग्य है।"

"परन्तु समाज का भविष्य जो बिगड़ रहा है।"

"जिसको आप बिगाड समझते हैं उसको दूसरे सुधार समझते हैं। परन्तु इस बात के विचार करने की क्या आवश्यकता है? सब लोग राजा हो नहीं सकते। राजा बनने के लिये प्रजा का सहयोग अत्यावश्यक है। वह बंदीगृह में रह कर कैसे प्राप्त हो सकता है? इस समय विचारणीय बात तो यह है कि आप भाग कर बाहर निकलना चाहते हैं अथवा यह वचन देकर कि आप काशी इत्यादि किसी तीर्थ स्थान पर जाकर शान्ति का जीवन व्यतीत करेंगे और अवन्ति का राज्य प्राप्त करने की इच्छा नहीं करेंगे। भाग कर जाने की अवस्था में सफलता अनिश्चित है। यहां राज्य में कई शक्तियां काम कर रही हैं। वे सब अपनी-अपनी ओर खेंचती हैं। इस कारण किसी भी कार्य के परिणाम का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। दूसरे उपाय में यदि आप वचन देने की बात कहें तो सफलता की अधिक आशा है।"

"मैं राज्य की अभिलाषा नहीं रखता। केवल जनता का विचार जानना चाहता था। वह अब जान गया हूं।"

"इस दिशा में मैं यत्न करूंगी। एक बात मैं आपको बताना चाहती हूं। वह यह कि महाराज कुमार देव का विवाह, रेखा देवी से कल हो गया है। इसके तीन मास पश्चात् उनका राज्याभिषेक होगा। उसके पीछे ही आपके मुक्त किये जाने का विचार हो सकेगा।"

इस सूचना से पालकदेव गम्भीर विचार में लीन हो गया। पद्मावती भी समझ गयी कि राज्याभिषेक के पीछे राज्य वापिस उनको मिलने की कोई आशा नहीं रहेगी। उसने चिन्ता में पूछा, "अब क्या होगा?"

"मैं समझता हूं कि राज्याभिषेक के पीछे तो हम को बंदी बना रखना व्यर्थ हो जावेगा। या तो तुम्हें हमें छोड़ दिया जायेगा अन्यथा एक रात चुपचाप विष देकर हमको शान्ति की गोद में सदा के लिये सुला दिया जावेगा।"

किरण वहां से कुमारदेव के आगार में गई। वह महाराज से मिल कर पालकदेव के विषय में कुछ निश्चय करना चाहती थी। वहां श्वेतांग बैठा था और महाराज दास-दासियो को विवाह के उपलक्ष में उपहार दे रहे थे। किरण को देख महाराज ने बुला लिया और कहा, "देखो किरण देवी! महामात्य क्या कह रहे हैं?"

किरण ने महाराज और रेखा से एक नीचे आसन पर बैठते हुए कहा, "क्या कह रहे हैं श्रीमान् महामात्य जी?"

"ये कह रहे हैं कि इनको भी विवाह के उपलक्ष में उपहार दिया जाय।"

"ठीक तो कहते हैं महाराज! पर इनसे पूर्व मैं भी तो कुछ उपहार पाने की आशा रखती हूं।"

"पहिले क्यो?"

"नीच दास-दासियो को आपने उपहार पहिले दिये हैं। मैं महामात्य जी से तो नीच हूँ ही। इस प्रकार उपहार पाने का अधिकार मेरा उनसे पहिले है।"

"पर देवी! हम तुम को महामात्य से ऊची पदवी देना चाहते हैं।"

"न महाराज! महामात्य नाराज़ हो जावेंगे। इस समय पूर्ण राज्य के कार्य-भार का उत्तरदायित्व उन पर है और मैं हूं आप की क्रीतदासी। महामात्य के नाराज़ हो जाने से तो राज्य में अव्यवस्था फैल जाने का भय है। मेरे रूठने मे क्या हो सकता है?"

"अच्छी बात है। तुम ही पहिले मांग लो। क्यो महामात्य जी, आप क्या समझते हैं?"

"महाराज! देवी का अधिकार तो मुझसे अधिक है ही। देवियां सदैव आगे रहती है। यह हम पुरुषो का दुर्भाग्य है कि हम शक्तिशाली होते हुए भी इन की तिरछी भृकुटि से घबडा उठते हैं। आप देवी जी को प्रसन्न कर दें।"

"तो मागो किरण देवी ! क्या चाहती हो ?"

"महाराज, मै अपनी स्वतन्त्रता वापिस चाहती हूं ।"

"पर हमारा काम कौन करेगा ? यह हम नहीं दे सकते । कुछ और मांगो देवी !"

"यदि महाराज मुझ को छोड नहीं सकते तो भवन के भूगर्भ आगारो में बंद किये बंदियो को मुक्त कर दें ।"

"यह भी नहीं किरण देवी !" कुमारदेव ने गम्भीर हो कहा ।

"तो महाराज मुझ को और कुछ नही चाहिये । मै आपकी कृपा की आभारी हू ।"

"किरण ! तुम बहुत ही चतुर स्त्री हो । तुमने जो कुछ मागा है वह राज्य के भीतर भारी हलचल उत्पन्न करने वाला है । यदि मै तुम को स्वतंत्र कर दूँ तो मेरे पास बंदियो की देखभाल करने वाला कोई न होने से वे भी छोड़ने होगे । यदि मै उनको छोड देता हू तो जिस प्रयोजन से मैंने अभी तक तुम को रखा हुआ है वह न रहने से तुम को दासी बना कर रखना व्यर्थ हो जावेगा । अर्थात् तुम भी छूट जावोगी ।"

"तो महाराज हम दोनो छूट जावेंगे न ? तो छूट जावें । क्या हानि होगी इससे ?"

इस समय श्वेताग ने बात का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, "हानि क्यो नहीं ? महाराज पालकदेव के छूट जाने से राज्याभिषेक सदेह में पड़ जावेगा ।"

"संदेह में क्यो पड़ जावेगा ?" किरण का प्रश्न था ।

"इसलिये कि एक देश में दो महाराज नहीं रह सकते ।"

"मै अवन्ति के महाराज की मुक्ति के लिये नहीं कह रही । मै तो अवन्ति के नागरिक पालकदेव, पद्मावती और पंडित सुदर्शन की मुक्ति चाहती हू । पालकदेव वचन देने के लिये तैयार हैं कि वे राज्य की लालसा छोड़ कर किसी तीर्थस्थान पर चले जायेंगे ।"

"उनका विश्वास किया जा सकता है क्या?"

"मैं समझती हूं कि यदि वे एक बार वचन देंगे तो उसका पालन करेंगे।"

"वे वचन किस के सम्मुख देंगे?"

"अपने छोटे भाई और अवन्ति के महाराज के सम्मुख।"

"राजनीति में वचनों का विश्वास नहीं किया जा सकता।" श्वेतांग ने दृढ़ता से कहा।

"यह मैं जानती हूं। इस पर भी राजनीतिक कार्य वचनों के आधार पर ही चलते हैं। श्रीमान् पालकदेव चरित्रवान्, कर्मनिष्ठ और कर्म-फल के सिद्धान्त के मानने वाले व्यक्ति हैं। वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। उनके वचन पर आप को विश्वास करना ही होगा।"

"पर किरण देवी उनकी इतनी प्रशंसा क्यों करती हैं?"

"सज्जन पुरुष से संबन्ध आने पर सहानुभूति उत्पन्न होनी स्वाभाविक ही है।"

"मनुष्य का स्वभाव तो स्वार्थ सिद्धि है। कभी तो वह जान-बूझ कर स्वार्थ सिद्धि करता है और कभी अनजाने में अंतरात्मा की प्रेरणा से।"

"अपनी जानकारी में तो मैं किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रखती और यदि अनजाने में कोई स्वार्थसिद्धि हो जाये तो इसमें हानि ही क्या है? देखना तो यह है कि महाराज यदि यह कार्य करें तो इनको हानि होगी अथवा लाभ?"

"देवी क्या समझती हैं।" कुमारदेव पूछा।

"मैं तो इसमें आपका लाभ ही समझती हूं।"

"कैसे?"

"मैं जानती हूं कि श्रीमान् पालकदेव यह वचन दे देंगे कि वे राज्य करने का विचार छोड़ किसी तीर्थस्थान पर जाकर भगवद्भजन में लग जावेंगे। महाराज उनके लिये वहां पर रहने का प्रबन्ध कर देंगे। इससे प्रजा में और संसार में जो यश और कीर्त्ति मिलेगी वह अमूल्य होगी।

इसके विपरीत बंदी रख कर अपना राज्य चलाने से संसार के इतिहास में महाराज के नाम के सम्मुख कालिमा का धब्बा लगा रह जावेगा।"

इस समय श्वेतांग ने पुनः वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "यश और कीर्त्ति बिना सुख और भोग के क्या अर्थ रखती है?"

"सुख और भोग तो छिनेगा नही और यश तथा कीर्त्ति ऊपर से मिलेगी।"

"नहीं महाराज, भावुकता स्त्रियो का गुण है। इसमें बह नहीं जाना चाहिये। अवसर मिलने पर शत्रु का नाश कर देना ही सफल नीति है।"

"पर महामात्य जी, यह शत्रु कौन है? आप किसके नाश करने की बात कह रहे है? तनिक विचार करिये और फिर कहिये।"

"मै जो कुछ कह रहा हूं, विचार करने के उपरान्त ही कह रहा हूं। यह सत्य है कि पालकदेव और महाराज में पहिले तो शत्रुता नहीं थी, परन्तु अब जो कुछ हो गया है वह शत्रुता उत्पन्न करने से अधिक है। दोनों भाइयों में प्रतिस्पर्धा चल पड़ी है।"

"यदि वे राज्य छोड़ काशी चले जायें तब भी?"

"यह मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध है।"

"आप इतिहास भूल रहे है श्रीमान्।"

"मैने इतिहास पढ़ा है देवी जी! जिस बात की ओर आपका संकेत है वह कपोलकल्पित है। स्त्रियो को सुनाने के लिये लिखी कथायें मात्र है।"

किरण हंस पड़ी। हसते हुए बोली, "ऐसी अवस्था में मुझको श्रीमान् जी से कुछ नहीं कहना। मेरी तो भगवान् से यही प्रार्थना है कि अवन्ति को बचाये।"

"भगवान्? देखा है देवी जी ने?"

"हां।"

"मुझ को दिखाओ तो मानूं।"

"यत्न करिये श्रीमान्। उनको देखने का मार्ग अति दुस्तर है। शायद क्रीतदासी बन उत्ताल बाबा से शिक्षा पाने की आवश्यकता है।"

श्वेतांग हंस पड़ा। इस पर कुमारदेव ने बात बदल दी और कहा, "हम समझते हैं कि हमारा राज्याभिषेक आप दोनों के विपुल प्रयत्न से ही सम्पन्न होनेवाला है। इस कारण आप की सेवाओं का पुरस्कार हम इकट्ठा ही राज्याभिषेक के पश्चात् देंगे। महाराज पालकदेव के बंदीगृह से मुक्ति का प्रश्न भी उस शुभ अवसर के पीछे ही विचार करेंगे।"

स्वार्थ का रूप—वासना

: १ :

मल्ल राज्य की राजधानी पावा, उज्जयिनी से बहुत ही घटिया थी। राजमार्ग तो विशाल और पक्के थे परन्तु मार्ग तटों पर गृह प्राय. कच्चे और एक छत्ते ही थे। ऊंची-ऊंची अटारिया, जिनकी उज्जयिनी में भरमार थी, यहां देखने को आंखें तरसती थीं।

देश में पहाड़ बहुत थे। ऊंची नीची घाटिया थीं जिन पर हरियाली का चिन्ह भी नहीं था। वनौषधियों के अतिरिक्त वहा और कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता था। मैदानो में क्षेत्र थे तो सिंचाई का प्रबन्ध नही था। वर्षा जितना कुछ जल देती थी, उस से जो कुछ उपज हो सकती थी, होती थी और उतनी जनता का पेट भरने के लिये पर्याप्त नही होती थी। व्यापार न के बराबर था। परिणाम यह था कि देश निर्धन था और निर्धन देश की राजधानी जैसी होनी चाहिये थी, वैसी पावा नगरी थी।

जब कभी यहां के राज्याधिकारियों को धन का अभाव प्रतीत होता था, तो देश भर के योद्धाओं का सम्मेलन बुला उसमें धन-वृद्धि की आवश्यकता पर विचार करते थे। ऐसे सम्मेलनों में, जिसमें केवल सैनिक ही सम्मिलित हों, धन उपार्जन की विधियों में सर्वश्रेष्ठ विधि पड़ोसी देशो पर आक्रमण करना, स्वीकार होता था। इस देश में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा न के बराबर थी। प्रायः विद्वान् और बुद्धिमान् लोग साधन विहीन होने के कारण देश छोड़ पड़ोसी देशो में चले गये थे। सारे देश में क्षत्रिय वर्ण के लोग ही प्रधान थे और शेष शूद्र थे जो इन क्षत्रियों की सेवा-शुश्रूषा करते थे। मान और आत्माभिमान दो प्रबल प्रेरणायें थी जिनके आधार पर देश में जीवन चलता था। किंचिन्मात्र सी बात पर

द्वंदयुद्ध हो जाते थे और दस बीस प्राणियों की हत्या हो जानी साधारण सी घटना मानी जाती थी।

सैनिकों की गोष्ठियों में धनाभाव को दूर करने के उपायों के परिणाम-स्वरूप ही अवन्ति पर आक्रमणों का आयोजन हुआ था। तीन वार आक्रमण करने पर, केवल देश की जनसंख्या कम हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी परिणाम नहीं निकला था। इस पर भी देश की न्यूनताओं की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था।

देश मे गणतंत्रीय राज्य था। उन परिवारों के प्रतिनिधि, जिनके लोग सेना में भर्ती होते थे, एक गण सभा बनाते थे और इस सभा के सभासद् अपने में से एक को गणपति चुनते थे। यह निर्वाचन प्रति तीन वर्ष के पश्चात् होता था।

गण-सभा के सदस्यों को वर्ष में पॉच सौ रजत और गणपति को डेढ़ सहस्र रजत मिलते थे। इसी कारण इन सभाओं में निर्वाचित होने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति में बनी रहती थी।

ब्राह्मण तथा वैश्यो की संख्या देश मे बहुत कम थी। इनके तथा शूद्रो के प्रतिनिधि गण सभा में नहीं जाते थे। गण-सभा मे क्षत्रियो का ही प्रभुत्व था और वे गण-सभा में आने के लिये परस्पर लड़ते-झगड़ते थे। इस पर भी देश की रक्षा के लिये सब एक हो जाते थे।

अवन्ति से तीन बार पराजित होने पर मल्ल सेनानियो के मस्तिष्क में हलचल मची थी। मल्लो को अवन्ति की सीमा से बाहर कर जब पालक-देव ने तीसरी बार भी अपनी सेना वापिस बुला ली तो इस पर गण-सभा में भारी विवाद चल पड़ा।

गणपति इन्द्रजीत ने सभासदो से कहा, "विचारणीय बात तो यह है कि पालकदेव ने हमको तीन बार पराजित किया, परन्तु तीनों बार ही अपने सैनिको को हमारे देश में घुसने नही दिया।"

इस व्यवहार का कारण अपनी बुद्धि से सब ने दिया। परन्तु गण-सभा सामूहिक रूप में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकी। इस विवाद का एक

परिणाम यह हुआ कि एक लम्बे काल के लिये अवन्ति पर आक्रमण का विचार स्थगित कर दिया गया। इससे पहिले निरंतर तीन वर्ष तक मार्गशीर्ष मास में आक्रमण कर दिया जाता था। देश भर में कोई क्षत्रिय परिवार ऐसा नही रहा था जिसको एक-दो प्राणी इन युद्धो में बलि न देने पडे हों।

पिछले युद्धो में पराजय का एक परिणाम यह भी हुआ कि राज्य के नागरिक अवन्ति की प्रजा को श्रद्धा-भक्ति से देखने लगे। दोनो राज्यो में लोग अधिक और अधिक आने जाने लगे। लोग घूमने, दृश्य देखने और अपने विजेताओ को समीप से देखने जाते थे और वहा के पद्मा के किनारे के दृश्यों और भव्य भवनो को देख तृप्ति अनुभव कर लौटते थे।

अवन्ति में हो रहे राज्य परिवार सम्बन्धी परिवर्तनो का प्रभाव भी पावा में हो रहा था। जब पालकदेव और महामात्य सुदर्शन रात भर में ही अदृश्य होगये, तो एक बार तो पावा के लोग प्रसन्नता से तरगित हो उठे, परन्तु यह जान कि महाराज पालकदेव के स्थान पर सेनापति कुमारदेव ने राज्य हस्तगत किया है तो उनकी वह प्रसन्नता विलुप्त होगयी।

इस परिवर्तन पर गण-सभा में भी गरमागरम विवाद हुआ। गण-सभा का एक सदस्य देवयात था। वह दो बार गणपति बनने का यत्न कर चुका था, परन्तु दोनो बार ही कुछ सदस्यो के मतो की कमी से पराजित हो चुका था। इन पराजयो के कारण वह इन्द्रजीत का घोर विरोधी होगया था और उसकी प्रत्येक बात का विरोध करना उसने अपना काम बना रखा था। अवन्ति में राज्य परिवर्तन पर हुए विवाद में जब इन्द्रमणि ने इस पर चिन्ता प्रकट की, तो उसने प्रसन्नता दिखाई। उसका विचार था कि इस परिवर्तन के कारण अवन्ति में दुर्बलता आ गयी होगी। इस कारण समय आ गया है कि उस पर आक्रमण कर अपनी पिछली पराजयो का बदला चुका लिया जाये।

इन्द्रमणि ने समझाया कि पालकदेव के पश्चात् उसके पुत्र के स्थान सेनापति कुमारदेव राज्य कर रहा है और उसके राज्य के कार-भार को अपने ऊपर ले लेने को, न केवल सेना ने पसन्द किया है, प्रत्युत जनता ने

भी सराहा है । इससे अवन्ति दुर्बल नहीं हुई, प्रत्युत सुदृढ हुई है ।"

इस पर भी दैवयात और उसके साथियों का विरोध जारी रहा। इन्द्रमणि ने दैवयात के साथियो को प्रसन्न करने के लिये अपनी बात को कुछ अ.शों में बदल दिया। उसने कहा, "हमारे गुप्तचरो ने यह सूचना भेजी है कि बड़े भाई को छोटे भाई ने ही बंदी बनाया है । इस सूचना से, मेरी सम्मति में, स्थिति में कुछ अंतर आ गया है । इस प्रकार दोनों भाइयो में झगड़ा खड़ा हो जाने से दोनो के सहयोगी परस्पर विरोध करेंगे। इसके परिणामस्वरूप राज्य दुर्बल होगा। इस कारण अभी आक्रमण करने के प्रस्ताव को मै स्वीकार तो करता हूं परन्नु इस शर्त पर कि अवसर की प्रतीक्षा की जावे ।"

इस पर दैवयात न कहा, "इस समाचार से तो मेरा विचार भी बदल गया है । मैं समझता हूं कि दोनो भाइयो में पालकदेव अधिक भद्र था। उसके काल में आक्रमण करने से तो उसने हमारे देश में अपने सैनिकों को आने नहीं दिया। कुमार देव से हम यह आशा नही कर सकते। इस कारण हमें मैत्री रखने का यत्न करना चाहिये।"

इस प्रकार गण-सभा में परस्पर विरोध चलता रहता था। जब गणपति इन्द्रमणि एक पक्ष लेता तो दैवयात दूसरा पक्ष ले लेता। श्वेतांग ने राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही मल्ल राज्य से मैत्री सम्बन्ध उत्पन्न करने के लिये यत्न आरम्भ कर दिया। पत्रों में मल्ल राज्य के गणपति को इस बात में अपने अनुकूल पा उसने अपना एक विश्वस्त दूत बातचीत करने के लिये पावा भेज दिया। इन्द्रमणी ने गण-सभा में प्रश्न उपस्थित करने से पूर्व दैवयात को अपने अनुकूल करने के लिये उसको अपने घर पर आमन्त्रित कर, उससे पृथक में बातचीत कर लेनी उचित समझी।

उसने दैवयात से अति विनम्र भाव में कहा, "मित्र ! मै तुम्हारे विरोध से कभी भी रुष्ट नहीं होता। मैं जानता हू कि यदि तुम गणपति के पद पर निर्वाचित हो जाते तो शायद मै भी यही करता जो कुछ तुम करते हो। अर्थात् मैं भी तुम्हारी प्रत्येक बात का विरोध कर तुम्हारे कामो में

रुकावट डालने का यत्न करता। परन्तु मैं एक बात तुम से कहना चाहता हूं कि अवन्ति का राजदूत यहां पर आया हुआ है। इस कारण उसकी उपस्थिति में हमको परस्पर ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि जिससे अपने मत भेद का पता उसको न चले। वहां तो गणराज्य है नहीं और वहां के लोग हमारे इस प्रकार के मतभेदो का अर्थ नहीं समझते। हम दोनो को इस विदेशी के साथ ऐसे ढंग से व्यवहार करना चाहिये जिससे उसके मन में यह प्रभाव पडे कि हम उनसे बातचीत करने में एक है। इस कारण मेरा यह प्रस्ताव है कि इस दूत के साथ बातचीत करने के लिये तुम ही हमारे नेता बनो।"

यद्यपि इससे दैवयात को कुछ लाभ नहीं हो सकता था, अर्थात् वह इन्द्रमणि को नीचा नहीं दिखा सकता था, तो भी चौधरी बनने की लालसा से उसने इन्द्रमणी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अगले दिन दैवयात पूर्ण अधिकारो से युक्त हो अवन्ति के राजदूत से बातचीत करने के लिये उसके निवास-स्थान पर जा पहुंचा।

अवन्ति से राजदूत बन कर सेठ राघव, जिसने कुमार को राजगद्दी दिलवाने में उसकी भारी सहायता की थी, आया था। श्वेताग के प्रबन्ध के अनुसार सेठ राघव अपने साथ बहुत दास दासियां लाया था। जिस पंथागार में उसके ठहरने का प्रबन्ध किया गया था, वह एक बहुत बडा गृह था। उसमें कई आगार थे और अवन्ति से आये हुए राजदूत के साथियो की आवभगत के लिये पावा की ओर से बहुत से नौकर चाकर भेजे गये थे।

दैवयात जब आया तो सेठ राघव ने गृह से बाहर आ बहुत आदर से उसका स्वागत किया। दैवयात सेठ के सभ्य व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। सेठ दैवयात से गले मिला और उसका दोनों हाथो से स्वागत कर भीतर भेंट करने के आगार में ले गया। जब वे जाकर बैठे तो सेठ ने जल पान के लिये निमंत्रण दे दिया। उसने पूछा, "आप कभी हमारे यहां आये है अथवा नहीं ?"

"नहीं सेठ जी ! मुझ को आप के यहां जाने का सौभाग्य अभी प्राप्त नहीं हुआ ।"

"तो आप एक वार आइये और देखिये कि हमारे महामात्य जी ने कुछ ही महीनों में क्या चमत्कार कर दिखाया है । राज्य भर में एक मंत्र फूँक दिया प्रतीत होता है । सब लोग उत्साह और लगन से अपने-अपने व्यवसायो में लग गये हैं । जहां पूर्व महाराज के काल में लोग नित्य हवन-यज्ञ में सैकड़ों मन घी फूँक देते थे, सामूहिक रूप में लाखो घटे नित्य पूजा-पाठ में गंवाते थे और खीर खा-खा कर मोटे हुए ब्राह्मणो को सैकडो मन नित्य धन धान्य दक्षिणा में देते थे, वहां अब प्रातः से सायकाल तक अपने काम-काज में लीन रहते हुए, विपुल धन पैदा कर उसको सायं काल नाच-रंग में व्यय कर सुख और मन की शान्ति उपलब्ध करते हैं ।

"कर्मचारी अधिक काल तक काम करते हैं । इससे अधिक धन उपार्जन होता है और फिर राज्य को अधिक कर प्राप्त होता है । इस अधिक कर से हमने नगर को अधिक विशाल और सुन्दर बना दिया है । इससे सेना में वृद्धि हुई है और लोगों के मनोरंजन के साधनों में वृद्धि हुई है । परिणाम यह हुआ है कि जनता अपने को अति सुखी और प्रसन्न अनुभव करती है । पूर्व महाराज को और उसके काल को वह भूल गयी है ।"

दैवयात आवाक् इस कथा को सुनता रहा । सेठ राघव ने अपनी बात चालू रखी । उसने कहा, "यह तो आप जब स्वयं आकर अपनी आंखो से देखेंगे, तब ही समझ सकेंगे । इस समय तो मेरा यह कहना है कि हम से मैत्री और व्यापारिक सम्बन्ध उत्पन्न करने से वहां की सुख-सुविधा आपके यहा भी लायी जा सकती है । मैं अपने यहां की कुछ विभूतियो को अपने साथ लाया हू । मेरी इच्छा है कि आप उनका भोग करिये और स्वयं अनुमान लगाइये ।"

सेठ जी के संकेत से भोजन परसा जाने लगा । अवन्ति की श्रेष्ठ सुन्दरियां खाने पीने का सामान ला-लाकर परसने लगीं । दैवयात न केवल भोजन के स्वाद से प्रभावित हुआ, प्रत्युत परसने वाली सुन्दरियों के

सौन्दर्य पर भी मुग्ध हो गया। इस पर उसने जब सुवासित मद्य का सेवन किया तो प्रत्येक वस्तु का सौन्दर्य और स्वाद उसकी दृष्टि में दुगुना हो गया। वह अवन्ति की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हुआ घर लौटा।

इन्द्रमणि ने सेठ राघव और उसके साथ आये कुछ विशिष्ट व्यक्तियो को सम्मानित करने के लिये एक भोज अपने गृह पर भी दिया। इस भोज पर उसने दैवयात और गण-सभा के कुछ अन्य सदस्यो को भी आमन्त्रित किया। दैवयात ने अनुभव किया कि जो कुछ परदेस में सेठ राघव कर सका था उसका अश मात्र भी इन्द्रमणि अपने गृह पर बैठा हुआ नहीं कर पाया।

इसके पश्चात् सेठ राघव, दैवयात और इन्द्रमणि में कई बार बात-चीत हुई और इनमें मैत्री-संधि पर वार्तालाप हुआ। एक मास भर की चर्चा के पश्चात् एक मैत्री-पत्र तैयार किया गया और उस पर जहां कुमारदेव के हस्ताक्षर हुए वहा मल्ल राज्य की गणसभा में एक प्रस्ताव से स्वीकृति दे दी गयी।

इस सन्धि के अनुसार अवन्ति राज्य का एक प्रतिनिधि पावा में आकर रहने लगा और मल्ल राज्य का एक दूत उज्जयिनी में जाकर स्थित हुआ। दैवयात न जो कुछ देखा तथा सुना था, उससे उसने उज्जयिनी में राजदूत बन कर जाना स्वीकार कर लिया।

: २ :

यह सत्य था कि एक वर्ष में ही अवन्ति की रूपरेखा ऐसी बदली थी कि इस काल से पूर्व के आये हुए लोग इसे पहिचान नहीं पाते थे। श्वेताग ने ऐसी आर्थिक नीति का अवलम्बन किया था कि देश धन धान्य से भरपूर होगया था। दिन प्रतिदिन कला, कौशल और उद्योग धधो में उन्नति हो रही थी और परिणामस्वरूप अवन्ति का व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। व्यापार की वृद्धि से राज्य-कर की वृद्धि हुई थी और उससे नगरवासियो को अपार सुख-सुविधा मिली थी।

पद्मा नदी के तट पर छोटे-छोटे घाट थे। इन सब घाटों को मिला कर डेढ कोस लम्बा एक घाट बना दिया गया था, जिसके ऊपर एक विशाल चबूतरा और उसके पीछे घास का मैदान था। इसमे सैकडो पुष्प-लता-निकुंज बनवाये गये थे। इस घाट पर सायंकाल सहस्रो की संख्या में नर-नारी भ्रमण करते, नर्तकियो के नाच देखते, गाने वालियो के मनोहर गीत सुनते और मद्य मांस इत्यादि बहुत ही अल्प मूल्य पर खाते थे। यह कार्य-क्रम मध्य रात्री तक चलता और प्रायः लोग अति प्रसन्न और सतुष्ट होकर अपने घरो को जाते थे।

नगर के मार्ग विशाल कर दिये गये, मार्ग तटों पर पेड़ लगवा दिये गये और स्थान स्थान पर बच्चो और युवको के खेलने कूदने के लिये मैदान बनवा दिये गये।

उज्जयिनी में एक संगीताचार्य नटराज प्रद्युम्न रहता था। श्रीमान् पालकदेव के राज्य में उसकी साधारण सी ही मान्यता थी। कुछ घरो की लड़कियाँ उसके पास सगीत और नृत्य सीखने आती थी। कुमारदेव भी अपने बाल्य काल में कुछ काल के लिये उससे संगीत सीखने गया था और जब उसको पता चला कि वह इस कला को सीख नही सकता तो उसने नटराज के यहां जाना छोड़ दिया। इस पर भी नटराज के सुपुत्र प्रमोद से उसकी मैत्री बनी रही।

कुमार जब तीर्थाटन से लौटा तो प्रमोद भी उससे मिलने गया। कुमारदेव के भवन में नर्तकियों की भरमार देख वह घबडाया था। उसने कुमारदेव के सम्मुख तो उसके आचरण पर कोई टिप्पणी नहीं की, परन्तु उसने अपने पिता के पास जाकर पूर्ण वृत्तान्त बताया। इसके कुछ दिन पीछे नटराज भी कुमारदेव से मिलने गया। उसे वहां श्वेतांग के दर्शन होगये।

प्रद्युम्न को अपने जीवन कार्य के कारण नगर की गणिकाओ से संबन्ध आता रहता था और फिर उन गणिकाओं के आगे पीछे-घूमने वालों का भी परिचय था। वह जब श्वेतांग और कुमारदेव से भेंट कर

लौटा तो अपने पुत्र प्रमोद को बुला कर कहने लगा, "बेटा प्रमोद ! इस नगरी में कोई विप्लव आने वाला है। इस विप्लव में भवन, गृह अथवा मन्दिर नहीं गिरेंगे । प्रत्युत इसमें जनता के आचार, विचार तथा व्यवहार में उथल पुथल होने वाली है। यह समय है जब हमको कुछ करना चाहिये । व्यतीत हुई बीसियो पीढ़ियों की निर्धनता धो सकने का अवसर अब मिल सकेगा।"

प्रमोद समझा नहीं । इस कारण उसने प्रश्नभरी दृष्टि से पिता की ओर देख कर पूछा, "पिता जी, ऐसा क्यो होगा ?"

प्रद्युम्न ने गम्भीर हो कहा, "किसी वेश्या का पुत्र राज्य की बागडोर सम्हालने आया है । और वह धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित अथवा सब प्रकार के संकोच छोड़, राज्य सत्ता अपने हाथ में करने पर तुला हुआ है। बड़े-बड़े मठाधारी, पदवियों व उपाधियो से विभूषित और चरित्रवान् तथा ज्ञानवान् अपने आसनो को छोड देंगे। वह समय होगा जब तुम को अपने हाथ रग लेने चाहियें ।"

"यह तो अन्याय हो जावेगा, पिता जी !"

"बेटा ! यह आधी तुम रोक नहीं सकोगे। कुमार देव के स्वभाव को मै जानता हूं। वह उच्छृंखल प्रकृति का तो बचपन से ही है । अब उस उच्छृंखलता में वासना की विष आ मिली है। यह आधी तो आयेगी। इस विनाश में जितना कुछ तुम अपने हाथो में समेट सको समेट लो और फिर जब आधी निकल जावेगी, तो उस समेटे-हुए को पूँजी बना अपना और अन्य अनेकों योग्य अधिकारियो का भला कर देना ।"

प्रमोद पिताजी से इंगित मार्ग को ढूंढने लगा। वह एक दिन कुमार देव से मिलने गया तो श्वेतांग से परिचय पा गया। श्वेताग भी प्रमोद को अपने अनुकूल पा उससे अपना कार्य सिद्ध करने में सहायता लेने की सोचने लगा। तीर्थाटन से लौटने के उपलक्ष में हो रहे नृत्य तथा संगीत प्रतियोगिता में वह प्रबन्धक नियुक्त होगया। यह आयोजन प्रमोद ने अति कुशलता से सम्पन्न किया। इससे कुमार और श्वेताग दोनो प्रसन्न थे।

अभी उत्सव चल ही रहा था कि राज्य में विप्लव होगया। इसके समाचार को सुन प्रद्युम्न ने पुत्र को बुला कर कहा, "देखो प्रमोद! घटनाओं में प्रगति वैसे ही हो रही है जैसी मैं आशा करता था। आज तुम कुमारदेव से मिलने जाओ। एक तो उत्सव के विषय में आगे क्या होगा, जान कर आओ। दूसरे, इस समय कुमारदेव को अनेकों साथियो की आवश्यकता होगी। तुम भी उनमें से एक हो। उससे भेंट करने से तुम विस्मरण नहीं होगे। तुम को भी अवसर मिलेगा, जिससे कार्य कर सकोगे।"

"पर पिता जी, पालकदेव महाराज का क्या हुआ?"

"जब राजा होते हुए वह अपने को सुरक्षित नहीं रख सका, तो तुम उसके लिये चिन्ता कर क्या कर सकोगे?"

प्रमोद महाराज कुमारदेव से मिलने गया और उसको यह जान भारी प्रसन्नता हुई कि उत्सव में हो रहे नृत्य, संगीत तथा अन्य मनोरंजन के कार्य एक मास तक और चलते रहेंगे। प्रमोद को इन सब का प्रबन्ध करने के लिये नियुक्त कर दिया गया।

प्रमोद कुमारदेव से मिल कर घर लौटा तो एक लड़की, जो नटराज की शिष्या थी और जिसका नाम लोला था, नटराज के सम्मुख बैठी रो रही थी। प्रमोद ने उसको देख प्रश्नभरी दृष्टि से अपने पिता की ओर देखा। नटराज ने बताया, "देखो प्रमोद! इस आंधी का प्रथम विनाशकारी परिणाम हमारे सम्मुख आ गया है। इसके पिता पंडित सुखदर्शन गणनाचार्य पकड़ कर किसी अज्ञात स्थान पर ले जाये गये हैं। घर पर सैनिकों ने अधिकार कर लिया है और यह भाग कर यहां आ गयी है।"

प्रमोद को उत्सव के चालू रहने और उसमें मनोरंजन विभाग के अध्यक्ष बने रहने से जो प्रसन्नता हुई थी वह सब विलीन होगयी। यह विनाशकारी परिणाम कुमारदेव के समीप तो प्रकट नहीं थे। यह उसको अति भयंकर रूप में यहां आकर दिखाई दिया।

लोला अभी बारह वर्ष की बालिका मात्र थी और प्रद्युम्न से

बाल्यकाल से शिक्षा पा रही थी। प्रमोद इस बालिका को बहुत पसन्द करता था, क्योंकि वह संगीत और नृत्य कलाओं में अति निपुण थी और साथ ही इसलिये भी कि उसका 'भया प्रमोद' कह कर पुकारना अति मीठा प्रतीत होता था। पिता जी के अन्य शिष्य भी उस को ऐसे ही पुकारते थे, परन्तु जैसा रस, लोला के कहने में होता था, वैसा वह किसी अन्य के कहने में अनुभव नहीं करता था। वह लोला के ऐसा कहने में कारण जानने के लिये कई बार विचार कर चुका था, परन्तु किसी परिणाम पर नहीं पहुंचा था। आज लोला को इस दुःखित अवस्था में देख उसके हृदय में भारी टीस उठी। उसने पूर्ण परिस्थिति को जाना और फिर पिता जी से पूछा, "पिता जी, यह अब कहां रहेगी?"

"हमारे गृह में एक आगार खाली है ही। यह अभी वहां ठहर सकती है। तनिक, अन्य शिष्यों से इसको सुरक्षित रखना चाहिये।"

"यह मैं कर दूंगा पिता जी! चलो लोला! तुम अभी आराम करो। तुम्हारे पिता जी के विषय में पता करूंगा।"

लोला पंडित सुखदर्शन की एकलौती लड़की थी। यह गणित का विद्वान् बहुत कड़ी रीढ़ की हड्डी रखता था। जहां यह धर्मनिष्ठ ब्राह्मण, धर्म पर आरूढ़ हो राजा-महाराजाओ से टक्कर लेने से डरता नहीं था, वहां इसकी मित्रो, सम्बन्धियों से भी कुछ विशेष बनती नहीं थी। यही कारण था कि लोला जब घर से भागी तो वह किसी सम्बन्धी के घर जाने के स्थान गुरु जी के स्थान पर चली आयी। उसके मन में विश्वास था कि प्रमोद भैया सबसे अधिक सहायता कर सकता है।

लोला अष्टाध्यायी का अध्ययन कर रही थी और संगीत तथा नृत्य सीखती थी। जैसी वह इन ललित कलाओं में निपुण थी, वैसे ही वह अपने अध्ययन कार्य में भी बहुत योग्य थी।

प्रमोद जब-जब भी कुमारदेव से मिलने जाता था, वह कान खड़े कर पंडित सुखदर्शन के विषय में जानने का यत्न करता रहता था। श्वेताग से भी वह मिलने जाया करता था। वहां भी वह इस यत्न में

रहता था कि किसी प्रकार लीला के पिता का समाचार प्राप्त करे। इस सतर्कता पर भी उसको अपने ध्येय में सफलता नहीं मिली।

एक दिन, यह कुमारदेव के राज्य-भार अपनाने के लगभग एक वर्ष पीछे की बात है, कुमारदेव ने प्रमोद से कहा, "संगीताचार्य, हमारे भवन में आज नृत्योत्सव हो रहा है। आप उसमें आइये।"

"जैसी आज्ञा हो महाराज! क्या कोई विशेष नर्तकी आयी है?"

"हां। स्थानेश्वर की भैरवी नाम की एक नाचने वाली अपने दल-बल सहित आयी है। हमारा विचार है कि यदि वह और उसके गुरुजी, जो उसके साथ आये हैं, योग्य सिद्ध हुए तो उज्जयिनी में नये बनने वाले कला-भवन के पद पर वे सुशोभित होंगे।"

"यह तो अन्याय हो जावेगा महाराज! हम भी तो आपके सेवक यहां विद्यमान हैं। हमारी योग्यता में यदि कोई त्रुटि हो, तब तो बात दूसरी है।"

कुमारदेव ने हंसते हुए कहा, "प्रमोद भैया, भैरवी की बहुत प्रशंसा सुनी है। यदि तुम उससे प्रतियोगिता करना चाहते हो तो आ जाओ। हम किसी निष्पक्ष व्यक्ति को निर्णायक नियत कर देंगे।"

"यदि आज्ञा हो तो अपने वाद्य इत्यादि और भैरवी से प्रतियोगिता करने के लिये भी किसी को साथ लेता आऊं?"

"कुछ हानि नहीं। पर सुना है कि भैरवी वैशाली, मगध, अंग, वंग, हस्तिनापुर इत्यादि सब बड़े-बड़े देशों में ख्याति प्राप्त कर आयी है।"

"कुछ भय की बात नहीं है, महाराज! आज भवन में प्रतियोगिता हो जावे।"

: ३ :

कुमारदेव के भवन में इस बात की धूम मच गयी कि भारत भर में ख्याति प्राप्त नर्तकी से प्रमोद प्रतियोगिता करेगा। यह समाचार श्वेतांग के पास भी पहुंचा। उसने अपने गुप्तचरों के द्वारा यह भी समाचार पा

लिया था कि भैरवी रेखा के द्वारा महाराज के ज्ञान में लायी गयी है। इससे श्वेतांग कुछ घबराया। वह इस बात का बहुत ध्यान रखता था कि कुमारदेव पर कोई ऐसा प्रभाव डालने वाला न आ जावे, जिससे उसके अधिकारों में किसी प्रकार का अंतर आ जावे। इससे, भवन में उसके ज्ञान के बिना कोई व्यक्ति आकर कुमारदेव से सम्पर्क उत्पन्न करे, उसे पसन्द नहीं था। वह जानता था कि भवन में किरण की बहुत चलती है, इस कारण वह उससे मिलने चल पड़ा।

किरण को अचम्भा नहीं हुआ, जब उसकी सेविका मघीका उसके पास, महामात्य के भेंट करने के लिये आने का समाचार लायी। उसने कहा, "उनको बैठाओ। मै आ रही हूं।"

कुछ विचार कर वह वहा आयी और साधारण आवभगत के पश्चात् कहने लगी, "मै एक प्रहर भर से आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूं। आप आये तो है परन्तु कुछ देर होगयी है।"

"क्यों? क्या बिगड़ गया है ?"

"आप भैरवी के विषय में बात करने आये है न ?"

श्वेतांग किरण के इस अनुमान पर मन ही मन विस्मय करते हुए बोला, "किरण, हो तो तुम एक स्त्री ही न ? तभी इन खेल तमाशो को ही राजकार्य समझती हो।"

"तो आप समझते है कि भैरवी केवल खेल तमाशा करने आ रही है ? यदि आपका ऐसा विचार है तो मैंने भूल की है। हां, तो श्रीमान् बतावें कि किस प्रयोजन से इस दासी के गृह को पवित्र करने का कष्ट किया है ?"

"यदि मै यह कहू कि मैं देवी जी के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर आया हूं, तो ?"

"तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमान् का मन सुलेखा से ऊब गया है। पर वह तो कल रात भी श्रीमान् के शयनागार में सोयी थी।"

श्वेतांग के लिये यह एक और बात, दिल को चोट पहुंचाने वाली हुई।

वह समझता था कि सुलेखा का उसके आगारो मे आना कोई नहीं जानता। सुलेखा रेखा की एक प्रिय दासी थी। वह अभी आयु में बहुत कम थी और सुलेखा को विवाह का वचन देकर महामात्य ने अपनी प्रेमिका बनाया था। जब श्वेतांग को उत्तर न दे कर उसका मुख देखते हुए पाया तो किरण ने अपनी बात चालू रखी और कहा, "इस पर भी मै तो यह जानती हूं कि यह पहिली बार नहीं कि श्रीमान् जी ने एक भोली-भाली बालिका को झूठ बोल कर ठगा हो। छोड़िये इस बात को। मै तो जानती हूं कि आप न तो विवाह के विषय में बातचीत करने आये हैं और न ही आपने सुलेखा से कभी विवाह करना है।"

"तो देवी ही बताने की कृपा करें कि मै किस अर्थ आया हूं ?"

"मैंने तो बताया था, परन्तु श्रीमान् ने कह दिया कि मै भूल कर रही हूं। इस पर तो श्रीमान् ही बता सकते है कि उनका यहां आने में क्या प्रयोजन है।"

"कुछ समय के लिये मे मान ही जाता हूं कि मै भैरवी के विषय में बातचीत करने आया हूं।"

"तो बताइये, क्या चाहते है आप ?"

"तो यह तुम नहीं बताओगी क्या ? जब तुम सुलेखा के विषय में इतना कुछ जानती हो तो भैरवी के विषय में क्या नही जानती ?"

"मेरे जानने की बात छोड़िये। आप उसके विषय में क्या कहने आये है ?"

"प्रमोद ने उससे प्रतियोगिता के लिये चुनौती दी है ?"

"हां, मै जानती हूं।"

"जीतने वाले को कलाभवन की अध्यक्षता मिलेगी।"

"ठीक है। ऐसा होना ही चाहिये।"

"देवी जी क्या यह नही जानतीं कि कलाभवन का अध्यक्ष दस वर्ष में यहां के महाराज से भी अधिक शक्तिशाली हो जावेगा।"

"नहीं। मै इतना कुछ और इतनी दूर की बात तो नहीं जान,

सकती। दस वर्ष तो एक बहुत ही लम्बा काल है। इस काल तक कौन जियेगा और कौन मरेगा, कहना कठिन है।"

"मैं तो जीना चाहता हूं, किरण देवी!"

"तो आप इतनी दूर की सोच सकते हैं। पर मैं तो कल की ही सोच सकती हूं।"

"तो तुम कल की बात बताओ। हम दूर की पूछते ही नहीं।"

"तो सुनिये श्रीमान्। जिस देश की भैरवी रहने वाली है, कला-भवन उस देश वालों का हो जावेगा और उनके षड्यंत्र का केन्द्र बन जावेगा। वहां उस देश की नर्तकियां, उस देश के वाद्य बजाने वाले और उस देश के शिक्षक आवेंगे और वे सब के सब उस देश के गुप्तचर होंगे।"

"तो वह किस देश की है?"

"यह मालूम करना आपका काम है।"

"तो तुम नहीं जानती, किरण?"

"पर मैं महामात्य नहीं हूं। आपके पास पूर्ण राज्य के साधन हैं। आप उसका पीछा करवाइये।"

"पर यह तो आज रात ही निर्णय होने वाला है कि कलाभवन का कौन अध्यक्ष बने।"

"तो इस निर्णय को रोकने का यत्न करिये।"

श्वेतांग पीतवर्ण हो, बिना एक भी शब्द और कहे, किरण के आगार से निकल गया। वह इस सूचना के पा जाने से एक क्षण भी व्यर्थ गंवाना नहीं चाहता था। वह सीधा कुमारदेव से मिलने चला गया। वहां जब महाराज से मिला तो उनको चिन्तित देख पूछने लगा, "क्या बात है, महाराज?"

"तो आपने अभी सुना नहीं कि रात यहां संगीत और नृत्य की प्रतियोगिता होने वाली है?"

"महाराज, यह तो पता चला है। परन्तु मैं तो यह पूछ रहा था कि महाराज की चिन्ता का कारण क्या है?"

"हमें इस प्रतियोगिता में निष्पक्ष निर्णायक चाहिये। हमारा विचार था कि नट-राज को इस कार्य के लिये बुला लेंगे, परन्तु अब तो उसके लड़के के साथ प्रतियोगिता होगी। इस कारण वह अब निष्पक्ष निर्णय कैसे दे सकेगा?"

"हां, यह तो एक भारी चिन्ता की बात है। साथ ही यदि नगर में से किसी को बुलाया गया तो प्रथम तो कोई इतना योग्य क्या मिलेगा जो इन प्रतियोगियो की परीक्षा कर सके और दूसरे नटराज के सब शिष्य ही तो होगे!"

"इसीलिये चिन्ता कर रहा हूं महामात्य! कोई मार्ग बताओ।"

"मार्ग तो है। यदि आप मान जावें तो एक व्यक्ति है, जिसके विषय में कोई नहीं कह सकता कि उसने किसी के साथ पक्षपात किया है। पर वह व्यक्ति केवल आपके कहने पर ही मध्यस्थ का कार्य करेगा।"

"तो बताइये, उसको भी सभा में बुला लें।"

"मेरा अभिप्राय किरण देवी से है। वह नटराज को शिष्या नहीं है। उसके विषय में कोई नहीं कह सकता कि उसका भैरवी से द्वेष है, अथवा वह प्रमोद के साथ कोई लगाव रखती होगी।"

"यह तो ठीक है महामात्य! परन्तु वह संगीत के विषय में कुछ जानती भी होगी क्या?"

"महाराज, मैं जानता हूं कि वह इस विद्या में बहुत ही निपुण है।"

कुमार खिलखिला कर हँस पड़ा। पश्चात् कुछ विचार कर कहने लगा, "बहुत अच्छी बात है। कम से कम किसी को यह कहने का तो अवसर नहीं मिलेगा कि किसी से अन्याय हुआ है।"

कुमार ने किरण को बुला भेजा। जब वह आयी तो उसको इस प्रतियोगिता में मध्यस्थ बनने को कहा गया।

किरण ने अचम्भा प्रकट कर पूछा, "महाराज! आपको किसने कहा है कि मैं इस विद्या में कुछ जानती हूं?"

"महामात्य जी ने," कुमारदेव ने कहा।

"ऐसा प्रतीत होता है कि वे सारा संसार मेरा शत्रु बना कर रहेंगे।"

"पर तुम तो निष्पक्ष रह कर निर्णय दोगी। फिर क्यों तुम्हारा कोई शत्रु बनेगा ?"

"महाराज ! आप तो सब कुछ समझते हैं। भवन में कोई है जिसने भैरवी का नाम आपके कर्णगोचर किया है। यदि कहीं मेरा निर्णय उसके विरुद्ध होगया तो वह मेरा शत्रु हो जावेगा।"

कुमार किरण की बात सुन कर विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। महाराज को चुप देख किरण ने कहा, "अतएव महाराज की भारी कृपा होगी यदि मुझ को इस कार्य से मुक्त कर दिया जावे।"

"नहीं !" कुमार ने दृढता से कहा, "मैं चाहता हूं कि कलाभवन के अध्यक्ष पद के लिये किसी योग्य व्यक्ति का निर्वाचन हो। चाहे किसी ने भी भैरवी का नाम मुझको बताया हो, मैं इस विषय में निष्पक्ष निर्णय चाहता हूँ।"

"मैं तो महाराज की क्रीतदासी हूं। आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने की क्षमता नहीं रखती। इस पर भी इतना तो निवेदन कर देना चाहती हूं कि दूसरी बार विष दिये जाने पर बच सकना असम्भव है।"

कुमारदेव का मुख विवर्ण हो गया। भय से नहीं, प्रत्युत क्रोध से। वर्षों सेना में कार्य करने के कारण वह किसी भी परिस्थिति में भयभीत नहीं होता था। उसके क्रोध का कारण यह था कि उसके भवन में ऐसे तत्व, जो दूसरों को विष दे कर मार्ग से दूर करने का विचार रखते हों, उसको असह्य हो उठे थे।

कुछ काल तक विचार कर कुमारदेव ने कहा, "किरण देवी ! हमारी आज्ञा है कि आज की संगीत और नृत्य की प्रतियोगिता में तुम निर्णायक का कार्य करोगी। हम चाहते हैं कि निष्पक्षता से योग्य व्यक्ति का, जो हमारे कलाभवन की अध्यक्षता करने के योग्य हो, निर्वाचन हो।"

किरण की नियुक्ति गुप्त रखी गयी। सायंकाल के भोजन के पश्चात् भवन के एक आगार में कुमारदेव, रेखा, किरण और कुछ अन्य

दास-दासियां अपने-अपने योग्य आसनो पर बैठ गयी। आगार के एक पक्ष में नर्तकी भैरवी और उसके दल के लोग, अपने वीणा इत्यादि यंत्रों के साथ बैठे थे। दूसरी ओर नटराज प्रद्युम्न, प्रमोद, लोला और मृदंग इत्यादि बजाने वाले बैठे थे। भवन के कुछ अन्य विशेष व्यक्ति भवन के चौथे कक्ष में, कुमारदेव के सामने भूमि पर बैठे थे। इस प्रकार जब सब अपने-अपने स्थान पर बैठ गये तो कुमारदेव ने प्रतियोगिता का उद्घाटन कर दिया।

कुमारदेव ने कहा, "श्रीमती भैरवी देवी जी की ख्याति कई मास से सुन रहा हूं। जब हमको विदित हुआ कि श्रीमती जी मल्ल राज्य से यहां पधारी है तो हमने उन की कला के दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की। श्रीमती जी ने हमारी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन दिया और आज यहां आ कर हमको अनुगृहीत किया है।

"इस समय हमारे मन में एक और विचार भी आया है कि प्रमोद जी की योग्यता से भैरवी जी की तुलना हो जाये, जिससे हमारे कलाभवन के अध्यक्ष-पद के लिये योग्य कलाकार का भी निर्वाचन हो जावे। कला-भवन के अध्यक्ष व्यक्ति को दस सहस्र स्वर्ण मुद्रा वार्षिक मिला करेंगी और कलाभवन पर एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा प्रति वर्ष व्यय किया जावेगा।

"इस प्रतियोगिता में मध्यस्थ के रूप में काम करने के लिये हम किरण-देवी को नियुक्त करते है।"

किरण जो महाराज के चरणो में बैठी थी, कृतज्ञता से महाराज के मुख की ओर देख रही थी। रेखा भी महाराज के चरणों में बैठी थी। किरण का नाम मध्यस्थ के रूप में सुन उसके मस्तक पर त्योरी चढ़ गयी। उसने महाराज को अपने समीप खेंच कर कान में कहा, "महाराज! मुझको संदेह है कि न्याय होगा!"

"क्यों?"

"किरण संगीत और नृत्य के विषय में क्या जानती है?"

"तो पहिले किरण की ही परीक्षा हो जावे।"

"हां, महाराज !" रेखा ने आग्रहपूर्वक कहा।

उत्तर किरण ने दिया, "महाराज! मैं साथ ही साथ अपनी परीक्षा भी दूंगी। इन लोगो की समालोचना, जो मैं करूंगी, उससे ही यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि मै इस विद्या में इन लोगो से भी अधिक जानती हूं अथवा नहीं।"

किरण के इस दावे से प्रमोद आश्चर्य में मुख देखता रह गया। भैरवी ने नाक चढ़ा कर कहा, "महारानी जी! बीस वर्ष तक गुरु-जनो के चरणों में बैठ कर उनकी सेवा की है।"

"आपका कहना सत्य ही होगा। इससे मेरे ज्ञान की क्षुद्रता सिद्ध नहीं होती। आप आरम्भ करिये और फिर देखिये।"

रेखा इससे असंतुष्ट थी और अपना रोष प्रकट करने ही वाली थी कि महाराज ने कह दिया, "कुछ भी हो आज तो किरण ही मध्यस्थ का कार्य करेगी। फिर हम भी तो यहां बैठे हैं। यदि देवी जी का निर्णय ठीक न हुआ तो हम देख लेंगे।"

इस बात ने सबका मुख बंद कर दिया। अब भैरवी के समीप बैठे एक वृद्ध ने खड़े होकर निवेदन किया, "महाराज! भैरवी मेरी लड़की है और शिष्या भी। कला-भवन की अध्यक्षता के लिये प्रार्थी मैं हूं। भैरवी उस योग्यता का एक उदाहरण है जो मै अपने विद्यार्थियो को दे सकता हूं। अध्यक्षता का कार्य करने की योग्यता तो मुझ में देखनी चाहिये। वैसे मैं अपनी कला में प्रवीणता की परीक्षा भी दे सकता हूँ।"

इसका उत्तर अब किरण ने ही दे दिया। उसने पूछा, "आपका शुभ नाम और पूर्व परिचय क्या है ?"

"मैं कलिंग देश का रहने वाला हूं। पंडित वह्लिक मेरा नाम है। एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हो संगीत, नृत्य कला में प्रवीण होने पर देश-विदेश में घूम-घूम कर कलाओ में अधिक और अधिक ज्ञान उपार्जन करता रहा हूं।"

"यह ठीक है। प्रमोदकुमार और आपकी योग्यता की परीक्षा हो

जावेगी। अभी तो मैं यह चाहती हूं कि भैरवी देवी मंगलाचरण करें। पश्चात् प्रमोद जी स्वयं अथवा उनका कोई शिष्य भी मंगलाचरण करेगा।"

भैरवी ने कल्याण में गाया।

"वन्देऽरविन्दनयनाम्बुदाभ कमनीय मूर्त्तिधर पद्मनाभ।"

इसमें संदेह नहीं था कि भैरवी के स्वर में अलौकिक माधुर्य था। वह राग के उतार-चढ़ाव और हेर-फेर से भी भली-भांति परिचित प्रतीत होती थी। स्वर-ताल-लय का ज्ञान उसको यथार्थ था। उसके रूप-रंग और हावभाव में भी आकर्षण था। पलथी मारे, हाथ जोड़ आंखें मूंदें जब वह यह मंगलाचरण कर रही थी और सहज भाव में ही स्वर और ताल में संगीत ठीक बैठता जाता था तो नट-राज प्रद्युम्न के मुख से भी "साधु साधु" के प्रशंसात्मक वाक्य निकल रहे थे।

भैरवी गा रही थी।

"कोदंड कला कौतिक निधान पाखंड खंडन गरुड़यान।
कल्याण कोल करुणावतार कल्याण कमठ कृत कर्णधार॥
वन्देऽरविन्द.....

उत्तरोत्तर स्वर चढ़ता जाता था और पूर्ण आगार स्वर तरंगों से कम्पित होने लगा था। वह गा रही थी।

"देवगण पूज्य पाद विभ्राज्यमान विस्मित विषाद।
वदेऽरविन्द ....!"

जब भैरवी ने 'वंदे' कह कर शीश झुकाया तो सब के मुख से वाह-वाह निकल गया।

श्वेताग ने रेखा के मुख पर देखा। वह प्रशंसा करने वालों में सबसे आगे थी और बहुत गर्व से कह रही थी, "देवी! सत्य ही तुमने हमारी आशाओं से भी अधिक कर दिखाया है!"

किरण देवी के मुख पर भी प्रसन्नता थी और वह प्रशंसात्मक दृष्टि से भैरवी की ओर देख रही थी। भैरवी की प्रशंसा करने वालो में प्रद्युम्न किसी से पीछे नहीं था। उसने एक पुष्पमाला ली और भैरवी के गले में डाल

दी। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उस दिन विजय भैरवी की रहेगी। रे ा ने कह भी दिया, "प्रतियोगिता तो हो चुकी। अब तो समय व्यर्थ गंवाने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं।"

इस पर प्रमोद ने कहा, "महाराज ! गुण की निन्दा करने वाला न तो इस लोक में और न ही परलोक में शान्ति पाता है । इस कारण हम भैरवी जी की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । परन्तु महाराज ! इसका अर्थ यह नहीं कि संसार में भैरवी जी अंतिम बात हो गयीं। यदि आज्ञा हो तो हम भी अपनी एक शिष्या, जो केवल बारह वर्ष की आयु रखती है, उपस्थित करें।"

इतना कह प्रमोद ने लोला को आगे आकर मंगलाचरण करने के लिये कहा। लोला को देख सब हंस पड़े। रेखा हंसने में सबसे आगे थी। परन्तु किरण ने सबको रोक कर कहा "मैं समझती हूं कि यह बालिका बहुत ही न्यून अवस्था की है । यदि हम हंसेंगे तो यह घबड़ा उठेगी। यह फिर अन्याय हो जावेगा । हम को शान्ति से सुनना चाहिये ।"

इस पर सब चुप कर गये । लोला ने स्वर भरना आरम्भ कर दिया। प्रमोद वीणा बजा रहा था। मृदंग बजाने वाले का नाम गजानन था। लोला सब से आगे बैठी थी। उसके हाथो में छोटी-छोटी करतालें थीं। जब उसने आलाप भरना आरम्भ किया तो श्रोतागणो को पता लगने लगा कि वह बालिका हंसी का पात्र नहीं है । न तो स्वर-लय में कोई दोष था और न ही मिठास अथवा लोच में किसी प्रकार की कमी थी । स्वर बारीक अवश्य था परन्तु उसमें हृदय में चुभ जाने वाली उग्रता थी। लोला का आलाप जब तीव्र सप्तक तक पहुंचा तो कानो में चुभने वाला होने के स्थान पर, चान्-ी की घंटियों के समान बजने लगा । आलाप के पश्चात् लोला ने गाया।

"हे मां !
वन्दना करूँ। अर्चना करूँ।"

बाल्यावस्था में मां की वन्दना में भावुकता का आ जाना स्वाभाविक

ही था। इस पर स्वर में कोमलता अपना रंग पृथक् जमा रही थी। उसने गाया,

"जग जननी सकल सुख कारिणी
सदा विपुल वैभव प्रसारिणी।
अरपूँ मन-सुमन गाऊँ गुण गान।
परम करुणामयी जननी करो कृपा
प्रेम पीयूष का हम करें पान॥
वंदना करूँ अर्चना करूँ। हे मां...."

इसके साथ जब तानालाप आरम्भ हुआ तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि सागर में तरंगें उठने लगी हैं और वे तरंगें श्रोतागणो के हृदय रूपी तटो को स्पन्दित कर रही हैं। प्रत्येक सुनने वाला यह अनुभव करने लगा था कि स्वर लहरी उसके मन को थपकियाँ दे रही है। दूर सागर में कहीं आंधी उठ रही प्रतीत हो रही थी और उससे उठ रही तरंगें तट पर छप-छप कर टकरा रही थीं।

जहां भैरवी के गायन से वाह-वाह की ध्वनि अनायास मुख से निकल पड़ी थी वहां लोला की स्वर लहरी से हृदय पर मंत्र फूंकने का सा प्रभाव हुआ था। इससे मन विचार और चिरविस्मृत स्मृतियो में विचरने लगा था। आलाप और तानों का भाव भी करुणाजनक तथा विचारोत्पादक था। जब वह गाती थी, "हे मां वन्दना करूं!...." तब उसका स्वर हृदय को स्पर्ष करता हुआ ऐसे निकल जाता था मानो मां प्यार देती हुई चली गयी है।

किरण के मन में अपनी मां की स्मृति जाग उठी। दूर अतीत काल में एक अंधेरे से गृह में एक स्त्री उसको गोदी में लेकर थपकियां देती हुई सुलाया करती थी। उस स्त्री की धुंधली सी रूप रेखा स्मरण आ रही थी। उसको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि किसी योग्य कलाकार ने चित्र बनाया था, परन्तु धूल पड़ जाने से और समय व्यतीत हो जाने से रंग-रोगन उड़ सा गया हो। फिर उसको वह समय याद आया जब उसकी मां उसको उंगली

पकड़ाये हुए अंधेरे मकान से बाहर लायी और उत्ताल बाबा को उंगली पकड़ा अवाक् मुख खड़ी रह गयी। उत्ताल बाबा ने उसको कहा था, "किरण बेटी! मां को वन्दना करो।"

लोला गा रही थी, "हे मां! वंदना करूं, अर्चना करूं।"

किरण की आंखें सजल हो उठीं। सब बैठे हुओ ने देखा कि किरण ने साड़ी के आंचल से कपोलो पर ढुलक रहे आंसुओ को पूंछा है। इस पर भी किसी ने पूछा नहीं। सब के मन में लगभग वैसे ही उद्गार उठ रहे थे।

लोला और भैरवी का संगीत और नृत्य मध्य रात्रि तक चलता रहा। जब भवन की छत पर लगे घड़ियाल ने मध्य रात्रि का घंटा बजाया तो सभा विसर्जित हो गयी। कलाकारों को पारितोषिक दे दिया गया। जब लोला उपहार पाने आयी तो किरण ने उसको प्यार से पास बैठा कर पूछा, "कहां रहती हो लोला?"

"प्रमोद भैया के घर में।"

"क्या नाम है तुम्हारी मां का?"

"पता नहीं। बाबा से कभी पूछा नहीं था।"

"तो अब वह नहीं है क्या?"

"मैंने उनको देखा नहीं।"

"तुम्हारे बाबा का क्या नाम है?"

"बाबा।"

किरण और महाराज कुमारदेव, जो उसकी बातें सुन रहे थे, हंस पड़े।

"कहा हैं वे?"

"भैया के पास छोड़ चले गये हैं।"

इतना प्रमोद ने सिखा रखा था। जब किरण लोला का परिचय प्राप्त कर रही थी, कुमारदेव समीप खड़ा सुन रहा था। वह लोला की भोली-भोली बातो पर मुग्ध हो रहा था। प्रमोद को भय लग रहा था कि

लोला अपने पिता के विषय में कुछ कह न बैठे । इस कारण उसने किरण से कहा, "श्रीमती जी ! आज्ञा दें, तो चलें ।"

इस पर कुमारदेव का ध्यान भैरवी की ओर गया । वह श्वेतांग से बातें कर रही थी । कुमारदेव जब उसके पास गया तो उसनें पूछा, "महाराज ! अध्यक्ष-पद के विषय में कब तक निर्णय हो जावेगा ?"

"कल सायंकाल तक आपको उससे अवगत कर दिया जावेगा ।"

किरण के संगीत और नृत्य के सिद्धान्त के विषय में पूछे प्रश्नो से भैरवी को विश्वास हो गया था कि कला-भवन का कार्य उसको मिलने की आशा कम है । जहां तक कलाओं में प्रवीणता का सम्बन्ध था लोला, जो उससे आयु में बहुत कम थी, अधिक योग्य थी । जहां तक प्रबन्ध विषयक योग्यता का सम्बन्ध था, वह्निक देव का उस पर कुछ भी अधिकार नहीं था । इससे जो कुछ, योग्यता न होने से भैरवी और उसके गुरु महाराज को मिलने की आशा नहीं रही थी, उसे वह अपने सौन्दर्य और चपलता के भरोसे प्राप्त करने का यत्न करने लगी । वह बहुत मटक-मटक कर बातें कर रही थी । उसने कहा, "महाराज हम तो राजा-रईसो के लिये ही बने हैं । बीस वर्षों से इन्हीं कलाओ की आराधना कर रही हूं । अभी इस आराधना का फल प्राप्त नहीं हो रहा था । अब श्रीमान् जैसे गुणज्ञो के कारण जीवन सफल हो जाने की आशा है ।"

इतना कहते-कहते उसने दोनों भुजाओं को ऐसे ऊपर उठाया मानो वह किसी नृत्य-मुद्रा में अपने शरीर के संतुलन को ठीक कर रही है । भुजाओ को उठाने से उसके उभरे स्तन दो उत्तंग शिखरों की भांति और उभर आय । उसकी अंगिया के बंद कस गये मानो टूट ही जाने वाले हैं । कुमारदव को, जो उसके सम्मुख खड़ा था, उसके इस ाव से उससे आलिंगन करने की उत्कंठा जागती अनुभव होने लगी । यदि रेखा, किरण और श्वेतांग वहां न होते तो आलिंगन हो जाता । परन्तु रेखा भैरवी की चाल समझ गयी और महाराज की बांह पकड़ कर बोली, "अब चलना चाहिये ।"

कुमारदेव सचेत होगया और हाथ जोड़ नमस्कार कर भैरवी को

विदा करने लगा। इस विषय पर और कुछ कहने-करने को नहीं रहा। भैरवी समझ गयी कि उसका विजय अवसर हाथ से निकल गया है। इस पर भी उसने साहस नहीं छोड़ा और कहा, "तो कल सेवा में उपस्थित हूंगी।"

महाराज को कुछ भी और कहने का अवसर रेखा ने नहीं दिया। वह उनको घसीट कर दूसरे आगार में ले गयी। दूसरे आगार में जाकर महाराज ने किरण से पूछा, "क्या निर्णय है देवी जी का ?"

किरण ने गम्भीर हो कर कहा, "महाराज कला एक ऐसा साधन है जो मनुष्य को अपनी पूर्ण योग्यता का उपयोग करने की सदा प्रेरणा देता है। इस कारण कला-भवन की महिमा बहुत अधिक है। इसका कार-भार किसी वेश्या वृत्ति के व्यक्ति को देना उचित नहीं। वे तो कला को हरजाई बना देंगे। भैरवी एक वेश्या मात्र है। वह्लिक पंडित वेश्याओं का गुरु मात्र है। उसको मैं इस महान् कार्य के सर्वथा अयोग्य समझती हूं। रही कलाप्रवीणता की बात। वह्लिक पंडित की शिष्या बीस-पचीस वर्ष की शिक्षा पाने पर भी लोला, एक बालिका मात्र से निम्न कोटि की प्रतीत हुई है।

"इस पर भी भैरवी आपकी अनेक दासियो में एक दासी बन कर तो रह सकती है। यह भी महाराज की रुचि पर निर्भर है।"

"नहीं," रेखा ने क्रोध में कहा, "वह इस प्रासाद में पग तक नहीं रख सकेगी।"

महाराज कुमारदेव इस पर खिलखिला कर हंस पड़ा। उसकी दृष्टि में अभी भी भैरवी का वह रूप, जिसको आलिंगन करने की लालसा उसमें जागृत हो गयी थी, घूम रहा था। कुमारदेव ने पूछा, "मेरी पटरानी जी! क्यों उसने क्या पाप किया है ?"

"वह निर्लज्ज स्त्री अभी सबके सामने आलिंगन के लिये आपको आह्वान कर रही थी।"

"तो इसमें कौन बुरा कर रही थी।"

"अच्छे-बुरे की बात मैं नहीं जानती। मैं तो आपको उस वेश्या के जाल में नहीं फंसने दूंगी। मैं किरण देवी की सम्मति की पुष्टि करती हूं।"

श्वेतांग मुस्कराया और प्रसन्न हो विदा मांगने लगा।

इस प्रकार अगले दिन ही यह घोषित हो गया कि प्रमोद कला-भवन का अध्यक्ष नियुक्त हुआ है। रेखा ने भैरवी को यह संदेश भिजवा दिया, "यदि तुम अवन्ति से बाहर नहीं चली गयी, तो कुत्तों से नुचवा दूंगी।"

कलाभवन की अध्यक्षता मिलने पर प्रमोद को पता चला कि किरण की कृपा से ही उसको यह पदवी मिली है। उसको यह भी पता था कि भैरवी को रेखा की सहायता थी और महाराज तो इस विषय में लगभग निश्चय कर ही चुके थे। यह समाचार पा वह किरण का धन्यवाद करने चल पड़ा।

जब किरण देवी से उसको भेंट प्राप्त हुई तो उसने कहा, "मैं आपका अति धन्यवाद करता हूं। योग्यता-अयोग्यता की बात तो आज इस देश में बहुत कम चलती है। मनुष्य का स्वार्थ ही उसके कामों का नियंत्रण करता है।"

किरण ने, उसकी बात का उत्तर देने के स्थान पर पूछा, "संगीताचार्य! लीला को साथ नहीं लाये?"

"तो उस बेचारी पर भी आपको रुचि हो गयी है क्या? इससे तो मेरी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। उसका भी उद्धार होगा, ऐसा मुझको दिखाई देने लगा है।"

"यह लीला है किस की लड़की?" किरण ने पूछा

"अपने बाप की श्रीमती जी!" इतना कह वह मुस्कुराया।

"तो यह किसी गुप्त प्रेम का परिणाम है?"

प्रमोद चुप रहा। इससे बात यहां ही समाप्त हो गयी।

श्वेतांग किरण से मिलने आया तो पिछली रात के उसके निर्णय के लिये उसका धन्यवाद करने लगा। किरण ने बताया, "परमात्मा का धन्यवाद है कि लीला ने बहुत सुन्दर गाया और नृत्य किया। नहीं तो मेरे

लिये बहुत कठिन हो जाता ।"

"यहां से भैरवी और उसके साथी कहां गये थे, जानती है आप ?"

"हा, मल्ल राज्य के दूतावास में ।"

"यह सब तुम को कौन बताता है, किरण देवी !" श्वेतांग ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा ।

"मेरे पास साधन हैं । जब मुझको विष दिया गया था, तब मैंने सतर्क रहने की आवश्यकता अनुभव की थी । तब से ही मैंने अपने ज्ञान के लिये साधन जुटाने आरम्भ कर दिये थे ।"

"तो भैरवी के विषय में तुम और क्या जानती हो ?"

किरण हंस पड़ी । उसने कहा, "मेरा ज्ञान मेरे लिये है । महामात्य की सहायता के लिये नहीं ।"

"इसी कारण तो मैं कहता हूं कि हमारा विवाह हो जाना चाहिये । तब तो तुम्हारा ज्ञान हम दोनों के लिये हो जायगा न ?"

किरण ने हंसते हुए कहा, "मल्ल दूतावास पर देखरेख रखनी चाहिये । वहां के राजदूत का सम्पर्क नगर के प्रतिष्ठित जनो से बढ़ रहा है ।"

: ५ :

एक दिन किरण देवी ने लोला को अपने आगार में ले जाकर उसके माता-पिता का परिचय पूछा । उसका विचार था कि लोला उसकी भांति ही किसी निर्धन परिवार की लड़की है और उसके माता-पिता ने उसको प्रमोद के हाथ शिक्षा के लिये सौंप दिया है ।

लोला ने, जैसे प्रमोद ने उसको सिखा रखा था, पहिले तो केवल यही बताया कि वह अपने माता-पिता के विषय में कुछ नहीं जानती, परन्तु जब किरण देवी ने बहुत प्यार से उसके साथ सहानुभूति प्रकट की तो वह बालिका अपने माता-पिता का रहस्य बता गयी । किरण के प्रश्नों के उत्तर में उसने धीरे-धीरे सब कुछ बता दिया ।

उसने बताया कि माता का स्मरण उसे नहीं है । पिता जी का कहना था

कि उनका देहान्त उसके जन्म के समय ही हो गया था। पिता जी के लिये महाराज पालकदेव के मन में भारी मान था और उनके धर्म और चरित्र के श्रेष्ठ होने का वर्णन लोला ने किया। उसने अन्त में बता दिया कि उसके पिता का नाम पंडित सुखदर्शन है और वे कुमारदेव के, किसी अज्ञात स्थान पर, बंदी हैं।"

"तो तुम ने पहिले यह क्यों बताया था कि तुम अपने पिता जी को नहीं जानती?"

"प्रमोद भैया ने कह रखा था कि महाराज और महामात्य सुन कर क्रोध में मुझको मरवा डालेंगे।"

किरण यह सुन चुप कर गयी। उसको पंडित सुखदर्शन का उस दिन का व्यवहार स्मरण हो आया, जो उन्होने कुमारदेव के प्रथम दिवस के भोज के समय दिखलाया था। यह जान कि पंडित बंदी हैं उसको बहुत दुःख हुआ। इस पर उसने लोला को कहा, "लोला बहन! प्रमोद भैया ठीक ही कहते हैं। तुमको यह कथा किसी को नहीं बतानी चाहिये। सत्य ही महाराज तुम को फांसी पर लटकवा देंगे। मैं तो यह किसी को नहीं बताऊंगी। इस पर भी तुम किसी को नही कहना।"

लोला इस भय की बात से कांप उठी और अपने बताने पर पश्चात्ताप करने लगी। उसके भय से आंसू निकल आये। यह देख किरण ने उसको गोदी में बैठा उसका मुख चूम उसको आश्वासन दिया कि वह उसकी कथा किसी से नहीं कहेगी।

लोला ने घर पहुचते ही सब बात प्रमोद को बता दी। इससे वह अति चिन्तित हो उठा। वह नहीं जानता था कि किरण देवी पर कितना विश्वास किया जा सकता है।

अब प्रमोद इत्यादि नवीन कलाभवन में रहते थे। यह कलाभवन महाराज पालकदेव के प्रासाद में कुछ परिवर्तन कर स्थापित किया गया था। यह पांच तल का भवन था। इसमें एक सौ एक विशाल आगार थे। एक सहस्र के लगभग छोटे-छोटे आगार भी थे। बीस विशाल

प्रांगण थे और उनमें पुष्पवाटिका बनी थीं। इन पुष्पवाटिकाओं में जल-प्रपात, झरने और पुष्करिणियां बनी थीं। स्थान-स्थान पर देश-विदेश के प्रसिद्ध कलाकारो से निर्मित मूर्तियां तथा स्तूप खड़े थे। पूर्ण भवन अति सुन्दर, अति विशाल और अति सुख-साधनसम्पन्न था। इस भवन का प्रबन्ध प्रमोद सगीताचार्य के अधीन हो गया और उसमें कला के विस्तार, प्रसार और उद्धार के लिये प्रबन्ध होने लगा।

नटराज की ख्याति के कारण और राजनीति में परिवर्तन के कारण इन ललित कलाओ की महिमा अवन्ति में एकाएक बढ़ गयी। जब देश में यज्ञ, हवन, वेदगान तथा अन्य धार्मिक कर्मकाडो के स्थान पर सुरा, सुन्दरी, वीणा, दुंदुभि, मृदंग, खंजरी, तुमुर, बांसुरी इत्यादि की ध्वनियो का श्रवण होने लगा, तो इन कलाओ के सीखने की लालसा प्रत्येक युवक तथा युवति में जाग उठी।

प्रमोद प्रातः का अल्पाहार कर कार्यालय में आया तो बीस से ऊपर शिक्षा प्राप्त करने आये प्रार्थी वहां उपस्थित थे। जब वह अपने आसन पर बैठा तो प्रतिहार ने बताया कि बाईस नवीन विद्यार्थी कलाभवन में प्रवेश चाहते हैं।

"एक-एक कर भीतर भेजो।" प्रमोद ने उससे कहा।

एक प्रौढ़ावस्था की स्त्री हाथ में एक-तारा लिये और भगवे वस्त्रों में सबसे प्रथम आयी। प्रमोद ने पूछा, "क्या नाम है देवी ?"

"निपुणा जन्मनाम है भगवन्।"

"क्या करती हो ?"

स्त्री ने मुख से व्यंग का भाव बना कर कहा, "जब युवति थी तब स्त्रियो का कार्य करती थी। जब पुरुषों ने मुझको कार्य-हीन समझा, तो गली-कूचों में गा-गा कर भिक्षा-वृत्ति करती थी। अब एक वर्ष हो गया है, धीरे-धीरे मेरे गानो की मांग कम हो रही है और भिक्षा मिलनी कठिन हो रही है। लोग अच्छा संगीत प्रति सायंकाल पद्मा नदी के तट पर सुन लेते हैं। मेरे नीरस गीतो को सुनने वाला कोई नहीं। मेरे मन में विचार

आया कि इस कलाकेन्द्र में से कुछ सीख अपना निर्वाह करने के योग्य हो जाऊं।"

प्रमोद ने कहा, "देवी ! तुम्हारे लिये इस भवन में स्थान नहीं है। तुम कला की पूजा करने की अधिकारिणी नहीं हो। मेरी बात मानो। मथुरा जी चली जाओ। वहां धर्म से प्रेरित इस जन्म के पापी, अपने भविष्य को सस्ते दामों में बनाने वाले भिक्षा दे तुम्हारे निर्वाह का प्रबन्ध कर देंगे।"

निपुणा कुछ काल तक विचार करती रही। पीछे प्रमोद का धन्यवाद कर बाहर चली गयी।

इसी प्रकार कार्य चलता रहा। सबसे अंतिम प्रार्थी एक लड़की, चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु की, आयी। इस पर कुछ सतर्क हो प्रमोद ने उससे पूछा, "नाम क्या है कुमारी ?"

"नन्दा।"

"माता-पिता क्या है ?"

"यहां से दस कोस के अंतर पर भद्रक नाम के गांव में शिव मदिर के पुजारी से लालन-पालन की गयी कन्या हूं। पुजारी का देहांत हुए एक मास से कुछ ही ऊपर हुआ है। उसके अपने हस्तलिखित पत्रो, तथा उसके कहीं से प्राप्त पत्रों से पता चला है कि वह पुजारी, शिवदत्त, मेरा पालन-कर्ता मात्र था। मैं किसी की पुत्री हूं, जो अपना नाम नहीं लिखता था। वह प्रति मास मेरे पालन के लिये धन भेजता था। पुजारी के देहान्त के पश्चात् वह धन नहीं आया। यों तो गाव वाले मेरे खाने-पहिरने का प्रबन्ध कर रहे हैं, परन्तु इस कलाभवन की घोषणा सुन कर मैंने यही उचित समझा है कि यहां प्रवेश पा जाऊं तो ठीक रहेगा।"

"क्या सीखना चाहती हो ?"

"नृत्य और संगीत।"

"कुछ रुचि है इन कलाओं में ?"

नन्दा मुस्करा कर चुप कर रही। प्रमोद इसका अर्थ नहीं समझा।

वह प्रश्नभरी दृष्टि से उसके मुख की ओर देखता रहा। इस पर नन्दा ने आंखें नीचे किये हुए कहा, "गांव के लोग मुझको कोकिला कह कर पुकारते हैं।"

"ओह!" प्रमोद ने विस्मय में कहा, "अच्छा तो क्या कोकिला कूकती भी है?"

"परीक्षा लीजियेगा क्या?"

"यह जानने के लिये कि खिलौना बनाने की मट्टी कैसी है।"

प्रमोद ने नन्दा को बैठने के लिये आसन दिया; जब वह बैठ गयी तो प्रमोद ने एक 'चौतारा', जो कार्यालय की दीवार के साथ टंगा हुआ था, उतार कर उसके सामने रख दिया। नन्दा ने उसे स्वर किया और एक आलाप आरम्भ कर दिया। प्रमोद ने देखा कि उसका स्वर स्थिर, कोमल और प्रभावशाली है। उसको स्वर ज्ञान भी प्रतीत होता था। इस पर भी प्रमोद को यह समझ नहीं आया कि क्या राग अथवा रागिनी वह आलाप रही है। इस समय प्रमोद ने पूछा, "क्या रागिनी है यह?"

"इसके जानने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई और पुजारी जी ने बताने की आवश्यकता नहीं समझी।"

"कौन स्वर लगा रही हो इसमें?"

"स-नि॒ध॒-नि॒-पं-मं-पं नि॒धं-रे-स। स-रे-मग॒ मग॒-म-प। म-प-निध नि स। स—नि॒-नि॒-प-मपनि॒प-मग॒-मग॒-रे-स।

"बहुत मधुर बहुत मधुर है।"

नन्दा ने बताया, "पुजारी सायंकाल त्र्यम्बक भगवान् की मूर्त्ति के सामने बैठ इस स्वर में यह गाते थे:—

उमा रमण चरण शरण पाऊं।
सकल जगत विभूति, इन चरणन पर लुटाऊं।
दुष्ट दमन साधु उद्धरण, हेतु यह सब आयोजन।
पाऊं पाऊं तव कृपा, चरण रज शीश लगाऊं।"

आंखें मूंदे हुए नन्दा गा रही थी। प्रमोद ने देखा कि कलाकार बनने

के लिये एक अच्छा पदार्थ सामने उपस्थित है। स्वर में मिठास, गले में लोच, श्वास में बल, बुद्धि में कुशाग्रता और रूप-रंग में लावण्यता है। इस पर भी प्रमोद ने कहा, "संगीत में प्रवेश पा सकती हो, परन्तु नृत्य में . . . इधर आओ। सीधी खड़ी हो जाओ। भुजा दिखाओ।"

प्रमोद ने भुज-दंड दबा कर देखा। जांघ की दृढ़ता देखी और वक्षोज की कठोरता देखी। तब कहा, "अभ्यास और संयम से रहोगी, तो नृत्य-कला में भी प्रवीणता पा जाओगी।"

प्रमोद ने नन्दा को कलाभवन में प्रवेश देते हुए कहा, "नन्दा नाम के स्थान पर तुम्हारा कोकिला नाम ही ठीक रहेगा। नन्दा में चार मात्रा पड़ती है और कोकिला में पांच। यह शुभ और मधुर होगा।" इस प्रकार कई दिनो के पश्चात् एक कोकिला प्रवेश पा सकी। इसको भवन की अट्टालिका पर लोला के साथ का एक छोटा सा आगार रहने को दे दिया गया। निर्वाह के लिये एक स्वर्ण मासिक नियत कर दिया गया।

इस प्रकार लगभग दो सौ विद्यार्थी, जिन्होने प्रमोद की कठोर परीक्षा पास की, कलाभवन में शिक्षा पाने लगे। दिन रात, आठ प्रहर, भवन में संगीत की ध्वनि, तालो के बोल, नृत्य के आकार, पायलों की झनकार गूँजती रहती थी। कहीं धिक धिक ता, कहीं ना धिर धिर तुम्, कही मधनिस धनिस और कहीं, पन घट पे आये ढीठ पिया रे, चलता रहता था।

जिस दिन लोला किरण से अपने माता-पिता का रहस्य बता कर आयी उससे अगले दिन राजभवन से एक दासी प्रमोद को ढूँढती हुई आयी। उसके आने का समाचार पा प्रमोद के मन में लोला के विषय में भय समा गया। दासी ने प्रमोद के सामने उपस्थित हो कहा, "किरण देवी ने भेजा है। वे मध्याह्न में आप से मिलना चाहती है।"

"किनसे मिलना चाहती है?"

"श्री प्रमोद जी संगीताचार्य से।"

"क्या काम है?"

"नटराज! मै नहीं जानती।"

: ६ :

किरण के आगार में प्रवेश करते समय, वह मन ही मन भय से कांप रहा था, परन्तु उसकी बात सुन उसे आश्चर्य हुआ। किरण ने कहा, "मैं समझती हूं कि आपको इस लडकी को राजप्रासाद में लेकर नहीं आना चाहिये था। वह निर्दोष बालिका राजभवन की मलिनता में लिप्त हो पतित हो जावेगी। साथ ही उसका रहस्य अभी खुलना ठीक नहीं। वह भोली बालिका उस भय को नहीं समझ सकती, जो उसके लिये इस प्रासाद में उपस्थित है। हमारे महामात्य राजद्रोह को क्षम्य नही मानते।"

प्रमोद को ऐसा प्रतीत हुआ कि किरण एक अति कोमल हृदय रखती है। इसी कारण उसने लोला के विषय में चेतावनी देना उचित समझा है। इस पर उसने अपनी सफाई देते हुए कहा, "देवी जी! मुझको यह विदित नहीं था कि आप जैसी स्नेहमयी हृदय रखने वाली कोई नारी भवन में रहती हैं। यह आपका स्नेह ही था जिसने लोला को अपना रहस्य बताने पर विवश कर दिया था। यदि आप उस मातृविहीन बालिका को गोदी में लेकर प्यार करते हुए न पूछतीं तो वह कभी भी आप पर विश्वास न करती। मुझ को तो विश्वास है कि बालिका के हृदय ने आप पर भरोसा कर धोखा नहीं खाया।"

"आपका विश्वास करना भूल नही होगी। भगवान् करे कि मुझमें उस बालिका के विश्वास को बनाये रखने का निश्चय बना रहे। परन्तु जो बात आप कर रहे हैं, क्या उसको केवल मन के उद्गार के वश में होकर ही कर रहे हैं, अथवा बुद्धि से ठीक समझ कर कर रहे हैं? यह केवल मात्र लोला से स्नेह वश है, अथवा उसके पिता से जो अन्याय हुआ है उसके दुःख से प्रभावित हो कर रहे हैं?"

प्रमोद इस सीधे प्रश्न से भारी असमंजस में पड़ गया। वह इस बात के पूछे जाने का प्रयोजन समझने का यत्न करने लगा। वह सोच रहा था कि उसके मन के आंतरिक भावों को जानने से क्या वह उसका भेद खोल

देगी अथवा उसके मन के भावों से सहानुभूति प्रकट कर उसकी, लोला के पिता की खोज करने में सहायता करेगी। बहुत सोचने पर उसको उस दिन की बात याद आ गयी, जब उसने उसको भैरवी पर उपमा दी थी। उसको यह विश्वस्त सूत्रों से विदित हो चुका था कि महाराज कुमारदेव भैरवी का पक्ष ले रहे थे। इस बात को जानते हुए भी किरण ने उसे ही योग्य घोषित किया था। इससे उसके मन के संशय बहुत दूर तक निवारण हो गये। यद्यपि वह अभी भी पूर्ण रूप से किरण पर विश्वास नहीं कर सकता था, तिस पर भी उसने अपने मन की बात कह ही दी। उसने कहा, "देवी जी! मैं नहीं जानता कि श्रीमती जी यह किस प्रयोजन से पूछ रही हैं। इस पर भी यह विश्वास कर कि मैं एक अति-विशाल-हृदय और न्यायप्रिय देवी के सम्मुख अपने मन की बात बता रहा हूं, यह निवेदन कर रहा हूं। मैं समझता हूं लोला के पिता का बंदी किया जाना न्यायसंगत नहीं था। यदि मेरे बस में होता तो उसको बंदीगृह से मुक्त कराने के लिये महाराज से प्रार्थना करता। मुझको यह विदित भी नहीं कि वे अभी जीवित भी हैं अथवा नहीं। इस कारण सिवाय लोला की रक्षा करने के और कुछ कर ही नहीं सकता।"

किरण प्रमोद के अपने मन की बात को बताने में हिचकिचाने पर मुस्कराई। पश्चात् कुछ विचार कर बोली, "देखिये प्रमोद जी! मैं राज्य की ओर से गुप्तचर का काम नहीं कर रही। इससे मुझसे आपको डरने की आवश्यकता नहीं। परन्तु एक बात से मैं डरती हूं कि परिस्थिति को भली भांति न जानने के कारण आप भूल कर सकते हैं और यदि मुझको आपके मन का वास्तविक ज्ञान हो तो मैं ऐसी अवस्था में हूं कि आप की बहुत दूर तक सहायता कर सकती हूं।"

"पर देवी! मैं कोई षड्यंत्र नहीं कर रहा। इस पर भी आपके मेरे लिये इस संरक्षण पर मन को भारी संतोष हुआ है। देवी जी ने मेरे लिये पहिले भी बहुत कुछ किया है। इस कारण मैं तो पहिले ही देवी जी की कृपा के भार के नीचे दबा हुआ हूँ। परन्तु जो आश्वासन आपने

मुझको आज दिया है, उसके लिये तो मेरा रोम-रोम आप का कृतज्ञ रहेगा। आपने आश्वासन दिया है कि यदि मैं कोई भूल करूँ तो आप मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगी। मैं आपका अति कृतज्ञ हूंगा, यदि आप मुझको यह बताने की कृपा करेंगी कि क्या मैं लोला को घर में रखकर भूल कर रहा हूं?"

किरण ने कुछ काल तक मौन रह कर कहा, "मैं समझती हूं कि आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। आपने लोला को घर में रख कर कोई पाप नहीं किया। अभी तक यह कोई नहीं कह सकता कि लोला अपने पिता के साथ महाराज के अपमान में सम्मिलित थी। परन्तु यह बात भी स्वयं सिद्ध है कि लोला जब बड़ी होगी तो अपने पिता के विषय में जानने के लिये अवश्य यत्न करेगी। उस समय शायद मैं यहां नही हूंगी। उस समय मैं आपका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकूँगी। इस कारण मैं चाहती हूं कि यदि आपने इस दिशा में कुछ करना है तो उसके लिये मार्ग अभी से स्वीकार कर लो, जिससे चाहे मैं यहां न भी रहूं, तब भी आप अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकें।"

प्रमोद किरण की बात सुन अवाक् रह गया। वह अभी भी किरण का वास्तविक अभिप्राय नही समझा था। किरण ने अपने मन की बात को तनिक और व्याख्या से कह दिया। उसने कहा, "जो कोई भी, आप अथवा लोला और उसके जो भी साथी उस समय हों, उनको एक-दो बातें समझ लेनी चाहियें। वह मैं आपको आज बता देना चाहती हूं। कभी आवश्यकता पड़े तो मेरे कहने को स्मरण कर लेना।

"कुमारदेव हृदय से खोटा व्यक्ति नहीं है। श्वेतांग, उनके विपरीत विश्वासपात्र नहीं। राज्य का सुधार करने के लिये श्वेतांग के स्थान पर कोई अन्य महामात्य लाना पड़ेगा। जो भी व्यक्ति लोला के पिता को बंदीगृह से छुड़ाना चाहते है, उनको चाहिये कि श्वेतांग को दूर करें। आज कुछ ऐसी धूम मच रही है कि कुमार तो सब बुराइयों का मूल माना

जाता है और श्वेतांग सब अच्छी बातो का स्रोत है। यह बात सत्य नही।"

"यह तो वहुत ही कठिन समस्या है। हम को विश्वास नही आता कि महामात्य श्वेतांग के बिना इस देश में कुछ भी हो सकता था।"

"यह भूल ही है, जिसके विषय में मै आपको सचेत करना चाहती थी। श्वेताग के स्थान पर कोई योग्य महामात्य ढूँढ निकालो। यही इस देश की समस्या है।"

"यही तो पता नहीं चलता कि उनसे योग्य कोई इस संसार में है भी ?

'ढूँढो। यत्न करने पर मिल भी सकता है।"

इसके आगे किरण ने कुछ भी कहना उचित नहीं समझा। अब कलाभवन के विषय की इधर-उधर की बातें हो जाने के पीछे प्रमोद को किरण ने विदा कर दिया। वह समझती थी कि अवन्ति में जनता के मन में ऐसी धारणा बैठ चुकी है कि श्वेतांग के अतिरिक्त अवन्ति का बेड़ा पार करने की क्षमता किसी में नहीं है। उसे प्रमोद को अपने विश्वास में न ले सकने पर भारी शोक हुआ। वह अपने विषय में तो कभी भी चिन्तित नहीं हुई थी। उसको यह जान कर दुःख हुआ था कि जनता में कोई भी ऐसा नहीं जो महाराज पालकदेव के लिये कुछ भी तो प्रयत्न कर सके। इस प्रकार प्रमोद से निराश हो वह अपने मन में ही अवन्ति का श्वेतांग से उद्धार करने का उपाय सोचने लगी।

इस पर भी परिस्थिति अचल नहीं थी। अवन्ति की अवस्था दिन-प्रतिदिन में वदल रही थी। लोग विषय-वासना में फंस कर धर्म-कर्म भूल गये थे, परन्तु वासना से कभी भी तृप्ति नहीं होती। भोग से वासना वढ़ती है। इससे उपस्थित सुख से असन्तुष्ट हो जाना जनता के लिये एक स्वाभाविक वात थी। लोग अधिक और अधिक वासनामय जीवन की मांग करने लगे थे। इसका अनुभव कर महामात्य ने एक दिन प्रमोद को वुला भेजा। उसके आने पर महामात्य ने कहा, "संगीताचार्य ! हमारे राज्य का एक आधार आप का कलाभवन है।

जैसे प्रजा को, भोजन वस्त्र और गृह मिलने चाहियें वैसे ही उनके मानसिक सुख-स्वाद का प्रवन्ध भी होना चाहिये। इस कारण राज्य का कारभार सम्हालते ही मैंने पद्‌मा नदी के तट पर डेढ़ कोस लम्बा घाट मनोरंजन का अड्डा वना दिया था। मैं समझता हूं कि प्रजा का ध्यान राजनीति से दूर हटाने का यही उपाय है कि उसके मन को विचार करने के लिये, राजनीति से अधिक रंजक विषय उसके सामने उपस्थित कर दिये जायें। पद्‌मा नदी पर का मनोरंजन कुछ काल तक तो नागरिको को आकर्षित करता रहा है। इस कारण मैं चाहता हूं कि कोई ऐसी बात आविष्कार की जावे, जो, जहां जनता के लिये नवीन हो, वहा वह उनको पागल बना कर अपनी ओर आकर्षित करने की सामर्थ्य भी रखती हो। महाराज का राज्याभिषेक आने वाला है। इस कारण मै चाहता हूँ कि कलाभवन की ओर से कोई नवीन आयोजन प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

"इतना संकेत मैं कर देना चाहता हूं कि मनुष्य में सदैव पशुपन छुपा हुआ विद्यमान रहता है। यद्यपि समाज ने अपने कृत्रिम नियमों से उस पशुपन पर सभ्यता रूपी कृत्रिम आवरण चढा रखा है, तो भी मनुष्य को अपने स्वाभाविक पशुपन में अधिक रुचि और आनन्द आता है।"

प्रमोद इस आदेश के पालन में लग गया। उसने राज्याभिषेक के अवसर पर कोई अति रुचिकर आयोजन निर्माण करने के लिये विचार करना आरम्भ कर दिया। बहुत योजनाएं बनायीं, परन्तु सब की सब उसको पूर्व चल रही योजनाओ से फीकी प्रतीत हुईं। वह चाहता था कि कोई ऐसा आयोजन हो कि देश की लक्ष-लक्ष जनता उस के देखने के लिये काम-काज और घरों को छोड कर बाहर निकल आवे और पागल हो उसके लिये धन-दौलत लुटाने तक तैयार हो जावे।

इस प्रकार वह दिन-रात योजनायें वनाता और उनको कुछ विशेष रुचि-उत्पादक न पा फाड कर फेंक देता। कई दिन तक भी जब उसको कोई नवीन तथा अति लुभायमान योजना समझ नहीं आयी तो वह अपने कुंठित हुए मन पर शोक करता हुआ बैठा था। इसी समय कोकिला उसके

पास एक अभियोग लेकर आयी।

"क्या बात है कोकिला ?" प्रमोद ने पूछा, "शीघ्र बताओ, मैं एक आवश्यक कार्य से महामात्य जी से मिलने जा रहा हूं।"

"महामात्य जी से ? तो भैया जाओ। मैं फिर कभी आ जाऊंगी। हमारे झगड़े तो चलते ही रहते हैं।"

झगड़े की बात प्रमोद सहन नहीं कर सका। वह इसकी गंध भी कला-भवन में नहीं देखना चाहता था। इस कारण वह बैठ गया और बोला, "झगड़ा ? किस से झगड़ा हुआ है, तुम्हारा ?"

"एक पशु से, जिसको रहने के लिये आपने मेरे सामने का आगार दे रखा है।"

"प्रियमुख से झगड़ा किया है तुमने ? क्या पशुपन किया है उसने ?"

"मुझको नग्न देखने का यत्न किया है उसने। मैंने कई बार मना किया है परन्तु वह मानता ही नहीं।"

"तो तुम नग्न होती ही क्यों हो ?"

"तो स्नान कैसे कर सकती हू ? कई दिन से देख रही हूँ कि जब मैं स्नानागार में जाती हूं तो वह उसकी दीवार के एक छिद्र में आंख लगाये रहता है।"

प्रमोद को जल्दी थी। इस कारण शेष जांच प्रियमुख के सामने ही करने के लिये उसको भी बुला लिया। प्रियमुख आया तो कोकिला ने अपनी कथा वर्णन कर दी।

"क्यों भाई प्रियमुख ! यह क्या पशुपन है ?"

प्रियमुख कुछ गम्भीर हो बोला, "भगवन् ! मैं स्वयं नहीं जानता कि यह क्या है ? पर जब यह स्नानागार में जाती है तब अनायास ही मेरे पांव चल कर मुझ को छिद्र के सम्मुख खड़ा कर देते हैं। मुझको यह विदित नहीं था कि इसको मेरा यह दोष पता लग गया है।"

"क्या मिलता है तुमको इससे ?"

"कुछ सुख, कुछ स्वाद, कुछ कल्पना के लिये सामग्री और कुछ

अब कोकिला के मधुर कंठ से गालियां सुनने का अवसर।"

"तो तुम अपना दोष स्वीकार करते हो?"

"मैं स्वीकार करता हूं कि मैं इसकी अनुपम रूपराशि देखने के लिये चोरी-चोरी प्रयत्न करता रहता हूं, परन्तु यह अपराध कैसे हो गया? यह मैं समझ नहीं सका।"

"देखो प्रियमुख! यह अपराध है, यह पशुपन...... ।"

इस समय प्रमोद के मस्तिष्क में एक विचार-तरंग उठी। वह चुप कर गया और उस विचार-तरंग में डूब गया। उसे चुप देख दोनो प्रियमुख और कोकिला उसका मुख देखने लगे। इस समय प्रमोद तो किसी दूसरे ही संसार में विचर रहा था। उसके मस्तिष्क में भ्रमण करती हुई योजनाओं के लिये रंग-रोगन मिल गया था। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और दोनो से बोला, "तुम जाओ। तुम्हारे झगड़े का निर्णय आकर करूंगा। देखो कोकिला! अपने स्नानागार की दीवार की मरम्मत करवा लो। उसके छिद्र को बंद करवा लो। तुम अपनी कंचुकी के छिद्र को बंद न करवा कर, उसमें से नग्न हो रहे अपने पयोधरों को देखने वाले पर क्रोध कैसे कर सकती हो? जाओ, अब दोनो जाओ। तुम्हारी बात फिर सुनूंगा।"

: ७ :

प्रमोद ने महामात्य के पास जाते हुए अपनी योजना की रूपरेखा बना ली थी। उसने महामात्य को बताया, "भगवन्! राज्याभिषेक के उत्सव पर अवन्ति में सुन्दरी-प्रतियोगिता हो। जो स्त्री अपने को सुन्दर समझती है इस प्रतियोगिता में भाग ले सके। प्रवेश शुल्क कुछ रख दिया जावे। एक निष्पक्ष निर्णायकमंडल निर्णय करे। सौन्दर्य में शरीर के अंग-प्रत्यंग की बनावट का ध्यान रखा जावे और फिर संगीत-नृत्य इत्यादि जो नारी के गुण हैं, उनकी परीक्षा की जावे। इस प्रकार से सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्वाचित कर एक पुरस्कार दिया जावे। उससे

विवाह करने वाले को उस सुन्दरी का मूल्य आंकने को कहा जावे। जो सबसे अधिक मूल्य दे उससे इस सुन्दरी का विवाह किया जाये। उस सुन्दरी की नगर में सवारी निकाली जावे और उसकी प्रतिष्ठा की जावे।

"यह कार्यक्रम ऐसा होगा कि देश भर के युवक और युवतियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो जावेगा और राज्याभिषेक शान्ति से सम्पन्न हो जावेगा।"

महामात्य को इस आयोजन में कुछ अधिक आकर्षण प्रतीत नहीं हुआ। इससे कुछ संदेहात्मक मुद्रा में वह प्रमोद का मुख देखता रहा। प्रमोद ने उसका भाव देख कर कहा, "श्रीमान्! अन्तिम निर्णय के समय एक बृहत् पंडाल में सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी के अंग-प्रत्यंगो का दिग्दर्शन कराया जाये और उसके अंगों के सौन्दर्य का प्रदर्शन कराने के लिये उसका नग्न नृत्य हो। मेरा विश्वास है कि इसको देखने के लिये पूर्ण जनता टूट पड़ेगी।"

महामात्य के मस्तिष्क में प्रकाश हो गया। वह समझ गया कि कुछ तो आकर्षण है। प्रमोद ने अपना कहना जारी रखा, "श्रीमान्! मनुष्य में पशुपन अभी बहुत सीमा तक विद्यमान है। जब उस पशुपन के प्रदर्शन का अवसर आयेगा तो मनुष्य मात्र उसको देखने के लिये व्याकुल हो उठेगा। मनुष्य जब पशुओ के समीप था तब नंगा रहता था। यह मनुष्य की अंतरात्मा में अभी भी छुपा हुआ विद्यमान है और इस अवस्था को देखने का अवसर वह नहीं छोड़ेगा।"

महामात्य की आंखों में ज्योति बढने लगी। अपने भावो को जब प्रमोद ने और भी भली भांति प्रकट किया तो महामात्य ने उसकी सराहना की और उसको इस सब योजना के आय-व्यय का व्योरा बनाने के लिये कह दिया।

नगर और देश भर में, महाराज कुमारदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर अवन्ति में सुन्दरी-प्रतियोगिता होने की घोषणा हो गयी। एक

विज्ञापन बहुत ही आकर्षक रूप और भाषा में लिखवा कर राज्य तथा नगर के भिन्न-भिन्न स्थानो पर लगवा दिया गया। एक ऐसा ही विज्ञापन कलाभवन के एक प्रांगण में लगवाया गया।

इस समाचार से राज्य भर में आश्चर्य तथा उत्सुकता उत्पन्न हो गयी। गांव-गांव, मुहल्ले-मुहल्ले, और घर-घर में इसकी चर्चा चल पड़ी। राज्याभिषेक से अधिक यह प्रतियोगिता चर्चा का विषय बन गयी। नर-नारी, युवक-युवति, बाल-वृद्ध देश में कोई नहीं रहा जिसको यह पता न चल गया हो कि अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ढूँढी जा रही है।

मार्ग पर चलते हुए अपरिचित राही भी परस्पर इस विषय पर बात कर बैठते थे।

"कौन होगी ऐसी भाग्यशालिनी ?"

"सुना है उसका नग्न नृत्य होगा।"

"और नहीं तो क्या उसके कपड़ों का सौन्दर्य देखने जाना है ?"

"बड़ा आनन्द रहेगा।"

"धन्य हैं कुमारदेव। इसके बड़े भाई तो केवल बुद्धू ही थे।"

"वे बेचारे धर्मात्मा आदमी थे।"

"और बुद्धू किसको कहते हैं। न खाने का स्वाद, न पहिनने की सुविधा। ऐसे सुन्दर दृश्य तो उसके काल में स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होते थे।"

कलाभवन के विद्यार्थियो और शिक्षकों में भी इस प्रतियोगिता की चर्चा थी।

प्रियमुख ने विज्ञापन पढ़ा तो उसकी आंखों के सम्मुख कोकिला की मूर्त्ति बार-बार आने लगी। वह अपने आगार में जा रहा था कि सामने से कोकिला सीढ़ियां उतरती दिखायी दी। प्रियमुख के मन में एक विचार आया तो उसने कोकिला को बताने के लिये पुकारा, "कोकिला देवी!"

"क्या है ?" कोकिला ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर पूछा।

"भवन के प्रांगण में लगे विज्ञापन को पढ़ा है तुमने ?"

"क्यों, क्या है उसमें ?"

"पढ़ लो, तो पीछे बताऊंगा।"

"पढ़ लिया है। तुम्हारे लिये उसमें कुछ नही।"

"यह मै जानता हूं। पर तुम्हारे लिये तो है। मेरा विश्वास है कि यदि तुम इस प्रतियोगिता में भाग लो तो पुरस्कार पा जाओगी।"

"हट ! बड़े पारखी आये हो न ?"

"सत्य कहता हूं देवी !"

कोकिला उसकी बात सुनने के लिये रुकी नहीं। वह सीढ़ियाँ उतरती गयी, परन्तु प्रियमुख की बात उसके मस्तिष्क में रड़कती रही "तुम पुरस्कार पा जाओगी ! तुम पुरस्कार पा जाओगी।" जब तक वह भवन की भूमि के तल पर पहुंची, उसके मन में निश्चय हो गया कि इस बात की परीक्षा करनी चाहिये, "क्या मै वास्तव में सुन्दर हूं ?" प्रियमुख मूर्ख है। उसकी बात का विश्वास कैसे कर लूँ। इस पर भी वह उस प्रांगण में गयी जहां विज्ञापन लगा था। बहुत से लड़के-लडकियाँ उस को पढ़ रहे थे। कोकिला ने भी पढ़ा। उसमें लिखा था,

"राज्याभिषेक के उत्सव पर अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की खोज की जायेगी।

"कोई भी स्त्री जिसको अपने सुन्दर होने का गर्व हो, इस प्रतियोगिता में सम्मिलित हो सकती है। प्रवेश शुल्क दस रजत है।

"प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिये क्या करना होगा, यह जानने के लिये कलाभवन के अध्यक्ष श्री प्रमोद जी से मिलना चाहिये।

"प्रतियोगिता कैसे होगी, इसका विवरण प्रतियोगिता में सम्मिलित होने वाली स्त्रियों को प्रमोद जी बतावेंगे।

"प्रतियोगिता का अंतिम निर्णय दस सहस्र दर्शकों के भीतर एक विशाल पंडाल में किया जावेगा। इस पंडाल में प्रवेश के लिये शुल्क होगा, एक सौ स्वर्ण, पचास स्वर्ण, बीस स्वर्ण, दस स्वर्ण और एक स्वर्ण।

"प्रतियोगिता में निर्णायक समिति के पांच सदस्य होंगे और इनका निर्णय अंतिम होगा।

"सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से वह पुरुष विवाह कर सकेगा जो उसका अधिक से अधिक मूल्य देगा और वह मूल्य उस पंडाल में आंका जावेगा। यह मूल्य राज्य-कर काट कर सुन्दरी की सम्पत्ति मानी जावेगी।

"ऐसा विचार है कि यह मूल्य कई लक्ष स्वर्ण से कम नहीं होगा।"

कोकिला दूर खड़ी विज्ञापन पढ रही थी। पचास-साठ विद्यार्थी भी इस विज्ञापन को ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। वे पढ़ते थे और भिन्न-भिन्न भावो को मन में ले कर चले जाते थे। नये पढ़ने वाले उनके स्थान पर आकर खड़े हो जाते थे। कोकिला खडी हुई थी विज्ञापन पढ़ने, परन्तु पढ़न लगी विज्ञापन पढ़ने वालों की मन की भावनाओ को, जो उन मुखों पर प्रकट हो रही थीं।

कोई कन्या पढती तो लज्जा से लाल मुख हो चली जाती। कोई प्रेम से नवीन परिचय प्राप्त कुमारी पढ़ती तो वह जहां लज्जा से लाल हो। उठती, वहा मुस्कराती भी। शायद अपने प्रेमी से अपने सौन्दर्य की प्रंशसा स्मरण कर प्रसन्न होती थी। वड़ी आयु अथवा अनुभव प्राप्त युवति पढ़ती तो प्रसन्न हो जाती। उसके लिये एक तमाशा होने वाला था। कुछ प्रौढ़ अवस्था की स्त्रिया भी विज्ञापन पढने आयीं और कोई नाक चढा, कोई खिलखिला कर हंसती हुई चली गयी। युवको के लिये यह विज्ञापन एक रहस्योद्घाटन की सूचना थी। प्राय. के मुख पर कुछ जानने की उत्सुकता के लक्षण प्रतीत होते थे।

कोकिला को पाठकों के भाव पढ़ते-पढ़ते वहुत समय व्यतीत हो गया। वास्तव में उसको यह सब कुछ देखने अथवा समझने में जो स्वाद आ रहा था, उससे उसको समय का ज्ञान नहीं रहा था।

इस समय तक प्रियमुख अपने आगार में जा, वहां कुछ जल पान कर और वस्त्र बदल नगर में भ्रमणार्थ जाने के लिये नीचे उतर आया। मार्ग उस प्रांगण में से ही होकर जाता था, जिस में विज्ञापन लगा था। वहां

कोकिला को देख वह खिलखिला कर हंस पड़ा। कोकिला का ध्यान भंग नहीं हुआ। इस कारण वह उसके समीप जा कर बोला, "कोकिला! क्या देख रही हो?"

"मानव नाटक," कोकिला ने प्रियमुख का आशय समझ कहा।

"कैसा है यह?"

"मनुष्यता से लेकर पशुता तक के जितने स्तर है, वे सब यहां चलते-फिरते देखे हैं।"

"इनमें से पशु कौन देखा है तुमने?"

"एक तो प्रियमुख है।"

"हट," कह प्रियमुख भ्रमणार्थ चला गया। कोकिला प्रमोद को ढूँढने चल पड़ी।

: ८ :

प्रमोद लोला को धामार में एक ध्रुपद का हेर फेर समझा रहा था। वह बता रहा था कि ध्रुपद का आरम्भ वेद गान से हुआ है और जितनी मन को शान्ति और व्यवस्था इससे मिलती है उतनी और किसी भी राग और रागिनी से नहीं मिल सकती।

इस भूमिका के साथ उसने स्वर, ताल, लय के विषय में बता कर बोल आरम्भ करा दिये। उसने बताया कि यह ध्रुपद मालकौंस में है और स्वर भर कर बोल बताये—

"शुभ आयो है आज मंगल मोद घड़ी।
नव कलियन की प्रभा ज्योतिर्मय
मन दर्पण पड़ी।
ऋतु वसन्त में कुसम खिले बिखरे केसर पराग।
सौरभयुत वायु मंडल में भरा प्रेम अनुराग।
लिपटी लता संग तरुवर है आकाश चढ़ी।
मुद मंगल मोद घड़ी।"

लोला अभी समझ ही रही थी कि प्रतिहार ने आकर कहा, "श्रीमान्!

एक देहाती ब्राह्मण आप से मिलना चाहता है ।"

प्रमोद के मन में ब्राह्मणों के लिये अभी भी श्रद्धा शेष थी। वे स्वयं भी ब्राह्मण थे, परन्तु कई पीढियों से गाने-बजाने का कार्य करने से नट कहाते थे । उसने सब काम छोड़ कर ब्राह्मण को भीतर लाने को कह दिया।

मस्तक पर तिलक लगाये, धोती और अंगरखा पहिने, पांव में लकड़ी की पादुका और सिर पर बड़ी सी चोटी को गांठ देकर बांधे हुए ब्राह्मण देवता कार्यालय में आये। प्रमोद ने खड़े हो, हाथ जोड़ नमस्कार कर आदर से आसन पर बैठाया। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देते हुए बैठ कर कहा, "मैं गायनाचार्य प्रमोद से मिलना चाहता हूं।"

"सेवक उपस्थित है, भगवन् !"

उस वृद्ध ब्राह्मण ने प्रमोद को सिर से पांव तक देखा और फिर कहा, "मैं यह जानने आया हूं कि सुन्दरी-प्रतियोगिता में प्रवेश पाने के नियम क्या है ?"

"कौन भाग लेगा उसमें ?"

"क्या उसका नाम-धाम बताये बिना इसके नियम भी नही बताये जायेंगे ?"

"नहीं ! ऐसी कोई बात नहीं। मैं यही जानना चाहता था कि भगवन् स्वयं भाग लेंगे, या कोई अन्य ?" इतना कह कर प्रमोद मुस्कराया, परन्तु ब्राह्मण के माथे पर भृकुटि चढ़ी देख गम्भीर हो गया।

ब्राह्मण की भृकुटि शीघ्र ही मिट गयी और उसके मुख पर मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने कहा, "मुझको आपसे इस मूर्खता की आशा नहीं थी। विज्ञापन में स्पष्ट है कि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का निर्वाचन होगा।"

"देवता ! क्षमा चाहता हूं, परन्तु इससे एक बात स्पष्ट हो गयी है कि आपने विज्ञापन ध्यान से पढ़ा है। यहां बहुत लोग बिना विज्ञापन पढ़े भी आ रहे हैं।"

"परन्तु उसमें नियम नही लिखे थे। उसमें निर्वाचन-विधि नहीं

लिखी थी। उसमें निर्वाचन-तिथि और निर्वाचन-अध्यक्ष का परिचय नहीं था। यही जानने के लिये आया हूं।"

"यदि तो प्रतियोगिता में भाग लेने वाला कोई है तब तो बता दूंगा। पहिले नाम-धाम लिखा दें और शुल्क जमा करा दें, पश्चात् जो भी प्रश्न पूछा जायेगा उसका उत्तर दे दूंगा।"

ब्राह्मण का क्रोध शान्त हो रहा था। इस कारण उसने कहा, "श्रीमान्! यह भी विज्ञापन में नहीं लिखा था।" इतना कह उसने दस रजत प्रमोद के सम्मुख रख कर कहा, "लिख लीजिये, नाराट की अनुराधा अहीरन।"

"अहीरन?" प्रमोद अवाक् ब्राह्मण का मुख देखता रह गया। पश्चात् कुछ विचार कर प्रमोद ने एक पत्र पर युवति का नाम लिख कर पूछा, "माता-पिता का नाम क्या है?"

"यह आवश्यक है क्या?"

प्रमोद ने कुछ विचार कर कहा, "नहीं। अब आप जो भी सूचना चाहते हैं, पूछिये।"

"निर्णायक कौन होंगे?"

"पांच सदस्यों की एक समिति होगी। इसकी नियुक्ति अभी नहीं हुई।"

"नियुक्ति कौन करेगा?"

"अवन्ति के महामात्य।"

ब्राह्मण के ओष्ठ कुछ कहने को हिले। प्रमोद को ऐसा समझ आया कि उनमें से पशु शब्द निकला है परन्तु इतना धीरे से कि शब्द कानों तक नहीं पहुंच सका। प्रमोद के होठ कुछ ऐसे टेढ़े हुए कि उनमें मुस्कराहट आयी, परन्तु उसने शीघ्र ही अपने को सम्हाल लिया और चुप कर गया। उसको चुप देख ब्राह्मण ने आगे पूछा—

"निर्वाचन-विधि क्या होगी?"

"मूर्तिकलाविशेषज्ञों की एक समिति बनेगी। उनको एक आदर्श

सुन्दरी की नग्न मूर्ति बनाने का काम सौंप दिया जायेगा। पांव के नख से लेकर शिर के केशों तक प्रत्येक अंग निर्माण किया जायेगा। जब वह मूर्त्ति बन जायेगी तब उसको आदर्श मान प्रत्येक प्रतियोगी की उससे तुलना की जावेगी। जो अधिक से अधिक उस मूर्त्ति से समता रखेगी वही अधिक से अधिक सुन्दर मानी जावेगी।

"साथ ही यह प्रतियोगिता जीवित स्त्रियों में है। इस कारण उस मूर्त्ति से समता के साथ-साथ शरीर में चपलता, अंगों में लचक तथा भाव भंगी, गले की मधुरता की प्रतिस्पर्धा भी होगी।"

"तो सभा में प्रदर्शन के क्या अर्थ है?"

"प्रथम, देश भर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का अंतिम चुनाव देश के शिष्ट-मंडल के सम्मुख होगा। द्वितीय, देश की इस विभूति का दर्शन देश के सब दर्शनेच्छुओं को होना चाहिये।

"तृतीय, सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी के विवाह का प्रबन्ध यदि न किया गया तो गड़बड़ हो जाने की संभावना है। इस कारण यह निश्चय है कि उससे विवाह के इच्छुक उसका मूल्य आंकेंगे। जो सबसे अधिक मूल्य देगा उससे उसका विवाह कर दिया जावेगा।"

ब्राह्मण इतना सुन कर उठ खड़ा हुआ, परन्तु प्रमोद ने उसके जाने से पूर्व उससे पूछा, "पर क्या मैं आप का परिचय और युवति में रुचि का कारण जान सकता हूं?"

वह ब्राह्मण प्रमोद के मुख की ओर देखता हुआ विचार करने लगा। प्रमोद ने समझा कि वह बताने में संकोच कर रहा है। इस कारण वह अपना प्रश्न वापिस लेने ही वाला था कि उसने कहा, "नाम भूदेव है। धाम नीरा गांव है। लड़की में इतनी रुचि नहीं, जितनी राज्य की नीति के दूषितपन को प्रकट करना है।"

प्रमोद देख रहा था कि उस पंडित में दृढ़ता है और बात में युक्ति है। साथ ही उसने भूदेव का नाम सुना हुआ था। वह जानता था कि वह एक विद्वान् व्यक्ति है। अतएव उसने कहा, "कुछ काल और बैठियेगा

नहीं ? यदि आपत्ति न हो तो कुछ और जानने की अभिलाषा जाग पड़ी है ।"

पंडित पुनः अपने आसन पर बैठ गया और कहने लगा, "हां पूछिये । बताने की बात होगी तो बता दूंगा।"

"आप सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की खोज करने को एक दूषित बात मानते हैं क्या ?"

"निस्सन्देह ।"

"क्या हानि है इसमें ?"

"समाज को मायाजाल में फंसाने से हानि ही तो हो सकती है ।"

"मायाजाल क्या है ?"

"शारीरिक सौन्दर्य । यह क्षणभगुर और जड़ता में स्थित होने से असत्य है । परमात्मा, आत्मा से दूरस्थ मिथ्या शरीर में जाति का ध्यान केंद्रित करने से पूर्ण जाति सत्य से दूर हो जायेगी ।"

"क्या सुन्दर शरीर मे सुन्दर आत्मा का निवास नही होता ?"

"यह आवश्यक नही । सुन्दर आत्मा तो अपने शरीर को सुन्दर बना लेता है, परन्तु सुन्दर शरीर तो आत्मा को सुन्दर बनाने में अशक्त रहता है ।"

"आत्मा किसी ने देखा है क्या ?"

"तो कार्य कौन करता है ?"

"मन, जो शरीर का एक अंग है ।"

"इस पर भी यह तो सिद्ध ही है कि स्वस्थ मन और सुन्दर शरीर एक साथ होने आवश्यक नही ।"

"शरीर के सौन्दर्य के साथ मन की श्रेष्ठता बनाने का भी आयोजन है। इस कारण नृत्य और संगीत इस प्रतियोगिता का एक अंग है ।'

"हम यही तो सिद्ध करना चाहते हैं कि यह भ्रम है ।"

"कैसे करेंगे भगवन् ?"

"यह अभी नहीं बताया जा सकता। समय बतायेगा।"

"पर भगवन्, हमारी योजना को दूषित सिद्ध करने में आपको क्या मिलेगा ?'

"ब्राह्मण का कर्त्तव्य पालन करने में पुण्य।"

प्रमोद ब्राह्मण की युक्ति करने पर चकित था। वह उसके उत्तरो को सुन स्तब्ध रह गया और कितनी ही देर तक उसका मुख देखता रहा। पश्चात् कुछ विचार कर बोला, "शरीर का धर्म सुख-प्राप्ति नहीं है क्या ? और धर्म के पालन को पुण्य नहीं मानते आप ?"

"चिरस्थायी सुख-प्राप्ति ही धर्म है। क्षणिक सुख साधना जब स्थायी सुख में बाधक हो तो पाप भी हो जाती है।"

"जो सुख जीवन काल तक स्थिर रहे उसकी प्राप्ति तो पुण्य ही होगी ?"

"उसकी दृष्टि में, जो देहान्त को जीवन का अंत मानते है। यदि यह सिद्ध हो जावे कि ऐसे विचारको की दृष्टि बहुत लघु है तो फिर तो उक्त धारणा असत्य हो जावेगी।"

"प्रमाणो में हम प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।"

"ठीक है। पर अन्धे को प्रत्यक्ष तो कुछ भी नही होता। इसके यह अर्थ तो नही हो सकते कि कुछ है ही नही।"

यह वाद-विवाद दोनों को रुचिकर तो था, परन्तु प्रमोद अपने काम में बहुत व्यस्त था। इस कारण उसने अपने स्थान से उठ कर कहा, "आप के दर्शन फिर किसी समय प्राप्त करने का सौभाग्य मिलेगा क्या ?"

"हां। आप के विषय में किसी ने मुझको बताया था कि आप अति सज्जन पुरुष है। सो आप से मिल कर प्रसन्नता होनी चाहिये।"

"किसने मेरा परिचय दिया है आपको ?"

"एक है, किरण देवी।"

प्रमोद किरण का नाम सुन चौंक उठा। वह सतर्क हो भूदेव की ओर देखने लगा। वह पुन. बैठ गया और भूदेव से पूछने लगा, "क्षमा करें, भगवन्! देवी से आपका परिचय कैसे है ?"

"यह रहस्य की बात है जो वह स्वयं ही बता सकती है । मैं अपने विषय में तो बता सकता हूं ।"

"आपके विषय में तो मैं जानता हूं । आपका विवाद, जो महर्षि वामदेव जी से चल रहा है, मुझको पता है ।"

"तब तो आप बहुत कुछ जानते हैं । उन्होंने चुनौती दी थी । उसके फलस्वरूप ही मुझको देश भर में भ्रमण कर अनुराधा ढूँढनी पड़ी है । भगवान् की कृपा से वह मिल गयी है ।"

प्रमोद अभी पंडित भूदेव के कथन का अर्थ समझ ही रहा था कि वह उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं समझता हूं कि मेरे विषय में पूर्ण आवश्यक परिचय आप को मिल गया है । अब मुझको चलना चाहिये ।"

"आप नगर में कहा ठहरे हैं ?"

"पंथागार में ठहरा था । अब सड़क नापता हुआ नीरा को चल दूंगा ।"

"और आप की खोज, अनुराधा कहां है ?"

"अपनी मां के पास रहती है और वहां शिक्षा प्राप्त कर रही है ।"

"शिक्षा कौन दे रहा है ?"

"वह महाशय अपना नाम बताना नहीं चाहते ।"

प्रमोद को आज कई नवीन बातो का पता चला । वह जान गया कि अवन्ति के कोने-कोने में सुन्दरी-प्रतियोगिता की चर्चा चल पड़ी है । इस प्रतियोगिता पर कोई विशेष घटना घटने वाली है । इसके साथ भूदेव के विषय में उसके ज्ञान में भी वृद्धि हुई । वह उसको केवल एक मीमांसकमात्र ही जानता था । आज उसको पता चला कि वह एक मानसिक शक्ति का पुंज और दृढव्रती व्यक्ति है । वह कुछ कर दिखाने की क्षमता रखता है । सबसे अधिक विस्मयजनक बात जो उसको आज पता चली थी, वह किरण देवी के पंडित भूदेव से परिचय की बात थी । किरण देवी के मन में अपने प्रति आदर की बात सुन तो उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही ।

: ६ :

भूदेव कलाभवन से निकल उज्जयिनी के विशाल मार्गों पर चलता हुआ, नगर के दक्षिण द्वार की ओर जाने लगा। मुख ऊँचे किये हुए वह मन में विचार करता जाता था। श्वेतांग का प्रभाव वह जनता के मन से दूर करना चाहता था। वह जानता था कि कुमारदेव बहुत मोटी बुद्धि का व्यक्ति है, परन्तु पालकदेव के विषय में भी उसकी कोई अच्छी सम्मति नहीं थी। इससे उसके सम्मुख प्रश्न कुमारदेव और पालकदेव का नहीं था, प्रत्युत महामात्य श्वेतांग और पंडित सुदर्शन का था। सुदर्शन बहुत ही योग्य व्यक्ति होते हुए भी सरल चित्त था और पालकदेव की अशुद्ध नीति को वह बदल नहीं सका था। इस कारण श्वेतांग को हटाने पर कौन उसका स्थान ले सकता है, एक अति गम्भीर और विचारणीय बात थी। किरण ने उसको स्वयं महामात्य का पद लेने के लिये कहा था और वह अभी तक इस बात के लिये अपने मन को तैयार नहीं कर सका था। प्रमोद की बात, जो उसने किरण से कही थी कि श्वेतांग के अतिरिक्त कौन है, जो उज्जयिनी में यह सब कुछ कर सकने की शक्ति रखता है, उसको परेशान कर रही थी। वह समझता था कि पंडित सुदर्शन तो यह सब कुछ करने अथवा अब अवन्ति की राज्य-व्यवस्था चलाने की योग्यता नहीं रखता। तो क्या वह स्वयं राजनीति के कीचड़ में कूद पड़े?

दूसरी ओर महर्षि वामदेव की उसको चुनौती थी कि नास्तिक्य को परास्त करने की शक्ति आस्तिकवाद में नहीं है। इसके विष को दूर करने के लिये प्रकृतिवाद ही एक सिद्ध उपाय है। कठिनाई यह थी कि किरण भी महर्षि के विचार को ठीक समझने लगी थी। तो क्या वह श्वेतांग को हटवा कर अपने को महामात्य पद पर नियुक्त करवाने के लिये यत्न करे?

वह इन्हीं विचारों में चला जा रहा था कि एक स्त्री उसका मार्ग रोक कर खड़ी होगयी। पंडित को ठहरना पड़ा। स्त्री ने पंडित जी को

प्रणाम किया और कहा, "देवी जी आपको स्मरण करती हैं।"

"ओह! मवीका? कैसे पता चला देवी जी को कि मैं उज्जयिनी में हूं?"

"मैंने आज आपको उत्तरद्वार से प्रवेश करते और पंथागार की ओर जाते देखा था। मेरा विचार था कि आप विश्राम कर, देवी जी से मिलने आवेंगे। मैंने देवी जी से कह दिया था, परन्तु जब आप नहीं आये तो उन्होंने आपके पास मुझको भेज दिया। आप पंथागार में नहीं थे। वहां से पता चला कि आप कलाभवन में गये हैं। मैं वहां ही जा रही थी और आप मार्ग में ही मिल गये।"

"किस समय मिलेंगी देवी जी?"

"अपने आगार में, अभी।"

"इतनी आवश्यक बात क्या आन पड़ी है?"

"यह तो मैं नहीं जानती। कुछ दिनों से देवी जी चिन्तित प्रतीत होती हैं।"

"तो चलो।"

दोनों कुमारदेव के भवन की ओर चल पड़े। भवन के पिछवाड़े में सेवकों के लिये एक द्वार था। दासी पंडित जी को वहां ही ले गयी। प्रहरी को महाराज के हस्ताक्षरों सहित प्रवेश आज्ञा दिखा कर वह उनको किरण के आगार में ले गयी। किरण देवी महाराज कुमारदेव से भेंट कर लौटी ही थी कि मपीका ने सूचना दी कि आचार्य जी आ गये हैं।

किरण देवी ने आगार के द्वार पर आकर उनका स्वागत किया और उनको आदरसहित भीतर ले जाकर बैठाया। किरण ने चरण-स्पर्श किये और कहने लगी "गुरुदेव! आपने आने की सूचना नहीं दी। क्या अपराध हो गया है मुझसे?"

"सूचना देने का अवसर ही नहीं था बेटी! आधे दिन के लिये आया था और अभी जा रहा था। मपीका ने बताया है कि तुम बहुत चिन्ता में हो। यह सुन आ गया हूं। क्या बात है?"

"महर्षि जी का संदेश आया है कि वे आपसे मिलकर काम नही कर सकते। आपकी और उनकी नीति एक समान नही है। इससे चिन्ता लग रही थी। यहा तो अवस्था दिन प्रति दिन बिगड़ती जाती है। नगर की यह सूचना है कि दो तीन हत्यायें नित्य होजाती है। महामात्य इन सब समाचारो को महाराज से छुपा कर रखते है। एक असुर मत जिसको लिगैतवाद कहा जाता है, देश मे प्रचलित होता जाता है। यह क्या बला है कोई नही जानता। व्यापार मे धोखा होने लग गया है। असत्य, झूठ, लोभ, मोह, अहंकार, द्वेष इत्यादि सब दुर्गुण उन्नति कर रहे है। चोरी, ठगी और दुराचार आदि व्यसन बढ रहे है।

"अभी-अभी महाराज से इस विषय में बात कर आ रही हूँ। उनका कहना है कि प्रथम तो ये सूचनायें असत्य ही होगी और दूसरे यदि श्वेतांग जी को हटा दिया जावे तो उनका स्थान लेने वाला देश में है कौन ? यदि आप विद्वान् लोग परस्पर एकमत नहीं होते तो ससार तो रसातल को चला जावेगा।"

"तुम बहुत ही सरल चित्त हो किरण ! इसी कारण यह नही समझ पाती कि विद्वान् होने से कोई सत्य और कर्मठ नही हो सकता। महर्षि वासदेव में और मुझमें आकाश-पाताल का अंतर है। वे पश्चिम को जाते है तो मै पूर्व को जाना चाहता हू। वे किसी बात को दंडनीय मानते है तो मै उसको प्रशसनीय समझता हू। ऐसी अवस्था में मै यह कैसे मान सकता हूं कि वे और मै दोनो राज्य-भार वहन कर सकते है। मै महाराज पालकदेव के पुन. राज गद्दी पर बैठने के लिये कोई आशा नहीं रखता। वे महामात्य श्वेतांग के बराबर किसीको योग्य नहीं मानते। मै कुमारदेव के राज्यान्तर्गत यहा क्रान्ति करना चाहता हू और वे पालकदेव और श्वेतांग का संयोग कराने के लिये चिन्तित है।"

"यह तो कुछ बात नही बनी।"

"हां। मै तो अब इस बात का ही विचार कर रहा हूं कि क्या मै अपने को महामात्य पद के लिये तैयार करूँ?"

"यह तो वही बात हुई जो मैं कहती थी।"

"हां, परन्तु मैंने अभी स्वीकार नहीं की।"

"तो गुरुदेव शीघ्र स्वीकार कर लीजिये। बात बहुत अच्छी बन जावेगी।"

"अभी तो इतना कुछ ही करना है कि महामात्य श्वेतांग को कैसे पदच्युत किया जाये। जब यह हो जावेगा और उस समय यदि और कोई व्यक्ति इस काम के योग्य नही हुआ तो मैं इस काम को करने के लिये तैयार हो जाऊंगा।"

"धन्यवाद, गुरुदेव! आज मेरा सब प्रयास सफल हुआ। मैं यहां की अवस्था से आपको अवगत करती रहूंगी।"

"मैं प्रमोद से आज मिला हूं। मुझको वह शुद्ध और सरलचित्त बालक-मात्र ही प्रतीत हुआ है। बच्चों की भांति वह तितलियों को पकड़ने में लगा हुआ है। उसके मन को अपने विचारों मे ढालने की आवश्यकता है। इसके लिये यत्न करना चाहिये।"

"गुरुदेव! फिर कब दर्शन होंगे?"

"मैंने तुम को बता रखा है कि मुझको बुलाने के लिये क्या करना चाहिये।"

पश्चात् भूदेव किरण को आशीर्वाद देकर विदा हो गया। ज्यों ही वह किरण देवी के आगार से मषीका के साथ बाहर निकला, तो तीन सुभट हाथों में भाले लिये द्वार के बाहर खड़े दिखाई दिये। भूदेव के द्वार से बाहर निकलते ही सुभटों में से एक ने झुक कर प्रणाम किया और कहा, "महामात्य आप के दर्शन करना चाहते हैं।"

भूदेव एक क्षण अनिश्चित मन से खड़ा रहा। पश्चात् तुरंत ही अपने मन को सम्हाल कर बोला, "चलो।"

इस प्रकार वह सुभटों से घिरा हुआ भवन के उस पक्ष की ओर ले जाया गया, जिधर महामात्य रहता था। उसको इस प्रकार जाते हुए मषीका ने देखा और समझा कि हत्यारे उसकी हत्या करने के लिये ले जा

रहे हैं।

महामात्य उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। भूदेव के आने पर बिना उसको बैठने को कहे, श्वेतांग ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"भूदेव।"

"कौन ? आचार्य भूदेव ? जिनका शास्त्रार्थ महर्षि वामदेव से चल रहा है ?"

"जी हां।"

महामात्य श्वेतांग ने उठ कर भूदेव को आदरसहित अपने सामने रखे आसन पर बैठाया और कहा, "मुझको यह सूचना मिली थी कि कोई अपरिचित पुरुष किरण देवी से मिलने गया है। यह तो आप जानते हैं कि अन्तःपुर में कोई पुरुष जा नहीं सकता।"

"महाराज की आज्ञा से भी नहीं ?"

महामात्य महाराज की आज्ञा की बात सुन अवाक् रह गया। पीछे कुछ विचार कर बोला, "क्या मैं वह आज्ञापत्र देख सकता हूं।"

इससे भूदेव घबराया। वह आज्ञापत्र मषीका के हाथ में था और सुभट उसको पकड़ कर ले आये थे। इस पर भी उसने कहा, "किरण-देवी की दासी के हाथ में था। आपके भेजे सुभट आ गये और मुझको इधर ले आये। वह आज्ञापत्र उसके हाथ में ही रह गया है।"

श्वेतांग ने समझा कि आचार्य पकड़ा गया है, परन्तु उसी समय एक प्रतिहार आज्ञापत्र लेकर वहां आ गया और पत्र भूदेव जी के हाथ में देकर बोला, "किरणदेवी जी ने भेजा है, जिससे आचार्य जी को प्रासाद से बाहर जाने में कठिनाई न हो।"

प्रतिहार चला गया तो महामात्य ने वह आज्ञापत्र पढ़ा। उसको ठीक देख पंडित जी को देकर कहने लगा, "क्षमा करियेगा। मुझको यह विदित नहीं था कि आप के पास आज्ञापत्र है।"

"क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं। इस पर भी एक बात निवेदन करना चाहता हूं। आशा है कि आप इसको किसी बुरे भाव में न लेंगे। मुझको

पकड़ने से पूर्व आप को द्वारपाल से पूछ लेना चाहिये था कि उसने मुझको कैसे भीतर आने दिया है। आशा है इस सम्मति देने की धृष्टता के लिये महामात्य क्षमा करेंगे," इतना कह भूदेव खड़ा हो गया।

"यदि आपको बहुत शीघ्रता न हो तो अपनी संगत का लाभ कुछ और काल के लिये देने की कृपा करें।"

भूदेव ने खिड़की में से बाहर देख कर कहा, "एक घड़ी भर और आपकी सेवा में रह सकता हूं। मैंने आज ही नीरा जाना है। रथ मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा।"

"धन्यवाद! आप क्या लेंगे? दूध अथवा सुरा?"

"कुछ नहीं। मैं फलाहार लेता हूं और आज ले चुका हूं। आपका नाम तो बहुत सुना था सो आज इस विचित्र संयोग से दर्शन हो गये हैं। भगवान् का धन्यवाद है कि आपको उतना बुरा नहीं पाया जितना सुन रखा था।"

महामात्य खिलखिला कर हंस पड़ा। भूदेव भी मुस्कराया और चुप रहा। महामात्य ने कहा, "आपकी इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद करता हूं। पर भगवन्! मैंने कौन सी बात ऐसी की है जिससे कहने वाले मुझको बुरा कहते हैं।"

"यह एक बहुत ही लम्बा विषय है। उसके लिये आज पर्याप्त समय नहीं है। यदि आप की इच्छा हुई तो फिर किसी दिन उपस्थित हो जाऊंगा। इस पर भी इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि आप भूलें किया ही करते हैं, जैसे आज मुझको पकड़ कर की है।"

"मैं समझता हूं कि मैंने ठीक ही किया है। कहीं भवनपाल से आपके विषय में जांच करने को कह देता तो, आप का एक ओर तो अपमान हो जाता और दूसरे शायद भवनपाल की जांच आज समाप्त ही न हो सकती और आप नीरा न जा सकते।"

"सत्य? तब तो श्रीमान! आपका मुझको कृतज्ञ होना चाहिये। मैं उसको इतना मूर्ख नहीं समझता था।"

भूदेव की सतर्कता देख महामात्य विस्मय कर रहा था। इस पर उसने पुनः पूछा, "यदि वह इतना मूर्ख न होता तो क्या करता ?"

"प्रथम तो वह मुझको जानता है। मैं पहिले भी इस प्रासाद में आ चुका हूँ। दूसरे उसको यह बात विदित होती कि मैं आज्ञापत्र लेकर आया हूं। तीसरे वह महाराज के आज्ञापत्र को देख कर मुझ को वंदी बनाने की धृष्टता न करता। उसको महाराज का अपमान करने का साहस न हो सकता।"

श्वेतांग को आज भूदेव के तर्क करने की शक्ति का ज्ञान हुआ। पहिले तो वह उसको एक मूर्ख आस्तिक मात्र मानता था। वह इस प्रकार की बातो में तो निरुत्तर हो गया था, परन्तु वह यह जानना चाहता था कि किरण से उसका परिचय कैसे और किस प्रयोजन से है। इस कारण वह बात बदल कर पूछने लगा," आप ठीक कहते हैं, परन्तु एक बात मुझको समझ नहीं आ रही। ये किरणदेवी आप की परिचित कैसे है ?"

भूदेव मुस्करा कर बोला, "आप का गुप्तचर विभाग बहुत ही दुर्बल प्रतीत होता है। सुनिये, श्रीमान्! किरण देवी के पालनकर्त्ता अथवा शिक्षक मेरे गुरु भाई हैं। किरण देवी को बेचकर दक्षिण की ओर अपनी अन्य दासियां बेचने के लिये चले गये थे। कुछ मास हुए, वे लौट कर आये तो मेरे निवास स्थान पर ठहरे थे। उनकी कृपा से महाराज कुमार-देव और उनके द्वारा मेरा किरणदेवी से परिचय हुआ था। तब से कभी-कभी किरण देवी से भेंट करने की स्वीकृति मिलती रहती है।"

"तो आप भी क्या क्रीतदासियो का व्यवसाय करते है ?"

"नहीं, यह व्यवसाय उत्ताल बाबा ने गुरु जी की शिक्षा से ग्रहण नहीं किया। यह तो उनकी अपनी बुद्धि के तर्क से स्वीकार किया हुआ कार्य है।"

"इस पर भी वह आपके पास आकर ठहरा था ?"

"इस काम के अतिरिक्त वह बहुत ही गुणी व्यक्ति है।"

"आपके गुरु कहां रहते थे ?"

"काश्मीर में। चक्रधरपुर के समीप एक आश्रम में।"

"किरण देवी के माता-पिता का कुछ ज्ञान है आपको ?"

"नहीं। मैंने कभी पूछा नहीं। इस पर भी उत्ताल बाबा के मुख से एक बार निकल गया था कि काश्मीर के आदिवासी नागो के महाराज पद्मनागराज राज्य-च्युत होने पर, एक गांव में रहने लगे थे। उनकी संतान बहुत निर्धन हो गयी थी और यह कन्या उनके परिवार में से है।"

: १० :

श्वेतांग, कुछ काल से, किरण के व्यवहार को समझ नहीं रहा था। एक ओर तो उसका प्रभाव महाराज कुमारदेव पर बढ़ रहा था और दूसरी ओर वह उससे तटस्थ रहने लगी थी। कभी ही उसकी महामात्य से भेंट हो सकती थी।

श्वेतांग को राज्य का कार्य भी करना पड़ता था। इस कारण उसको अवकाश बहुत कम मिलता था। महाराज से मिलने के समय, जो कभी किरण से भेंट हो जाती थी, अब वह भी नहीं हो सकी थी। जब भी वह महाराज की सेवा में उपस्थित होता किरण किसी कार्य मे व्यस्त किसी अन्य स्थान पर होती थी।

आज वह भूदेव से किरण का परिचय और महाराज का इस योग्य व्यक्ति से मेलजोल का पता पा, ऐसा अनुभव करने लगा था, जैसे उसके पांव तले से मिट्टी खिसक रही है। उसको ऐसा प्रतीत हुआ था कि उसका प्रभाव राज्य और महाराज पर से कम हो रहा है।

किरण ने हठ कर महाराज के राज्याभिषेक की तिथि निश्चय करवायी थी। यह क्यों ? वह इस रहस्य को समझ नहीं रहा था। एक व्यक्ति, जिसके मन में यह बात बैठी हुई हो कि मनुष्य सदैव स्वार्थ के लिये कार्य करता है, वह किरण के राज्याभिषेक के लिये यत्न को समझ नहीं सका था। किरण तो, वह विचार करता था, कुमारदेव से घृणा करती है। उसको यह विश्वास-सा हो गया था कि वह उससे कुछ

तो प्रेम करती ही है। इस पृष्ठ-भूमि की उपस्थिति पर यह राज्याभिषेक की बात उसको समझ नही आती थी। एक बात उसे समझ आयी कि अज्ञान अथवा मोह वश वह अपना हित-अहित समझ नहीं पा रही। इस कारण उसको अपने हित का ज्ञान होते ही वह उसके साथ मिल कर कार्य करने लगेगी, ऐसा विचार कर वह किरण से मिलने के लिये चल पड़ा।

भवन के मुख्य द्वार के बाईं ओर महामात्य का निवास स्थान था। द्वार के दाहिनी ओर राज्य-कार्यालय था। महामात्य को कार्यालय में जाने के लिये अपने निवास स्थान से निकल, द्वार से भवन के भीतर जाने वाले मार्ग को पार कर जाना होता था। इस प्रकार कार्यालय में जाने के लिये महाराज के निवास स्थान की ओर जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसी कार्यालय के एक आगार में महाराज स्वय भी आकर बैठते थे।

द्वार से महाराज के निवास स्थान को मार्ग सीधा ही जाता था। यह मार्ग एक विशाल आगार के सामने जाकर दो मार्गों में फट जाता था। यही आगार था, जहा महाराज प्रजा से भेंट किया करते थे और इसमें ही विराट् भोजन, नृत्य तथा सगीत सभाए हुआ करती थी।

मार्ग इस विशाल आगार के अगल-बगल होकर दो ओर चला जाता था। दोनो ओर मार्ग दो प्रागणो में खुलता था। प्रागण बहुत बडे बड़े थे और दोनो में उद्यान लगे हुए थे। उद्यानो में पुष्करिणियां थीं, जिनमें जल-प्रपात बने हुए थे। उद्यानो में पुष्प-लताओ से ढके कुंज, चम्पा-चमेली की लतायें, गुलाब के क्षुप और सघन पीपल के पेड़ थे। दाहिने प्रांगण के एक ओर महाराज का निवास स्थान था। महाराज के आगारों के अगल-बगल किरण-रेखा के आगार थे और शेष आगारो में महाराज की अन्य प्रिय दास दासियां रहती थी।

बाईं ओर के प्रांगण के चारो ओर के आगारो में भवनपाल तथा वे सुभट रहते थे, जो दिन-रात भवन सम्बन्धित प्रबन्ध और रक्षा का कार्य करते थे।

महाराज के लिये कई शयनागार थे। इनके अतिरिक्त वे रेखा और

किरण के आगारों में भी जाकर विश्राम करते थे। इस कारण कोई नहीं कह सकता था कि वे रात कहां सोयेंगे। भवन के पिछवाड़े में नदी बहती थी और वह भवन की भूमि से बहुत नीची थी। बंदियो के आगार यूँ तो भवन की भूमि के नीचे थे, परन्तु उनमें के गवाक्ष नदी के ऊपर खुलते थे और उनमें से स्वच्छ शीतल वायु आती रहती थी।

महामात्य आज किरण से मिलने का निश्चय कर अपने आगार से निकल, द्वार से आ रहे मार्ग पर से होता हुआ, आगार के दाहिनी ओर के प्रांगण में जा पहुंचा। वहां मषीका खड़ी उद्यान की शोभा देख रही थी। महामात्य ने उससे पूछा, "मषीका ! देवी से भेंट हो सकेगी क्या ?".

"श्रीमान् ! वे आपकी प्रतीक्षा कर रही है। उनकी आज्ञा है कि आप के आते ही उनको सूचना दी जावे।"

श्वेतांग समझ गया कि भूदेव के विषय मे बात होगी। इससे वह अपने मन में विचार करने लगा कि क्या बहाना करे। इस समय मषीका भीतर सूचना देने चली गयी थी। वह अभी विचार कर भी नहीं पाया था कि मषीका आ गयी और महामात्य को भीतर चलने के लिये कहने लगी।

जब महामात्य किरण के आगार में पहुंचा तो वह वहां खड़ी थी। खड़े-खड़े ही उसने नमस्कार किया और पूछा, "क्या आज्ञा है श्रीमान् ?"

"आज्ञा तो आप करने वाली है। विदित हुआ है कि आप मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं।"

"वह तो मैं पीछे बताऊंगी। यदि आप नहीं आते तो मैं स्वयं सेवा में उपस्थित हो जाती। अब तो आप ही आये हैं न ? तो बताइये किस कारण इतना कष्ट किया है ?"

"मैं समझता हूं कि जिस काम से आप सेवक को स्मरण कर रही थीं, शायद उसी काम से आया हूं। मै पंडित भूदेव के विषय में ही पूछने आया था।"

"हां, पूछिये । उनको अभी आपने छोड़ा है या नही ?"

"छोड तो दिया है, परन्तु छोड़ देने पर संतोष नहीं हुआ ।"

"तो श्रीमान् ! यह असंतोष की बात क्यो कर दी है ?"

"केवल आपके मान-अपमान की बात का विचार कर । उनको बंदी बना यदि अभियोग चलवाता तो आपका नाम उसमें बार-बार आता । इससे भारी अपमान हो जाता । शायद आपको भी न्यायालय में जाकर अपना वक्तव्य देना पड़ता और भगवान् जाने, आपको भी बंदी बनाने की आवश्यकता पड़ जाती ।"

"ओह ! बडे दयालु है आप । इस क्षुद्र दासी के मान की रक्षा की बहुत चिन्ता रहती है आपको ! मै आपकी बहुत कृतज्ञ हू । पर श्रीमान् ! आपको इस क्रीतदासी से भी अधिक महाराज के हस्ताक्षरों के मान की रक्षा नहीं करनी चाहिये क्या ?"

"कौन महाराज ? तुम्हारे तो महाराज पालकदेव है न ?"

"अवन्ति में महाराज एक है । वह है महाराज कुमारदेव, जिनके राज्याभिषेक के लिये आप सहमत ही होने में नहीं आते ।"

"देखो किरण ! औरतों को राजनीति में हस्तक्षेप नही करना चाहिये । इसका परिणाम ठीक नहीं होगा ।"

"मैंने आपकी राजनीति में कभी हस्तक्षेप नही किया । कोई उदाहरण देकर बताइये । मै तो महाराज की क्रीतदासी मात्र हूं । जब वे कोई आज्ञा देते है तो मै उसमें न नही कर सकती ।"

"यह भूदेव से मिलना ही राजनीति में हस्तक्षेप है । उनका राज-भवन में आना ही इस बात का प्रमाण है कि कोई षड्यंत्र हो रहा है ।"

"कौन षड्यंत्र कर रहा है ?"

"पंडित भूदेव और तुम ।"

"किस के विरुद्ध यह षड्यंत्र हो रहा है ?"

"राज्य के विरुद्ध ।"

किरण को क्रोध आ रहा था और वह अपने को नियंत्रण

में रखने का बहुत यत्न कर रही थी। इस पर भी उसने कहा, "अच्छी बात है। आप अपना अभियोग लेकर महाराज के सम्मुख चलें। मैं अपनी सफाई तो वहां ही दूँगी। चलिये।"

"चलने से पूर्व मैं एक बात कह देना चाहता हू कि आज सायकाल आप आइये और मेरे पास जो प्रमाण है देख लीजिये। उनको देख कर भी यदि आपका विचार हुआ कि महाराज के सामने यह बात जानी ही चाहिये, तो जावेगी ही।"

"क्या प्रमाण आप दिखा सकते है? मैंने कोई ऐसी बात नहीं की जिसका मुझको भय हो। मैं अभी महाराज के पास चलने के लिये तैयार हूँ।"

"क्रोध मत करो किरण! मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं। मैंने जब से तुमको देखा है तब से ही मैं तुमसे प्रेम करता हूं। मैं समझता हूं कि तुम भी मेरे लिये कुछ तो आदर का भाव रखती हो। ऐसी अवस्था में हम दोनो को इस मूर्ख महाराज के लिये अपने सुख और भोग का बलिदान नही कर देना चाहिये।"

किरण हंस पडी। उसने व्यग के भाव में कहा, "यह प्रेम का पाठ आप कहा से पढ़ गये है?"

"क्यों?"

"आप तो प्रेम मे विश्वास नहीं रखते थे।"

"तुम्हारी संगत का फल हो रहा है। देखो किरण! मैं, सत्य ही, प्रेम के अर्थ नही समझता। इतना तो जानता हूं कि तुम अति सुन्दर हो, तुम सुशील हो, भद्र हो और बहुत ही विदुषी हो। तुम से विवाह कर तुमको अपनी कह सकना किसी का भी परम सौभाग्य हो सकता है। मैं भी इसी बात के लिये यत्न कर रहा हूं।"

"इसी कारण मुझको डरा-धमका कर, विवाह के लिये तैयार कर, सौभाग्यशाली होना चाहते है?"

"धमकाने की बात छोड़ो। उसके अतिरिक्त भी कई उपाय है।

आज सायंकाल तो मैं सत्य ही तुम को ऐसे प्रमाण दिखाना चाहता हूं, जिनको देखकर तुम पंडित भूदेव के समीप भी जाना पसन्द नहीं करोगी। आज तुम आकर देख लो। तुम को संतोष हो जावेगा।"

किरण को विश्वास था कि उसके पास कोई प्रमाण नहीं हो सकता, जिससे आचार्य जी पर कोई आरोप लग सके। इस पर भी वह विचार कर रही थी कि सायंकाल वह उसके कथन की परीक्षा करने जाये अथवा नहीं। उसको चुप देख श्वेतांग ने कह दिया, "बात पक्की रही। मैं सब पत्र-पत्रक कार्यालय से निकलवा रखूँगा। अच्छी बात, अब मैं जाता हू।"

श्वेतांग नमस्कार कर चला गया। किरण विचार करती रही कि वह व्यर्थ की बात में समय गंवाये अथवा न। अभी वह किसी निर्णय पर पहुंच नहीं सकी थी कि सायंकाल हो गया। वह अभी अनिश्चित मन थी। इस समय महाराज का संदेश आया कि वे किरण देवी से मिलना चाहते हैं।

: ११ :

"यह तो भारी पाप हो गया है महाराज!" एक बाईस वर्ष का युवक महाराज कुमारदेव को कह रहा था। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। ब्राह्म मुहूर्त्त का घड़ियाल अभी बजा नहीं था। महाराज रेखा के शयनागार में बिस्तर पर लेटे हुए थे और युवक पलंग के समीप आदरयुक्त मुद्रा में खड़ा था। महाराज के पलंग के समीप एक दूसरा पलंग था, जो खाली पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस पर सोने वाला अभी अभी उठ कर कहीं चला गया है। यह युवक मनोज था।

इससे छै मास पूर्व, मनोज अवन्ति में आया था। उसके माता-पिता का देहान्त मार्ग में ही हो गया था। इससे अति दुःखी मन हो वह विन्ध्याचल में ही विचरता रहा। समय व्यतीत होने से मन की व्यथा धीमी पड़ गयी और वह कुमारदेव के वचन को स्मरण कर अवन्ति आ पहुँचा। उज्जयिनी पहुंच, महाराज कुमारदेव को सिंहासनारूढ देख जहां वह

प्रसन्न हुआ, वहां चकित भी हुआ। उसने महाराज से सहायता मांगी तो महाराज ने उसको अपने गुप्तचर विभाग में रख लिया। उन दिनों महाराज अपने राज्याभिषेक की तिथि के निश्चय न हो सकने के कारण महामात्य से अति क्षुब्ध थे। इस कारण उन्होंने मनोज से पूछा, "ब्राह्मण कुमार! कोई भय युक्त कार्य भी कर सकोगे?"

"महाराज! मृत्यु से अधिक भययुक्त कोई बात नहीं है। मैं वह भी अपने सामने देख चुका हूँ। महाराज! आज्ञा करिये और विश्वास रखिये कि निर्भीकता से कार्य सम्पन्न किया जावेगा।"

"अच्छी बात है। महामात्य श्वेतांग के यहां प्रतिहार के रूप में सेवा करो और उसके प्रत्येक कार्य की देखरेख रखो। जब तुम वहां काम पा जावोगे, तब मैं तुम को बताऊंगा कि किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना है और मुझसे कैसे सम्पर्क बनाना है।"

इस प्रकार कुछ प्रतीक्षा और प्रयत्न के पश्चात् मनोज 'लारू' के नकली नाम से महामात्य के यहां एक सेवक का काम पा गया। उसको यह काम करते हुए छै मास से ऊपर हो चुके थे। इस काल में उसने महामात्य की अनेकों बातें महाराज कुमारदेव को बतायी थीं। इन बातों का परिणाम ही यह हुआ था कि कुमारदेव अपने को बिना राज्याभिषेक के अरक्षित पाने लगा था। यही कारण था कि कुमारदेव श्वेतांग से सतर्क होता जाता था। एक भ्रम उसके मन में अभी भी था। वह यह समझता था कि किरण उसके साथ सहानुभूति रखती है और यदि वह श्वेतांग की विवाहिता बन गयी तो श्वेतांग उसको धोखा नहीं दे सकेगा। इस कारण वह मन से चाहता था कि श्वेतांग और किरण का विवाह हो जावे।

मनोज प्रायः पिछली रात अपने समाचार लेकर कुमारदेव के पास आया करता था। वह अभी अपने शयनागार में ही होता था कि मनोज वहां पहुंच शयनागार का द्वार खटखटा देता और रेखा अथवा जो भी दासी महाराज की सेवा में होती, उठकर परदे के पीछे हो जाती। मनोज अपनी सूचना देकर चला जाता। महाराज उस सूचना पर विचार

करता और अपना व्यवहार निश्चय करता।

आज मनोज ने जो सूचना दी थी, उसको सुनकर महाराज ने कहा था, "यह तो एक बहुत ही साधारण घटना है, मनोज !" इस पर मनोज ने कहा था कि एक घोर पाप हो गया है।

इस पर महाराज ने कहा, "देखो मनोज ! हमने तुमको अपने यहां इसलिये नहीं रखा था कि तुम समाचारों पर टीका-टिप्पणी भी करो। राज्य के विषय में जब भी तुमने सूचना दी, मैंने सुनी। अब तुम अपने कार्य-क्षेत्र से बाहर की बात कर रहे हो।"

"महाराज ! मुझको आपकी सेवा करते हुए आज छै मास से ऊपर हो गये हैं। मैंने शुद्ध हृदय से अपना काम निभाया है। मैं समझता हूँ कि मैंने आपको ऐसी सूचनाएं भी दी हैं, जिनसे आपको भारी लाभ हुआ है। मेरा विचार है कि राजभवन में जो कुछ होता है वह राज्यकार्य से न्यूनाधिक सम्बन्ध रखता ही है। जो बात आज रात महामात्य के आगार में हुई है, वह राज्य पर प्रभाव उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगी। यह पाप हुआ है और पाप का परिणाम अच्छा नहीं हो सकता।"

कुमारदेव की मोटी बुद्धि में बात आने लगी थी। इस पर भी उसने केवल यह कहा, "अच्छी बात है। तुमने अपने विचार से अपना कर्तव्य पालन किया। अब तुम जाओ और अपने कार्य पर डट जाओ। इस सूचना के लिये हम तुमको पुरस्कार देंगे और तुम्हारे इस कार्य पर की गई समालोचना पर विचार करेंगे।"

मनोज इस उत्तर पर संतुष्ट हो महाराज को नमस्कार कर बाहर निकल गया। अभी दिन चढने में समय था। मनोज महाराज के शयनागार में से निकल कर पिछवाड़े की ओर से एक संकरे मार्ग में से होता हुआ, बृहत् आगार के पीछे से एक गुप्त मार्ग द्वारा भवन के उस प्रांगण में जा पहुंचा, जहां भवन के कर्मचारी रहते थे। वहां एक आगार का ताला खोल कर भीतर चला गया। यह उसके रहने का आगार था। कपड़े उतार वह सो गया।

मनोज जब महाराज के शयनागार में से निकल गया तो महाराज खिल-

खिला कर हंस पड़ा। हंसी की ध्वनि सुन रेखा, जो एक पर्दे के पीछे छुप कर वार्तालाप सुन रही थी, बाहर आ गयी और महाराज के गले में बांह डाल कर कहने लगी, "अब ठीक हुआ है। वहुत अभिमान था इसको अपने सतीत्व पर। सब मद चूर हुआ है। पर यह आपका सेवक कुछ मूर्ख प्रतीत होता है।"

"नहीं प्रिये! यह मूर्ख नही। हमने जो कुछ किया है अपने विचार से ठीक किया है। इसको यह पता नहीं कि किरण के साथ इस व्यवहार में हमारा भी हाथ है। उसके विचार में यह पाप हो गया है। कौन कह सकता है कि उसका कहना ठीक नही होगा? इस काम का राज्य के ऊपर क्या प्रभाव हो सकता है, यह एक अनुमान का विषय है। उसका अनुमान हमसे भिन्न है।"

"कुछ नही होगा इससे। कौन जानता है किरण को? महाराज पालकदेव के बंदी होने पर तो किसी ने कुछ किया नही। इस क्रीतदासी का मान उनसे भी अधिक हो गया है क्या? कुछ नही होगा महाराज! यह युवक पागल है, जो ऐसा अनुभव करता है।"

"है तो यह बहुत ही बुरी बात। यद्यपि हमारा आशय तो शुद्ध ही है। हम चाहते है कि वह महामात्य से विवाह करना स्वीकार कर ले। इस पर भी यह तो मानना ही पडेगा कि किसी को अचेत कर उससे भोग करना दण्डनीय है।"

"कैसे दंडनीय हो गया महाराज!" रेखा ने अभिमान से कहा, "है तो वह क्रीतदासी। उसे आप बेच भी सकते है। तो फिर यदि किसी पर-पुरुष को आपने उसे भेंट कर दिया तो कौन अनर्थ हो गया?"

"अभी मैंने उसको बेचा नहीं। न ही उसको किसी को भेंट किया है। उसको तो अचेत कर उसका भोग किया गया है। यह तो किसी भी नियम से उचित प्रतीत नहीं होता।"

"महाराज! राज्य कार्य में कई ऐसी बात करनी पड़ती है, जो प्रत्यक्ष रूप में अनुचित प्रतीत होती है, परन्तु राज्य के हानि-लाभ की दृष्टि से

बहुत ही उपकारी सिद्ध होती है। मेरा विचार है कि अब किरण महामात्य से विवाह करने के लिये तैयार हो जावेगी और महामात्य का चित्त राज्यकार्य में लगने लगेगा।"

"यही तो देखना है। मनोज इस परिणाम की आशा नहीं करता प्रतीत होता।"

किरण को जब चेतना हुई तो वह अभी भी महामात्य की शय्या पर लेटी थी। महामात्य उसके साथ ही गहरी नींद सो रहा था। किरण को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक स्वप्न से जागी है। उस स्वप्न में, उसको धुंधला सा स्मरण हो रहा था कि महामात्य उससे प्रेम प्रकट करता था। वह उसके प्रेम को पसन्द नहीं करती थी, परन्तु उसमें या तो शक्ति नही थी या उसको यह विश्वास था कि वह स्वप्न देख रही है, जिससे वह उसके प्रेम का विरोध नही कर सकी। प्रेम प्रलाप के पश्चात् महामात्य का उसको गोदी में उठा कर शय्या पर लेटा देना, उसको अवस्त्र करना और फिर उससे संभोग करना, सब कुछ उसको स्वप्नवत् स्मरण था। उसके पश्चात् उसको नींद आ गयी और जैसे गहरी नीद में स्वप्न विलीन हो जाते है, वैसे ही हुआ।

अब जब नींद खुली तो पहिला विचार उसके मन में यह आया कि कितना भद्दा स्वप्न देखा है उसने। पश्चात् उसको ज्ञान हुआ कि वह सर्वथा नग्न हो रही है। इसके साथ ही उसको यह समझ आया कि यह उसका अपना शयनागार नही है। इस बात के स्पष्ट होते ही वह घबरा कर उठी और उसकी दृष्टि अपने समीप ही सर्वथा नग्न लेटे हुए श्वेताग पर गयी।

श्वेताग वास्तव में एक सुन्दर सुडौल पुरुष था। कुमार उसके सामने बहुत ही भद्दी रूप-रेखा रखता था। श्वेताग को देख यह विचार एक क्षण के लिये उसके मनमें आया, परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपने से किये गये कुकर्म की नीचता का ज्ञान हो गया। वह इस ज्ञान से काप उठी और उसे पसीना छूटने लगा। उसके मस्तिष्क में चक्कर आने लगे और वह अपने सिर

को दोनों हाथों में पकड़ कर बैठ गयी। इस समय श्वेतांग ने करवट ली और किरण को अपने नग्न होने का ज्ञान हो गया। श्वेतांग को जागने वाला ही जान, उसका मन क्रोध, लज्जा और ग्लानि से भर गया। वह सिर को छोड़ शैय्या से उठी और अपने वस्त्रों को ढूँढने लगी। वे उसी आगार के एक कोने में पड़े थे। उसने पहन लिये और पूर्व इसके कि श्वेतांग जाग जाये, आगार का द्वार खोल, लुड़कती-गिरती बाहर निकल गयी। उसके चक्कर अभी मिटे नही थे। उसको कुछ ऐसा भास हुआ कि श्वेतांग की दासी, जो रात उनको मदिरा पिला रही थी, आगार के बाहर खड़ी उसकी ओर देख मुस्करा रही थी। किरण ने देखा और रात की घटना का धुँधला सा स्मरण उसको हो आया। उसने वहां खड़े रहना उचित नही समझा और गिरती-पड़ती चली गयी। अपने आगार में पहुंच उसने द्वार भीतर से बंद कर लिया और पलंग पर लेट गयी।

उसके मस्तिष्क में फिर रात की बातें आने लगीं। वह महाराज कुमारदेव के सामने बैठी थी। महाराज ने उसको कहा था कि महामात्य उसके साथ एक आवश्यक राजकीय विषय पर बातचीत करना चाहता है। किरण ने कहा था कि उसको महामात्य के साथ राजकीय विषयो पर बात-चीत करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। महाराज का कहना था, "महामात्य का विचार है कि तुम यदि उसकी बात समझ जाओगी तो राज्य कार्य में भारी सहायता दे सकोगी। मैं तुम्हारी योग्यता को जानता हूं। इस कारण कहता हूं कि उसकी बात सुन लेने में हानि नही है।"

महाराज के इस प्रकार कहने पर वह महामात्य से बात करने पर तैयार हो गयी। वह गयी। महामात्य ने एक बहुत ही उच्च स्तर पर भोज का प्रबन्ध कर रखा था। अनेक प्रकार के मांस, मदिरा, मिठाइयां तथा अन्य पकवान बनवाये हुए थे। उसने कहा भी था कि कि वह तो उन प्रमाणो को देखने आयी है, जो महामात्य के पास आचार्य भूदेव के विरुद्ध हैं।

महामात्य ने कहा, "वह भी तो दिखाऊंगा। पहिले भोजन हो जावे तो हानि है क्या ?"

ज्यों-ज्यों भोजन होता गया किरण को भूख तथा प्यास लगती गयी और वह उस स्वादिष्ट भोजन और सुवासित मद्य का सेवन करती गयी। एक समय आया कि वह अपने को शिथिल पाने लगी। उसने कहा था, "श्रीमान् , यह मद्य बहुत ही तीव्र प्रतीत होती है ?"

"नहीं तो। मुझ को तो पता भी नहीं चला।"

इस पर भी किरण ने अनुभव किया कि उसको झपकी आने लगी है। इससे उसका सिर घूमने लगा। श्वेतांग ने उसको आश्रय दिया और गोदी में ले लिया।

इसके पश्चात् जो कुछ हुआ वह उसको स्वप्नवत् ही स्मरण था, परन्तु नींद खुलने पर जब उसने अपने को श्वेतांग की शैय्या पर लेटे पाया तो उसको स्वप्न के सत्य होने का विश्वास हो गया और इसको समझ वह अपनी पराजय पर लज्जा और आत्मग्लानि से गलने लगी। वह अपना सिर धुनने लगी और अपने को इस जाल में फंसा हुआ पा हताश हो पलंग पर लेट गयी।

दिन चढ़ आया था। दासी ने द्वार खटखटाया। किरण ने उठ कर खोला। दासी ने कहा, "देवी क्या बात है ? बंदियों का भोजन नहीं जायेगा आज ?"

किरण को स्मरण हो आया। वह पलंग से उठी और अपने संदूक से ताली निकाल, दासी को देकर बोली, "जाकर महाराज से कह दो कि मैं आज रुग्ण हूं और कार्य नहीं कर सकती। क्षमा चाहती हूं।"

मषीका गयी और ताली लिये हुए लौट आयी। उसने बताया, "महाराज स्वयं यहां ही आ रहे हैं।"

"पर बंदी भूख से व्याकुल हो रहे होंगे।"

"मैंने कहा था। उनका कहना है कि वे शीघ्र ही आ रहे हैं।"

इस पर भी महाराज नहीं आये। प्रहर भर दिन व्यतीत हो गया। मषीका फिर आयी और कहने लगी, "देवी ! बंदी भूखे हैं।"

विवश किरण उठी और भोजन-सामग्री, जो सेवक वहां रख गये थे, दासी से उठवाई और भूगर्भ आगारों को चली गयी।

महामात्य सुदर्शन और महाराज पालकदेव क्रोध से लाल-पीले हो रहे थे। महारानी पद्मावती तो भूख से हताश हो पलंग पर जा लेटी थी। आज कल उनके आगार खुले रखे जाते थे, जिससे वे परस्पर मिल जुल और बातचीत कर सकते थे। जब बाहर के द्वार के खुलने का शब्द सुनाई दिया तो दोनो उसको डांट-फटकार बताने के लिये तैयार खड़े थे। परन्तु जब किरण ने आगार से प्रवेश किया तो उसका पीत मुख देख और उसकी टांगों मे अस्थिरता देख चुप कर गये। भोजन परसा जाने लगा और किरण बिना एक भी शब्द बोले सामने खड़ी रही। पालकदेव से नहीं रहा गया। उसने भोजन पर बैठने से पूर्व पूछ ही लिया, "किरण देवी! कुछ अस्वस्थ प्रतीत होती हो ?"

किरण ने उत्तर नही दिया, परन्तु उसकी आंखें डबडबा आयीं। पालकदेव और सुदर्शन दोनो ने देखा। इस कारण अवाक् मुख खडे रह गये। पद्मावती आसन पर बैठ गयी थी, परन्तु जब दोनों पुरुषो को खडे देखा तो वह भी विस्मय में सब को देखने लगी। महामात्य सुदर्शन ने आग्रह-पूर्वक पूछा, "बहुत दुखी हो देवी ?"

भर्राये स्वर में किरण ने कहा, "आप जलपान करिये, पहिले ही बहुत देर हो चुकी है। शायद कल से मैं इस काम पर आ नही सकूँगी। इस कारण अपनी पिछले दो वर्षों की भूलों के लिये क्षमा चाहती हूँ।"

"क्या हम तुम्हारे दुःख को बांट नही सकते ?"

"बहुत कठिन है श्रीमान्! एक क्रीतदासी से सहानुभूति दिखा कर कुछ लाभ नही होगा। मेरा निवेदन है कि आप आज तो पेट भर खा लीजिये। मध्याह्न के समय यदि फिर आना पड़ा तो बताने का यत्न करूगी।"

इतना कह वह अपने आंचल से गालों पर ढुलक रहे आसुओं को पूँछने लगी। महाराज और महामात्य भी भोजन पर बैठ गये। तीनो ने एक-एक कौर खाया और उठ बैठे। पालकदेव सबसे आगे थे। उसने दासी को कहा, "ले जाओ उठा कर। खाने को चित्त नही करता।"

किरण देवी बिना और अधिक कहे वहां से चली आयी। मध्याह्न

पश्चात महाराज कुमारदेव किरण के आगार में आये और पूछने लगे, "किरण ! क्या बात है ?"

"महाराज ! मेरा मन विक्षुब्ध है। इस कारण, इस भय से कि कहीं कोई भूल न कर बैठूँ, बंदियो के आगारो की तालिया महाराज के पास भेजी थी। आप से निवेदन था कि बंदियो की देखभाल का काम किसी अन्य से करवा लें।"

"क्या कष्ट है देवी को ?"

"मै श्रीमान् के सामने अपना अभियोग उपस्थित करूंगी, परन्तु अभी तो इसके भी योग्य नहीं कि अपने मन के भावो को व्यवस्थित भाषा में व्यक्त कर सकूं। इस कारण वह मै एक-दो दिनों में सेवा में निवेदन करूंगी। अभी तो मै उस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य से, जो श्रीमान् ने मुझको पिछले दो वर्ष से सौंप रखा है, अवकाश चाहती हूँ। पीछे यदि जीवित रही तो पुनः श्रीमान् जी की स्थिर मन से सेवा करने के लिये तैयार रहूगी।"

"पर देवी ! क्या बात हो गयी है जिससे जीवन-मरण की समस्या आन उपस्थित हुई है ?"

"तो क्या श्रीमान् मुझको अपने विचारो को सुव्यवस्थित करने का अवसर भी देना नहीं चाहते ?"

"पर यह कार्य कौन करेगा ? मेरे पास इस कार्य को करने के लिये कोई विश्वस्त कर्मचारी नहीं है।"

"पर महाराज ! मै विवश हूँ।"

"तुम मेरी आज्ञा भी नही मानती क्या ?"

"मानना चाहती हूँ पर अपने को अशक्त पाती हूँ।"

कुमारदेव के मन में आया कि यवन इत्यादि देशो में क्रीत दास-दासियो को कोडे लगा-लगा कर काम लिया जाता है। तो क्या किरण को भी इसी प्रकार काम करने पर विवश किया जाये। फिर कुछ विचार कर चुप कर रहा और ताली लेकर वहा से चला गया।

: १२ :

दो दिन में ही भवन में धूम मच गयी कि किरण देवी ने आमरण उपवास कर रखा है। वह केवल जल ले रही है और मरणपर्यन्त न खाने का व्रत लिये हुए है। कानो-कान दास-दासियों में यह बात विख्यात हो रही थी कि महामात्य ने एक रात किरण देवी को मद्य पिला, अचेत कर उससे भोग किया है। इसीसे किरण देवी रुष्ट है और अब मर जाने का निश्चय किये हुए है।

इस समाचार से अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार दास-दासियां किरण के व्यवहार पर टीका-टिप्पणी करने लगी थी। लोग तीन प्रकार के विचार रखने वाले थे। एक तो वे थे जो क्रीतदासी की प्रथा को वैसे ही समझते थे जैसे फारस, यूनान इत्यादि देशों में थी। वे कहते थे कि दासी तो दासी ही है। वह तो बिकने वाल वस्तु है। जिसके पास गयी वह उसी की भार्या बनने के लिये बाध्य है। दूसरे लोग वे थे, जिनके मस्तिष्क मे अभी भी भारत में प्रचलित नारी की मान मर्यादा विद्यमान थी। वे क्रीतदासी को नगर में बिकने वाली वेश्या नहीं मानते थे। तीसरे वे लोग थे, जो कहते थे कि किरण को, चाहे कुछ भी हो, धोखा दिया गया है। यह तो बलात्कार है।

इस पर भी सबको आश्चर्य हो रहा था कि महाराज और महामात्य चुप थे। वे इस विषय में न तो कुछ कर रहे थे, न ही कुछ कहते थे। तीसरा दिन हो गया। अन्न शन्न चल रहा था। किरण देवी अपने पलंग पर लेटी हुई थी। वह मरणासन्न हो रही थी। महाराज कुमारदेव उसके पास आये थे और सब सेविकाओं को बाहर निकाल उससे बातचीत करते रहे थे। बातचीत करने के पश्चात् जब वह उसके आगार से निकले, तो उनके मस्तिष्क पर चिन्ता की रेखायें थीं। जाने से पूर्व उन्होंने मधीका से कहा था, "देखो किरण देवी की प्रत्येक इच्छा की पूर्त्ति की जावे। इसमें ढिलाई न हो।"

अपनी बैठक में पहुंच उन्होंने महामात्य को बुलाया और उससे कहा,

"किरण की अवस्था बहुत बिगड गयी है। वह अब भी कुछ खाने के लिये तैयार नहीं है। सबसे विकट समस्या यह उत्पन्न होगयी है कि भैया ने भी खाना छोड़ दिया है। वे कहते थे कि जब तक किरण वहां आकर यह नही कहती कि उसको कोई कष्ट नहीं, तब तक वे नहीं खायेंगे। मित्र! मै बहुत चिन्तित हूँ।"

"इसमें आप का क्या दोष है? जो मरना चाहता है उसको आप कैसे बचा सकते है?"

"पर उनके साथ दुर्व्यवहार जो हुआ है।"

"यह तो राजनीति है। मै एक बात आपसे पूछता हूँ कि आपके राज्य में प्रजा अधिक सुखी है या नहीं। यदि ऐसा है तो एक दो व्यक्तियो के मरने से कुछ नही होगा। कोई मरना चाहे तो मरे।"

"मैं दादा की जान बचाना चाहता हूँ।"

"बचाने से राज्य जायेगा। यह समझ लीजिये।"

"मैं अभी किरण से बात कर रहा था। उसने मुझ को कहा है कि दादा यह वचन देने को तैयार है कि वे राज्य की अभिलाषा त्याग कर किसी तीर्थ-स्थान पर चले जायेंगे।"

"तो क्या वे उपवास छोड़ कर यह वचन दे देंगे?"

"विना किरण के अन्न खाये वे एक ग्रास भी नहीं लेना चाहते।"

"तो पहिले किरण को मनाइये।"

"कल प्रमोद ने बहुत यत्न किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सफल नही हुआ।"

"तो आचार्य भूदेव को बुला लीजिये। वह उनको अपने गुरु-समान मानती है।"

महाराज कुमारदेव को एक मार्ग सूझा। यद्यपि उनसे भी कोई भारी आशा प्रतीत नहीं होती थी, तो भी ऐसा विचार कर कि कुछ तो करना ही चाहिये, उसने एक सेवक के हाथ एक पत्र आचार्य भूदेव के पास भेज दिया।

कुमारदेव को स्मरण आ रहा था कि एक बार किरण ने कहा था, "शरीर-त्याग देने से कौन रोक सकता है।" इसके साथ ही मनोज की बात भी उसको याद आ गयी। उसने भी मृत्यु-दंड को बिना हिचकिचाहट के सुना था। उसके मन में मनोज से इस विषय पर बात करने की इच्छा हो गयी। वह उससे केवल गुप्त मार्ग द्वारा ही मिल सकता था। इस कारण उसने अपने शयानागार में जा कर एक विश्वस्त सेवक द्वारा उसको बुला भेजा। मनोज के आने पर द्वार बंद कर महाराज ने पूछा, "दो दिन से क्या कोई समाचार नहीं है ?"

"अभी परिपक्व नहीं हुआ महाराज ! एक भारी षड्यंत्र चल रहा है। मैं यह समझ नहीं सका कि वह किस विषय में है। ज्यूँ ही उसका सिर-पैर समझ पाऊँगा, श्रीमान् को सूचित करूंगा।"

"किरण के विषय में क्या सूचना है ?"

"पहिले तो उससे बलात्कार करने पर महामात्य अति प्रसन्न थे। दूसरे दिन विस्मय में बैठे विचार करते रहे। आज कुछ चिन्तित थे। इसी विषय में एक गुप्त गोष्ठी बुलाई गयी है। उसमें सेठ राघव, पंच मंगल, मल्ल राज्य का दूत देवयात और नगर के कुछ अन्य लोग भी आ रहे हैं। आज मैंने यत्न कर द्वारपाल का काम लिया है। आशा है कि कल यथा-समय उपस्थित हो सकूँगा।"

"तुम क्या समझते हो कि किरण देवी मरणपर्यन्त उपवास करेंगी।"

"महाराज इसकी चर्चा राज्यभवन के प्रत्येक नर-नारी के मुख पर है। यह बात अब धीरे-धीरे नगर में भी फैल रही है।"

"लोग इस विषय में क्या कहते हैं ?"

"महामात्य के काम के औचित्य और अनौचित्य पर तो मतभेद है, परन्तु किरण देवी के अपने एक विचार पर बलिदान होने के लिये तैयार हो जाने से तो सबकी सहानुभूति उसके साथ हो गयी है।"

"तुम को तो विदित ही है कि मेरे बड़े भाई इसी भवन के भूगर्भ के आगारों में बंदी हैं। उनकी सेवा शुश्रूषा किरण करती थी। उन्होंने भी

किरण देवी के साथ सहानुभूति में उपवास कर रखा है।"

"यह तो बहुत चिन्ता की बात है महाराज ! भाई की हत्या का समाचार कही देश मे फैल गया तो विप्लव खड़ा हो सकता है।"

"अच्छी बात है ! तुम अभी जा सकते हो। कल प्रातःकाल तुम्हारी प्रतीक्षा करूगा।"

मनोज यद्यपि ब्राह्मण वर्ण से था और पढ़ा लिखा विद्वान् था, इस पर भी गुप्तचर का काम करने के कारण और छोटी जाति के अनपढ़ लोगों का कार्य करने से उसकी प्रतिष्ठा अन्य प्रतिहारो से कुछ अधिक नहीं थी। यह ठीक था कि भवन के अन्य प्रतिहारो से वह अधिक गौरवर्ण और विशाल मस्तक था। उसका बात करने का ढग भी अति सभ्य, उच्चारण शुद्ध और वाक्यों का विन्यास ठीक होता था। महामात्य श्वेताग भी कभी-कभी उसकी बातें सुन कर विस्मय में उसका मुख दखने लगता था, परन्तु अभी तक वह बिना संदेह उत्पन्न किये अपना कार्य करता चला आ रहा था।

आज राज्यभवन में हो रही हलचल में अपनी स्थिति के कारण वह कोई भाग नहीं ले सकता था। इसका उसको भारी शोक था। वह किरण से मिल कर उसका व्रत तुडवाने का यत्न करना चाहता था, परन्तु किस प्रकार उससे मिलकर अपना रहस्य खोले, वह समझ नही सका था। इसी प्रकार विचार करता हुआ, अपनी इच्छापूर्ति का कोई मार्ग न पाता हुआ अपने आगार में सायकाल होने की प्रतीक्षा करता रहा। अभी उसके कार्य पर जाने का समय नहीं हुआ था कि महामात्य की एक दासी उसको बुलाने आयी, "महामात्य तुम को बुला रहे हैं।"

"क्या काम है, देवी ?"

"श्रीमान् आज बहुत चिन्तित हैं। बहुत लोगो को वह बुला रहे हैं। शायद किसी के बुलाने के लिये ही तुमको भी कही भेजना होगा।"

मनोज उठ, प्रतिहारों के वस्त्र पहिन, दासी के साथ चल पड़ा। जब वह वस्त्र पहिन रहा था तब दासी उससे बातें कर रही थी, "भन्ते !

सुना है किरण देवी की मृत्यु हो गयी है ।"

"सत्य ?" वह एक क्षण तक अवाक् रह दासी का मुख देखता रहा। इस पर दासी ने पूछा, "तो तुम भी उस पर दया करते हो ?"

"दया ?" अब मनोज ने पुनः कपडे पहिनने आरम्भ कर दिये थे। उनको पहिनते हुए उसने कहा, "नही देवी, मै उस पर दया का भाव नही रखता। मै उसकी प्रशंसा करता हू। उसके गुण स्मरण कर आनन्द-विभोर हो जाता हूं। वह क्रीतदासी होते हुए भी इस नरक-कुंड मे कमल-समान निर्लेप रहती थी।"

"धीरे-धीरे प्रतिहार जी! राजभवन को नरक कुंड कहना अपराध है।"

"ओह! ठीक है देवी! मै तो भूल ही गया था। क्षमा करना, मुझसे भारी भूल हो गयी है।"

"मुझ से तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। मै किसी का भेद नहीं खोलती।"

"तुम बहुत अच्छी हो। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मीना। मैने एक बार पहिले भी बताया था तुम को।"

"मै भूल गया था। अब याद रखूँगा। चलो मीना बहन! मै तैयार हूं।"

"मुझको तुम बहन क्यों कहते हो ?"

"तुम नहीं जानती क्या ? देखो।" दोनो उस कोठरी से निकल पड़े थे और महामात्य के आगारो को चल पड़े थे। "देखो, तुम लड़की हो, आयु में मुझसे छोटी हो और देखने में बहुत प्यारी लगती हो।"

मीना चलती हुई उसके मुख पर देखने लगी थी। मनोज अपने सामने देखता हुआ चला जा रहा था। मीना ने उसके मुख को देखा। वह गम्भीर था। मनोज ने मीना की ओर ध्यान नही किया।

मीना कुछ कहना चाहती थी, परन्तु वह तो उसकी ओर देख भी नही रहा था। वे अपने लक्ष्य-स्थान के समीप होते जाते थे। इससे मीना ने

अपने मन को दृढ कर कह ही दिया, "लड़की, आयु में छोटी, देखने में प्यारी, क्या केवल बहन ही हो सकती है ? क्या ऐसी पत्नी नहीं होनी चाहिये ?"

"ओह ! मेरा इस ओर ध्यान ही नहीं गया। तो तुम अपने को पत्नी बनने के योग्य समझती हो, यही न ? देखो पत्नी बनने के लिये कुछ गुण और भी होने चाहियें। वे हैं जैसे मन की अनुकूलता।"

"मन किसके अनुकूल होना चाहिये ?"

"पत्नी का मन पति के अनुकूल, अन्यथा भारी झगड़ा होता रहेगा।"

इस समय वे कर्मचारियो के प्रागण से निकल कर मुख्य द्वार की ओर चल पड़े थे। अब मीना ने कहा, "जब विवाह हो जाता है, तब मन भी मिल जाता है।"

"कुछ बातें है, जिनमें तो विवाह से पूर्व ही एकमयता होनी आवश्यक है।"

"किन बातो में ?"

इस समय वे महामात्य के कार्यालय के सामने पहुंच गये थे। मनोज भीतर चला गया और मीना बाहर रह गयी।

प्रतिहार को सामने खड़ा देख महामात्य ने कहा, "प्रतिहार ! तुम अपने साथियों में सबसे अधिक समझदार प्रतीत होते हो। इस कारण मैं तुमको एक आवश्यक कार्य पर भेज रहा हूं। आशा करता हूं कि तुम इसको पूर्ण यत्न से करोगे।

"यह पत्र किरण देवी के पास ले जाओ और इसका उत्तर ले आओ। यह भी हो सकता है कि वे उत्तर देना पसन्द न करें। इस कारण जब वे इस पत्र को पढ रही हो तब उनके मुख पर देख कर उनके मन के भावो का अनुमान लगाने का यत्न करना ! मैं देखना चाहता हू कि तुम इस कार्य को कैसे करके आते हो। यदि तुमने इस काम को भली भांति किया तो भारी पुरस्कार पा सकोगे।"

मनोज ने पत्र लिया और उसको अपने उत्तरीय के नीचे छुपा कर जाने

लगा, तो महामात्य ने पुनः कहा, "देखो, जब तक उसको यह पत्र हाथ में न दे दो तब तक मत पता चलने देना कि तुम मेरी सेवा में हो और किसी प्रकार का मेरा कोई पत्र लेकर आ रहे हो। उसको यह पता चल गया तो वह तुमको भीतर नहीं बुलायेगी।"

मनोज को पता चल गया कि किरण अभी जीवित है। उसको यह जान प्रसन्नता हुई। साथ ही वह किरण से पृथक् में बात करने का अवसर पाने से संतोष अनुभव कर रहा था।

: १३ :

मनोज को कहना पड़ा कि वह महाराज का एक अत्यावश्यक संदेश लेकर आया है, अन्यथा उसको भीतर जाने की स्वीकृति नहीं मिलती। किरण सब प्रकार से चैतन्य थी किन्तु दुर्बल हो गयी थी। इस पर भी पलंग पर शांत भाव से लेटी हुई थी। दो दासियां उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं। सेवा-शुश्रूषा केवल मात्र यह थी कि वे पलंग के समीप बैठी हुई थीं और जब किरण जल मांगती थी तो उसको गंगा जल, जो एक मटके में भरा हुआ था, दे देती थी।

मनोज भीतर गया तो किरण ने प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। मनोज ने कहा, "देवी! मेरा कार्य केवल मात्र आप से है। इस कारण एकान्त में ही कह सकता हूं।"

किरण ने दासियों की ओर देखा तो वे उसका अभिप्राय समझ आगार से बाहर चली गयी। मनोज ने अपने वस्त्र के नीचे से पत्र निकाल कर किरण देवी के हाथ में दे दिया और खड़ा हो उसके मुख के उतार-चढ़ाव को देखने लगा। किरण ने पत्र पढ़ा और फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर पलंग के नीचे फेंक दिया। मनोज को अचम्भा इस बात पर हुआ कि किरण के मुख पर किसी प्रकार का भी भाव पत्र पढ़ते हुए प्रकट नहीं हुआ। वह वैसे ही शान्त और बिना किसी प्रकार का उद्गार प्रकट किये, लेटी रही।

जब उसने पत्र फाड़ कर फेंक दिया, तो मनोज को विदा करने के लिये उसने करवट बदल ली । मनोज ने यह अवसर, अपने मन की बात कहने के लिये उचित मान कहा, "देवी ! क्या मेरे जैसा तुच्छ व्यक्ति कुछ अपने मन की बात भी कह सकता है ?"

किरण ने फिर मुख उसकी ओर घुमा कर कहा, "महामात्य की बात कह कर मेरे इस अंतिम काल को विक्षुब्ध मत करो ।"

"देवी ! अपने स्वामी की बात का उत्तर पा चुका हूँ । कुछ अपनी ओर से निवेदन करना चाहता हूँ ।"

"करो ।"

"जीवन में जो कुछ अपने वश में नहीं है, वह सहन करना पडता है, परन्तु जो वश में है, वह न करने से पाप नहीं हो जावेगा क्या ?"

किरण दुर्बलता के कारण बहुत बोल नही सकती थी । इस कारण उसने बहुत ही संक्षेप में पूछा, "पाप-पुण्य का नाप-तोल कैसे होता है ?"

"अपने अंतरात्मा को साक्षी रख काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से मुक्त होकर, बुद्धि से विचारने पर पाप-पुण्य में भेद मिल जाता है ।"

"मै अपने विचार से जो कर रही हूँ, ठीक ही कर रही हूँ ।"

"एक बार मै भी ऐसा ही समझता था । यदि आप क्षमा करें तो इसी प्रकार की परिस्थिति में, अपना अनुभव निवेदन करना चाहता हूँ । मुझ को मत्यु-दंड हो गया था । मेरे माता-पिता महाराज से मेरे जीवन के लिये क्षमा याचना करने जा रहे थे । मैं उनसे लड़ पड़ा था । मेरा कहना था, 'इस पतित जीवन से मुक्ति पाने में बाधक बन आप मेरा अहित करते हैं ।' पिता जी ने इस पर भी याचना की । वह याचना स्वीकार हो गयी । अब मै अनुभव करता हूं कि पिताजी ने ठीक ही किया था । मेरे सम्मुख ऐसा संसार खुल रहा है, जिसमें मैं अपने अनुभव को ज्ञान के आश्रय कर, उपकार कार्य में लगा रहा हूं । मुझको स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि मर जाने से अधिक पुण्य, जीवन चलाने में मिल रहा है ।"

"प्रतिहार ! मैं क्रीतदासी हूं । तुम शायद क्षमा मिलने के पश्चात्

स्वतंत्र पुरुष थे।"

"यह अवस्था सदा नही रह सकती। इससे निकलने का भी उपाय किया जा सकता है। देखिये किरण देवी! कितना भी संचित पुण्य फल क्यो न हो, नवीन जन्म में बीस वर्ष तो पुनः ज्ञान प्राप्ति में लग जावेंगे। यदि पिछले जन्म के कर्मों के फलस्वरूप क्रीतदासी के जीवन का भोग समाप्त नही हुआ तो क्या इस फल को अगले जन्म में चालू रखना ठीक होगा? क्या यह अच्छा नही होगा कि इस जन्म में ही इस भोग को समाप्त कर, भविष्य का भाग्य साफ पाटी पर लिखा जाये?"

किरण इन सब युक्तियों पर मनन कर चुकी थी, परन्तु यह विचार कर कि जो पतन उसका हुआ है, उसके पश्चात् अब जीवन का कुछ भी मूल्य शेष नहीं रह गया है, जीवन से सर्वथा निराश हो, वह आत्महत्या करने पर तैयार हुई थी। इस कारण उसने धीरे से कहा, "मुझ को इस शरीर से ग्लानि हो गयी है।"

"यही तो अहंकार का भाव है। पाप पापी को लगता है। जिसने कुछ नहीं किया, जो केवल दूसरे के दुर्व्यवहार का आखेट है, उसको अपने पर ग्लानि क्यों आती है? उसने अपराध नहीं किया। वह पापी नही है, फिर वह ग्लानि का पात्र भी नहीं हो सकता।"

किरण मुस्कराई और बोली, "स्वामी से सेवक अधिक योग्य प्रतीत होता है, तुम कौन हो, जो ऐसी युक्तियुक्त बात प्रतिहार के वस्त्र पहिन कह रहे हो?"

मनोज चुप हो गया। वह विचार कर रहा था कि अपना परिचय दे अथवा न। उसने बहुत विचार के उपरान्त इतना कहा, "मैं पढ़ा-लिखा ब्राह्मण कुमार हूं। किसी प्रयोजन-विशेष से महामात्य जी की सेवा में हूं। यह जो कुछ कह रहा हूं अपने मन से कह रहा हूं। मै नही जानता कि पत्र में क्या लिखा था। जो कुछ मैंने निवेदन किया है, वह मेरे स्वामी के मन का प्रतिबिम्ब नहीं।"

"क्या नाम है देवता?"

"महामात्य की सेवा में मेरा नाम लारु है। मेरा वास्तविक नाम मनोज है। काशी का रहने वाला हूं। वहां पर मत्यु का भागी बना, महाराज की दया से मुक्त हो, महाराज कुमारदेव के कहने पर उज्जयिनी आया हूं।"

"ओह! स्मरण आ गया है। महाराज ने तुम्हारी कथा वर्णन की थी। तो तुम. . . . ।"

किरण अपनी बात समाप्त नहीं कर पायी थी कि आचार्य भूदेव ने प्रवेश किया। उन्हें आया देख किरण ने उठने का यत्न किया, परन्तु उठ नहीं सकी और पलंग पर धम्म से गिर पड़ी।

भूदेव और मनोज दोनो उसको पलंग से नीचे लुडकता देख, उसको गिरने से बचाने के लिये दौड़े। किरण शीघ्र ही संभल गयी और लेटे हुए ही प्रणाम करने लगी।

इस समय किरण ने मनोज को कहा, "अच्छी बात है। आपके कथन पर विचार करूंगी। कल तक किसी परिणाम पर पहुंच सकूंगी।"

मनोज इसको चले जाने का सकेत समझ, झुक कर प्रणाम कर, आगार से वाहर हो गया। आचार्य भूदेव पलग के समीप एक आसन पर वैठ पूछने लगा, "यह सब क्या है किरण ?"

"मै शरीर त्याग रही हूँ।"

"क्यो ?"

"महाराज कुमारदेव के भवन में जो कुछ हुआ है, वह आपको वताया नही गया क्या ?"

"महाराज ने पत्र में कुछ लिखा था, कुछ सारथि ने मार्ग में वर्णन किया, कुछ मै अपने अनुमान से जान गया हू। परन्तु आत्महत्या तो इस रोग की चिकित्सा नहीं। देखो किरण! मै महाराज से इस विषय पर विचार-विनिमय कर आया हूं। तुम्हारे आमरण उपवास का समाचार महाराज पालकदेव को मिला है और उन्होने भी आमरण उपवास आरम्भ कर दिया है। ऐसी परिस्थिति की सूचना भवन के वाहर प्रजा में फैल रही है। इससे कुमारदेव घबरा उठा है। उसने तुमको और उन बंदियों को मुक्त

करने का वचन दिया है। शर्त केवल यह है कि आप लोग उपवास तोड़ दें और महाराज पालकदेव, शेष जीवन किसी तीर्थस्थान पर व्यतीत करना स्वीकार करें।"

"भगवन्! मेरी बात को महाराज पालकदेव से क्यों जोड़ा जा रहा है?"

"आधारभूत अन्याय दोनों के साथ एक जैसा ही हुआ है। किसी ने अनधिकार-युक्त चेष्टा की है।"

"उस पापी को दंड मिलना चाहिये।"

"तुम क्या समझती हो कि मेरी अथवा तुम्हारी प्रार्थना पर भगवान् अपराध क्षमा कर देगा?"

"गुरुदेव! भगवान् अपने हाथ से तो कुछ करता नहीं। हम लोगों को ही इसमें यत्न करना पड़ता है।"

"ठीक, परन्तु इस प्रकार मरना तो इस यत्न का भाग नहीं हो सकता।"

"मेरा मरना तो अपने आत्मा की शान्ति के लिये है।"

"विचित्र आत्मा है तुम्हारा! अपने कर्मफल को पूरा किये बिना यहां से चले जाने से, शेष फल भोगने के लिये पुन. यहां आना पड़ेगा। क्या तुम यह पसन्द करोगी कि अगले जन्म में पुन: क्रीतदासी बन यही भोग भोगो?"

"वह प्रतिहार भी यही कह रहा था।"

"कौन? यह जो अभी यहां से गया है? कौन है वह?"

"मनोज नाम है। काशी का एक विद्वान् युवक है। कारण विशेष से प्रतिहार का काम कर रहा है।"

"क्या कहता था वह?"

"कहता था कि पिछले जन्म का भोग समाप्त कर अगले जन्म के लिये साफ पाटी पर भाग्य-रेखा चित्रित करनी ठीक रहेगी।"

"ठीक ही तो कह रहा था।"

"महाराज पालकदेव मान जायेंगे क्या ?"

"तुमने ही एक बार कुमारदेव से कहा था कि पालकदेव ऐसा मान जावेंगे ।"

"इस बात को छ मास हो चुके है। आज क्या विचार है, कैसे कह सकती हूं ?"

"यदि तुम स्वीकार करो तो वे अवश्य मान जावेंगे । वे तो तुम्हारे मरने के लिये मरने पर तैयार हो गया है और तुमको जीवित रखने के लिये क्या राज्य नही छोडेगा ?"

किरण देवी को समस्या का एक नवीन पक्ष समझ आया। वह चुप कर गयी। भूदेव को यह किरण की स्वीकृति प्रतीत हुई। इस कारण उसने कहा, "किरण देवी ! भगवान् तुम्हारा भला करे। तुमने मेरा कहा माना है। इस कारण मैं सदैव तुम्हारी भलाई का चिन्तन करता रहूँगा। मैं अभी पालकदेव के पास जाकर इस विषय का निर्णय करवाता हूं। जाने से पूर्व अभी तुम्हारे विषय में और विचार करना है । मैं पुन. आऊंगा।"

· १४ .

मध्य रात्रि हो चुकी थी । अभी पालकदेव के विषय में सब बातें निश्चय नहीं हो सकी थीं। किरण देवी ने मूँग की दाल का यूष ले लिया था और उसी के आगार में पालकदेव को ले जाया गया था। भूदेव बैठा इस संधि की व्याख्या लिख रहा था। अड़चन एक बात पर पड़ रही थी। महारानी चाहती थी कि शतवीर भी उनके साथ तीर्थ स्थान पर भेज दिया जावे। कुमारदेव, श्वेताग की सम्मति से शतवीर को ऐसे गुरु के पास रखना चाहता था, जिसकी शिक्षा से वह राज्यकार्य के सर्वथा अयोग्य हो जावे। इस कारण वह कहता था कि उसकी शिक्षा में बाधा नहीं डाली जा सकती। कौन कह सकता है कि वह पुन: राज्य गद्दी नही पा जावेगा ? इस प्रकार विवाद चल रहा था और इसका कही अत दिखाई नहीं देता था।

इस न समाप्त होने वाली चर्चा को बंद होते न देख आचार्य भूदेव ने कहा, "अच्छी बात है, मैं चलता हूं। मेरे पास इस प्रकार की व्यर्थ की बात-चीत के लिये समय नहीं है।" इस पर दोनों पक्षों ने आचार्य को मध्यस्थ मान लिया और उनके आदेश को मान लेने का वचन दिया।

आचार्य भूदेव ने यह निर्णय दिया कि शतवीर इक्कीस वर्ष की आयु तक श्री वासदेव के आश्रम में विद्यार्थी के रूप में रहेगा। वर्ष में एक मास तक वह अपने माता-पिता के पास जा सकेगा।

किरण देवी के विषय में यह निश्चय हुआ कि एक वचन पत्र महाराज कुमार देव लिख कर देंगे, जिसमें यह घोषित किया जावेगा कि किरणदेवी को दासता से मुक्त किया जाता है। अब किसी प्रकार का लेन-देन उससे महाराज का नहीं रहा।

किरण देवी का अधिकार होगा कि वह जहां चाहे जायें। महाराज यदि उसको अपनी पत्नी बना कर अथवा किसी अन्य रूप में रखना चाहे तो किरण की स्वतंत्र इच्छा से हो सकेगा, उस को विवश नहीं किया जायेगा।

आचार्य भूदेव के इस निर्णय पर लिखा पढ़ी हो गयी। पालकदेव ने अपने छोटे भाई को आशीर्वाद दिया और जाने से पूर्व कहा, "देखो कुमार! प्रजा के लिये धनवान होजाना मात्र ही उन्नति का सूचक नहीं। उसके सुख और शान्ति के लिये यह भी आवश्यक है कि वे दूसरों की भलाई में अपनी भलाई समझें।"

पालकदेव ने अन्न ग्रहण किया और सुदर्शन तथा पद्मावती को भी बंदी गृह से बाहर लाया गया। यह निश्चय हो गया कि बंदी रात-ही-रात देश की सीमा की ओर चल देंगे और शीघ्रातिशीघ्र इसे पार कर हरिद्वार की ओर प्रस्थान कर देंगे।

कुमारदेव ने इस सब वार्तालाप में श्वेताग को सम्मिलित नहीं किया और दिन चढ़ने पर वह उससे भारी विवाद की आशा करता था। इसके लिये उसको दिन चढ़ने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। पालकदेव इत्यादि को

भवन से विदा करने का अभी प्रबन्ध हो ही रहा था कि मनोज भागा हुआ आया और कुमारदेव के सामने उपस्थित हो बताने लगा, "महाराज ! श्वेतांग ने विद्रोह कर दिया है और कुछ कह सुन कर सेना को अपनी ओर मिला लिया है। सेना, भवन को चारो ओर से घेर रही है।"

"महामात्य कहां है ?'

"मुझको एक पत्र दे कर किरण देवी के पास भेज दिया था। उसके पीछे स्वयं कहीं चले गये हैं। शायद सेना शिविर में गये हैं।"

भूदेव समीप बैठा मनोज की सूचना सुन रहा है। इस पर उसने कुमारदेव से कहा, "महाराज ! आप विलम्ब न करिये। भवनपाल को बुला कर भवन की रक्षा का प्रबन्ध कर दीजिये। पीछे सेना से बात-चीत करेंगे।"

कुमार को श्वेतांग के इस काम पर अति खेद हुआ, परन्तु यह समय कार्य करने का था; इस कारण वह किरण के आगार से निकल आया और भवनपाल को बुला कर आज्ञा दी, "भवन की रक्षा के लिये सुभटो को सब द्वारो पर सतर्क कर दो। महामात्य श्वेताग के अतिरिक्त और किसी को भीतर मत आने दो। उसके साथ यदि कोई सैनिक भी आना चाहे तो उसको भी मत आने दो।"

आचार्य भूदेव ने देखा कि भवनपाल को महामात्य के षड्यंत्र का ज्ञान नही है। वह इस विचार की परीक्षा करने के लिये भवन द्वार पर जा पहुंचा। सैनिक भवन से दूर घेरा डालते हुए दिखाई दिये।

आचार्य ने द्वारपालो से पूछा, "ये लोग क्यो आये है ?"

"हम को विदित नही, भगवन् !"

"महाराज की आज्ञा है कि महामात्य के अतिरिक्त और किसी को भीतर नहीं आने देना।"

"यह आज्ञा हमको भवनपाल द्वारा मिल चुकी है।"

आचार्य भूदेव ने सेना की प्रवृत्ति जानने के लिये सैनिको के समीप जा कर पूछा, "किस की आज्ञा से यहा एकत्रित हो रहे हो ?"

"श्रीमान् महामात्य की आज्ञा से।"

"किस प्रयोजन से ?"

"हम नहीं जानते। हमारे नायक अभी नहीं आये। हम को केवल इतनी आज्ञा है कि महाराज पालकदेव और किरण देवी, जो भवन में बंदी हैं, भाग न सकें।"

भूदेव समझ गया कि सेना को कुमारदेव के विरुद्ध नहीं किया जा सका। इस कारण, वह सैनिकों को बिना कुछ कहे राजभवन में वापिस आ गया। इस समय तक भवनपाल का प्रवन्ध पूर्ण हो चुका था। राजभवन के पांच-सौ सुभट खडग नंगे किये भवन के मुख्य मुख्य-स्थानों पर नियुक्त हो चुके थे।

आचार्य भूदेव भीतर आया तो उसने महाराज कुमार देव को शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित देखा। उसने कुमारदेव को एक ओर लेजा कर बाहर की अवस्था से परिचित किया। वह अभी कुमारदेव को समझा ही रहा था कि श्वेतांग के आने पर कैसे बात करनी है कि मनोज एक और सूचना लेकर आया। उसने बताया, "महामात्य के शयनागार मे पलंग पर, यह एक पत्र पड़ा मिला है। मै समझता हूं कि यह महामात्य के आज के व्यवहार पर बहुत प्रकाश डालता है। पत्र खुला पड़ा था, इससे प्रतीत होता है कि महामात्य ने इसको पढा है और इसको पढ़ते ही वे कही चले गये है।"

कुमारदेव ने पत्र पढा। उसमें लिखा था,—"श्वेतांग चिरंजीव हो। तुम्हारा पत्र पढा है। उसका सिर पैर पता नही चला। एक बात समझ में आयी है कि तुम शतवीर को भवन में रखना चाहते हो। इसका अर्थ यह होगा कि कुमार के पीछे उसको राज्य गद्दी देनी पड़ेगी। शतवीर अपनी माता के समान सुन्दर और ओजस्वी कुमार है। कुमारदेव की अपनी संतान कब होगी और उसका प्रभाव जनता पर कैसा होगा, अभी कहा नहीं जा सकता। अब तुम विचार कर लो।

"मैं अभी शतवीर को भेज नही रहा। तुम्हारा पत्र आने पर भेजूंगा।"

कुमारदेव इसका अर्थ नही समझा। महाराज को अनिश्चित मन देख,

मनोज ने पूछा, "महाराज ! क्या विचार कर रहे हैं ?"

"मैं इसका अर्थ समझने का यत्न कर रहा हूं।"

"महाराज ! अर्थ तो स्पष्ट है। महामात्य ने आपको आचार्य भूदेव के लिये रथ भेजते देख यह अनुमान लगाया प्रतीत होता है कि आप महाराज पालकदेव को छोड़ देंगे। पूर्व इसके कि आप यह कर सकें, उन्होंने शतवीर को यहा बुला कर आपका स्थानापन्न एक व्यक्ति खड़ा करना चाहा है। साथ ही सेना को बुला कर पालकदेव और किरण के यहा से निकल जाने को रोकने के लिये यत्न किया है।

"शतवीर को बुलाने के लिये उन्होंने एक वेगगामी अश्व पर पत्र भेजा होगा, जिसका अर्थ श्री वामदेव नहीं समझे और शतवीर के स्थान केवल पत्र ही भेज दिया, जो आपके सामने है। इस पत्र को पाकर महामात्य जी को अपनी पूर्ण योजना विफल होती दिखाई दी और वे उतावली में पत्र को वहीं खुला छोड, शतवीर को लेने चले गये हैं। मैं समझता हू कि वे एक-दो घडी में शतवीर को लेकर आने ही वाले होंगे। उनका अनुमान यह रहा प्रतीत होता है कि आचार्य जी यदि रात को आ भी गये तो भी रात-रात में कोई निर्णय नहीं हो सकेगा और प्रात काल तक वे अपनी योजना को पूर्ण कर लेंगे।"

आचार्य भूदेव मनोज के अनुमान पर चकित रह गया। इतने स्पष्ट रूप में परिस्थिति को समझने वाला उसे और कोई दिखाई नही दिया था। इससे आचार्य ने कुमारदेव को इस परिस्थिति के अनुरूप ही प्रबन्ध करने की राय दी। कुमार ने भवनपाल को बुला कर समझा दिया, "यदि महामात्य के साथ कुमार शतवीर आवे तो उसको भी भवन में आने दिया जावे, परन्तु किसी भी अवस्था में कोई भी सैनिक भीतर न आने दिया जावे। साथ ही पचास सुभट्ट कुमार ने अपनी बैठक के बाहर खड़े कर लिये, जिससे आवश्यकता पड़ने पर उनसे सहायता ली जा सके।

अधिक काल तक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ी। मनोज का अनुमान सत्य निकला। महामात्य कुमार शतवीर के साथ दो अश्वों पर सवार, उनको

सरपट दौड़ाता हुआ, भवन द्वार पर आ खड़ा हुआ।

श्वेतांग ने एक दृष्टि सेना की ओर दौड़ायी। भवन को सेना से घिरा हुआ देख द्वार में प्रवेश कर अपने आगारों की ओर चल पड़ा। द्वार से वह अभी दस पग भी नहीं गया था कि आचार्य भूदेव ने आगे आकर नमस्कार किया और बहुत ही नम्र भाषा में निवेदन किया, "श्रीमान् जी को महाराज स्मरण कर रहे हैं।"

"पालकदेव किधर हैं?"

"महाराज के पास खड़े हैं।"

श्वेतांग एक क्षण तक ठहर विचार करता रहा, पश्चात् मन में कुछ निर्णय कर कुमारदेव के बैठक-स्थान की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसने बहुत से सुभटों को खड़े देखा। साथ-साथ चलते हुए भूदेव से उसने पूछा, "ये यहां क्यों खड़े हैं?"

"श्री पालकदेव की रक्षा के लिये।"

श्वेतांग ने समझा कि पालकदेव को भाग जाने से रोकने के लिये। ऐसा विचार कर संतोष अनुभव करते हुए वह चलता गया। फिर कुछ विचार कर पूछने लगा, "किरण देवी कैसी हैं?"

"अभी जीवित हैं।"

इन दोनों के पीछे पीछे शतवीर चला आ रहा था। आचार्य भूदेव ने उसको बुला कर साथ-साथ करते हुए कहा, "बेटा, जल्दी चलना सीखो, नहीं तो संसार की घुड़दौड़ में पीछे रह जाओगे।"

"मैं घोड़ा नहीं हूं, भगवन्।"

"घोड़े से अधिक मनुष्य तो हो। मनुष्य में सब प्राणियों के गुण होने चाहियें।"

श्वेतांग ने मुस्कराते हुए कहा, "कहीं गुणों के साथ अवगुण ग्रहण न कर लेना कुमार!"

"हां, गुण ग्रहण करना अवगुण नहीं? देखा महामात्य ने कितनी अच्छी बात कही है।"

इस समय वे तीनो महाराज की बैठक में जा पहुंचे। महामात्य महाराज को अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित, सुभट्टों से घिरा हुआ देख चकित रह गया। पालकदेव, पद्मावती और पंडित सुदर्शन भी वहा उपस्थित थे। शतवीर ने माता-पिता को देखा तो भाग कर "माताजी" कहता हुआ उनकी ओर भागा। मा ने पुत्र को गले लगा लिया और सिर पर हाथ फेर कर प्यार देते हुए बोली, "बेटा! चिरजीव हो। सुखी रहो।"

कुमारदेव ने श्वेतांग को देख कर कहा, "मित्र! बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा हूं। किधर चले गये थे?"

"श्रीमान् पालकदेव उपवास किये हुए थे न? इस कारण मैंने उचित समझा कि राजकुमार की इन से भेंट करवा दूं।"

"और इस भेंट करवाने के लिये भवन के चारो ओर सेना खड़ी कर दी है। मित्र! मै तुम्हारा कृतज्ञ हूं कि बहुत दूर की बात तुम पहिले ही विचार लेते हो।"

श्वेतांग कुछ कहना चाहता था कि शतवीर ने कह दिया, "चाचाजी! ये मार्ग में मुझको कहते थे कि मुझको अवन्ति का महाराज बनाने के लिये ला रहे हैं।"

"यह तो मैं इसका मन बहलाने के लिये कह रहा था।" श्वेतांग ने कह दिया।

"अच्छी बात है। मैंने निश्चय कर लिया है कि आजसे आचार्य भूदेव अवन्ति के महामात्य का कार्य करेंगे और श्वेतांग जी को आदरसहित अपने ही आगार में रखा जायेगा।"

"क्या मुझको बंदी बनाया जा रहा है?" श्वेतांग ने अचम्भे में पूछा।

"यही समझ लो। केवल तब तक के लिये जब तक बाहर सेना खडी है। पीछे महामात्य विचार कर बतायेंगे कि आपको कहा और कैसे रखा जाये।"

श्वेतांग का मुख भय तथा विषाद से पीला पड गया। आचार्य भूदेव ने वहा खडे सुभटो को कहा, "श्वेतांग को अपने आगार में सुरक्षित रखा जावे

और बीस सुभट इनकी रक्षा के लिये नियुक्त किये जायें।"

भवनपाल, जो वहा खडा था, बीस सुभटों से श्वेताग को घेरा डाल कर ले गया। इस समय एक सैनिक, जो सिर से पांव तक धूलि से भरा हुआ था, लाकर कुमारदेव के सामने खडा कर दिया गया।

कुमारदेव ने उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। सैनिक ने झुक कर प्रणाम की और कहा, "महाराज! मल्ल सेना ने अवन्ति पर आक्रमण कर दिया है। पांच सहस्र से ऊपर सैनिको ने नीरा गांव की ओर से सीमा पार कर हमारी टुकड़ी पर धावा बोल दिया है। हम वहां दो सौ से अधिक नहीं है, इस कारण हम आक्रमणकारी सेना को केवल रोक ही सकते है।

"सेनानायक ने मुझको श्रीमान् को सूचित करने के लिये भेजा है।"

कुमारदेव ने आचार्य भूदेव को नगर में उचित घोषणा और प्रबन्ध करने को आज्ञा दे कर, स्वय सेना के साथ मल्लो का आक्रमण रोकने के लिये, जाने की तैयारी कर दी। सेना को तैयार हो कूच करने की आज्ञा दे दी गयी और कुमारदेव ने अपना रथ तैयार करने को कह दिया।

आचार्य भूदेव ने तुरंत नगर और सेना में यह घोषणा करवा दी कि श्वेताग महाराज कुमारदेव को बंदी बना राज्य अपने अधिकार में करना चाहता था। इस कारण उसको महामात्य पद से हटा कर महाराज कुमारदेव ने दर्शनाचार्य भूदेव को महामात्य पद पर नियुक्त किया है।

इस घोषणा के साथ ही भवन के चारों ओर खडी सेना को अपने शिविर में चले जाने की आज्ञा दे दी। कुमारदेव स्वय दिन निकलने से पूर्व मल्लो का विरोध करने के लिये सेना के साथ सीमा की ओर प्रस्थान कर गये।

पालकदेव, महारानी पद्मावती के साथ रथ पर सवार हो दिन चढने से पूर्व ही उत्तर की ओर चल दिये। कुमार शतवीर को आचार्य भूदेव ने अपने पास रख लिया।

किरण देवी से जब पूछा गया कि वह कहां जाना चाहती है, तो उसने बताया, "मैं अभी निश्चय नही कर सकी। आचार्य जी से राय कर निश्चय करूंगी।" वह अभी कला भवन में रहने चली गयी।

: १५ :

मनोज का अनुमान सत्य निकला। श्वेतांग ने, किरण के साथ दुर्व्यवहार के अगले दिन अपने किरण के साथ विवाह की मनोकामना की पूर्ति के लिये महाराज कुमारदेव से निवेदन किया, "महाराज! मैं समझता हूं कि अब तो किरण देवी मेरे से विवाह करना स्वीकार कर लेंगी।"

"मुझको इसमें सन्देह है, मित्र!"

"आप से वह मिली है?"

"हां, उसने बंदियों की देखभाल का काम छोड़ दिया है। साथ ही वह अति दुःखी प्रतीत होती है।"

"आज्ञा हो तो मैं उससे मिल लूं?"

"हां, मिल सकते हो। मेरा विचार है कि हम किरण देवी को आज तक समझे ही नहीं। उसकी भावनाओं को न समझ कर हम विपरीत व्यवहार करते रहे हैं।"

"इस पर भी मैं उससे मिल कर सब बात आज निश्चित कर लेना चाहता हूं।"

श्वेतांग किरण देवी से मिलने गया तो बहुत कठिनाई से भेंट कर सका। जब वह किरण देवी के सामने उपस्थित हुआ तो सदैव के प्रतिकूल, किरण उसके आदर के लिये खड़ी नहीं हुई। इससे वह समझ गया कि देवी जी बहुत क्रुद्ध हैं। स्वयं ही एक आसन पर बैठते हुए उसने कहा, "देखो किरण देवी! कभी मानसिक दुर्बलता के रोगियों से कोई काम बलपूर्वक लिया जाता है, वह इसलिये कि कार्य हो जाने पर उनकी उससे हिचकिचाहट दूर हो जाती है और वे उस काम को करने लग जाते हैं। यही मैंने किया है। वास्तव में तो मेरा तुम से विवाह हो गया है, केवल प्रथा निभानी रह गयी है। बताओ वह कब होगी?"

"जो कुछ एक क्षीण आशा इसकी थी, वह भी अब नहीं रही। आपका मुझ से विवाह नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"मेरे मन में जो आपके लिये थोड़ा सा आदर रह गया था वह आपने, अपने रात के कुकर्म से मिटा दिया है। वह पत्नी ही क्या जिसके मन में अपने पति के लिये आदर न हो ?"

"तो बिना विवाह के ही तुम मेरी बन जाओ। किरण प्रिये ! मै तुम से अति प्रेम करता हूं और तुमको अपने हृदय की ही नहीं, प्रत्युत अवन्ति राज्य की महारानी बनाना चाहता हूं। यह मूर्ख कुमार अवन्ति जैसे धन-धान्य सम्पन्न राज्य का मालिक बना हुआ है। यह सब मेरे बल-बूते पर ही हुआ है और हो रहा है। जिस दिन तुम मेरे साथ मिल कर काम करना चाहोगी उस दिन ही एक पलक की झपक में, दोनों मूर्ख भाई भूत काल में, जल में मिश्री के समान विलीन हो जावेंगे।"

"बस करिये। यह सब व्यर्थ की बात है। मैं न तो आपकी भार्या बनूंगी और न ही अवन्ति राज्य की महारानी। आप अब जा सकते हैं।"

"महाराज कुमारदेव ने तुम को मुझे भेंट में दे दिया है। इस कारण तुम अब मेरी हो। विवाहिता बन कर रहो अथवा दासी बन कर, यह तुम्हारी इच्छा पर है, परन्तु तीसरा कोई मार्ग नही है।"

"हूं। महाराज ने मेरा शरीर मोल लिया था। शायद वही उन्होंने आपके हाथ सौंप दिया है। इस शरीर में एक वस्तु अभी मेरी अपनी है, जिसको तुम्हारे महाराज न तो मोल ले सके है, न ही वे प्रेम से अपना बना सके हैं। वह मैं इस शरीर से पृथक् कर रही हूं। उसको हो जाने दो, फिर ले जाना महाराज कुमारदेव की क्रय की हुई दासी। यही इस आगार मे पड़ी होगी।"

"महाराज ने जीवित-जागृत किरण क्रय की थी। उसका मृत शव नही। यदि तुमने आत्महत्या करने का यत्न किया तो महाराज की धरोहर की चोरी हो जावेगी। यह तो पाप हो जावेगा।"

"बड़े आये हैं पाप-पुण्य के बताने वाले। आप चले जाइये। मैं आपका मुख भी देखना नही चाहती।"

"अच्छी बात है। मैं तुम को दो दिन का समय देता हूं। यदि तुम अपने आप मेरे आगारो में आ जाती हो तो ठीक है, अन्यथा मैं तुम को यहा से उठा कर ले जाऊंगा।"

"ले जाना।"

श्वेतांग ने समझा कि किरण अभी भी अपने को, अपनी परिस्थिति के अनुकूल नहीं बना सकी। वह उसको और पतन की ओर धकेल कर, इसके लिये उसके मन को तैयार करना चाहता था। इस कारण यह चुनौती देकर वह बाहर निकल गया।

उस सायंकाल उसको यह समाचार मिल गया था कि किरण ने आमरण उपवास आरम्भ कर दिया है। वह इसको ढोंग समझता था। उसने समझा कि भूख लगने पर खा लेगी। ऐसा नहीं हुआ। अगले दिन भी उपवास चालु रहा। अगले दिन उसको सूचना मिली कि महाराज पाल्कदेव ने भी उपवास करना आरम्भ कर दिया है। पहिले तो उसको यह सुन कर प्रसन्नता हुई। उसने मन ही मन यह कहा कि यदि पालकदेव भूखे रहने से मर जायें तो एक ओर की चिन्ता मिट जाये। न रहे बांस न बजे बासुरी। उनकी मृत्यु से कभी उनके बंदी गृह से बाहर आकर गड़बडी करने की सभावना सदैव के लिये मिट जावेगी।

परन्तु महाराज पालकदेव के उपवास के समाचार से कुमारदेव को चिन्तित देख, वह गंभीर हो गया। उसको भय लग गया था कि भावुकता में बह कर कहीं कुमारदेव अपने बड़े भाई के सामने घुटने न टेक दे। उसी दिन उसने कुमार देव को भी क्षेत्र से बाहर कर निष्कंटक राज्य करने की योजना बना डाली। उसने मल्ल राज्य के दूत दैवयात को बुला कर कहा, "ठाकुर महोदय! अब समय आ गया है कि अपनी योजना को सफल बनाने के लिये काम आरम्भ कर दिया जावे। मैं चाहता हूं कि आपसे हुए समझौते को एक बार पुन. स्मरण करवा दूँ। आप पाच सहस्र सेना लेकर नीरा की ओर से आक्रमण कर दें। मैं यहां से सेना भेज कर आपकी सेना को रोक दूंगा। जब सेना युद्ध में सलग्न होगी, राज्य में विप्लव खड़ा कर दूंगा।

पश्चात् आपको और अवन्ति राज्य की परस्पर सन्धि हो जावेगी। उसमें आपको आक्रमण का पूर्ण व्यय दिलवा दूँगा और आपसे व्यापारिक समझौता कर मल्लराज्य को भी अवन्ति के समान उन्नत करने के लिये, यहां से सहायता दूँगा।"

दैवयात और श्वेतांग में यह समझौता पहिले ही हो चुका था। इस पर कार्य आरम्भ करने के लिये मल्ल सेना सीमा के पार तैयार खड़ी थी। सो दैवयात ने संकेत पा पूछा, "आप कब तक आशा करते है कि सेना उज्जयिनी मे पहुंच जावे।"

"मै चाहता हूं आपकी सेना परसों राज्य मे प्रवेश करे और चौथे दिन पद्मा के उस पार आकर ठहर जावे। इधर से झूठ मूठ की लड़ाई के लिए सेना भेजी जावेगी और जब तक कोई बड़ी लड़ाई होगी, यहा नवीन प्रबन्ध हो जावेगा और वह प्रबन्ध आपसे सन्धि करने पर तैयार हो जावेगा। इसमें दोनो राज्यों का कल्याण होगा। आपके राज्य को अवन्ति के विद्वानो की सेवायें मिल जावेंगी और यहां पर कोई युक्तियुक्त राज्य स्थापित हो जावेगा।"

दैवयात अपने मन में मुस्कराता हुआ एक तीव्रगामी अश्व पर सीमा की ओर चल पड़ा।

श्वेतांग की योजना सरल थी कि सेना के आक्रमण की सूचना से पहिले वह कोई बहाना बना कर कुमारदेव को बन्दी गृह में डाल देगा और शतवीर को महाराज घोषित कर स्वय राज्य करेगा। इस समय मल्ल राज्यों की सेनाओ से युद्ध करने के लिये अवन्ति की सेना युद्ध क्षेत्र मे होगी और नागरिको को नवीन परिस्थिति के अनुकूल कर लिया जावेगा।

सब कार्य भली भांति से चल रहा था। तीसरे दिन महाराज से बातचीत करने पर उसको यह समझ आया कि किरण की अवस्था आशा से शीघ्र बिगड़ रही है और महाराज पालकदेव के लिये भी कुमार की चिन्ता बढ़ रही है। इससे उसको अपनी योजना ही ठीक समझ आयी। इस कारण उसने नगर के कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियो को बुला कर उन्हें अपनी योजना के

अनुकल करने का यत्न किया। इस समय उसको पता मिला कि आचार्य भूदेव के लिये रथ भेजा गया है। इससे उसको चिन्ता लग गयी। उसने शतवीर को बुलाने के लिये दूत भेज दिया। दूसरी ओर किरण के शरीर और मन की ठीक अवस्था जानने के लिये उसने अपने प्रतिहार लारू को एक पत्र देकर भेजा। उस पत्र में कोई नवीन बात नहीं थी। वास्तव में यह पत्र तो एक बहाना मात्र था। यथार्थ में तो वह यह जानना चाहता था कि वह कब तक जीवित रहेगी और क्या वह उसके जीवनकाल में ही अवन्ति में विप्लव कर सकेगा ?

जब मनोज पत्र लेकर किरण के पास गया हुआ था, महर्षि वामदेव का पत्र आया। वह, पत्र पढ क्रोध में भरा हुआ, स्वय शतवीर को लेने के लिये चल पड़ा। वह गया और शतवीर को साथ लेकर वापिस आ गया। मार्ग में इतनी तीव्र गति से घोड़ो के दौड़ाने पर जब शतवीर ने अचम्भा प्रकट किया तो उसने उसको और भी तीव्र गति से चलने के लिये उत्साहित करते हुए बता दिया कि वह उसको अवन्ति का महाराज बनाने को ले जा रहा है। उसकी पूर्ण योजना मनोज के, उसके कामों पर सदेह करने से विफल हो गयी। मनोज ने अपने सदेह महाराज कुमारदेव को बता दिये और उस पर आचार्य भूदेव ने सम्भावित भय के निवारण करने के उपाय बता दिये। यदि आक्रमण से पूर्व वह महामात्य पद से च्युत न हो जाता और उसके विश्वासघात करने का कुमार को विश्वास न हो जाता तो श्वेतांग के स्थान कुमारदेव बदी होता और महामात्य के स्थान पर भूदेव की नियुक्ति न हो पाती और कुमारदेव की, मल्लों से युद्ध में, मृत्यु घोषित कर शतवीर को अवन्ति का महाराज घोषित कर दिया जाता।

श्वेतांग की पूर्ण योजना मनोज के भेद जान लेने के कारण और उसके ठीक अनुमान लगाने के कारण, विफल हो गयी। श्वेतांग पालकदेव के आगारो में बदी हो गया और दो दिन के घमासान युद्ध के पश्चात् मल्लो को घोर पराजय मिली। चौथी बार कुमार विजयी हो कर अवन्ति की

प्रजा के जय जयकार में नगर में आया। इससे उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।

इसके पश्चात् मल्ल राज्य से अवन्ति के सम्बन्ध पुनः टूट गये और दूत वापिस हो गये।

लिंगायतवाद

: १ :

आचार्य भूदेव के लिये राज्यकार्य संभालना सुगम नहीं था। श्वेतांग के काल में जो उच्छृंखलता जनता को प्राप्त हो चुकी थी, वह वापिस लेनी आवश्यक होने हुए भी, सुगम नहीं थी। भूदेव भली भांति समझता था कि जनता में पुनः तपस्या का जीवन लाना शीघ्र सभव नहीं। उसके लिये बहुत चतुराई और धैर्य की आवश्यकता थी। इस कारण उसने कोई बात भी नहीं बदली। नागरिक जीवन में राजाज्ञाओं से परिवर्तन लाने के स्थान पर उसने जनता के मनों में परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये उपाय करना आरम्भ कर दिया।

विवाह के नियम जैसे ढीले हो चुके थे, उनको वैसे ही रहने दिया गया। उद्योग और शिल्प के लिये भी उतना ही बल दिया जाता रहा, जितना श्वेतांग के काल में था। प्रजा का ध्यान धनोपार्जन में वैसे ही लगा रहने दिया गया जैसे पहिले था। आचार्य भूदेव के महामात्य पद पर आसीन होने से, जो आशंका जनता में उत्पन्न हुई थी, वह धीरे-धीरे मिट गयी और लोग नाच-रंग में वैसे ही लीन रहे, जैसे पहिले थे।

सायंकाल नदी के घाट पर नगर के लोग मनोरंजन के लिये एकत्रित होते। दिन भर काम की थकावट, सस्ते दाम पर मद्य पान कर तथा नाच-रंग तमाशे और नटो के करतब देख, दूर करते और खाना-पीनाकर घरों में जाकर सोते।

जबसे यह प्रथा स्वीकार हुई कि विवाह करने के समय माता-पिता का कन्यादान करना आवश्यक नहीं, तब से प्रायः विवाह नदी के तट पर अथवा मधुशालाओं में तथा सुरा की मस्ती में निर्णय होते थे। कभी ही किसी

ब्राह्मण देवता से वेद मंत्र पढ़ा कर और प्रायः बिना किसी को भी कहे-सुने युवक-युवतियां मधुशाला में बैठे-बैठे विवाह करने का निर्णय करते और पत्नी पति के घर चली जाती। ऐसे विवाहों के सम्बन्ध स्थायी भी बन जाते थे। कभी शीघ्र ही पति-पत्नी में सम्बन्ध, झगड़ा होने से, टूट जाता तो अगले दिन वे पुन: भिन्न-भिन्न मधुशालाओं में अपने लिये जीवन-साथी ढूंढने चले जाते।

यह सब कुछ भूदेव के आने से बंद नही किया गया। जनता का भय, कि ये रंग-रलियां बंद हो जावेंगी, मिट गया। राज्य की ओर से कोई घोषणा नही की गयी। महामात्य के बदलने की घोषणा के समय केवल इतना कहा गया, "मनुष्य के सुख साधनो मे नये आविष्कार करने वालों को पुरस्कृत किया जावेगा।" इसके साथ ही यह घोषणा की गयी कि राज्य का कर सबको यथा समय दे देना चाहिये।

इन घोषणाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा गया। इससे लोग अति प्रसन्न थे। इससे एक बात जनता के मन में जम गयी कि अवन्ति में लोक-सुखवर्धक नीति का चलन करने वाला श्वेतांग नहीं, प्रत्युत कुमारदेव था।

श्वेतांग कहां गया कोई नही जानता था। जनता को उसके कही लुप्त हो जाने का शोक भी नहीं था। किसी के लिये किसी प्रकार की बाधा भी उपस्थित नहीं हुई थी। कार्य यथावत् ही चलता प्रतीत हुआ था। इस पर भी महामात्य के बदले जाने से सब लोग अवन्ति के वायु-मंडल में परिवर्तन अनुभव करने लगे थे। कही-कहीं ब्राह्मणों के दर्शन होने लगे थे। जहां पहिले, सिर पर लम्बी-सी चुटिया की बड़ी-सी गांठ देख कर लोग हंसते थे, वहां इसको एक सहनशील बात मान, लोग इस ओर ध्यान नहीं देते थे। महामात्य आचार्य भूदेव के भी सिर पर बड़ी-सी चोटी थी। महामात्य के आगारो से प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त्त में वेद मंत्रों की ध्वनि उठने लगी थी। इस कारण यह बात भी अब कोई आपत्तिजनक नहीं रही थी।

एक दिन नगर और राज्य में यह समाचार फैल गया कि महाराज

कुमारदेव के महारानी रेखा से पुत्र हुआ है। इस राजकुमार के जन्म पर नगर में दीप माला की गयी। पाच दिवस तक मद्य, मांस तथा मिष्ठान्न विना मूल्य मिलता रहा। राज्य की ओर से इन वस्तुओ के भडार स्थान-स्थान पर खोल दिये गये। सैनिको को दस-दस स्वर्ण मुद्रा इस उत्सव पर व्यय करने के लिये भेंट के रूप में दी गयी और उनको नगर में घूमने का सुअवसर दिया गया।

वहुत से छुट्टी पाये सैनिक अपने-अपने घरो को चले गये। जो विवाहित नही थे और जिनके माता-पिता नहीं थे वे नगर की मधुशालाओ में अपना धन व्यय कर आनन्द-भोग करने लगे।

इससे नगर में खाने-पीने और खेल-कूद की धूम मच गयी। इन सैनिको के नदी घाट पर भारी सख्या में जाने से नाच-गानो में विशेप स्फूर्ति आ गयी। नाचने वाली नर्तकियो के अड्डो में वहुत वृद्धि हो गयी और प्रत्येक अड्डे पर देखने वालो की भीड बढ गयी।

नगर की सुप्रसिद्ध नर्तकी मिरिका भी आज अपने घर से निकल घाट पर नाच करने आयी। उसके घाट पर आने के समाचार से पूर्ण घाट पर आये हुए रसिक लोग उसका नाच देखने चले आये। नगर के प्रसिद्ध सेठ राघव, महाराज के घर राजकुमार के होने के उपलक्ष में, यह नाच करा रहे थे। पूर्ण खर्चा सेठ जी ने किया था। इस पर भी दर्शक, जव नर्तकी नाच में विशेष कौशल दिखाती थी तो रजत और स्वर्ण भेंट करते थे।

नाच समाप्त हुआ। मिरिका, भीड से निकल, भेंट में प्राप्त स्वर्ण मुद्राओ को लिये हुए अपने रथ में वैठ, चलने ही वाली थी कि एक सैनिक भीड़ को इधर-उधर धकेलता हुआ रथ के समीप आ कर वोला, "देवी! अपने रथ में मुझको भी स्थान दे दो।"

"क्यों?" मिरिका ने मुस्कराते हुए युवक सैनिक की ओर देख कर पूछा।

"इस कारण कि मै युवा हूं, सुन्दर हूं और....।" कुछ और कहने के लिये वह शव्द ढूंढ रहा था।

मिरिका खिलखिला कर हंस पड़ी। इससे वह सैनिक अपनी शेष बात नहीं कह सका और चुप कर गया। मिरिका ने उसको चुप देख, भेंट में मिली स्वर्ण-मुद्राओं में से मुट्ठी भर निकाल कर दिखाते हुए कहा, "देखो कितनी सुन्दर हैं ये।"

"हां। हां। यही तो कहने वाला था। मैं बहुत धनी हूं।"

"कितने धनी हो तुम ?"

"कुबेर समान। अपना मूल्य बताओ।"

"रथ पर चढ़ने के लिये एक सहस्र। रातभर अपने आगार में रखने के लिये पांच सहस्र।"

"स्वीकार है।"

मिरिका आश्चर्य में देखती रह गयी। फिर कुछ विचार कर पूछने लगी, "किसके बेटे हो ?"

"मेरे पिता जी तुम को कुछ नहीं देंगे। वे महा कंजूस हैं। कहो तो रुपया निकालूं ?"

"लाओ।"

सैनिक ने एक थैली अपने उत्तरीय के नीचे से निकाल, रथ पर फेंकते हुए कहा, "गृह द्वार पर चल कर और दूंगा।"

मिरिका ने थैली खोल कर देखी नहीं। केवल हाथ में तौल कर अनुमान लगा कहा, "ठीक है, चले आओ।"

सैनिक कूद कर मिरिका के रथ पर चढ़, उससे सट कर बैठ गया। भीड़ जो इन दोनों का संवाद सुन रही थी, इस सौदे के हो जाने पर तालियां बजा कर हर्ष प्रकट करने लगी। किसी ने जयघोष कर दी, "मिरिका देवी की जय।"

इस भीड में एक युवक और एक युवति विस्मय में, यह सौदा होता हुआ, देख रहे थे। दोनो देहात से आये थे और भाई-बहन थे। यद्यपि उनको विदित था कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध नगर में सुगमता से बनते बिगड़ते हैं, परन्तु यह विचार कर कि उनको नगर वालों से क्या, वे

कुमार का जन्मोत्सव देखने चले आये थे। वे मिरिका का नृत्य देख कर नर्तकी को जाते हुए देख रहे थे और उस समय नर्तकी और सैनिक का सौदा देख कर चकित हो रहे थे। लड़की जो केवल चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी तालियां बजा कर सैनिक की बहादुरी की प्रशंसा कर रही थी।

रथ गया। भीड़ भी रथ के पीछे मिरिका की जय-घोष करती हुई चली गयी और दोनों विस्मय में रथ को जाते देखते रह गये। लडकी ने कहा, "भैया! कितना धन है इस नगर में?"

"हां।"

"हमारे पास कुछ नहीं है। हम घर से केवल दस रजत लेकर आये थे।"

"अभी दसों की दसो हमारे पास हैं। किसी बात की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

"परन्तु....।" लडकी कुछ कहती-कहती रुक गयी।

"हां, क्या बात है मीना?"

"पिताजी स्वस्थ होते तो हम भी नगर में आकर कुछ कार्य कर लेते। हमारे पास भी रजत के स्थान स्वर्ण मुद्रायें होतीं।"

"तुम को क्या चाहिये?"

"देखा नहीं कि नर्तकी ने कैसे सुन्दर भूषण पहिने हुए थे?"

"ओह! वे भी मिलेंगे। भगवान् तुम्हारे पति को भेजेंगे, जो तुमको बहुत सुन्दर सुन्दर भूषण बना कर देगा।"

मीना को विवाह की बात सुन कर लज्जा अनुभव हुई। परन्तु अपनी सहेलियों को स्मरण कर, साहस पकड़ कर बोली, "पर भैया! तुमको भी तो भाभी के लिये भूषण चाहियें?"

इससे युवक को कुछ याद आ गया। उसने कहा, "मीना हम को भोजन भी तो करना है। क्या खाओगी?"

"पहिले मिष्ठान्न की दूकान पर चलें। पीछे पूरी खायेंगे।"

वे अभी वहां ही खड़े थे, जहां से मिरिका का रथ युवक को लेकर चला गया था।

खाने की बात का विचार कर वे एक मिठाई की दुकान की ओर चल पड़े। मिठाई विना मूल्य मिलती थी। दूकान के सामने खड़े होते ही दूकानदार ने एक दोना युवक को और एक युवति को दिया। दोने मे पांच प्रकार की मिठाई थी। दोनों ये लेकर नदी तट पर जा बैठे और खाने लगे। मिठाई समाप्त होने पर वे पीने के लिये जल ढूंढने लगे। नदी का जल कुछ गंदला था, इस कारण एक पियाऊ पर पहुचे तो उनको दो मट्टी के कुल्हड़ सुवासित पानक के मिल गये। दोनो ने पानक पिया। तृषा शेष रह जाने पर उन्होंने ने पुनः पिया। मीना ने इसको पीते हुए कहा, "यह बहुत स्वादिष्ट प्रतीत होता है।"

"इसमें कुछ मात्रा में सुरा मिली प्रतीत होती है।

"पर इसमें मुझको कोई खरावी समझ नही आयी। मेरे मित्र ने बताया था कि यदि मद अधिक चढ़ने लगे तो आचार खा लेना चाहिये। इससे मद उतर जाता है।" इस समय उनको फिर भूख और प्यास लगी। अब वे एक पूरी की दूकान पर गये और पहिले की भांति उनको एक-एक दोना पूरी और साग का मिल गया। दोनों एक स्थान पर बैठ पूरी खाने लगे। इस समय तक मीना को मद्य का नशा चढने लग गया था। उसने भाई से कहा, "भैया! देखो न, नदी के पार भी ऐसा आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है।"

युवक ने देखा और कहा, "नही तो।"

"वाह! देखते नही? वह सामने किनारे पर, दीपो की पंक्तियां लगी है।"

युवक आखे फाड़ फाड़ कर देख रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि नदी के मध्य में चली गयी। वहा इस तट की वस्तुओ और-दीपको का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था। वह समझ गया और खिलखिला कर हसने लगा। मीना नहीं समझी। दोनों पूरी खाकर पुनः तृषा अनुभव करने लगे। भाई, बहन की अवस्था का अनुभव लगा कर शुद्ध जल की खोज में था, परन्तु

वह कहीं मिल नही रहा था। सामने एक पियाऊ दिखाई दी और वे प्यास से व्याकुल मद्य पीने वहा जा पहुचे। तृषा तीव्र हो गयी थी, इस कारण उन्होने कई-कई कुल्हड लेकर पिये।

अब उनको ऐसा प्रतीत होने लगा कि वे हवा में, भमि से कई पग ऊपर चल रहे है। वायु उनका भार सह नहीं सकती। इस कारण उनके पाव वायु मे धसे जा रहे है और उनके पाव ऊपर नीचे हो रहे है। वास्तव में वे सुरा के मद में झूमते हुए जा रहे थे। मीना को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पृथ्वी डोल रही हो। उसने भाई के कधे पर हाथ रख आश्रय लेते हुए कहा, "हम कहा जा रहे है?"

"मैं थक गया हूं। चलो घर लौट चलें।"

"पर यह भूचाल जो आ रहा है।"

"आने दो। हमारा झोपड़ा गिर नही सकता।"

"मेरी टांगें वायु में धंसती जा रही है।"

"इस पर भी हम चल रहे है।"

"भाड़े का रथ लेकर गाव को चल दें।"

"तनिक नदी के तट पर बैठ कर थकावट दूर कर लें, तो ठीक न होगा क्या?"

दोनो घाट से एक ओर हट कर जंगल में घुस गये और एक पेड़ के नीचे बैठ कर सुस्ताने लगे।

: २ :

मीना का पूरा नाम मीनाक्षी था। उसके भाई का नाम ताराचन्द्र था। वे और उनके पिता कुम्हार का काम करते थे। उनका पिता सीधा-सादा व्यक्ति था और पिछले एक वर्ष से वह दमा के रोग से बीमार था। तारा और मीना दोनो मट्टी के बर्तन बनाते थे। तारा नगर में लाकर वेचता था। वही राजकुमार के जन्मोत्सव के मनाये जाने की सूचना लेकर गया था और मीना हठ कर उसके साथ उत्सव देखने चली आयी थी।

उनका विचार था कि मध्य रात्रि तक घर लौट आवेंगे। परन्तु ऐसा हो नहीं सका। अगले दिन जब तारा की नींद खुली तो दिन बहुत चढ़ आया था। वह उठ कर बैठा तो पहिले तो उसको समझ ही नही आया कि वह वहां कैसे आ पहुचा है। तदनन्तर उसको धीरे-धीरे पिछली रात की बातें स्मरण आने लगी। जब उसको यह स्मरण आया कि मीनाक्षी और वे दोनों पेड़ की साया तले सोये थे, तब उसने अपनी बहन को ढूँढना आरम्भ कर दिया। वह वहा नही थी। वह उठा। उसकी टांगें लड़खड़ा रही थीं। इस पर भी वह बहन के न मिल सकने पर चिन्ताग्रस्त हो पेड़ का आश्रय ले खड़ा हो गया और जहा तक उसकी दृष्टि जाती थी, बहन को देखने लगा। कभी एक ओर जाता कभी दूसरी ओर। मीनाक्षी कही दीखाई नही दी।

सूर्य सिर पर आने लगा था। वह बहन को ढूंढता हुआ धीरे-धीरे चल कर कुछ दूर तक निकल गया। एक पेड़ो के झुरमट में उसको अपनी बहन की धोती का सा कपड़ा दिखाई दिया। वह वहा खड़ा हो गया और आवाज दे-देकर पुकारने लगा।

पेड़ों के झुरमुट में से एक भर्राई हुई आवाज आयी, "भैया!"

तारा पौदो के पत्तो को एक ओर कर झुरमुट के बीच घुस गया। उसने देखा कि मीना घुटनों में सिर दिये बैठी है। तारा ने पूछा, "क्या हुआ है?"

"सर्वनाश, भैया!"

"क्या?"

मीना बोली नही पर सिर घुटनो में दे कर रोने लगी। "कैसे आ गयी हो तुम यहां?" तारा ने पूछा।

"मुझ को यह स्मरण होता है कि कोई मुझको बांह से पकड़ कर यहां ले आया और इस झुरमुट में लाकर मेरे....। पीछे मैं सो गयी। जब उठी तो दिन निकलने वाला था। मेरे साथ एक युवक यहां पर था, जो मुझ को हिला-हिला कर जगा रहा था। जब मुझ को चेतना हुई तो

मेरा मुख चूम कर, यह मेरे पास रख कर चला गया है।"

तारा ने देखा कि दस स्वर्ण मुद्रायें उसके पास रखी थीं। वह अपनी बहन के पास बैठ गया और पूछने लगा, "अब क्या होगा?"

"मैं इतनी देर से यहां बैठी यही तो विचार कर रही हूं। मुझको तो नदी में डूब मरने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं सूझता।"

"नहीं मीना! यह नहीं! उठो चलो। किसी से कुछ नहीं कहना। बिना बताये कौन जान सकेगा कि क्या हुआ है?"

"पिता जी को पता चला तो बहुत दु.खी होगे।"

"पर तुम उनको बताओगी ही क्यो? हम तुम्हारा विवाह शीघ्र ही कर देंगे।"

"किससे करोगे? गांव में तो कोई लड़का दिखाई देता ही नहीं।"

"मिल जायेगा। पर तुमने आज की घटना किसी से बताना नहीं।"

दोनो घर पहुचे। पिता की हालत कुछ अच्छी नहीं थी। इस पर भी उसने बच्चो से पूछा, "क्या देखा उत्सव में तुमने?"

"बाबा! नगर में सोने की नदियां बहती हैं। मिठाई मास, मद्य इत्यादि सब नि.शुल्क मिलता था। लोग स्वर्ण-मुद्राओं की वर्षा करते है, मानो वे कौड़ियां है।"

"रात कहा रहे हो?"

"वहा, नदी के किनारे घाट पर, सो रहे थे।"

पिता को संतोष हुआ और वह अपने नित्य के काम, खांसने और श्लेष्मा निकालने में लग गया। मीना स्नानादि कर घर के काम में लग गयी। तारा अपने पिछले दिन के अनुभवो पर विचार करता हुआ अपने बर्तन बनाने के चक्के पर जा बैठा।

वह बर्तन बनाने और मीना की बात पर विचार करने में इतना लीन था कि सामने एक लड़की आकर बैठ गयी और उसको पता ही न चला। जब एक बर्तन बना, उसे चक्के से उठा कर एक ओर रखने लगा, तो उसकी आंख की पुतली में लाल सी झलक पड़ी। उसका ध्यान

टूटा और वह उस लड़की को वहां बैठा देख खिल उठा। उसने पूछा, "पारो! कब आयी तुम?"

"कितनी देर से तो बैठी हूं। न जाने कौन-कौन महल बना रहे थे कि इधर आंख ही नहीं उठी।"

"आज बहुत दिनों पश्चात् तुम्हारे दर्शन हुए हैं?"

"मां कहती थी कि जब तक विवाह न हो जावे, मुझ को तुमसे मिलना नहीं चाहिये। कल वे सब उत्सव देखने नगर गये थे और मैं अकेली होने से तुम को मिलने आयी थी, पर तुम भी तो गए हुए थे।"

"अब तो तुम्हारे दर्शन को मन तरसता रह जाता है।"

"छोड़ो इस व्यर्थ की बात को। बताओ कब आओगे विवाह करने?"

"विवाह तो हो जाता, पर तुम्हारी मां भूषण जो मांगती हैं। एक वर्ष के भारी परिश्रम से, दो सौ रजत एकत्रित की है। अब प्रश्न यह है कि भूषण कहां से खरीदूं?"

"आकर मां से ही कह दो न। वे स्वयं ले आयेंगी।"

"यही विचार कर रहा हूं।"

"तो आज आना।"

तारा अपने होने वाले श्वसुर के घर जा पहुँचा। वे लोग शोकग्रस्त बैठे थे। तारा के पूछने पर पारो ने बताया कि कल ये सब उत्सव में गये थे और वहाँ भाभी खो गयी है। दिन भर ढूंढने पर भी नहीं मिली।

"तो उसको ढूंढने आज पुनः जाना चाहिये।"

"चन्दू वहीं है," तारा के श्वसुर ने कहा, "वह व्याकुल हो नगर के मार्गों पर इधर-उधर पागल हुआ फिर रहा है।"

इस पर तारा ने अपने मन की बात कह दी, "बाबा! मैं तो यह कहने आया था कि पारो का विवाह कर दो। मेरे पास दो सौ रजत तो हैं। उसके भूषण खरीदने नगर जाना तो होगा ही। भाभी को भी ढूंढ लेंगे।"

इस पर पारो का पिता तारा को एक ओर ले गया और उसको कहने लगा, "भैया तारा! अब हम भूषण खरीदने नगर नहीं जायेंगे।

मैं बताता हूं कि क्या हो रहा है वहां। सहस्त्रों सैनिक और अन्य युवक उत्सव में घूम रहे हैं। वे मद्य पीते हैं और फिर जहां कहीं भी कोई स्त्री मिले, उससे भोग-विलास करते हैं। यदि तो प्रातः उससे पिंड छूट गया तो ठीक, नहीं तो गला घोंट नदी में बहा देते हैं। मुझको भय है कि चन्दू की बीवी से भी यही हुआ है। उसकी रसभरी आंखों ने कई युवक उसके आगे-पीछे कर दिये थे।"

"बाबा! मैं सब कुछ देख आया हूं। पारो का विवाह नहीं करोगे तो वह भी किसी के जाल में फंस जायेगी।"

"चन्दू के आ जाने पर लड़की का विवाह अवश्य ही कर दूंगा।"

चन्दू आया पर पारो की भाभी नहीं आयी। वह एक और स्त्री पकड़ लाया था। यह कनखैया थी। चन्दू के से हट्टे-कट्टे युवक को उज्जयिनी के मार्गों पर व्याकुल घूमते देख पूछने लगी, "युवक! क्या ढूंढ रहे हो?"

"अपनी बीवी को।"

"कहां रखा था उसको तुमने?"

"नदी-तट पर उत्सव देखते-देखते भीड़ में खो गयी है। उसी समय से ढूंढ रहा हूं। अभी तक नहीं मिली।"

"क्या युवा थी वह?"

"हां, मेरी आयु की ही थी।"

"तो गयी। अब नहीं मिलेगी वह। देखो यदि न मिले तो रात को मेरे स्थान पर आ जाना।" यह कह उसने चन्दू को अपना घर दिखा दिया।

चन्दू ढूंढते-ढूंढते थक कर रात को उस स्त्री के घर जा पहुंचा। उसने उसकी सेवा शुश्रूषा की और उसकी बीवी बनना स्वीकार कर लिया। चन्दू ने पिता की स्वीकृति के बिना विवाह करना पसन्द नहीं किया। इस कारण दोनो गांव चले आये।

चन्दू का पिता यह सौदा देख चकित रह गया। कनखैया ने चन्दू के पिता से कहा, "देखो बाबा! नगर में मेरे कई मकान हैं। इनसे भारी आय होती है। यह तुम्हारा बेटा यदि मेरे साथ चल कर रहेगा, तो इसको यह

मिट्टी के मटकने नहीं बनाने पड़ेंगे। बीस-तीस रजत मासिक आपको भी भेज दिया करूंगी। बताओ है स्वीकार?" चन्दू तैयार हो गया। बाप बितर् बितर् मुख देखता रह गया। अगले दिन पारो का विवाह हो गया। तारा पारो को अपने घर ले गया। चन्दु माता पिता को छोड़ नगर चला गया। इसके एक मास पीछे तारा की बहन मीना चुप चाप नगर को चली गयी।

: ३ :

भूदेव ने महामात्य पद ग्रहण किया तो उसने मनोज को निजी गुप्तचर नियुक्त कर लिया। वह नगर-नगर और गांव-गांव घूम कर जनता के विचारों की थाह लेता और सब समाचार महाराज तथा महामात्य के पास भेजता रहता था। भूदेव ने और भी कई गुप्तचर रखे हुए थे और वह एक से भेजे समाचार दूसरों से जांच कराता रहता था। इन समाचारो के आधार पर वह देश में नीति का निर्माण करता रहता था। कुछ ही दिनो में राज्य भर में कार्य शान्ति से चलने लगा था। पंडित भूदेव ने पहला नियंत्रण यह चलाया कि नर नारी की स्वतंत्रता एक पवित्र वस्तु घोषित कर दी। उस घोषणा में उसने यह कहा, "महाराज कुमारदेव के राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री, पूर्ण स्वतंत्रता है। कोई, चाहे वह धनवान हो चाहे शक्तिशाली, किसी दूसरे की स्वतंत्रता छीन नहीं सकता।"

इसके अर्थ स्वरूप व्यक्ति-गत स्वतंत्रता सबकी बनी रही। जनता मे सुधार, वह राज्य-बल से करवाना नहीं चाहता था। व्यक्तियों में उच्छृंखलता राज्यसत्ता दुर्बल होने के कारण नही, प्रत्युत नैतिकता के गिर जाने के कारण उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण उसने व्यक्ति और राज्य में संघर्ष चलाने के स्थान धर्म और व्यक्ति के अधिकार-क्षेत्रों मे सीमा बांधने का यत्न किया।

उसने रेखा को पटरानी के पद से हटाने के लिये नही कहा। उसने

रेखा के पुत्र उत्पन्न होने पर देश भर में उत्सव मनवाया। इस उत्सव में जनता जो कुछ चाहती थी वह उसको उपलब्ध कराया। इस उत्सव में जो कुछ उच्छृंखलता हुई, उससे वह भली भाति परिचित था, परन्तु उसे इसको रोकने के लिये राज्य की ओर से दबाव की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

राजकुमार के उत्पन्न होने पर उसने कुमारदेव के राज्याभिषेक की तिथि निश्चित कर दी और उस अवसर पर होनेवाले अनेकानेक आनन्दोत्सवों की एक लम्बी सूची बना दी। प्रत्येक कार्य का एक-एक अध्यक्ष नियुक्त कर दिया।

महाराज कुमारदेव, रेखा, राज्य-कर्मचारी और अन्य प्रजागण सब प्रसन्न थे। ब्राह्मण वर्ग भी अब महामात्य से मिल कर अपनी सम्मति देने लगा था। इस वर्ग से जब-जब भी जनता के आचार-व्यवहार में राज्य की ओर से हस्तक्षेप करने के लिये कहा जाता था, तब-तब महामात्य का एक सरल उत्तर यह होता था, "जब तक कोई दूसरे पर बल प्रयोग नही करता तब तक राज्य का हस्तक्षेप लाभ के स्थान हानिकर होगा। कोई अभियोग मेरे पास लाओ, जहां यह सिद्ध हो सके कि किसी ने किसी दूसरे पर बलात्कार किया है तो न्यायालय न्याय करेगा।"

"तो श्रीमान्! सुधार कैसे होगा?"

"यह ब्राह्मणो का काम है कि जनता को समझावें और प्रत्येक कार्य के गुण-दोष बतावें।"

राज्याभिषेक पर लाखों आने वाले दर्शकों के आराम के लिये सैकडो प्रकार के प्रबन्ध करने पडे। सब पूर्ण सतर्कता से किये गये। इस अवसर पर देश-विदेश से आने वाली लगभग दस लाख जनता के खाने-पीने का प्रबन्ध कर दिया गया।

इस अवसर पर दास-दासियो के क्रय का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। महाराज कुमारदेव इसको एक अच्छी प्रथा मानते थे। भूदेव ने इस का विरोध करने के स्थान इसको भी उसी सिद्धान्त के अनुसार नियंत्रण में

रखना चाहा, जिससे अन्य समाज के कार्य चलते थे । इसकी स्वीकृति भी कुमारदेव ने दे दी । भूदेव इसको अपने आस्तिकवाद की भारी विजय समझता था। उसने यह घोषणा करवा दी, "राज्याभिषेक के अवसर पर उज्जयिनी में लाखो की संख्या में लोग देश-विदेश से आने वाले है। इस अवसर पर कुछ व्यापारी लोग दास-दासियो का क्रय-विक्रय करना चाहते है। राज्य की ओर से व्यापार की स्वतंत्रता को स्वीकार करते हुए, हम इन बिकने वाले दास-दासियो की स्वतंत्रता भी मानते है। अतएव महाराज की ओर से यह घोषणा की जाती है कि अवन्ति राज्य में बिकने वाले प्रत्येक दास-दासी की परीक्षा होनी आवश्यक है । जो अपने बिकने को पसन्द करेंगे, वेही बिक सकेंगे ।"

लोग इस घोषणा को मूर्खता की बात समझते थे, परन्तु जब इन दास दासियो के निरीक्षण पर मनोज कुमार को लगा दिया गया तो लोगो को चिन्ता होने लगी ।

राजकुमार दो मास का हो गया था। कुमारदेव देख रहा था कि राजकुमार उससे और रेखा से न मिलकर, किरण से रूप-रेखा में अधिक मेल खा रहा है। उसने एक दिन रेखा से पूछ ही लिया, "प्रिये ! यह क्या चमत्कार मै देख रहा हूं। राजकुमार की आंखें तुमसे मिलने के स्थान किरण देवी से मिलती है। तुम्हारी आंखें काली है और इसकी शरबती है।"

रेखा ने बात को टालने के लिये कह दिया, "मुझको इतना ज्ञान नहीं महाराज !"

"मै जब इस बच्चे को देखता हूं तो मुझको किरण की याद आ जाती है। विचित्र बात है, तुम्हारा उससे सदा द्वेश रहा और तुम्हारे ही बच्चे की आंखें उसके समान हो।"

रेखा ने इस बात का उत्तर नही दिया।

जब से राज कुमार उत्पन्न हुआ था, श्वेतांग की यह मांग रही थी कि उसको एक बार राजकुमार के दर्शन करायें जायें। इस मांग की पूर्ति का

रेखा विरोध करती थी। इस पर भी राज्याभिषेक के तीन-चार दिन पहिले कुमारदेव को श्वेतांग की इस प्रार्थना की याद आ गयी। वह विचार करने लगा कि इसमें क्या रहस्य है? उसने तमाशा देखने के लिये एक दिन राजकुमार और रेखा को लेकर भूगर्भ आगारो में, जहां वह बंदी था, जाना स्वीकार कर लिया। साथ में कई सुभट भी ले लिये गये, जिससे श्वेतांग कोई हानि न पहुंचा सके।

श्वेताग ने इन सबको और राजकुमार को आते देख उठ कर स्वागत किया और महाराज का इस कृपा के लिये धन्यवाद किया।

"श्वेताग! मैं तुमको अभी भी अपना मित्र समझता हूं, परन्तु जब राजनीति भाई-भाई में सम्बन्ध को भी पार कर सकती है, तो मित्र-मित्र के सम्बन्ध से भी यह ऊपर जाने की क्षमता रखती है। इस पर भी मित्र की यह माग कि वह मेरे सुपुत्र के दर्शन करना चाहता है, मानी ही जा सकती है।" महाराज ने कहा।

श्वेतांग ने बालक को गोदी में ले लिया और उसको गवाक्ष के सामने लेजाकर प्रकाश में देखा। कितनी ही देर तक वह बालक को ध्यानपूर्वक देखता रहा और तब खिलखिला कर हस पड़ा। महाराज ने उसको इस प्रकार हंसते देख समझा कि उसका मस्तिष्क बिगड़ गया है। जब वह हसता ही गया तो बालक को वापिस लेकर महाराज ने पूछा, "मित्र क्या बात है? इस पागलपन का कारण क्या है?"

जब श्वेताग जी भर कर हंस चुका तो गम्भीर हो कहने लगा, "महाराज! मैं आपका आभारी हूं। मेरे मन में उठ रहे संशय शांत हुए।"

उसने रेखा की ओर देखा और झुक कर, प्रणाम कर कहा, "महारानी जी! मैं आपका भी भारी कृतज्ञ हूं।"

कुमारदेव ने कहा, "मित्र! मैं तुम्हें, अपने राज्याभिषेक के उपरान्त मुक्त कर, काशी पहुंचा दूंगा और तुम्हारे पिता जी को तुम्हारी सेवाओं के प्रतिकार में उचित धन भेज दूंगा। मैं अब तक भी यही समझता हूं कि बिना तुम्हारे मैं यह राज्य नहीं पा सकता था।"

"महाराज !" श्वेतांग ने कहा, "मैंने जो कुछ आपके लिये किया है, इसको आप आज से दस-बीस वर्ष पीछे ही समझ सकेंगे ।"

इस समय रेखा ने कहा, "महाराज मेरा चित्त घबरा रहा है । यहा की बंद वायु मेरे अनुकूल नहीं है । मै यहां से चलना चाहती हू ।"

इस पर सब बातचीत बंद हो गयी और महाराज रेखा को आश्रय देकर भूगर्भ से बाहर ले आये । रेखा लगभग अचेत हो रही थी। उसको सुवासित सुरा पान करा कर ठीक किया जाने लगा ।

: ४ :

किरण अभी भी कलाभवन में ठहरी हुई थी। मनोज अपने गुप्तचर विभाग के कार्य से उससे मिलने गया। उसकी सीख, जो उसने किरण को आमरण उपवास के समय दी थी, उसे स्मरण थी। इस कारण उसने मनोज को पहिचान कर उसको आदर से बैठाया और आने का कारण पूछा। मनोज ने कहा, "आपके विषय में जो कुछ सुना है, उससे आपके दर्शन करने की कई दिनों से अभिलाषा बन रही थी। सो आज अवसर पाकर आपको आदरयुक्त नमस्कार करने चला आया हूं।"

"क्या बात सुनी है आपने मेरे विषय में ?"

"मैं महाराज पालकदेव जी से, उनके विदा होने से पूर्व मिला था और उन्होंने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी । एक दिन महाराज कुमारदेव से आप के विषय में बात चल पड़ी तो वे भी आपकी प्रशंसा करते हुए थकते नहीं थे । दूसरी ओर, जहा महामात्य श्वेतांग आपकी प्रशंसा करते हैं, वहा आचार्य भूदेव भी आपके गुणानुवाद करते नहीं थकते । कितनी विचित्र बात है । आपकी प्रशंसा करने वालों में एक आस्तिक है दूसरा नास्तिक है । एक परोपकारी है और दूसरा स्वार्थरत है । एक पदच्युत राज्याधिकारी, दूसरा अन्याय से राज्याधिकारी बना हुआ । इस प्रकार परस्पर विरोधी प्रवृत्ति वालो को आपकी प्रशंसा करते देख, मन आपके सामने मस्तक नत कर नमस्कार करने को कहता है ।"

"मनोज! यह चारणो की बातें छोडो। बताओ श्वेतांग से भेंट हुई थी।"

"कुछ दिन हुए हुई थी। एकान्त में उससे बातचीत करने का अवसर मिला था। वह भी आपसे दुर्व्यवहार करने पर पश्चाताप करता था। उसका कहना था कि आपको अपनी राजनीति में सम्मिलित करने के लिये ही उसने वह सब कुछ किया था।"

"उसकी सबसे बडी भूल यह थी कि वे मेरे सहयोग का मूल्य स्वयं ही निश्चय कर रहा था। मै जो मूल्य उससे माग रही थी, उसको देने पर उसको महामात्य पद से वचित होना पड़ता था।"

"छोडिये इस बात को देवी! वह चित्र पट से हट गया है। उसने रग-मच पर अपना कार्य समाप्त किया और अब नेपथ्य में चला गया है। आप अभी रग मच पर खड़ी है। मै यह जानने के लिये उत्सुक हू कि आप कौन अभिनय करने का विचार करती है।"

"आप यह किस कारण पूछ रहे है। यह प्रश्न महामात्य के पत्र की भाति किसी दूसरे का है अथवा आपके मन से उपजी उस सीख की भांति है जो पत्र देने के पश्चात् आपने दी थी।"

मनोज मुस्कुराया और कुछ विचार कर बोला, "देवी! मै यह प्रश्न महाराज कुमारदेव की आज्ञा से पूछ रहा हू।"

"आप अभी भी भी एक प्रतिहार के रूप में है क्या?"

"नहीं! यहां मेरी पदवी प्रतिहार से ऊंची है। मै गुप्त सम्मति-दाताओं मे हू।"

"महाराज के इस प्रश्न में प्रयोजन क्या है?"

"वे आपको अपनी द्वितीय विवाहित पत्नी बना कर रखना चाहते है।"

किरण ने इस विषय पर पहिले ही विचार कर रखा था। इस कारण उसने बिना अधिक विचार किये कह दिया, "यह नहीं होगा। एक ऐसे पति-की पत्नी जो पसन्द न करता हो, मुझ को रुचिकर नहीं। एक ऐसी की सौतन बनना, जो घृणा करती हो, कुछ ठीक नहीं जचता।

"भगवान ने मुझको उन्नीस वर्ष की दासता के पश्चात् मुक्ति दी है। अब मै अपनी आत्मा को उन्नत करने के लिये यत्न करूंगी। मैं इस पापी जीवन की कालिमा को जप, तपस्या और पुण्य कर्मो से धोने का यत्न करूंगी।"

"देवी का उद्देश्य शुद्ध है और इस अधम भ्राता तुल्य प्राणी का आशीर्वाद आप के साथ है। आपका संदेश महाराज को पहुंचा दूंगा।"

मनोज जब झुक कर, प्रणाम कर जा रहा था, तो प्रमोद ने उस आगार में प्रवेश किया। उसके साथ लोला थी। मनोज ने प्रमोद और लोला के लिये मार्ग छोड़ दिया। लोला पांव में पायल पहिने थी। उसने लहंगा तथा कसी चोली पहिनी हुई थी। होठों पर धीमा सा रंग, आंखों पर काजर, मस्तक पर सिन्दूर और अन्य श्रृङ्गार के चिन्ह बने थे। मनोज को वह बहुत ही प्यारी लगी और वह उसको देखता रह गया। किरण ने मनोज को वापिस बुला लिया। मनोज, जो द्वार के अन्दर ही खड़ा था, लौट आया और देवी के समीप आ खड़ा हुआ। किरण ने कहा, "मैं आप का परिचय श्री प्रमोद, कलाभवन के अध्यक्ष जी से करा दूं?"

"देवी जी की अपार कृपा मानूंगा।" मनोज के यह कहते हुए लोला को फिर मन भर कर देखा।

किरण ने परिचय कराया, "ये है मनोज कुमार, काशी के एक दार्शनिक और शुद्ध वैदिक वाद में विश्वास रखने वाले, महाराज के गुप्त परामर्शदाता।"

मनोज समझ गया कि किरण ने यह परिचय देकर उस के उपकार से अधिक प्रमोद का भला किया है। इससे वह किरण देवी की चतुराई पर मुस्कराया। प्रमोद ने झुक कर मनोज को नमस्कार की। किरण देवी ने परिचय चालू रखा, "मेरी वर्तमान अवस्था के बनने में इन का भी हाथ है। मै इनकी एक ऐसी सीख के लिये, जो इन्होंने एक ऐसे समय में दी थी जब मैं आत्म-हत्या करने वाली थी और जिससे मैं यह नवीन जीवन धारण कर आत्मोन्नति की उज्ज्वल उषा का दर्शन करने

से वंचित होने जा रही थी, अति कृतज्ञ हूं।"

प्रमोद ने पुनः नमस्कार किया। लोला भी इस परिचय से यह जान गयी कि ये किरण पर इतना उपकार करने वाले हैं, और प्रशंसात्मक आदर से मनोज की ओर देखने लगी।

प्रमोद ने कहा, "श्रीमान्! आज लोला देवी किरण देवी के लिये एक विशेष नृत्य तैयार कर उसका प्रदर्शन कर रही है। हमें वहुत प्रसन्नता होगी, यदि आप भी इस अवसर पर उपस्थित हो, हमें अनुगृहीत करें।"

मनोज ने प्रश्न भरी दृष्टि से किरण की ओर देखा। किरण देवी उठते हुए बोली, "आइये मनोज जी! कुछ तो मनोरंजन होगा ही।"

सब नीचे उतर आये। भूमि पर एक बड़े आगार में कलाभवन के प्रायः सब विद्यार्थियों और अध्यापको की उपस्थिति में ये पहुंचे। इनके आसन रिक्त रखे हुए थे। एक आसन मनोज के लिये भी लगा दिया गया। जब ये वैठ गये तो लोला, जो अपने आगार से ही तैयार होकर आयी थी, दर्शकों के मध्य में आ खड़ी हुई।

लोला ने कहा, "गुरुवर तथा सहपाठियों को बता देना चाहती हूं कि मैं इस नृत्य में क्या कहना चाहती हूं। इसका शीर्षक है 'मानव जीवन'। शिशु-काल से लेकर वृद्धावस्था की चेष्टाओं को मैंने नृत्य में वांधने का यत्न किया है। इसके नौ अंग किये हैं। शिशु काल, कौमार्यावस्था, यौवनारम्भ, पूर्ण यौवन, विवाहित जीवन, माता-पिता की मृत्यु, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था।

"इतने मात्र के संकेत से आशा है कि आप समझ सकेंगे।"

किरण के समीप ही मनोज वैठा था। उसने मनोज से पूछा, "आप इस कला के विषय में जानते है क्या?"

"वहुत कम।"

"इस पर भी आशा करती हूं कि आप इस वालिका के कौशल की प्रशसा करेंगे। यह इस कला में अद्भुत योग्यता रखती है।"

"आज का दिन अपने जीवन का एक अति उत्कृष्ट दिन मानूंगा।

भगवान् की कृपा है कि ये सब आनन्दोत्पादक कार्य अनायास देखने को मिल रहे हैं।"

इस समय लोला ने नृत्य आरम्भ कर दिया। वह भूमि पर लेट गयी और पांच मास के बच्चे की भांति सुर, ताल, लय के साथ हाथ-पांव मारना अथवा पांव के अंगूठे को चूसना नृत्य में करने लगी। हर्ष के समय तथा मां से दुग्ध पान करते हुए जैसे बच्चा अंग-प्रत्यंग चलाता है वैसा ही वह करने लगी। धीरे-धीरे उसने पूर्ण शिशु-काल के लाड-प्यार तथा रूठने की मुद्रायें बना कर दिखायीं। बहुत कठिन अभिनय यौवनावस्था का था। वह भी उसने दिखाया। अंत में जब वृद्धावस्था का नाटक किया तो देखने वालों के हृदय पसीज उठे।

मनोज पूर्ण नाटक को आद्योपान्त मंत्र-मुग्ध की भांति देखता रहा। इसमें वैचित्र्य यह था कि बिना एक भी शब्द बोले हाव भाव ही ऐसे ढंग से किये गये थे कि अग-प्रत्यंग की प्रत्येक गति-विधि भावो को भलीभांति प्रकट कर दर्शको को हृदयंगम कर रही थी। इस पर भी कोई गति, ताल और लय से भ्रष्ट नहीं थी।

नौ अगो में नृत्य को समाप्त करने में चार घड़ी भर लग गये और इसमें लोला ने इतनी मुद्रायें बनायीं कि कलाविज्ञ उपस्थित जन भी वाह-वाह करते नहीं थके।

नृत्य समाप्त हुआ। किरण ने लोला की पीठ पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया और धन्यवाद कहा। पश्चात् मनोज ने भी लोला की भूरि भूरि प्रशंसा की और कहा, "सेवक के योग्य कभी कोई काम हो तो आज्ञा कर सकती हो। मुझको आप की सेवा कर अति प्रसन्नता होगी।"

इस कथन पर लोला ने किरण की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। लोला को मनोज का परिचय, 'महाराज का गुप्त परामर्शदाता' स्मरण था। किरण उसके मन का आशय समझ गयी। इस कारण उसने कहा, "मनोज जी! इस अनाथ बालिका का एक कार्य तुम कर सकते हो। आचार्य जी से कह देना कि लोला को स्मरण रखें। बस, वे सब कुछ जानते हैं।"

मनोज कलाभवन से लौटा तो मन में एक नवीन आन्दोलन लिये हुए था। इस अशान्ति का कारण वह समझने का यत्न करने लगा। इस रहस्य को समझने में उसको कई दिन लग गये। जब उसको पता मिला और वह अपने मन के भावों के विश्लेषण में सफल हुआ तो वह चकित रह गया। वह समझ गया कि वह लोला से प्रेम करने लगा है। इस बात के ज्ञान होने से वह पुलकित मन हो इसमें सफल होने का उपाय सोचने लगा। इसका सूत्र उसको किरण से दिये संकेत में मिला।

वह आचार्य भूदेव के पास गया और उनसे निवेदन करने लगा, "भगवन्! एक लडकी लोला ने अपने विषय में आपको स्मरण कराने के लिये कहा है।"

"ओह। मैं तो भूल ही गया था। देखो मनोज! यह कार्य लगभग वैसा ही है, जैसा महाराज पालकदेव का था। इस लडकी के पिता ने कुमारदेव के विरुद्ध, जब वह अभी सेनापति था, व्यवस्था दी थी। उसके प्रतिकार में महाराज ने इसे मरणपर्यन्त बंदी रखने का दंड दिया है। मैं समझता हूं कि यदि यह ब्राह्मण देवता, कुमार की सेवा स्वीकार कर, मेरी नीति के अनुसार कार्य करना चाहे तो इसका पहिला अपराध क्षमा हो सकता है। यदि तुम एक-दो दिन के लिये इस हठी ब्राह्मण के पास चले जाओ और इससे बातचीत कर, इसको समझा सको तो लोला का कार्य सम्पन्न हो सकता है।"

मनोज ने पंडित सुखदर्शन के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त की और नाराट दुर्ग को जाने की तैयारी कर दी। जाने से पूर्व वह लोला से मिलने गया। वह उससे प्रमोद के सम्मुख मिल सका। उसने लोला को बताया, "लोला देवी! मैं आपके पिता जी से मिलने जा रहा हूं। आशा करता हूं कि शीघ्र ही उनको बंदीगृह से मुक्त करा सकूँगा। यदि आप कोई संदेश देना चाहें तो दे सकती हैं।"

लोला पिता जी की बात सुन तरल-नेत्र कृतज्ञता से भरी हुई मनोज की ओर देखती रह गयी। प्रमोद ने मनोज को पंडित जी के विषय में

बताया, "पंडित जी में केवल दोष यही था कि वे निर्भीक थे। अपने मन की बात कहने मे वे कभी किसी से नहीं डरे। इस पर भी वे एक च्यूँटि को भी हानि पहुंचाने में अयोग्य थे।"

"नटराज !" मनोज ने कहा, "समय बदल गया है। आचार्य भूदेव की इच्छा है कि राज्य को सुदृढ़ करने के लिये सब श्रेष्ठ और बुद्धिमान् लोगों को यहां एकत्रित हो जाना चाहिये। यही कारण है कि धीरे-धीरे राज्य न्याय और युक्ति का प्रचार करने का यत्न कर रहा है। आपको विदित होना चाहिये कि इस ओर प्रथम प्रयास नदी तट पर एक शिला-लेख लगवा कर किया गया है। लेख में लिखा है, "महाराज कुमारदेव के राज्य में बलात्कार करना पाप माना गया है। किसी भी व्यक्ति को अधिकार नहीं कि वह दूसरे की इच्छा बिना उससे किसी प्रकार का कार्य ले। ऐसा करना बलात्कार है और इस का दंड मृत्यु है।

"राज्य नियमों के अनुसार ही काम लिया जा सकता है।"

लोला ने एक पत्र पिता के नाम लिख कर मनोज को दे दिया और कहा, "श्रीमान्, यदि यह कार्य आप सम्पन्न कर सकें तो आपकी जीवन भर आभारी रहूंगी।"

पंडित सुखदर्शन जैसे हठी ब्राह्मण को अनुकूल मार्ग पर लाना इतना सुगम नहीं था जितना पालकदेव को। इस कारण मनोज को कई बार नाराट की यात्रा करनी पड़ी।

: ५ :

किरण क्रीतदासीपन से मुक्त हो कलाभवन में लगभग दो मास तक रही। इस काल में वह अपनी परिवर्तित परिस्थिति पर विचार करने में लीन थी। इस समय तक उसको उत्ताल बाबा से प्राप्त ज्ञान के साथ साथ राज्यभवन की स्वार्थान्धता और कुचक्रों का ज्ञान भी मिल चुका था। दो मास तक कलाभवन में रहने से एक और सृष्टि का चित्र देखने को मिला। साधारण सी बात पर कैसे एक लड़की दूसरी से लड़ पड़ती है अथवा मित्रता

कर लेती है, यह सब उसमें संसार के प्रति ग्लानि उत्पन्न करने में कारण बन रहा था।

कलाभवन के रहने वाले पहिले कुछ दिन तो उसको ऐसे देखते रहे, जैसे वह कोई दर्शनीय जन्तु है। सबके मुख पर था, "एक लक्ष स्वर्ण में विकने वाली दासी।" किरण को यह उपनाम पसन्द नहीं था, परन्तु यह एक तथ्य था, जो वह मिटा नहीं सकती थी।

कुछ ही दिनो में उसको एक दर्शनीय जन्तु मानने वाले स्त्री-पुरुष उसके लिये स्वयं कम दर्शनीय नहीं रहे। लोला द्वारा कोकिला का परिचय उससे हो गया। जिस दिन से यह परिचय हुआ उस दिन से ही भवन में रहने वाले प्राणियो का पूर्वापर उसको विदित होने लगा।

कोकिला को दूसरो की वातें सुनने और सुनाने का वहुत चाव था। जव उसने किरण को अपनी वातो में रुचि रखते देखा तो वह कलाभवन की सव वातें स्वय ही उसको आकर वताने लगी। प्रमोद के विषय में, प्रमोद के पिता नटराज के विषय में और अनेको के विषय में समाचार जैसे वह जानती थी, वताती थी।

किरण को यह जान कर विस्मय हुआ कि कला के नाम के नीचे कितनी विषय-वासना कार्य करती है। एक दिन कोकिला वताने लगी, "कांचन कुमारी तीन दिन से लापता थी, आज उसका शव पद्मा के तट पर पड़ा मिला है।"

"ऐसा क्यो हुआ?" किरण ने उसको कथा वताने में प्रोत्साहन देते हुए कहा।

कोकिला ने कथा सुना दी, "वह एक धनी महाजन की लड़की थी। उसका कोई भाई नहीं है। वह ही पिता के लाखो की स्वामिनी होने वाली थी। उसका विवाह एक अन्य महाजन के पुत्र से होने वाला था, परन्तु उसका प्रेम एक कलाभवन के मूर्तिकार से हो गया। कलाकार ने उसकी कई नग्न मूर्तिया बनायी है। एक दिन उसका मंगेतर कलाभवन में उससे मिलने आया और अपनी होने वाली पत्नी की नग्न मूर्तियां कलाभवन के

प्रांगणों में खड़ी देख, क्रोध से भर गया। उसने उसके साथ यह किया है।"

एक अन्य दिन उसने बताया कि प्रियमुख एक रात भर उसके द्वार के बाहर बैठा प्रेम की भिक्षा मांगता रहा है। एक अन्य मूर्त्तिकार की कथा उसने बतायी। वह दस सहस्र रजत उसको केवल उसके नितम्बो का चित्र खेंचने का देने को कह रहा है।

किरण का प्रश्न था, "तो तुमने न क्यो कर दी है ?"

"मैं सुन्दरी प्रतियोगिता में भाग ले रही हूं। उसमें मेरा और भी अधिक दाम पडेगा।"

"और यदि तुम उसमें श्रेष्ठ सिद्ध न हुई तो ?"

"यह हो नही सकता। मैंने अपने को दर्पण के सम्मुख खड़े हो कर देखा है। मैं समझती हूं कि मुझ से सुन्दर लड़की ढूंढ कर लाना एक चमत्कार ही होगा।"

"हां, बहुत सुन्दर लड़की शायद सहस्रों दर्शकों के सम्मुख नग्न होना पसन्द न करेगी।"

"तो उस सौन्दर्य का लाभ ही क्या हुआ। देखिये, मैं यदि प्रथम पांच में भी आ गयी तो चार-पांच सहस्र स्वर्ण तो पा ही जाऊंगी और कहीं सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हुई तो फिर कहना ही क्या है ?"

"पर तुमको लज्जा नही लगेगी, जब दर्शक तुम्हारे कुच और अन्य गुह्य अंग देखेंगे ?"

"लज्जा ढोंग है। कुरूप स्त्रियो ने अपनी कुरूपता को छुपा कर रखने के लिये एक पाखड बना रखा है। सब जीव जन्तु निर्वस्त्र घूमते रहते है, तो मनुष्य ही क्यो इस प्रकार छुप-छुप कर रहता है ?"

"परन्तु इससे वासना को उत्तेजना जो मिलती है ?"

"जिनको मिलती है वे मूर्ख है। मुझको स्वयं कभी उत्तेजना अनुभव नहीं होती।"

"तो तुमने किसी के सम्मुख नग्न हो कर देखा है ?"

"प्रियमुख ने मुझको कई वार छुप कर और अब तो कई वार ऐसे

भी देखा है, वह मूर्ख कई बार मुझ को देखकर व्याकुल हो उठता है और मैं, जब वह मेरे समीप आने लगता है, तो लात मार कर दूर कर देती हूं।"

"तुमको इस में आनन्द आता है क्या?"

"आनन्द तो लात खाने का उसको भी आता ही है। यदि न आता होता तो पुन. मेरे दर्शन करने की अभिलाषा क्यों करता? प्रत्येक पक्ष के समाप्त होने पर वह मुझको देखने के लिये कहता है, 'कोकिला देवी! मैं देखना चाहता हूँ कि इन दिनो के अभ्यास से तुम्हारे अंगो में सौन्दर्य और बढा है या नहीं।' मैं कहती हूं, 'हा। देखो और सत्य-सत्य बताना और यदि मुझको तुम्हारी उंगली भी छू गयी तो लात खाओगे।"

"वह मान जाता है। मेरे अग प्रत्यग का निरीक्षण करता है और फिर प्रेम से विह्वल हो मुझसे आलिगन की इच्छा करता है। कभी यत्न भी करता है तो नृत्य से चपल हुई मेरी टांगो से ठोकर खाता है और औंधे मुख जा गिरता है।"

"मुझ को भय है, कोकिला! कि तुम्हारा भी कही वही अंत न हो, जो काचन् कुमारी का हुआ है?"

"मैंने उसको वचन दिया है कि यदि मैं सर्वश्रेष्ठ निर्वाचित हुई तो एक रात उसको अनुगृहीत करूंगी।"

"सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का तो विवाह हो जावेगा न?"

"मैं जानती हूं, परन्तु मूर्खो से, जो सौन्दर्य को धन से क्रय करते हैं, धोखा खेलना अनुचित नही है।"

मन की ऐसी भयकर अवस्था होने का ज्ञान पाकर किरण काप उठी। वह इससे किसी अच्छे परिणाम की आशा नहीं करती थी। उसने कोकिला की इस मनोवृत्ति को बदलने का प्रयत्न किया। उसने कहा, "कोकिला बहन! संसार में दस धर्म है और पांच पाप है। धर्म करने के लिये होते हैं। धृति, दमन, अस्तेय, इन्द्रिय निग्रह, शौच, बुद्धि युक्त व्यवहार, विद्या, सत्य और क्रोध के पालन से पुण्य फल प्राप्त होता है और काम, क्रोध, लोभ,

मोह, अहंकार का आचरण पाप का भागी बनाता है।"

कोकिला हंस पड़ी। उसने कहा, "महाराज कुमारदेव ने भाई का राज्य छीन लिया। क्या हुआ है? उसने एक क्रीतदासी को महारानी बना लिया है! क्या कर लिया है किसी ने उसका? यह सब भीरु जनो की बातें है। देखिये किरण जी! मैं आपको प्रगतिशील काल का धर्म बताती हूं। सुख प्राप्त करना प्रत्येक प्राणी का अधिकार है। जो भी इस सुख-प्राप्ति में बाधा खडी करता है, वह अनधिकार चेष्टा करता है। हमारे युग का धर्म है सब जियो, सब खाओ, सब आनन्द भोग करो। एक सबके लिये हो और सब एक के लिये हो।"

किरण विस्मय में कोकिला का मुख देखती रह गयी। उत्ताल बाबा की शिक्षा इससे विपरीत थी। उसका कहना था कि धर्म व्यक्ति और समाज का पथ-प्रदर्शक है। धर्म-पालन में कितना भी कष्ट हो, सहन करना चाहिये। वास्तविक सुख समाज की उन्नति से ही प्राप्त होता है। वह सुख क्षण-भंगुर होता है जो दूसरो को दुःख देकर प्राप्त हो। दूसरों मे धर्म विरुद्ध आचरण ही विरोध के योग्य है।

जिस दिन कोकिला से बातचीत हुई वह मनमें इतना दुःख अनुभव करने लगी थी कि रात भर सो नहीं सकी। यदि कोकिला उसके स्थान पर होती तो कुमारदेव विष का ग्रास हो चुका होता। श्वेतांग अवन्ति पर राज्य करता होता। यहां के बंदी-गृह बंदियों से भर गये होते।

वह कलाभवन को घूर का ढेर समझने लगी थी। कोकिला से प्रायः कलाकारो के काले चिट्ठे सुन चुकी थी। उसके मन में कलाभवन के लिये भारी श्रद्धा थी, परन्तु इस वातावरण में किसी के भी कल्याण की आशा वह नहीं कर सकती थी। इस विचार के आते ही वह कांप उठी।

रात भर मनन करने पर उसको इस भवन में, इस नगर में और इस राज्य में रहने से ग्लानि होने लगी। अंत में उसने अपने जीवन का महान् निर्णय लिया। उसने अपना शेष जीवन जप-तप, ध्यान में लगाने का निर्णय कर लिया।

इस समय उसके पास मनोज कुमारदेव का संदेश लेकर आया। कुमार-देव उससे दूसरा विवाह करना चाहता था। किरण अपना निर्णय ले चुकी थी। उसका आचार्य भूदेव की नीति पर भी विश्वास नहीं रहा था। वह समझती थी कि इस राज्य में रह कर आत्मोन्नति सम्भव नहीं।

एक दिन बहुत सुबह, ब्रह्ममुहूर्त से भी पूर्व, वह चुपचाप पंजों के बल चलती हुई, आगार से निकल, भवन की सीढ़ियों से उतर, सोये हुए द्वारपाल के पास से निकल, जनशून्य मार्ग पर जा खड़ी हुई। वह उस नगर से अदृश्य हो जाना चाहती थी और अपना जीवन-मार्ग ढूंढने के लिये महर्षि वामदेव जी के पास जाना चाहती थी। इस कारण पूर्व की ओर चल पड़ी।

नगर के प्रहरियों ने कहीं-कहीं रोका। उन्होंने पूछा, "अरी औरत ! कहां से आ रही हो ?"

किरण ने उस नगर में उचित प्रतीत होने वाला उत्तर दिया, "प्रेमी की शैया से।"

"ओह ! भाग्यशालिनी हो।" प्रहरी मुस्करा कर कहते।

"और कहां जा रही हो ?"

"अपने पति के घर।"

"भगवान् तुम्हारा भला करे।"

"हां भैया, तुम्हारा भी भला हो।"

इस प्रकार ऐसे उत्तर देती हुई, जो उस समय की उज्जयिनी में स्वाभाविक ही प्रतीत होते थे, वह नगर के द्वार की ओर चलती गयी। नगर-द्वार खुला था। प्रहरी खड़े थे। प्रहरियों के नायक ने पूछा, "कहां जा रही हो गोरी ?"

"अपने गांव को।"

"एक रात और यहीं रह जाओ न ?"

"वीर ! तुम्हारी प्रेमिका गाली देगी।"

"हां। ठीक कहती हो, परन्तु वह तुम-जैसी सुन्दर नहीं।"

"तो यह मेरा दोष है क्या ?"

"नहीं देवी! यह तुम्हारा गुण है। किसी राजा-महाराजा के घर जाओ तो सोने से लाद देगा।"

"वही जा रही हूं। मेरी चिन्ता न करो।"

इस प्रकार नायक को विस्मय करते छोड़, वह द्वार से निकल गयी। किरण सूर्य निकलते तक, पूर्व की ओर चलती हुई नगर से अढाई कोस दूर नदी के तट पर जा पहुंची। वहां एकान्त देख बैठ गयी। थोड़ा विश्राम कर शौचादि से निवृत्त हो, नदी में स्नान कर, कपड़े पहन समीप किसी गांव की खोज में चल पड़ी। एक कोस भर और चलने पर वह एक गांव में पहुंची। किसी ठहरने योग्य स्थान की खोज में पूर्ण गाव में घूम गयी। गाव के मध्य में एक मन्दिर था। उसमें एक पाठशाला भी थी। इस स्थान को अपने ठहरने के लिये उचित न मान वह गांव के बाहर की ओर चल पड़ी। वह किसी गृहस्थ के घर में ठहरना नहीं चाहती थी। वह अपना नाम-धाम तक बताना नहीं चाहती थी। वहां उसको अपना परिचय झूठ अथवा सत्य कुछ तो देना ही पड़ेगा। वह वहां जाकर विश्राम करना चाहती थी, जहा उससे पूछने वाला कोई न हो। इसी कारण वह किसी एकान्त मंदिर की खोज में थी।

गांव के बाहर, बस्ती से कुछ दूर, उसको एक निर्जन मंदिर दिखाई दिया। मन्दिर एक ऊचे चबूतरे पर बना था। चबूतरा मंदिर से दस-दस हाथ चारों ओर आगे को बढ़ा हुआ था। मन्दिर में एक मुख्य आगार था, जिसका द्वार पूर्वाभिमुख था। किरण चबूतरे पर चढ गयी और इसको निर्जन पा, वहां विश्राम करने के विचार से देखने लगी। मुख्य आगार का द्वार तो पूर्व की ओर था और इस आगार के उत्तर, दक्षिण और पश्चिम में कई अन्य आगार बने थे। मुख्य आगार में लिंग की स्थापना थी। आगार के बाहर एक बैल की, श्रद्धा-भक्ति से लिंग की ओर देखते हुए, पत्थर की मूर्त्ति बनी थी। आगार में लिंग पर पुष्प और जल चढा देख किरण को यह विचार आया कि कोई अभी पूजा कर गया है। उसने यह देखने के लिये कि वहां किसी का निवास है या नहीं, दूसरे आगार देखने आरम्भ कर दिये। सिवाय एक के शेष सब आगारो के द्वार खुले हुए थे और

उनमें चटाई बिछी होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वह आगार बाहर से कुंडे से और उस पर ताले से बंद था। उसने इस स्थान को अपने विश्राम करने के लिए उपयुक्त मान वहां एक दिन और एक रात ठहरने का विचार कर लिया। वह चबूतरे के एक कोने पर बैठ गयी और अपने भविष्य के विषय में विचार करने लगी।

महर्षि वामदेव के विषय में वह बहुत किंवदन्तियां सुन चुकी थी। यद्यपि आचार्य भूदेव वामदेव की विचारधारा को ठीक नहीं समझता था, इस पर भी वह वहां जाकर उनसे इस विषय पर राय लेना चाहती थी। विचार करते करते उसको नींद आने लगी और वह वहां चबूतरे पर ही लेटी और सो गयी।

बैल गाड़ी की गड़गड़ाहट के शब्द से उसकी नींद खुली। उसने देखा कि कुछ लोग एक बैलगाड़ी पर बहुत सा सामान लादे हुए आ रहे हैं। इस समय सूर्य पश्चिम की ओर प्रस्थान कर चुका था। तीसरा प्रहर हो गया था, उसको भूख लग आयी थी और वह उन लोगों से पूछ कर, गांव में जाकर भोजन का प्रबन्ध करना चाहती थी।

: ६ :

बैल गाड़ी पर बड़े-बड़े बर्तन और मिट्टी के मटके तथा खाने पीने का सामान लदा हुआ था। कुछ स्त्री-पुरुष उस गाड़ी के साथ थे। गाड़ी मन्दिर के पिछवाड़े में जा कर खड़ी हो गयी। किरण अभी भी अपने स्थान पर बैठी यह देख रही थी।

गाड़ी के साथ आये स्त्री-पुरुषों ने सामान गाड़ी से निकाल कर मंदिर के पिछवाड़े की ओर से चबूतरे पर ला कर रख दिया और परस्पर विचार-विनिमय करने लगे।

इस समय कुछ लोग बीस-पचीस मिन-मिनाते छागों को गले में रस्सी बांधे वहां ले आये। वे भी बैल गाड़ी के पास एक पेड़ से बांध दिये गये। इसके पश्चात् और भी लोग आये और उधर ही चले गये, जिधर बैल गाड़ी खड़ी थी।

किसी ने किरण को चौंतरे पर बैठे देख लिया। परिणाम स्वरूप एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति उसके सामने आकर बोला, "जय शिव।"

किरण ने आंख उठा कर उस व्यक्ति की ओर देखा। वह काला धूत, सिर पर मोटे घुंघराले बालों वाला पुरुष था। जब उसने किरण की आंखों की ओर देखा तो मंत्रमुग्ध हो देखता ही रह गया। अकस्मात् उसके मुख से निकल गया, "शिवं सुन्दरं। शिवं सुन्दरं।"

किरण उसके भाव को न समझती हुई उसके मुख पर देखती रही। उस भद्र पुरुष ने कहा, "देवी! कहां से आयी हो?"

"उज्जयिनी से।" किरण ने आंखें नीचे करते हुए उत्तर दिया।

"किधर जा रही हो?"

"पूर्व की ओर।"

वह मुस्कुराया और बोला, "क्या मरने की ठान रखी है। इस ओर बीहड़ जंगल है, वहाँ सिंह और व्याघ्र नर-रक्त के प्यासे घूमते रहते हैं।"

"मैंने श्री वामदेव जी के आश्रम में जाना है।"

यह सुन वह व्यक्ति खिलखिला कर हंस पड़ा। किरण विस्मय में उसका मुख देखने लगी। उस भद्र पुरुष ने पूछा, "तुम्हारे पति कहां हैं?"

"पति नहीं है।"

"विधवा हो?"

"नही! विवाह ही नही हुआ।"

"तो वेश्या हो। वामदेव के यहां तुम्हारी खूब पटेगी।"

"मैं अपना भविष्य सुधारने जा रही हूं।"

"क्या वहा से भगवान् समीप पड़ते हैं?"

"जैसे इस मन्दिर से समीप पड़ते हैं।"

वह काला पुरुष समझ गया कि किसी बुद्धिशील स्त्री से बातचीत कर रहा है। इस पर भी उसने कहा, "मेरा अभिप्राय इस मन्दिर से ही है। यह शिव मंदिर है और आज महा शिवरात्रि उत्सव है। भगवान्, देवन के देव, महादेव की उपासना होगी। सो जो कुछ वहां प्राप्त करने जा

रही हो, वह यहां भी मिलेगा।"

किरण ने बात बदलने के लिये और वादविवाद में न पडने के लिये कहा, "देवता ! मुझको भूख लगी है ।"

"अभी मिलेगा भोजन ! परन्तु अभी के निर्वाह के लिये ही तनिक खाना। रात्रि को महाभोज होने वाला है।"

किरण चुप रही। वह गया और शीघ्र ही दो युवतिया पलाश के पत्तों से बने दोने में मिठाई लिये हुए आयीं। साथ ही मट्टी के कुल्हड़ में जल भर लायीं। उन्होने सब सामान किरण के सामने रख दिया और स्वय उसकी सुन्दर आखो को देखती हुई, सामने चौकड़ी लगा बैठ गयी। एक स्त्री ने पूछा, "क्या नाम है देवी !"

"रम्भा।" किरण ने अपना परिचय न देने के लिये कह दिया।

"तो पुरोहित जी ठीक कहते थे कि शिव की पत्नी गौरी हो।"

"मेरा विवाह नहीं हुआ।" किरण ने ध्यान मिठाई की ओर लगाये हुए कहा।

"तो हो जावेगा। आज रात रम्भा और शिव का विवाह होगा।"

"पर वे तो कैलाश पर रहते हैं ?"

"रात हम उनका आह्वान करेंगे। वे प्रायः आते है। रम्भा को देख तो वे भागे आवेंगे।"

किरण ने मुस्कराते हुए कहा, "तो कैलाश सूना हो जावेगा।"

"बहुत भोली हो रम्भा ! उनके लिये सहस्रो, लाखों स्थानो पर एक ही समय में प्रकट होना कौन कठिन बात है ? वे सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वान्तर्यामी साक्षात् भगवान हैं।"

"तो वह रात यहा आयेंगे ?"

"रम्भा से विवाह करने।"

"पर मैं तो विवाह करना नही चाहती।"

"भगवान् को देखोगी तो फिर न नहीं कर सकोगी। उनकी इच्छा का विरोध तो हो ही नहीं सकता।"

"तुम लोग कौन हो ?"

"हम सब इस, वह जो सामने दिखाई देता है, गांव के रहने वाले हैं। हम सब शाक्त हैं और लिंगायतवादी हैं। इस मन्दिर के पुरोहित श्री निकुम्भ जी हैं। वही जो आपके लिये मिठाई लेने गये थे। मंदिर बनवाने के लिये गांव के सेठ भद्रक जी ने पैसा दिया है। हम सब उपासक हैं।"

किरण मिठाई खा चुकी थी। उसने पेट भर जल पिया और कुछ विश्राम करने की इच्छा प्रकट की। मिठाई लाने वाली स्त्रियों में से एक ने कहा, "यात्रियों के लिये ये आगार हैं। आप एक में जाकर ठहर सकती हैं।"

"मुझको महर्षि वामदेव जी के आश्रम में जाने के लिये किस ओर जाना चाहिये।"

"हम नहीं जानतीं। पुरोहित जी ही बता सकेंगे।"

किरण ने रात भर वहां ठहरने का निश्चय कर लिया और जाने से पूर्व, पुजारी जी से पूछ लेने का विचार कर, एक आगार में चटाई के ऊपर जा कर बैठ गयी। वे स्त्रियां उसको आराम करने को छोड़ गयीं। किरण चटाई पर लेटते ही फिर सो गयी। इस बार तो पेट में भोजन जाने की मस्ती मात्र थी और वह अधिक काल तक सोई नहीं रह सकी।

जब उसकी नींद खुली तो लगभग एक सौ स्त्री-पुरुष वहा एकत्रित हो गये थे। सब नये-नये वस्त्र पहिने हुए थे। किरण समझ गयी कि वे महा-शिवरात्रि के उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आये हैं। वह अभी चटाई पर बैठी सुस्ती दूर कर ही रही थी कि पुरोहित निकुम्भ उसके पास आया और सामने बैठ गया। जब किरण ने उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा तो वह बोला, "भगवती रम्भा ! आज उत्सव में सम्मिलित होने वाले स्त्री-पुरुष आप से ही भगवान् शिव का आह्वान कराना चाहते हैं।"

"पर मैं तो इस विषय में कुछ नहीं जानती।"

"आपको इस विषय में कुछ नही करना होगा। आप को हम रम्भा

के योग्य शृङ्गार करवायेंगे और एक उच्च आसन पर बैठायेंगे। तब हम भगवान् का कीर्तन करेंगे। यदि वे प्रसन्न हो जायेंगे तो आवेंगे और आपके साथ आसन पर विराजमान होंगे। उस समय हमारी उपासना आरम्भ होगी। आप रम्भा होने से उपासना का परम फल पावेंगी।"

"पर मैं रम्भा अथवा गौरी नहीं हूं। मैं रम्भा बनना नहीं चाहती। मैं आपका उत्सव दूर से ही देख प्रसन्न हूंगी।"

"यदि आपकी इस काम से अरुचि है तो महादेव प्रसन्न नहीं होंगे और वे नहीं पधारेंगे।"

"इसीसे मैं कहती हूं कि किसी अन्य भक्तिनी को यह पद प्रदान कीजिये। वह मन से रम्भा अथवा उमा बनना चाहेगी और भगवान् उस पर प्रसन्न हो कर आपको दर्शन देंगे।"

पुजारी निरुत्तर हो चला गया। तब उत्सव पर आये जनों की सभा हुई और उनमें से पांच स्त्रियों का एक शिष्ट-मंडल किरण को समझाने आया। उन स्त्रियों में से एक, जो सबसे सुन्दर प्रतीत होती थी, कहने लगी। "रम्भा देवी! तुम्हारे माता-पिता ने जब तुम्हारा नाम रम्भा रखा होगा, तब तुम्हारी जन्म-कुंडली ही से तो रखा होगा।"

"यह मेरा नाम मेरे माता-पिता ने नहीं रखा।"

"तो किसने यह नाम दिया है तुमको?"

"मैंने स्वयं रख लिया है।"

"तभी तो हम कहने आयी हैं कि नाम रखने से क्या बनता है। वैसा स्वयं बनने का भी तो यत्न करो।"

"अच्छा, यह बताओ।" किरण ने उस स्त्री की आंखों में देखते हुए पूछा, "कभी ऐसा उत्सव तुम पहले भी मना चुकी हो।"

"हां! ये पुजारी जी यहां पांच वर्ष से आये हुए हैं और प्रति मास कृष्ण चतुर्दशी को यहां उपासना का आयोजन करते हैं। वर्ष में महा शिव-रात्रि को भी आयोजन होता है। आज वही वार्षिक आयोजन है।"

"आपमें से कोई बता सकती है कि इन आयोजनों में क्या होता

जब हम पूजा से वापिस जाते हैं तो यह अनुभव करते हैं कि कुछ भूल कर चले हैं।

"इससे मैं यह कहती हूं कि यह अपरिचित लड़की हमारा सब पोल खोल दे सकती है, और राज्य की ओर से हम दंड के भागी हो सकते हैं।"

इसका उत्तर पुजारी ने दिया, "ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमती चौध-राइन अब वृद्धावस्था में पदार्पण कर रही हैं। उनको काम देवता अब कष्ट नहीं देते। इस कारण उनको अब भगवान् महादेव की रक्षा की आवश्यकता नहीं रही।

"मैं इतना निवेदन कर देना चाहता हूं कि मनुष्य एक अति दुर्बल प्राणी है। यदि यह अपनी पूर्ण शक्ति कामदेव से झगड़ा करने में व्यय कर दे तो फिर जीवन कार्य के लिये शक्ति नहीं रह सकती। इस कारण यदि वासना में लिप्त होना पाप है तो भगवान् की रक्षा हम को उस पाप से बचा लेगी।

"रहा राज्य की ओर से दंड का भागी होना। यह तब तक नहीं होगा जब तक हमारा यह काम धर्म के नाम पर है। राज्य ने अपना धर्म छोड़ दिया है। वह धर्म-निरपेक्ष बन गया है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म पालन की स्वतंत्रता है।"

इस पर एक वृद्ध पुरुष कहने लगे, "यह असुरों का एक धर्म है। हम आर्य हैं। हमको यह धर्म स्वीकार नहीं करना चाहिये।"

इस पर एक युवक बोल उठा, "काका! इस धर्म का पालन करने के लिये किसी को विवश नहीं किया जाता। यदि आपको यह पसन्द नहीं तो ठीक है। आप इसमें मत सम्मिलित हो।"

"मैं तो केवल अपनी स्त्री के कहने पर आता हूं।"

"तो उसको भी मत आने दो।"

पुजारी ने इस विवाद को बढ़ने से रोकने के लिये उस वृद्ध महाशय से कहा, "काका पुण्यपाद! तनिक विवेक से कार्य लोगे तो सब बात स्पष्ट हो जावेगी। तुम पैंसठ वर्ष की आयु के हो। तुम्हारी स्त्री तीस वर्ष की है। तुम वृद्ध हो, वह युवा है। उसकी इच्छा युवा पति पाने की बनी रहती है।

इसकी पूर्ति के दो मार्ग थे। एक तो वह चोरी-चोरी युवा पुरुषों से सम्बन्ध स्थापित करती। दूसरा मार्ग हमने इस उपासना के रूप में उपस्थित किया है। अब तुम दोनों परस्पर विचार कर लो कि कौन मार्ग तुम को पसन्द है।

"मेरा मत है कि यह लिंगायतवाद चोरी-चोरी व्यभिचार से अच्छा है।"

पुण्यपाद चुप कर गया। उसकी स्त्री लीला दूर खड़ी एक युवक से बातचीत कर रही थी। पुजारी के कहने पर सब लीला की ओर देखने लगे और हंसने लगे।

: ७ :

किरण ने राज्य प्रासाद मे दासियों से, असुरों के इस शैव मत के विषय में सुन रखा था। उसकी सूचना यह थी कि ये लोग मनुष्य शक्ति का सत्व यौन शक्ति को मानते है और उसके प्रयोग को भी वे भगवान् के अर्पण कर परम पुण्य प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु वे यह किस प्रकार करते हैं, वह नहीं जानती थी। उसके मन में यह इच्छा जाग पड़ी थी कि वह देखे कि ये लोग क्या करते है।

वह अपने आगार से उठ कर बाहर चली आयी। मन्दिर के बाहर चबूतरे पर भक्त लोग सभा कर रहे थे। इस कारण वह मन्दिर के पिछवारे में चली गयी। वहा उन छागों का, जो लाये गये थे, मांस भूना जा रहा था। घी और मसालों की सुगन्ध उस भुन रहे मांस में से आ रही थी। दूसरी ओर बड़े-बड़े मटको से छोटे-छोटे घड़ों में सुरा बदली जा रही थी। मन्दिर के उस द्वार में से, जो बद था, चांदी के बर्तन निकाले जा रहे थे। किरण इतना धन इस मन्दिर में सचित देख चकित रह गयी। बर्तन धो-पूँछ कर साफ कर दिये गये थे। चमचमाते हुए थाल, कटोरे, कलसे, गगरे, सब उठा-उठा कर मन्दिर के नीचे ले जाए जा रहे थे। चौतरे में एक द्वार खोल कर लोग बर्तन और खाने का सामान उसके भीतर ले जा रहे थे। किरण समझ गयी कि यह भोजन वहां पर जाकर खाया जायगा।

मंदिर के चारों ओर घना जंगल था। इस जंगल के कारण यह मन्दिर

गांव से छुपा हुआ प्रतीत होता था। जंगली वराह और भेड़िये तो दिन के समय भी घूमते दिखाई देते थे। सियार भुन रहे मास की गंध से आकर्षित होकर भोजन के चारों ओर परिक्रमा काटने लगे थे। सेवक लाठियाँ लिये उनको दूर रखने में लगे हुए थे।

किरण यह देख विचार कर रही थी कि इतने भोजन इत्यादि का क्या होगा? इस समय पुजारी निकुम्भ उसके समीप आकर बोला, "देवी! क्या देख रही हो?"

"वह देखो।" किरण ने सियार की ओर उंगली कर कहा, "भूखा सियार अपनी जिह्वा चला-चलाकर अपनी भूख का परिचय दे रहा है।"

यह सब सामग्री इतनी स्वादिष्ट है कि इनको देखने मात्र से पेट में कुतर्-कुतर् होने लगती है।"

"यह पूजा आपकी विचित्र है कि इसमें इतना कुछ खाने को और सुरा पीने को एकत्रित कर ली है।"

"आप देखेंगी कि इन ढेरो पदार्थों का कही पता भी नही चलेगा।"

"मैं आपकी पूजा में विघ्न नहीं डालना चाहती। मैं तो इस प्रकार की पूजा में विश्वास नही रखती।"

"देखिये रम्भा देवी! आपने हमारी प्रार्थना, पूजा की रानी बनना, स्वीकार नही की। इस कारण हमने यह पदवी तो कजरी को दे दी है। पिछले वर्ष भी तो उन्होंने ही पूजा का नेतृत्व किया था।"

"यह कजरी इस गांव की रहने वाली है क्या?"

"नहीं। इस गांव के एक महाजन है। दो वर्ष हुए वे इसको उज्जयिनी से पांच सौ स्वर्ण पर मोल लाये थे। वह गाव में सबसे सुन्दर मानी जाती है। इस पर भी आपके सामने तो वह कुछ भी गणना नही रखती।"

किरण मन में विचार करती थी कि पांच सौ स्वर्ण की एक लक्ष स्वर्ण के सामने क्या गणना है। पश्चात् सचेत हो बोली, "कजरी का निर्वाचन कर आपने अच्छा ही किया है। कौन है कजरी?"

"अब यहां नहीं है। वह नीचे के आगारो में शृङ्गार करने चली गयी है। यह वही है जो आपके पास आने वाली पांच स्त्रियों में सबसे सुन्दर थी।"

"यदि मेरे यहा एक आगार में लो रहने से आपके काम में बाधा पड़ती हो तो मैं गांव में चली जाती हूं।"

"इसकी आवश्यकता नही। यदि आप मेरा आग्रह मानें तो रात पूजा मे सम्मिलित हो जाइये। मैं आपका बहुत आभारी रहूंगा।"

"आपके साथी तो आपत्ति नहीं करेंगे ?"

"नही करेंगे। मैं पुजारी होने के नाते आपको निमंत्रण देता हूं।"

किरण चुप रही। निकुम्भ ने इसको स्वीकृति मान लिया और धन्यवाद कर दिया। इस पर पुजारी ने कहा "आपने मंदिर देखा है क्या।"

"हां। वह जहां आप लोग बैठे सभा कर रहे थे।"

"नहीं। रात की पूजा वहा नही होगी। ठीक उस स्थान के नीचे, जहां वह मन्दिर है, वास्तविक पूजा स्थान है। उसको यही मार्ग जाता है जहा से भोजन पदार्थ नीचे जा रहे है। आइये आपको कजरी का शृङ्गार हो रहा दिखायें।"

किरण निकुम्भ के साथ चबूतरे के आगारों की ओर चल पड़ी। चबूतरे के नीचे के द्वार में प्रवेश करते ही नीचे उतरने को सीढ़िया थीं। वे सीढ़िया एक सुरंग में पहुंच जाती थी। सुरंग एक आगार में पहुंचती थी। इसमें अग्नि शिखाओ से प्रकाश हो रहा था। किरण ने अनुमान लगाया कि पूर्ण चबूतरो और चबूतरो पर के आगारों के नीचे वह अगार फैला हुआ है इस आगार की छत्त बीसियों खम्भो पर खड़ी थी। इसमें स्वच्छ वायु के आने का प्रबन्ध था।

पुजारी किरण को उस आगार के एक कोने में ले गया। वहां कजरी कौशेय वस्त्र और भूषण पहिने खड़ी थी। कुछ स्त्रिया उसके मस्तक और कपोलों पर चित्रकारी कर रही थीं। उसके पास एक काले-कलूटे रंग का बहुत भारी शरीर का पुरुष खड़ा उसकी ओर प्रशंसात्मक दृष्टि से देख

रहा था। पुजारी को आते देख उस युवति ने मुस्कुराते हुए कहा, "देवी रम्भा पर यदि इतना परिश्रम किया जाता तो आजकी उपासना अद्वितीय हो जाती।"

"तुम क्या कुछ कम हो कजरी देवी? तुम हमारे गाव की विभूति और शिव शम्भु की प्रिया हो।" निकुम्भ ने कहा।

किरण ने उस शृङ्गारयुक्त युवति को देखा तो अनुभव किया कि वह सुन्दर है, चतुर है और इस उपासना में उत्साह रखती है। इससे उसने कहा, "बहन! जब तक पूजा-पाठ में मन न लगे तब तक पूजा का फल नहीं लगता।"

"यह तो है।" उस भैंसे समान मोटे महाशय ने कहा। हीरक जड़ित अगूठिया और कौशेय वस्त्र, जो वह पहिने हुए था, यह प्रकट कर रहे थे कि वह कोई धनी-मानी पुरुष है। उस व्यक्ति ने किरण की ओर देख कर कहा, "पर देवी की आखो से तो भक्ति रस टपक रहा प्रतीत होता है।"

"हां।" पुजारी ने कहा, "परन्तु अभी देवी जी को अपने अंतरात्मा की प्रेरणा का ज्ञान नहीं हुआ। इसी कारण मैंने इनको आज उत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया है। यह इन्होंने स्वीकार कर लिया है। यदि भगवान् की कृपा हुई तो आज ही इनकी कुंडली खुल जायेगी और ये मोक्ष का मार्ग पा जायेंगी।"

इस पर उस धनी महाशय ने कहा, "रम्भा देवी! कितना धन लेकर तुम इस गाव में रहना स्वीकार करोगी?" वह किरण को एक वेश्या मात्र ही समझता था।

"मैं कल यहां से जाने का विचार रखती हूं।"

पुजारी ने कहा, "ये कजरी के स्वामी भद्रक जी है। ये रत्न बेचने का काम करते है। जब से श्रीमान् कुमारदेव यहां के महाराज हुए है, तब से इनके व्यापार में बहुत वृद्धि हुई है और इस समय महाराज से भी अधिक धन के स्वामी है। यदि आप इनका निमंत्रण स्वीकार करलें तो ये दो लक्ष, तीन लक्ष स्वर्ण देने को तैयार हो सकेंगे।"

"इनको तो सुन्दरी प्रतियोगिता में जाना चाहिये। वहां सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी की नीलामी होगी।"

भद्रक हंस पड़ा। उसने कहा, "जो नग्न हो वहां नाचेगी वह सुन्दरी भी होगी क्या ? इसमें मुझको सदेह है। इस समय तो मैं एक अद्वितीय वस्तु अपने सामने देख रहा हूं।"

किरण हंस पड़ी। फिर कुछ विचार कर बोली, "अद्वितीय वस्तुओं की उपलब्धि बहुत कठिन होती है।"

"सो तो मैं जानता हूं, देवी!"

"मैं कल जा रही हूं। नदी पार कर पहिले महर्षि के आश्रम को जाने का विचार है।"

"क्या रखा है उस नास्तिक के पास ?"

"उनकी महिमा तो सर्वत्र विस्तार पा रही है।"

"वैसे तो चार्वाक और उनके पर-शिष्य नाकेश की भी ख्याति फैल रही है। केवल ख्याति होने से कोई सत्य है, नहीं कहा जा सकता।"

"तो सत्य क्या है ?"

"जो अजर है, अमर है, शिव है, सुन्दर है। महर्षि के दर्शन करोगी तो मन में ग्लानि उत्पन्न होगी।"

"आपने दर्शन किये हैं उनके।"

"प्रति वर्ष उनके आश्रम में जाता था। इधर पांच वर्ष से जबसे निकुम्भ जी का आगमन हुआ है, वहां जाने की रुचि नहीं रही।"

"तो यह वाद, आपको अधिक सत्य प्रतीत हुआ है ?"

"देवी! देखो और फिर समझने का यत्न करो। निस्सन्देह इसके समान सत्य तुमको अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा।"

"देखूंगी।"

"और विचार भी करियेगा," पुजारी निकुम्भ ने कहा, "मनुष्य दुर्बलताओं का पुंज है। जीवन के विकट संघर्ष में ये दुर्बलतायें मनुष्य को घेरे रहती हैं। इनसे परास्त होते समय पराजय को भी

भगवान् के चरणो में अर्पण करने से, आत्मा पतित न होकर उन्नत होती है। जहा चार्वाकीय नास्तिक पतन को मनुष्य की प्रकृति मान उसमें मल के कीडों के समान लोट-पोट होने में आनन्द मानते हैं, वहा लिंगायतवादी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार को अवगुण मानते हुए, इनसे निर्लेप रहने का यत्न करते हैं। कभी इसमें लिप्त होने पर अपनी दुर्बलता को भगवान् के चरणो में अर्पण करना ही ठीक समझते हैं।

"उदाहरण के रूप में यह कजरी गाव की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। इसके सौन्दर्य को देख इसकी प्रशंसा करने की इच्छा गांव के प्रत्येक युवक में उत्पन्न होती रहती है। यदि तो इसके दर्शन भगवती गौरी मानकर करते हैं तो हमारे में श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होती है और आत्मा में पतन के स्थान उत्थान होता है।"

किरण मुस्कराई और चुप कर रही। इस पर भद्रक ने कहा, "कहां जायेंगी आप इतनी लम्बी यात्रा पर ? सब व्यर्थ है। प्रत्येक प्रकार का शारीरिक सुख और आत्मा की शान्ति आपको इस पद्मा के किनारे मिल सकती है। कहो तो एक अति सुन्दर भवन नदी के किनारे आपकी इच्छानुसार निर्माण करवा दूं?"

किरण ने केवल यह कहा, "अति धन्यवाद है आपका, परन्तु मैं अभी अपने विचार बदलने में कोई कारण नहीं देखती।"

किरण ने देखा कि कजरी पूर्ण शृंगार कर चुकी है। वह जब तैयार हो गयी तो पुजारी ने समीप खड़े सेवक को कहा, "दुंदुभि बजा दो।"

सेवक ने बाहर जा, द्वार के बाहर रखे नगारे पर चोब से चोट करनी आरम्भ कर दी, "डब डब डम् डब डब डम।।"

चारों ओर ढोल-नगारे बजने लगे। भूगर्भ आगार में, प्रकाश अधिक कर दिया गया। अग्नि शिखायें तीव्र कर दी गयीं और भक्त लोग, जो अभी तक मंदिर के बाहर खड़े थे, भीतर आकर चक्राकार बैठने लगे। पुजारी ने किरण को अपने समीप बैठने का निमंत्रण दे दिया। जब वह बैठ गयी, तो भद्रक किरण के दूसरी ओर आकर बैठ गया। स्त्री-पुरुष सब मिले-

जुले बैठे थे। जब वे सब बैठ गये तो पुजारी ने खड़े होकर देवता का आह्वान आरम्भ कर दिया। बहुत ही मधुर स्वर में और लय के साथ निकुम्भ ने स्तोत्र गाने आरम्भ किये।

"नमो रुद्राय नीलाय भीमाय परमात्मने।
कपर्द्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नमः॥
वृषभध्वजाय सोमाय सोमनाथाय शम्भवे।
दिगम्बराय भर्गाय उमाकान्ताय वै नमः॥"

जब निकुम्भ ये स्तोत्र पढ़ रहा था, श्रोतागण इसके मधुर स्वर के साथ-साथ सिर हिला कर मन का आनन्द प्रकट कर रहे थे। किरण देख रही थी कि उपासकों के मुखों पर एक विशेष प्रकार का ओज प्रकट होने लगा है। किरण भी आंखें मूंद कर इस गान का आनन्द लेने लगी। पुजारी आह्वान में लीन था और स्तोत्र पढ रहा था—

"महीश्वराय व्याघ्राय पशूनां पतये नमः।
पुरान्तकाय सिंहाय शार्दूलाय मखाय च॥
मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने।
कामान्तकाय बुद्धाय बुद्धीना पतये नमः॥"

चक्राकार बैठे हुए उपासकों के मध्य में रिक्त स्थान कुछ विशेष रूप से प्रकाशमय दिखाई देने लगा। किरण को ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी आंखें कुछ भारी हो रही हैं। उसने उनको यत्न से खोला और उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उसने इस विशेष प्रकार से प्रकाशित स्थान को देखा।

पुजारी गा रहा था :—

"दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थयाविनाशिने।
नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥
गजासुरमहाकालायान्धकासुरभेदिने।
नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च॥
भक्तप्रियाय देवाय ज्ञात्रे ज्ञापव्ययास च।
महेशाय नमस्तुभ्यं महादेव हराय च॥

अब तक किरण को भी अनुभव होने लगा था कि पुंजारी के गान में प्रभाव है। पहिले तो उसे अपने शरीर में एक प्रकार की शान्ति व्याप्त होती प्रतीत हुई, परन्तु फिर धीरे-धीरे उसको अपने शरीर में से ऊष्मा निकलती प्रतीत होने लगी। इस सब समय पुजारी का मधुर स्वर चल रहा था।

"त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदांगाय नमो नम.।
अर्थाय चार्थरूपाय परमार्थाय वै नम.॥"

किरण का पूर्ण शरीर भनभनाने लगा था। उस भूगर्भ-आगार में पुजारी की दृढ ध्वनि ऐसी गूंज रही थी कि उसके शरीर का स्नायु-मडल स्पन्दन करने लगा था। एकाएक 'हर-हर-महादेव' का जय घोष हुआ और किरण ने यह देखने के लिये आखें खोल दी कि कौन नवीन बात हो गयी है। उपासको के मुख से 'जय शिव! जय शिव!' उच्चारण होने लगा था। किरण ने देखा कि उस स्थान पर से, जहां प्रकाश विशेष हो रहा था, एक लिंग प्रस्फुटित हो रहा है। उसने बहुत ध्यान से देखा। भूमि में हलचल मच रही थी और उसमें से एक वृहत् आकार वाला लिंग निकल रहा था। किरण मंत्रमुग्ध हुई उसकी ओर देखती रह गयी। सब उपासक, 'जय शिव! जय शिव!' कह रहे थे।

इस समय पुजारी ने पुनः स्तोत्र गाने आरम्भ कर दिये। पुजारी गा रहा था। उपासक 'जय शिव! जय शिव!' कह रहे थे। लिंग बडा ही बडा होता जाता था। बढता-बढता लिंग मनुष्य की ऊंचाई जितना हो गया और वह उसी अनुपात में मोटा भी होता गया। यह लिंग ज्योतिर्मय था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसमें से प्रकाश निकल रहा है। अब सब उपासक उसकी ओर श्रद्धा-भक्ति से देखने लगे। पुजारी अभी भी स्तोत्र पढ़ रहा था—

"अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नम.।
शमशानवासिने भूयो नमस्ते कृत्तिवाससे॥
शशांकशेखरायेशायोग्र भूमिशयाय च।
दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्ग व्यव साक्षिणे

लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः ।
नमः प्रलयरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः ॥"

इस समय किरण को ऐसा भास हुआ कि लिंग की ज्योति इतनी उग्र हो गयी है कि उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है । किरण ने आंखें बंद कर ली ।

पुजारी ने और भी ऊंचे स्वर से कहा—

"नमो नमः कारणकारणाय मृत्युँजयात्मभवस्वरूपिणे ।
श्री त्र्यंबकायासितकण्ठशर्व गौरीपते सकल मंगलहेतवे नमः ॥"

एक क्षण ठहर कर निकुम्भ ने जयघोष किया, "श्री त्र्यम्बक त्रिपुरारि भगवान् महादेव की जय ।"

"देवन् के देव ! हम सब दास दर्शनार्थ सेवा में उपस्थित है । दर्शन दो भगवन् ! दर्शन दो भगवन् ! ! नाथ दर्शन दो ! ! !"

सब लोग 'जय हो ! जय हो !' का उच्चारण करने लगे । किरण ने आंखें खोलीं तो उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा । उसने देखा कि साक्षात् शिव, जटाजूटधारी, त्र्यम्बक, सर्पमालाधारी, सिंहचर्म कटि से लपेटे हुए, हाथ में चमचमाता त्रिशूल लिये हुए, लिंग के स्थान पर खड़े दिखाई दिये। लिंग अदृश्य हो गया था। शिव के पीछे एक श्वेत पत्थर का आसन बना था ।

जब उपासक जय-जयकार कर रहे थे, शिव ने अपना दाहिना हाथ उठाया और सब को आशीर्वाद दिया । इस आशीर्वाद को पा उपासक शान्त हो गये । पुजारी ने एक चान्दी के लोटे में दूध और जल ले पाद-प्रक्षालन किया और तब साष्टांग नमस्कार किया । इस समय कजरी उठी और उसने भी वैसे ही नमस्कार किया । शिव आसन पर बैठ गये । पुजारी ने पाद-प्रक्षालन का जल लेकर सब को पिलाया और कजरी भगवान के समक्ष नृत्य करने लगी ।

: ८ :

जब कजरी नृत्य कर रही थी, कुछ लोग आगार के भिन्न-भिन्न कोनो में सुगन्धित धूप तथा सामग्री जलाने लगे थे। इन सुगन्धित द्रव्यों की सुगन्ध मस्तिष्क को चढ़ने लगी। किरण देख रही थी कि इस सुगन्धित वायु से नींद नहीं आ रही, प्रत्युत शरीर में स्फूर्त्ति आ रही है। एक विशेष बात उसको अनुभव होने लगी। उसका अपना चित्त नाचने को करने लगा। उसके पाओ में कुत-कुती होने लगी थी। एक बार तो वह उठ खड़ी भी हुई। फिर अपने को संयम में लाकर वह अपने आसन पर बैठ गयी। उसको विस्मय हुआ कि उसको किसी ने देखा नहीं। सबके सब कजरी के नृत्य में लीन थे।

कजरी का नृत्य समाप्त हुआ तो भगवान् ने कजरी को अपनी गोदी में आ बैठने का निमत्रण दे दिया। कजरी लपक कर देवन् के देव महादेव की गोदी में जा बैठी। उसके वहां जाते ही, साप जो भगवान् के शरीर पर मालायें बनाये हुए थे, अथवा जो भुजाओ पर भुज दड बनाये हुए थे, फूँकार मार फन खडे कर, क्रोधभरी आखो से दो-दो जिह्वा निकालने लगे, परन्तु शीघ्र ही शान्त हो फन फेंक सो गये।

उपासक, "जय शंकर, जय महादेव, जय उमा, जय गौरी," का मंत्र उच्चारण करने लगे। पुजारी ने उपासको के मंत्र उच्चारण को नियम में लाने के लिये, स्वर सहित ऊचे स्वर में गाना आरम्भ कर दिया।

"जय जय शकर, जय महादेव। जय जय शंकर, जय महादेव ।।
गौरी पति जय, जय महादेव। जय जय शंकर, जय महादेव ।।

इस प्रकार कीर्तन होने लगा। इस कीर्तन में पुजारी निकुम्भ सबका नेतृत्व कर रहा था। कजरी महादेव के गले में बाह डाल, प्रेम भरी दृष्टि से देख रही थी और भगवान् का बांया हाथ कजरी की पीठ के पीछे से उसको पकड़ कर अपनी बायी जांघ पर बैठाये हुए था। वह हाथ उस के बायें वक्ष पर जा पहुंचा था।

कजरी कभी अपना सिर भगवान् के विशाल वक्ष स्थल पर रख, आंखें मूँद मुग्ध हो जाती थी और कभी आंखें उठा कर मुख की ओर देखती थी। जिस विह्वलता से वह देखती थी, उतनी ही व्यग्रता से भगवान उसको अपने अंग के साथ लगाते थे।

इस समय मद्य का वितरण होने लगा। भगवान् के सम्मुख एक स्वर्ण-पात्र में अर्पण की गयी। कजरी ने वह पात्र लेकर भगवान् के मुख से लगा दिया। उसने दो घूँट पीये और पश्चात् उसमें से कजरी ने पिया। इसके पश्चात् उपासकों ने चान्दी के पात्रों में मद्य पीनी आरम्भ कर दी। लोग मद्य पीते जाते थे और कीर्तन करते जाते थे।

"जय जय शंकर जय महादेव। गौरी पति हरि जय महादेव ॥
नीलकंठ हरि गरल पिये। जय जय शंकर जय महादेव ॥"

वायु मंडल में सुगन्धित धूप का धूँआ, सुरभित मद्य की मादकता, कजरी की कामभरी दृष्टि और भगवान् का उसे बार-बार अंक से लगाना, वायु मंडल को कामुकता से भर रहा था। इस समय भुना मांस बांटा जाने लगा। चान्दी के थालों में मांस वितरण होने लगा। जब उपासक मांस खाते, तो उनको प्यास लगती और प्यास को बुझाने के लिये मद्य का सेवन करते, तो भूख लगती। इस प्रकार खाते और पीते जाते थे। पुजारी खड़ा उच्चस्वर में कीर्तन करता जाता था। एकाएक कजरी भगवान् की गोदी से उतर आयी और पुनः नृत्य करने लगी। जब नृत्य करते-करते थक गयी तो उसने थकावट दूर करने के लिये मद्य से भरा पात्र मुख से लगाया और पी गयी। पश्चात् पुनः नाचने लगी। इस बार तो किरण से नहीं रहा गया। वह खड़ी हो नाचने लगी। वह भी एक-दो प्याले मद्य पान कर चुकी थी और सुगन्धित धूँआ अभी भी उसके मस्तिष्क को चढ़ा हुआ था। उसे नाचता देख एक बार तो कजरी भी ठहर गयी। भगवान उसको नाचते देख आसन से उतर आये और किरण का हाथ पकड़ कर नाचने लगे। इस समय मृदंग, दुंदुभि, वीणा इत्यादि वाद्य भी ध्वनित होने लगे। सबसे प्रथम भद्रक ने चौधरायन का हाथ पकड़ कर नृत्य में साथ देना

आरम्भ किया। उनके नाचने के साथ, 'जय जय शकर, जय महादेव' की ध्वनि उठ रही थी।

किरण के साथ दो-तीन चक्कर काट भगवान् ने उसको छोड़ दिया और कजरी को पकड़ लिया। किरण अकेले ही नाच रही थी। उसे अकेले देख भद्रक ने चौधरायन का हाथ छोड किरण का हाथ पकड कर नाचना आरम्भ कर दिया। इस समय महादेव ने कजरी का अलकृत मुख चूमकर उससे आलिंगन किया। अब अन्य स्त्री-पुरुष भी उठ कर तालियां बजाते हुए नाचने और जय-जय शंकर गाने लगे।

किरण की मद्य-सेवन से उन्मत्तता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी और वातावरण के सम्मोहनी प्रभाव में आकर वह भी समीप के पुरुषों को चूमने और आलिंगन करने लगी। उसके मन में कुछ ऐसा बैठ गया था कि लिंग से महादेव का प्रकट होना अवश्य दैवी घटना थी। उस समय उसको यही समझ आया कि ससार की साक्षात् महा शक्ति आगार में विद्यमान हो नृत्य कर रही है। वही शक्ति उसमें भी विद्यमान है और उसके मन को नाचने पर विवश कर रही है।

उसको प्यास लगी तो उसने मद्य पी ली और इससे तो और भी उसका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार लुप्त हो गया। नाचते-नाचते भद्रक उसके सामने आ गया। दोनों फिर नाचने लगे। भैंसे के समान हृष्ट-पुष्ट भद्रक और कमल नाल के समान मृदुल किरण परस्पर विचित्र दृश्य उपस्थित कर रहे थे। भद्रक को भूख लग गयी तो उसने किरण को पकड कर बैठा दिया। दोनों मास-भक्षण करने लगे और मद्य पान करते गये।

इस पर जब वे नाचने के लिये उठे तो किरण ने अनुभव किया कि उसके पाव तले से भूमि चक्कर काटने लगी है। इस समय उसके पूर्ण शरीर में उत्तेजना की अग्नि भडक उठी। उसके वक्षोज में स्पन्दन होने लगा। जब भद्रक उससे आलिंगन करता तो उसे कुछ शान्ति अनुभव होती। जब वे नृत्य करते तो पुन. आलिंगन करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती। वह भूल गयी थी कि वह अन्य अनेकों के सामने है और उसको वह कामुकता

वहाँ प्रकट नहीं करनी चाहिये। वह विवश थी । उसके मन में अस्पष्ट सी स्मृति थी कि वह अवन्ति के महाराज की सहवासिन रही है अथवा श्वेतांग जैसे सुन्दर पुरुष को अस्वीकार कर चुकी है। इस समय तो स्वप्नवत् वहां के वातावरण के प्रभाव में वह समझती थी कि वह ठीक ही कर रही है। ऐसा होना ही है। इससे अपने को रोकने की चेष्टा अपनी शक्ति से बाहर पाती थी।

इस समय कजरी अन्य उपासकों के साथ नृत्य करने लगी थी और भगवान् महादेव भी अन्य उपासिकाओं के साथ नाचने लगा था। नाचते-नाचते उसकी दृष्टि किरण पर गयी तो वह अपनी साथिन उपासिका को छोड़ किरण की ओर आया, परन्तु पूर्व इसके वह उस तक पहुंच सके निकुम्भ ने किरण को पकड़ कर अपनी ओर खेंच लिया। किरण, भद्रक को चौधरायन से गाढ़ आलिंगन करते देख, किसी पुरुष से आलिंगन करने के लिये उतावली हो उठी। निकुम्भ उसकी इच्छा को समझ गया और उसने भी उससे गाढ़ आलिंगन किया और उसके अधरों का चुम्बन किया। इस समय भगवान् पुजारी के पीछे आ खड़े हुए। पुजारी ने उसको भगवान् के लिये छोड़ देने के स्थान उसका पुनः आलिंगन किया और धकेल कर कुछ दूर ले जाना चाहा। महादेव उनके पीछे जाने लगा। पुजारी की इच्छा किरण को अपने साथ रखने की थी। किरण भी कामुकता में संज्ञा खो चुकी थी और एक क्षण भी पुजारी से पृथक् होना नहीं चाहती थी।

इस प्रकार जाते-जाते वे तीनों आगार के एक दूर कोने में चले गये। पुजारी ने अभी तक मद्यपान नहीं किया था। इस कारण उसने उस कोने में पहुंच महादेव से कहा, "आप की उमा उधर घूम रही है।"

"मेरी रम्भा यह है ।"

"इस पर दया करो भगवन् !"

"नहीं, इसे छोड़ दो।"

पुजारी ने चाहा कि झगड़ा न किया जाये। उसने किरण को अपने से पृथक् कर महादेव की ओर धकेलना चाहा। किरण इस समय सर्वथा

असंयत हो चुकी थी। वह महादेव के पास जाने के स्थान एक अन्य युवक का हाथ पकड कर नाचने लगी। पुजारी ने महादेव का ध्यान किरण से हटाने के लिये स्वयं उसका हाथ पकड़ कर नाचना आरम्भ कर दिया, परन्तु महादेव इस प्रकार भुलावे में नहीं आया। उसने निकुम्भ को एक ओर कर, किरण के साथी को किरण से पृथक् करने का यत्न किया। इस समय उसका पांव अटक गया। एक उपासिका, जिनसे कोई नृत्य नहीं कर रहा था और जो बैठी मांस खा रही थी, महादेव के मार्ग में आ गयी थी और वह ठोकर खा गिर पड़ा था। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि किरण ने उसको धक्का दे दिया है। उसने लड़खड़ाते पगों से उठकर, त्रिशूल उठाकर कहा, "अरी पापिन ! ले।"

इतना कह उसने त्रिशूल फेंक दिया । वह फेंका तो किरण पर गया था पर लगा किरण से नृत्य करने वाले युवक को। त्रिशूल उसकी पीठ की ओर से गर्दन में धंस गया। वह युवक तुरंत मृत्यु का ग्रास हो गया। उसकी गर्दन से रक्त का झरना फूट पड़ा और किरण के मुख और केश रक्त से भीग गये।

जब किरण का साथी, किरण के हाथों से निकल भूमि पर जा गिरा और उसकी आंखों के सामने उसके मुख पर गिरा लाल रक्त आया तो उसको एक दम चेतनता हुई। वह मृत्यु को सामने खड़ा देखने लगी। उसका मदात्यय लोप हो गया।

महादेव उस युवक की हत्या कर एक क्षण के लिये ठिठक गया, फिर किरण की ओर लपका। निकुम्भ चैतन्य था। उसने यह हत्या होती देखी और भय से कांप उठा। उसने महादेव को पकड़ कर अपने आसन की ओर ले जाने का यत्न किया। महादेव आसन पर जाने के स्थान त्रिशूल, मृत शव से निकाल, किरण पर चलाने का विचार करने लगा।

इसमें किरण को समय मिल गया। वह अपने जीवन को भय में देख भाग खड़ी हुई। वह उस भूगर्भ आगार से निकल बाहर खुले में आ गयी। वहां की स्वच्छ वायु के लगने से और आगार में के सुगन्धित

धूँए के अभाव में वह तीव्र गति से चैतन्य प्राप्त करने लगी।

इस समय भीतर का कोलाहल सुरंग के द्वार के समीप आता दिखाई दिया। उसने समझा कि वे उसको पकड़ने आ रहे हैं। इस बात का विचार आते ही वह मन्दिर के समीप वाले जंगल में भाग खड़ी हुई, और देखते-देखते अंधेरे में विलीन हो गयी।

पुजारी निकुम्भ, जिसने अभी तक मद्य की एक बूंद भी नहीं पी थी, परिस्थिति को भली भांति समझता था। वह महादेव को दूसरों के पास छोड़ किरण को समझाने के लिये उसके पीछे-पीछे बाहर आया। जब वह सुरंग से बाहर निकला तो श्वेत कपड़ों में कोई व्यक्ति जंगल के अन्धकार में विलीन हो गया। वह उसके पीछे गया परन्तु अंधेरे में जंगल में बहुत दूर तक नहीं जा सका।

: ६ :

सूर्योदय से पूर्व ही किरण नदी के तट पर पहुंच, अपने कपड़ों और केशों में से रक्त के चिह्न मिटा, अपने विषय में सोचने लगी। रात की घटना में उसको एक बात विशेष प्रतीत हुई। ज्यों ही उस धूप का धूँआ उसने सूँघा था, तब ही उसकी विचार शक्ति लोप होने लगी थी। उसके मन का उसकी इन्द्रियों पर नियन्त्रण छूट गया था। उसकी स्मरण शक्ति शिथिल हो गयी थी। जहां उसके मन की दृढ़ता लोप हो गयी थी वहां उसमें कामुकता भड़क उठी थी।

वह यह स्मरण कर कि उस समय वह किसी पुरुष से सहवास करने के लिये कितनी व्याकुल हो उठी थी, आश्चर्य करने लगी थी। इस धूँए से निकलते ही किस प्रकार उसके मन का अधिकार इन्द्रियों पर लौट आया था, विस्मय करने की बात थी। रात की घटना उस को एक भयानक स्वप्न प्रतीत हुई।

सूर्य की प्रथम किरण के दर्शन करते ही वह उठ खड़ी हुई और नाव के घाट का पता करने चल पड़ी।

कुछ दूर जाने पर घाट मिल गया। नौका किनारे पर खड़ी थी। कुछ स्त्री-पुरुष उसमें बैठे थे। किरण भी उसमें चढ़ एक ओर बैठ गयी। वहां पर बैठे स्त्री पुरुष परस्पर ऊंचे-ऊंचे बात चीत कर रहे थे। एक प्रौढ़ावस्था का पुरुष कह रहा था, "कल्लू चमार का पुत्र अपने घर के बाहर मरा पाया गया है। सब गाव वहां एकत्रित हो रहा है। उसकी गर्दन पीछे से काट दी गयी है। कल्लू कह रहा था कि वह रात महा शिवरात्रि की पूजा करने मंदिर में गया था। प्रात काल जब वह शौच के लिये जा रहा था तो उसका पाव अटक गया। उसने प्रकाश किया तो अपने बेटे का ही शव देख व्याकुल हो वही बैठ गया। लोग कह रहे थे कि उसको त्रिशूल का घाव है।

एक और आदमी ने कहा, "तब तो यह, उस धूर्त पाखंडी शंकर का ही काम है। वह ही इन पूजाओ में महादेव का अभिनय किया करता है।"

इस पर एक स्त्री जो किरण के समीप ही बैठी थी बोली, "तो काका! तुम भी इन की पूजा में सम्मिलित होते हो।"

वह पुरुष खिलखिला कर हस पड़ा परन्तु फिर चुप कर गया। इस पर उस स्त्री ने फिर पूछा, "ये लोग क्या करते हैं इतनी मद्य और मास से?"

"सब खाते और पीते है। शिव की आराधना करते हैं और.... और .....।"

वह कहता-कहता रुक गया। उसके मुख पर लाली दौड़ गयी। फिर कुछ सोच कर उसने कहा, "एक बात सत्य है कि शंकर महा दुष्ट है।"

"कल्लू को नगर में जाकर न्यायपति के सामने अपना अभियोग उपस्थित करना चाहिये।"

"कल्लू कह तो रहा था, परन्तु साक्षी कौन करेगा। वहां जितने जाते हैं सब नाक-कटो की मंडली की भाति अपने पाप छुपाने के लिये वहां का भेद नही खोलते।"

"पर काका! तुम तो कह दोगे।"

'मैं तो कल वहा नही गया। मैं अब दो वर्ष से वहा नही जाता।"

"तो इस हत्या की कोई साक्षी नही करेगा क्या?"

किरण, जो यह सब सुन रही थी, अनायास बोल उठी, "साक्षी मिल जायगी।"

सब उसका मुख देखने लगे। किरण को स्वयं भी, अपने इस प्रकार वार्तालाप में हस्तक्षेप करने पर विस्मय हुआ। क्या वह साक्षी करने उज्जयिनी लौट कर आयेगी? वह नहीं चाहती थी कि रात की घटना को सबके सामने कहे, परन्तु अब बात मुख से निकल गयी तो निकल गयी। अब वह लौट नहीं सकती थी। इस कारण उसने विचार कर कहा, "हुत के पिता को कहना कि वह अपना अभियोग महामात्य भूदेव के सामने उपस्थित करे और साक्षी के लिये किरण देवी का नाम लिखा दे। किरण देवी अभी महर्षि वामदेव के आश्रम में मिल सकेंगी।"

किरण देवी का नाम सुन सब अवाक् उसका मुख देखने लगे। कितनी ही देर तक चुप रहने पर उसी औरत ने, जो बात कर रही थी कहा, "किरण देवी क्या साक्षी देंगी।"

"मैं समझती हूं कि वह सब बात खोल कर कह देंगी। वह बता सकेंगी कि कल्लू के पुत्र की क्यों हत्या की गयी है।"

"तो वह वहां पर थी क्या?"

"अवश्य रही होंगी। अन्यथा वह सब बात बता कैसे सकेंगी।"

"हत्या करने वाले को पहिचान लेंगी क्या?"

"अवश्य! पहिचान सकेंगी।"

"तो वह तुम नहीं हो?" काका कहे जाने वाले पुरुष ने उसकी ओर देखते हुए कहा।

"मैं कैसे हो सकती हूं? हां, मैं उसको जानती हूं। वह अभी भी गांव में गुप्त रूप में ठहरी हुई है। मैं अभी-अभी उससे मिल कर आ रही हूं।"

इस पर सब बैठे हुए किरण का मुख देखने लगे।

नौका वाला आया और दो-दो ताम्र नौका का भाड़ा एकत्रित करने लगा। किरण ने उसको एक रजत दे दी। नौका वाले ने शेष दे सकने में असमर्थता प्रकट की। इस पर किरण ने कहा, "तो शेष रखो। जब

लौटूंगी तो ले लूंगी।"

"कब तक लौटोगी देवी!"

"बता नही सकती।"

"तो यदि उस दिन भी मेरे पास शेष दाम न हुआ तो?"

"तो फिर जब जाऊंगी ले लूंगी।"

"तो बहुत आना-जाना होगा तुम्हारा?"

"यह तो सबका ही बना है और बना रहेगा।"

नौका वाले ने रजत अपनी धोती के छोर से बाध लिया और नौका चलाने लगा। यात्रियो ने पुन अपनी बातचीत आरम्भ कर दी। एक यात्री ने कहा, "कल्लू कहा करता था कि उसका बेटा शिव-पूजा में न जाया करे, परन्तु सेठ भद्रक की दासी उसको पकड़ ले जाया करती थी।"

"काका! मुझ को तो यह बदमाशी का अड्डा ही प्रतीत होता है। अब तो ब्राह्मणो की बहू बेटियां भी इसमें सम्मिलित होने लगी है।"

"और नगर में क्या हो रहा है? यहा तो केवल कृष्ण चतुर्दशी को ही ये रंगरलिया मनायी जाती है और वहा तो नित्य सायकाल पद्मा के घाट पर यही कुछ होता है। यहा तो मानसिक दुर्बलता मान शायद भगवान् से उसके लिये क्षमा याचना की जाती है, परन्तु वहा तो सब प्रकार के विघ्न तोड उच्छृखलता करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता है।"

इस पर किरण के समीप बैठी स्त्री पुन कहने लगी, "काका! तत्व-दर्शी की लड़की किशोरी नगर में विवाही गयी थी। वह अब वेश्या-वृत्ति करती है और उसका पति इस में उसकी सहायता करता है।"

"धन्य हो महाराज कुमारदेव! अब तो नवीन वेद लिखवाने की बात शेष रह गयी है।"

एक स्त्री ने किरण' से पूछा, "क्या नाम है बहन! तुम्हारा।"

"रम्भा।"

"किस गाव से आ रही हो?"

"मै उज्जयिनी की रहने वाली हूं। अपने पति से दुःखी हो घर से भाग आयी हूं।"

वह स्त्री मुस्कराई और बोली, "भगवान् तुम्हारी सहायता करेगा। परन्तु यह किरण को तुम कैसे जानती हो?"

"किरण देवी महाराज की क्रीतदासी थी। आचार्य भूदेव के कहने पर महाराज ने उसको मुक्त कर दिया है। मै उस देवी की सेविका थी।"

"वह तुम से अधिक सुन्दर है क्या?"

"मैं तो उसके जूते की भी तुलना नहीं रखती।"

"सत्य? मैंने तुम्हारे जैसी सुन्दर आखे कभी नही देखीं।"

"मै अपने विषय में तो जानती नही, तुम्हारे विषय में कह सकती हूँ कि तुमने बहुत कम स्त्रियों को देखा है। तभी मेरी आखों की इतनी प्रशंसा करती हो।"

नौका नदी पार लग गयी। किरण ने पूर्व का मार्ग पकड़ा। नौका के सब यात्री उसको देखते रह गये। वह पुरुष जिसको सब काका कह कर सम्बोधन कर रहे थे, अपने साथ जाने वाली स्त्री से बोला, "बेटी! यह स्त्री ही किरण देवी प्रतीत होती है। अद्वितीय सुन्दरी है वह।"

किरण अब ठीक मार्ग पर थी। नदी से दो कोस के अन्तर पर वह एक गाव में पहुंची। अब उसने किसी एकान्त के मन्दिर में जाने की भूल नही की। सीधे किसी निर्धन ब्राह्मण का आतिथ्य स्वीकार कर भोजनादि से निवृत्त हो मध्यान्ह-पश्चात् आगे चल पड़ी।

: १० :

कल्लू चमार को आशा नहीं थी कि उसके साथ न्याय होगा। इस कारण वह अपने पुत्र का दाह-संस्कार कर घर लौट आया। सायंकाल नौका के यात्री गाव से लौटे तो उस स्त्री ने रम्भा की बात हुत के पिता को कही। कल्लू चमार को विश्वास नहीं आया और वह सेठ भद्रक के पास जाकर नौका मे हुआ वार्तालाप सुनाने लगा। यह सुन कि रम्भा शायद

किरण देवी थी ,भद्रक को उसके हाथ से निकल जाने का बहुत शोक हुआ। परन्तु कल्लू को आचार्य भूदेव के पास जाने से रोकने के लिये उसने कह दिया, "भैया कल्लू ! किसी ने तुमको बहका दिया प्रतीत होता है। न तो रात कोई किरण देवी उपासना में सम्मिलित हुई थी और न कोई इस नाम की औरत गाव में आयी है। तुम्हारे बेटे की हत्या हम में से किसी ने नहीं की। वह कल जगल में वराह का आखेट करने गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका जगल के भीलों से झगड़ा हो गया है और किसी भील ने उसकी गर्दन में भाले से घाव कर उसको मार डाला है। पश्चात् उसको यहा छोड गये हैं।"

भद्रक ने अपनी सहानुभूति का प्रमाण देने के लिये उनको, पुत्र का क्रियाकर्म कराने के लिये पाच सौ रजत दिये। कल्लू यह धन पाकर, अपना शोक छोड़ अपने कामकाज में लग गया। गाव के लोग कल्लू को अभियोग चलाने के लिये नगर को न जाते देख गाव के एक ब्राह्मण तत्वदर्शी को जाकर बोले, "पडित जी ! आप ही कुछ करिये। इस प्रकार तो हमारा गाव में रहना कठिन हो जावेगा।" गाव वालो ने, जो नौका में किरण से बात कर आये थे, नौका वाली पूर्ण बात पडित जी से बतायी। इस पर पडित जी ने उज्जयिनी जाना स्वीकार कर लिया।

पडित तत्वदर्शी को संसार में विषय-वासना की वृद्धि देख क्रोध चढ रहा था। उसकी अपनी लडकी के विषय में भी लोग कई प्रकार की बातें प्रचलित कर रहे थे। इससे वह आचार्य भूदेव से कह कर कम से कम अपने गाव में तो शिव के इस मदिर को बद करवा देना चाहता था।

अगले दिन वह गाव से उज्जयिनी में जा पहुचा। वह अपनी लडकी किशोरी के घर पहुचा तो घर सूना देखा। वह विस्मय में देखता रह गया। घर प्रायः खाली हो चुका था। वह घर में जा कर उसके सामान से रिक्त आगारो को देख रहा था कि उस का जमाई बाहर से आया और पडित जी को देख ऊँचे स्वर से हँसने लगा। तत्वदर्शी अपने जमाई को पागलो की भाति हँसते देख, उसके शान्त होने को प्रतीक्षा करने लगा। जब

वह मन भर हँस चुका तो बोला, "पंडित जी महाराज ! आप की लाडली पुत्री मेरा सब कुछ लेकर अपने प्रेमी के घर चली गई है ।"

"कौन है उसका प्रेमी ?"

"वह अब सेठ रघुनन्दन के रनवास की शोभा बन रही है ।"

"तुमने न्यायालय में अपना अभियोग क्यों नहीं चलाया ?"

पंडित जी के जमाई को इस बात पर अचम्भा हुआ । वह समझता था कि पिता अपनी लड़की के विरुद्ध अभियोग चलाने को पसन्द नहीं करेगा । इस कारण उसने पूछा, "तो आपके विचार में अभियोग चलाना चाहिये ? अपनी लड़की की बदनामी का भय नहीं आपको ?"

"जो जैसा करेगा वैसा भरेगा । मैंने उसका मान-अपमान तुम्हारे हाथ में दे रखा था । तुमको उसकी रक्षा करनी चाहिये थी ।"

"मुझ से एक भूल हुई है । उसके इस पाप के मार्ग पर जाने का ज्ञान तो मुझ को कुछ काल से था । मैं अपने और उसके अपमान के भय से बात छुपाता रहा और आज मुझ को यह दिन देखना पड़ा है । आज मैंने न्यायालय का द्वार खटखटाया तो आपकी पुत्री ने कह दिया है कि मैं उसको खाने-पहिरने को नहीं दे सकता । जब न्यायाधीश ने उससे पूछा कि कितना मासिक उसका व्यय है तो उसने दो सौ स्वर्ण मासिक मांगा है । उस सेठ ने दो वर्ष का खर्चा पांच सहस्र स्वर्ण न्यायालय में जमा करा दिया है । न्याय-पति का कहना था कि राज्य किसी व्यक्ति को विवश नहीं कर सकता कि वह निर्धनता का जीवन व्यतीत करे । इस कारण मुझ को आज्ञा हुई है कि मैं किसी ऐसी औरत से विवाह करूँ जो मेरी आय के भीतर निर्वाह करना स्वीकार करे ।"

"तो विवाह का क्या हुआ ?"

"विवाह हुआ है अथवा नहीं हुआ है, कोई किसी को विवश कर अपने पास नहीं रख सकता ।"

"तो तुमको आचार्य भूदेव के पास जाना चाहिये । सुना है कि वह तो धर्म-कर्म पाप-पुण्य को मानने वाले हैं ।"

"मेरा अभियोग तो उनके पास ही था। उन्होंने ही उक्त निर्णय दिया है।"

"सत्य ? तब तो सत्यानाश हुआ है।" फिर कुछ विचार कर उसने कहा, "मैं स्वयं आचार्य जी से मिलना चाहता हूँ। मैं अभी जाता हूँ।"

"जाइये। इस पर भी मुझ को तो कुछ भी आशा नहीं। मैंने कहा था कि उनके इस निर्णय से तो कोई भी स्वरूपवती स्त्री किसी निर्धन के घर नही रह पावेगी। इस पर उनका कहना था कि राज्य का यह काम नहीं कि सुन्दर स्त्रियों को निर्धनों के अधिकार में सुरक्षित रखें।"

"यह क्या विडम्बना है ? मैं तो एक और अभियोग लेकर उनके पास आया था। अच्छी बात है, मैं चलता हूँ।"

महामात्य के पास जाने से पूर्व पंडित तत्वदर्शी अपनी लड़की के घर जा पहुँचा। वह चाहता था कि उसके विचार भी जान ले। किशोरी सेठ रघुनन्दन के एक विशाल प्रासाद में रहती थी। जब वह वहां पहुँचा और उसने अपनी सूचना भीतर भेजी तो उसको बुलाया गया। किशोरी एक अति सुसज्जित आगार में बैठी थी। पंडित जी ने आगार में प्रवेश किया तो किशोरी ने बैठे-बैठे ही कहा, "आइये पिताजी, बैठिये। आज आपका कैसे आना हुआ है ?"

पंडित तत्वदर्शी अपनी लड़की की निर्लज्जता देख मन-ही-मन जल-भुन गया। इस पर भी वह लड़की के मन की बात को जानना चाहता था। इस कारण उसने लड़की की अशिष्टता की ओर ध्यान न देते हुए कहा, "किशोरी ! मैं तुमको यहा कैसे देख रहा हूँ ?"

"तो आप मुझ से मिलने नहीं आये यहां ?"

"आया तो तुम से मिलने ही हूँ। तुम्हारे पति के घर से इस मकान का पता पाकर आया हूँ। पर तुम उस घर को छोड यहा क्यों आ गयी हो ?"

"तो जिसने मेरा पता बताया है उसने क्या यह नहीं बताया कि आपका ढूंढा हुआ मेरा पति, मेरे खाने-पीने के लिये देने में असमर्थ था।"

"कितनी आय थी उसकी ?"

"क्या जाने ! पाठशाला में पढ़ाता था । कभी दाल है तो भाजी नही । कभी धोती मिली तो कुर्ता नही मिल सकी । विवाह के पश्चात् के पांच वर्ष में केवल एक जोड़ा जूता लेकर दिया था ।"

"तो तुम उसको छोड़ कर चली आयी हो ?"

"हा, और क्या करती ? आपने तो मुझको उस भूखे-नंगे के साथ बांध छोड दिया था । यदि मैंने यह बुद्धिमत्ता न की होती तो आज भी उसके जूठे बर्तन मसलती होती । वह निर्लज्ज न्यायालय में गया तो मैंने महामात्य से स्पष्ट कह दिया कि मै उसके पास नही रहना चाहती; राज्य की घोषणा के अनुसार मुझको विवश कर उसके पास भेजना, मेरे साथ बलात्कार करना हो जावेगा । इस पर महामात्य ने पूछा कि मै कितना खर्चा चाहती हूँ । मैंने बता दिया कि मै दो सौ स्वर्ण प्रति मास चाहती हूँ । इतना वह दे नहीं सकता था और सेठजी ने दो वर्ष के लिये न्यायालय में जमा करा दिया । इस पर मुझ को यहा आने की स्वीकृति मिल गयी ।"

तत्वदर्शी इस परिस्थिति से घबड़ा उठा । "किशोरी ! तुमने अपने विचार से ठीक ही किया है । मै अब चलता हूँ ।"—वह यह कह, वहां से चला आया ।

पंडित तत्त्वदर्शी महामात्य के द्वार पर जा पहुँचा । महामात्य राज्याभिषेक की तैयारी में व्यस्त था, परन्तु एक ब्राह्मण को द्वार से लौटाना ठीक न समझ उसने पंडित जी को प्रतीक्षा करने को कह दिया । पंडित तत्वदर्शी भी हठी आदमी था । वह अपने मन का समाधान किये बिना लौट जाना उचित नहीं समझता था । उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वह महामात्य से भेंट किये बिना नहीं जायेगा, चाहे उसको एक मास भर महामात्य के द्वार पर बैठना पड़े ।

उसी दिन, रात के दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर, उसको भीतर बुलाया गया । आचार्य भूदेव ने ब्राह्मण देवता का स्वागत कर पूछा, "क्या कष्ट

है देवता ?"

तत्वदर्शी ने कल्लू के पुत्र की हत्या का वृत्तांत वैसा ही बता दिया, जैसा उसको विदित था। पश्चात् उसने कहा, "श्रीमान् ! इस घटना ने गांव में आतंक छा रहा है।"

महामात्य ने पूछा, "आपका कल्लू के पुत्र से क्या सम्बन्ध है ?"

"भगवन् ! मैं उनके गाव का रहने वाला हूँ। गाव के लोग मुझे अपना पुरोहित मानते है। साथ ही मै वहा की पाठशाला का अध्यापक हूँ। यहा के रहने वालो के सुख-दुःख का उत्तरदायित्व, कुछ सीमा तक, मुझ पर भी है।"

"यह तो ठीक है, परन्तु देवता ! उस लडके का पिता तुम्हारे साथ क्यो नही आया ?"

"जिस व्यक्ति पर हत्या करने अथवा कराने का सदेह किया जाता है, उसने हृत के पिता को धन देकर यहां आने से रोक रखा है।"

"तो इसका यह अर्थ हुआ कि हृत के पिता का मुख वद कर दिया गया है। तब तो गाव का कोई भी व्यक्ति साक्षी देने से इसी प्रकार रोक दिया जावेगा। फिर अभियोग कैसे चलेगा ?"

"एक साक्षी है, जो मेरे विचारानुकूल धन से खरीदा नहीं जावेगा। वह है किरण देवी। मैं समझता हूँ कि वे उस पूजा में उपस्थित थी।"

"कोन किरण देवी ?" भूदेव ने सतर्क हो पूछा।

"महाराज की क्रीतदासी, जिनको उन्होने, आपके कहने पर मुक्त कर दिया था।"

"कहा है वे ?" पडित भूदेव ने अपनी उत्सुकता को न छिपा सकने से पूछ ही लिया।

"मेरे ज्ञान के अनुसार वे महर्षि वामदेव जी के आश्रम को गयी है।"

"यह तो बहुत बड़ी बात होगयी है, पडित जी महाराज ! क्या किरण देवी साक्षी करने आवेंगी ? महर्षि वामदेव जी का आश्रम हमारे राज्य में नही है। अपने राज्य के बाहर से हम किसी को यहां आने पर

विवश नहीं कर सकते ।"

"इस पर भी यदि आप चाहेंगे तो मैं समझता हूँ कि वे आने से न नहीं करेंगी । आप उनको पत्र लिख कर पूछिये तो ।"

"बहुत कठिन है ।"

"ठीक है महाराज ! परन्तु गांव वालों का क्या बनेगा ?"

"आप वहा अध्यापक है । आप यत्न कर लिंगाथतवादियो को गाव से निकलवा क्यो नहीं देते ?"

"मेरी कौन सुनता है, श्रीमान् ?"

"विचित्र अध्यापक है आप ! यदि आपके कहने में इतना प्रभाव नहीं तो फिर हम क्या कर सकते है ?"

"मं समझाता तो हूँ महाराज, परन्तु नगर से जो समाचार देहातो में जाते है, उनसे मेरे सब किये-कराये पर पानी फिर जाता है ।"

"तो पहिले नगर में ही समझाने का काम कर दीजिये न । देखिये, आज ही एक अभियोग आया था । एक निर्धन ब्राह्मण की पत्नी, धन के लोभ में अपने पति को छोड़ कर एक धनी सेठ के घर जा बैठी है ।"

"हां भगवन् ! सुना है । वह स्त्री इस पापी की अपनी ही लड़की है । मै अभी उसके पास से होकर चला आ रहा हूँ । धर्म की हानि हुई है राज्य के करने से, और अब इसकी रक्षा भी तो राज्य के करने से ही हो सकेगी ।"

"मै ऐसा नही समझता । सुनिये । कोई भी राज्य जनता की रुचि के विरुद्ध चल नहीं सकता । जनता की रुचि बनाना जाति के ब्राह्मण वर्ग का काम है । आप लोग तपस्याहीन होगये है । तभी आपके कहने में प्रभाव नहीं रहा । मेरा कहा मानो । जाकर जनता में त्याग, तपस्या, समाजहित और धर्म की भावना उत्पन्न करने का यत्न करो । जब एक भारी संख्या में लोग धर्मात्मा हो जावेंगे, तब राज्य उनकी सहायता से धर्म की स्थापना कर सकेगा । अभी तो यही धर्म है, जो यहां चल रहा है । मै जानता हूँ कि लिंगायतवादी क्या करते है । मै यह भी जानता हूँ

कि पद्मा नदी के तट पर नित्य रात को क्या होता है। परन्तु जनता यही चाहती है। राज्य जनता की रक्षा के लिए बनाया गया है। समाज ने राज्य को ब्राह्मणो की भांति उपदेश करने के लिए निर्माण नहीं किया।"

"पर आचार्य जी! राज्य ने जनता को पतन की ओर तो धकेला है न?"

"नहीं भगवन्! ब्राह्मणो में, तपस्या क्षीण हो जाने से, राज्य का विरोध करने की सामर्थ्य नही रही थी। यही कारण है कि जब श्वेतांग यहां ऊधम मचाने लगा तो किसी को यह समझ ही नही आया कि उसका विरोध करना चाहिये और यदि विरोध करने में अपने को होम करना पडे तो कर देना चाहिये। क्या करते रहे हो अभी तक ब्राह्मण देवता? कहां गये वे लक्ष-लक्ष ब्राह्मण जो महाराज पालकदेव के काल में स्वर्ण मुद्राओ के ढेर-के-ढेर उठा कर ले जाते थे?

"देखो, मैं ऐसे ब्राह्मणो की खोज में हूँ, जो देश को इस घोर अत्याचार के विरुद्ध खडा कर दें, जो जनता के मन में सत्य और न्याय के लिए आग लगा दें। जब कोई ऐसा व्यक्ति आयेगा और यदि उस समय मैं इस पद पर रहा तो उनकी विजय कराने में राज्य का सहयोग होगा।"

तत्वदर्शी आचार्य के इस वेदना से भरे वक्तव्य को सुन स्तब्ध रह गया। उसे चुप देख भूदेव ने कहा, "ब्राह्मण देवता! कुछ समझ सके हो? सत्यनिष्ठ ब्राह्मण के सम्मुख पाप, आंधी के सामने तिनके के समान, उड़ जाता है। जाओ, समझने का यत्न करो और अपनी, ब्राह्मण-कन्या मा की कोख की लाज रखने का यत्न करो।"

इतना कह भूदेव उठ खडा हुआ और जाने से पूर्व बोला, "मुझको अभी महाराज से एक अत्यावश्यक परामर्श के लिए मिलने जाना है। इतना विश्वास रखो कि किरण को मैं लिखगा और आपके शिव मंदिर में हुई हत्या की जांच कराने का यत्न करूंगा।"

तत्वदर्शी को आचार्य भूदेव का कथन शूल की भांति चुभ रहा था।

उसका कोई लड़का नहीं था। एक लड़की किशोरी थी। उसके जीवन का मार्ग वह देख आया था। अपने कर्तव्य का मार्ग वह आचार्य जी से समझ आया था। केवल एक बात थी, जो वह समझ नहीं सका था। क्या उसकी विद्वत्ता और योग्यता देश में उथल-पुथल मचा सकने मे सबल है ? आचार्य भूदेव ने कहा था कि तपस्या के क्षीण हो जाने से ही ब्राह्मण जाति पाप से जनता को बचा नहीं सकी। तो तपस्या चाहिये, तपस्या चाहिये। इसी प्रकार वह 'तपस्या चाहिये, तपस्या चाहिये' की रट लगाता हुआ अपने जमाई के घर जा पहुँचा। वहां उसका जमाई शोकग्रस्त भूखा ही लेटा हुआ था। वह भी उसके समीप जाकर लेट रहा। रात भर उसके मस्तिष्क में तपस्या की बात चक्कर काटती रही। अगले दिन वह वहा से निकला तो अपने गाव को जाने के स्थान जगल की ओर चल पड़ा। उसके हृदय में यह बात बैठ गयी थी कि तपस्या चाहिये।

सुन्दरी-प्रतियोगिता

: १ :

चिरकाल से प्रतीक्षा किया जा रहा काल आ पहुचा। महाराज कुमारदेव का राज्याभिषेक-उत्सव मनाने की तैयारी पूर्ण हो गयी। देश भर के गण्य-मान्य पुरुष-स्त्रिया, बाल-वृद्ध, जो उज्जयिनी में आ सकते थे आ गये। विदेशो से भी व्यापारी, कलाकार, उद्योगपति और राजाओ-महाराजाओ के प्रतिनिधि सहस्रो की संख्या में आये। भारत खड में यह विख्यात हो रहा था कि उज्जयिनी के धर्म-मूर्त्ति महाराज पालकदेव के संन्यास ले लेने पर कुमारदेव का राज्याभिषेक हो रहा है।

उज्जयिनी की पाच लक्ष सेना की तीखी खड्ग ने कुमारदेव के राज्यारूढ होने में न्याय-अन्याय की विवेचना को वद कर दिया और कुमारदेव की जय-जयकार कर दी। आस्तिकता और नास्तिकता के विवाद को जनता द्वारा कुमारदेव के समर्थन ने समाप्त कर दिया।

मध्य भारत के प्राय. सब देशो के राज्य-प्रतिनिधि, इस अवसर पर पधारे और उनके लिये रहन-सहन का विशेष प्रवन्ध किया गया। विदेशो से आये व्यापारियो के लिये पद्मा के पार एक पृथक् नगर बसाया गया। अवन्ति के नागरिको के लिये पृथक् आवास बनाये गये। नवीन नगर और प्राचीन उज्जयिनी का सम्बन्ध नदी पर कई सेतु बाध कर किया गया। दिन रात इन सेतुओ पर से लोग आते-जाते थे। इन दोनो नगरो की और इनसे बाहर की सडकें भीड़ से ठसाठस भर रही थी।

कोई घर नहीं था जिसमें दस-बीस अतिथि आकर न ठहरे हो। इस पर भी एक-दो लाख ऐसे भी थे जो रात को मार्ग-तटो पर सोने का विचार रखते थे।

राज्याभिषेक का उत्सव तीन दिन तक चलना था। पहिले दिन

राज्याभिषेक का कार्यक्रम था। दूसरे दिन सुन्दरी-निर्वाचन और प्रदर्शन का कार्य होने वाला था और तीसरे दिन क्रय-विक्रय और अन्य प्रतियोगितायें होने वाली थी। राज्याभिषेक के अंतिम दिन एक महान् भोज होने वाला था जिसमें दस सहस्र से ऊपर गण्यमान्य अतिथियों को निमंत्रण दिया गया था।

व्यवसाय-विभाग का प्रबन्ध सेठ राघव के हाथ में था। सुन्दरी-निर्वाचन तथा प्रदर्शन का प्रबन्ध प्रमोद को सौंपा गया था और उद्योग तथा कलाओं में प्रतियोगिता का प्रबन्ध मनोज के हाथ में दे दिया गया था।

राज्याभिषेक का कार्यक्रम उस दिन ब्रह्म मुहूर्त में आरम्भ हुआ। नगर के पांच सौ से ऊपर मंदिरो में घंटे-घड़ियाल, दुंदुभि इत्यादि से नव-राज्य और नवयुग का अभिवादन किया गया।

सूर्योदय पर अवन्ति के भावी महाराज की सवारी निकली। सवारी का आरम्भ पांच सौ नर-सिहो के तुमुल नाद से हुआ। नर-सिंह बजाने वालों के पीछे पांच सौ नर्तकियों का एक स्वर, ताल और लय पर नृत्य करता हुआ समूह था। इनके पीछे इतने ही नट अपने करतब दिखाते जा रहे थे। अवन्ति के इतिहास में से ऐतिहासिक दृश्यों की झांकियां इनके पीछे-पीछे थीं। पश्चात् बाहर से आये भिन्न-भिन्न राज्यो के प्रतिनिधि अपने-अपने सुसज्जित रथो पर थे। इनके पीछे अवन्ति के प्रतिष्ठित गण थे। पश्चात् अवन्ति सेना के पांच सौ सर्वश्रेष्ठ सैनिक और अत में एक रजत-स्वर्ण आभूषणो से युक्त हाथी पर महाराज कुमारदेव और उनके बायी ओर महारानी रेखा, दोनो बैठे जा रहे थे। महाराज के हाथी के पीछे एक हाथी पर आचार्य भूदेव और उसके साथ कुमार शतवीर बैठा था। सवारी के अत मे पांच सहस्र नग्न खड्ग लिये सैनिक अश्वो पर सवार चले जा रहे थे।

इस प्रकार पूर्ण सवारी एक कोस भर लम्बी उज्जयिनी के पूर्ण नगर में घूमी। एक प्रहर भर यह चलती रही।

दो वर्ष के पश्चात् नगर में कही-कही वेद-गान भी हुआ। यद्यपि

कुमारदेव इसको पसन्द नही करता था, परन्तु भूदेव के समझाने पर चुप कर रहा। आचार्य का कहना था कि कोई आपका कल्याण वेद-मंत्रो द्वारा करना चाहता है तो आपको अस्वीकार करने में कोई कारण नहीं। सवारी का अंत एक विशाल भवन के समक्ष हुआ। यह भवन अभिषेक के कार्य के लिये विशेष रूप से निर्माण करवाया गया था। बाहर और भीतर से इसको भली भाति सजाया गया था। बाहर पूर्ण भवन पर रजत का पतरा चढाया गया था, जिससे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का एक टुकड़ा पृथिवी पर उतर आया प्रतीत होने लगा था। भीतर से इसकी पूर्ण दीवारें सोना-चादी के गगा-जमुनी काम की बनी थीं। दस सहस्र आसन इनमें इस प्रकार लगाये गये थे कि उन पर बैठ कर सबको अभिषेक का कार्यक्रम देखने का अवसर मिल सके। सब आसन रजत के थे। एक रत्न तथा स्वर्ण-जटित सिंहासन महाराज और महारानी के लिये बना था। भवन की छत्त पर देश भर के ऐतिहासिक घटनाओ के चित्र चित्रित थे और भवन की दीवारो पर अवन्ति राज्य परिवार के राजा-महाराजाओ के चित्र लटक रहे थे। भवन इतना सुन्दर था कि देखने से मन नही भरता था।

जब सवारी इस भवन के सम्मुख पहुची, तो महाराज महारानी सहित इस भवन के एक आगार में कुछ काल के लिये विश्राम करने चले गये। इतने में सब आमन्त्रित गण भवन के दस सहस्र स्थानो पर बैठ गये। धूप-दीप से सुवासित वायु से तथा गवाक्षो द्वारा आये प्रकाश से जगमग करता हुआ भवन, आनन्द में हिलोरें ले रहा प्रतीत होता था।

लीला के पिता गणनाचार्य पडित सुखदर्शन नाराट दुर्ग से मुक्ति प्राप्त कर उज्जयिनी में विद्यमान थे। उन्होने आचार्य भूदेव की नीति के अनुसार कार्य करना स्वीकार कर लिया था और कुमार ने उनको राज्य-परिषद् में सम्मिलित करने की अनुमति दे दी थी। पडित सुखदर्शन भी सवारी में सम्मिलित थे और उनके लिये भी राज्य-परिषद् के अन्य सदस्यो के साथ राज्याभिषेक भवन में स्थान था। उन्होने भवन में आकर देखा कि उसको आचार्य भूदेव के साथ का स्थान मिला है।

समय होने पर आचार्य भूदेव महाराज और महारानी को लिवाने गया और उनके आने पर चारण ने सिंहासन के समीप खड़े होकर घोषणा की, "अवन्ति राज्यकुलप्रदीप, साधु पालकदेव के कनिष्ठ भ्राता अवन्ति-वर्धन महाराज कुमारदेव महारानी रेखा देवी सहित पधार रहे हैं।"

सब उपस्थित गण, दस सहस्र के दस सहस्र, अपने-अपने आसनों के सामने सत्कारार्थ उठ खड़े हुए। इस समय चारण ने घोषणा की, "महाराज कुमारदेव तथा महारानी रेखा देवी की जय हो।"

भवन में सबसे आगे महाराज कुमारदेव और उनके साथ महारानी रेखा देवी ने प्रवेश किया। उनके पीछे आचार्य भूदेव और कुमार शतवीर और पीछे सेनापति सुधीर और पांच सेनानायक नग्न खड्ग लिये प्रविष्ट हुए।

महाराज और महारानी को भूदेव सिंहासन के समीप ले गया और उन पर उनको बैठा दिया। उनके बैठने पर दर्शक भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। सिंहासन के दाहिनी ओर सेनापति सुधीर और बांई ओर आचार्य भूदेव खड़े हो गये। सिंहासन के चरणों में चारण था और सिंहासन के पीछे पांच सेनानायक थे।

जब सब बैठ गये तो चारण ने महाराज को झुक कर प्रणाम किया और सिंहासन के एक ओर खड़े होकर, जिससे पीठ सिंहासन की ओर न रहे और मुख सभासदों की ओर हो जाये, उच्च स्वर में, जो भवन भर में सुना जा सके, कहा,

'अवन्ति-बाहर से अभ्यागत वर तथा अवन्ति के गण्य मान्य जन! अवन्ति-महिमा सेवा में उपस्थित कर रहा हूं।" उसने मधुर आकर्षक और शक्तिशाली स्वर में गाया।

"सूर्य चन्द्र नव ग्रह वर रक्षा करते हैं जाकी
ऐसी उज्जयिनी है जगत उद्धारिनी ॥
सुन्दर सुगन्ध सरस सुवासित उद्यान भरी
मध्य स्थित पावनी भारत शोभाकारिणी ॥

देश-देश के विद्वद्वर नाग भरत है जाकी
तातें भयी सुहागिन उज्जयिनी सुहाविनी ।।
निर्माता पद्मावती सहस्रबाहु अर्जुन
आदित्य सेना विक्रम सुषेण प्रभृति महामयी ।।
पद्मा भोगवती हिरण्यवती, उज्जयिनी
युग-युग जीवित रही रूपवती मृणालिनी ।।
ससार संस्कृति की मां महान भारत माता
मान्या है उसकी यह सर्वश्रेष्ठ किरीट मणि ।।
देख वैभव चकित इसका लोग सब ही हुए
सूर्य गगन में वैसी जगत में उज्जयिनी ।।"

लोग साधुवाद करने लगे। चारण ने दो क्षण ठहर पुन आरम्भ किया :

"अहोभाग्य भारत के नव युग ले आई यह
अब शत-शत शतियों की दासता काटने को ।।
होगा मानव उन्नत माया-जाल छिन्न कर
भविता की प्रगति में विघ्न-बाधा पाटने को।
इसी उज्जयिनी की शोभा विस्तृत भई
जब नौ लक्ष सुभट इसके खड्ग तान गये ।।
अवन्ति महाराज की शूरताई देख-देख
लोक-लोक में महिमा इसकी सब मान गये ।।

अवन्तिवर्धन कुमार श्रीमान् धीमान् वर
शूरवीर लोकपाल से सब सुख भर रहे ।।
मानव की महिमा को सर्वोपरि मान्य कर
परोक्ष की चिन्ता से निर्भय जग कर रहे ।।
धन्य धन्य उज्जयिनी कोटि-कोटि जनता ले
सुख सम्पदामयी हुई है इस काल में ।।

धन्य है कुमारदेव अवन्ति के भाग्यदाता
जग में चिरजीवि रहे शोभित जिय भाल से ।।

चारण के इस अवन्ति-महिमा गान की सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस गान के पश्चात् आचार्य भूदेव ने उच्च स्वर में एक वक्तव्य दिया। उसने कहा—"सभ्यगण ! महाराज साधु पालकदेव के समय में सब कुछ होते हुए भी धन-सम्पदा का अभाव था। तीन बार मल्लो से युद्ध करने के कारण जनता हीन-क्षीण, समाज जर्जर, राज्यकोष रिक्त हो चुका था। ऐसे काल में वर्तमान महाराज ने इस देश का पुनः निर्माण करने का निर्णय किया। आज तीन वर्ष के श्रीमान् के राज्य-प्रबन्ध से व्यापारियो के कोष स्वर्ण से लद गये है। जुलाहे और चमारो की बहुएं रत्नजटित भूषण पहिनने लगी है। नगर विशाल विस्तृत सुहावना सद्योद्यान और सुन्दर हो गया है। ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल में देश ने उन्नति की है। इस प्रकार धन-धान्य से भरपूर देश में लोग सुख और शान्ति से सोते है। आज यहां सिंह और अजा एक घाट पर पानी पीते हैं।...

"इससे जनता की सहमति से महाराज कुमारदेव का राज्याभिषेक किया जाता है।"

इस समय महाराज कुमारदेव की जय-घोषणा चारण ने की। पूर्ण भवन जय-जयकार से गूँज उठा। राज्याभिषेक के लिये महर्षि वामदेव पधारे थे। उन्होंने स्वर्ण थाल मे स्वर्ण दीप जला, पुष्प-रोली-नारियल ले, महाराज और महारानी की आरती उतारी और उनको तिलक दिया। महर्षि यह कार्य कर थाल को महाराज के चरणो में रख अपने आसन पर जा विराजे। अब सर्वप्रथम, आचार्य भूदेव ने थाल में से रोली लेकर महाराज को तिलक दिया। पश्चात् क्षत्रियकुलशिरोमणि सेनापति सुधीर ने तिलक दिया। इसके पीछे वैश्यकुल-भूषण सेठ राघव ने महाराज को तिलक दिया। अंत में शूद्र जाति के पंच मोहन ने महाराज के चरणो में रोली दी।

इस विधि के समाप्त हो जाने पर, चारों वर्णो से सम्मानित, तिलक-

विभूषित, राज्य का चिन्ह स्वरूप राजमुकुट आचार्य ने प्रजा की ओर से पहिनाया। महाराज को मुकुट पहिना आचार्य ने दूसरा मुकुट महारानी को पहिनाने के लिये महाराज के सामने उपस्थित किया और महाराज ने उसको दोनो हाथो से पकड़ कर महारानी के सिर पर रख दिया।

इस पर पुन. महाराज कुमारदेव का जय-घोष हुआ। इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई और उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

: २ :

राज्याभिषेक की नगर भर में धूम थी। इसी दिन नगर में परिषद् के सदस्यों के नाम घोषित किये गये। इसमें आचार्य भूदेव का नाम महामात्य पद पर होना तो सबको विदित ही था, परन्तु पडित सुखदर्शन की न्यायमंत्री के पद पर नियुक्ति सबके लिये आश्चर्यकारक हुई। पंडित सुख-दर्शन के विषय में सबको विदित था कि वह राज्य का बंदी है। अब उसका छूट जाना और फिर उसका मत्री पद पर नियुक्त हो जाना एक भारी विस्मय की बात हो गयी। इससे कुमारदेव की महिमा प्रजा में और भी बढ गयी।

राज्याभिषेक की सभा से लौट कर पडित सुखदर्शन लोला को लेकर तीन वर्ष के पश्चात् अपने गृह पर पहुंचा। लोला और पडित दोनो जानते थे कि मनोज के प्रयत्नो से ही यह सम्भव हो सका है। सब से प्रथम बात, जिस को जानने का यत्न पडित जी ने किया वह मनोज के विषय में ही था। लोला ने बताया, "ये काशी के रहने वाले एक विद्वान् ब्राह्मणकुमार है।"

"लडका अच्छा समझदार प्रतीत होता है।"

उसी सायंकाल आचार्य भूदेव पंडित जी से मिलने आया। उसके साथ कुमार शतवीर भी था। साधारण आव-भगत के पश्चात् शतवीर और लोला को वहा ही छोड़ दोनो वृद्ध जन राजनीति के विषय में बातचीत करने के लिये एक पृथक् आगार में चले गये। जाते समय पंडित सुखदर्शन ने अपनी पुत्री से कहा, "लोला! कुमार का मनोरंजन करना। मै तनिक इनसे

बातचीत कर लूँ ।"

अकेले रह जाने पर दोनों चुप एक दूसरे का मुख देखने लगे। वे नहीं जानते थे कि किस विषय पर बातचीत करें। इस चुप्पी से लोला तंग आ गयी और बोल उठी, "आप बोलते नहीं। बोल भी सकते हैं या नही ?"

शतवीर इस पर मुस्करा कर बोला, "तुम्हारी जिह्वा है, यह तो पता चल गया। मैं तो यह सोच रहा था कि तुम को चुपचाप बैठे देखना शायद अधिक आनन्दप्रद है।"

"तो पता चला कि आप चित्र-कला में प्रवीण हैं।"

"नहीं तो। मैंने तो कभी तूलिका को छूआ तक नही।"

"तो आप अवश्य मूर्त्तिकार होंगे।"

"यह भी नही।"

"तो फिर आप कुछ भी नही। पर आप मुझको देख कर क्या आनन्द लेते हैं ?"

"मैं तुम्हारा सुन्दर रूप-रंग हृदयंगम कर रहा हूं।"

"इससे क्या होगा ?"

"जब तुम्हारी मूर्त्ति मेरे मन मे बैठ जायेगी तो मैं उसको स्मरण कर आह्वान मन्त्र का जप करूंगा, जिससे तुम मुझसे प्रेम करने लगोगी। फिर तुम मेरी हो जाओगी।"

"तब तो बहुत बुरा होगा।"

"क्यों ? तुम मेरी होना नही चाहती क्या ?"

"मुझको इसमें कोई लाभ प्रतीत नहीं होता।"

"मैं शीघ्र ही अवन्ति का महाराज होने वाला हूं।"

"किसने कहा है आपको यह झूठ ?"

"मेरा मन कहता है।"

"मेरी शुभ-कामना आप के साथ है। परन्तु अभी तो वह अलभ्य अभिलाषामात्र प्रतीत होती है।"

"मैं जब महाराजा बनूँगा तो तुमको महारानी बनाऊंगा।"

"नहीं श्रीमान् ! मैं महारानी बनना नहीं चाहती।"

"क्यों ?"

"गृह की मुँडेर पर बैठना भययुक्त तो है ही, साथ ही मुँडेर जितनी ऊंची हो भय उतना ही अधिक हो जाता है।"

"इस पर भी वीर-धीर ऐसे भययुक्त कार्य करते ही हैं।"

"मैं वीर-कन्या नहीं हूं। मैं तो एक कलाकार हूं।"

"तो क्या एक कलाकार वीर-धीर नहीं हो सकती ?"

"बुद्धिशीलता और वीरता दो परस्पर विरोधी बातें हैं। इनका समन्वय कहीं देखा नहीं।"

बहुत रुचिकर बातचीत चल पड़ी थी। शतवीर इस व्यंग पर हंस पड़ा और कहने लगा, "तो यह समन्वय कर दिखायेंगे। देखो लोला ! मैंने उस दिन तुमको प्रमोद जी के साथ देखा था। फिर एक दिन तुम्हारा नृत्य भी देखा था। मैं तबसे ही तुमसे प्रीति रखने लगा हूं। अब मैं तुममें भी अपने लिये प्रेम उत्पन्न कर सकूँ, वैसा उपाय सोच रहा हूं। इस अर्थ तुम्हारा रूप अपने मन में बैठा कर अनुष्ठान करूँगा। गुरुजी का कहना है कि एक लक्ष अनुष्ठान करने से तुम भागी हुई मेरे पास आओगी।"

"तब मैं आपको बधाई दूंगी।"

"तो क्या तुम ऐसी बात को असम्भव समझती हो ?"

"यह तो मैंने नहीं कहा।"

"क्या नहीं कहा ?" पंडित सुखदर्शन ने पीछे खड़े हुए कहा। पंडित जी और आचार्य जी अपनी बातचीत समाप्त कर आ गये थे।

इस प्रकार की बात अपने पिता से कही जाने पर उसको लज्जा लग गयी और उसका मुख लाल हो गया। लोला को चुप देख शतवीर ने उत्तर दिया, "महर्षि जी से मैंने एक ऐसा मंत्र सीखा है, जिससे मैं किसी को भी अपने वश में कर सकता हूं। यह वशीकरण मैं लोला पर करने वाला हूं। ये कहती हैं कि जब मैं ऐसा कर लूंगा तब मुझको बधाई देंगी। तो

इसके अर्थ तो यह हुए कि इनको गुरु जी की विद्या पर संदेह है अथवा ये उस वशीकरण का विरोध करने का विचार रखती है।"

शतवीर की बात सुन, दोनो वृद्ध जन हंस पड़े। पीछे पंडित सुख-दर्शन ने गम्भीर हो कहा, "देखो कुमार! जब ये तुम्हारे वश में हो जावेगी तो फिर यह तुम को बधाई देने के स्थान अपने को बधाई देगी।"

आचार्य भूदेव ने पंडित के इस कथन को कुमार के साथ लोला के विवाह की स्वीकृति समझा। इससे वह प्रसन्न हो पंडित जी से विदा ले चल पड़ा।

मार्ग में रथ पर बैठे हुए आचार्य भूदेव ने कहा, "कुमार तुमने लोला से प्रेम प्रकट कर ठीक ही किया है। वास्तव में वह एक समृद्ध देश की पटरानी बनने के योग्य है।"

जब आचार्य भूदेव और शतवीर चले गये तो पंडित ने अपनी लड़की से पूछा, "क्या कहता था यह मूर्ख ?"

लोला जो बातो का रहस्य खुल जाने से आंखें झुकाये बार-बार टेढी दृष्टि से पिता जी को देख रही थी, राजकुमार के लिये मूर्ख शब्द का प्रयोग सुन विस्मय में मुख उठा देखने लगी। उसकी घबराई हुई दृष्टि को देख पंडित सुखदर्शन ने अपने कहने की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "लोला बेटी! यह लड़का महर्षि वामदेव के बहकाने में आ गया है। इसी कारण इसको मूर्ख कहता हूं।"

"मैं नहीं समझी कि वह क्या कह रहा है और आपने भी जो कुछ कहा है वह मेरी समझ में नहीं आया।"

"देखो, इसने अपना विचार कि वह तुम को अपने वश में करना चाहता है, बता कर मूर्खता की है। वह अब यह कर नहीं सकेगा। अब तुम उससे विवाह करना पसन्द नही करोगी। तुम्हारे मन में एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया उठेगी, क्योंकि कोई मनुष्य, अपनी इच्छा के बिना, किसी के वश में होना नहीं चाहता।"

"इस पर भी, पिता जी! मैं आपकी इच्छा का सम्मान करूंगी।

यदि आप चाहेंगे तो मैं....।"

पंडित सुखदर्शन ने उसकी बात को बीच में ही रोक कर कहा, "लोला ! तुम को यह समझ लेना चाहिये कि मैं कभी नहीं चाहूंगा कि मेरी लड़की किसी मूर्ख से विवाह करे। मेरा इस लड़के के विषय में पहिले भी यही विचार था।"

लोला चुप रही। वह अपने मन में उठ रहे विचारों का विश्लेषण कर रही थी। राजकुमार शतवीर उसके मन में किसी प्रकार का भी आकर्षण उत्पन्न नहीं कर सका था। इसके विपरीत वह अपने मन में मनोज के लिये आदर और मान का भाव रखती थी। इस विषय में मनोज ने उससे कभी वार्तालाप नहीं किया था। इसमें वह अपने मन में कुछ स्पष्ट विचार नहीं रखती थी।

: ३ :

लोला सायंकाल अपनी सखियों से मिलने कलाभवन में गयी। वह देखना चाहती थी कि अगले दिन होने वाली सुन्दरी-प्रतियोगिता के विषय में क्या तैयारी हो रही है।

कलाभवन में भारी चहलपहल थी। प्रतियोगिता के लिये आयी हुई सुन्दरियों को इस भवन में रहने दिया गया था। वे एक सौ से ऊपर थी। उनकी प्रारम्भिक परीक्षा उसी सायंकाल होने वाली थी। निर्वाचन समिति, जिसका प्रमोद अध्यक्ष था, इस प्रारम्भिक परीक्षा में बहुत सी सुन्दरियों को निकाल देने वाली थी। यह विचार था कि पांच सुन्दरियों को निर्वाचित कर लिया जावे और शेष को उसी दिन छुट्टी दे दी जावे। इन पांच का अगले दिन पुनः निरीक्षण किया जावे और सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का निर्वाचन कर दिया जावे। पश्चात् सायंकाल सब दर्शकों के सम्मुख उन पांचों को उपस्थित किया जावे। यदि दर्शकों का बहुमत उनके निर्णय को उचित न समझे तो वे पुनः विचार करें। इस प्रकार अंतिम निर्णय पर पहुंचा जावे।

अंतिम निर्णय के लिये, जो दर्शकों के सम्मुख होने वाला था, एक विशाल पंडाल निर्माण किया गया था। यह कलाभवन के प्रांगण में कौशेय और तूल का बनाया गया था और इसको भीतर से बहुत सजाया गया था। इस पंडाल मे प्रकाश करने के लिये एक सहस्र अग्निशिखाओ का प्रबन्ध था। इन पर जलाने के लिये एक विशेष प्रकार के तेल का प्रबन्ध था, जिसके जलने से धूँआ न निकले और प्रकाश अधिक हो।

लोला जब कलाभवन में पहुची तो प्रारम्भिक परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। प्रमोद अन्य परीक्षकों के साथ परीक्षाभवन से बाहर आ चुका था। इस परीक्षा में अनुत्तीर्ण सुन्दरियां मुख लटकाये जा रही थी और जो पांच उत्तीर्ण हुई थीं, वे अपने मित्रो से बधाइयां ले रही थीं।

पांच उत्तीर्णो मे कोकिला भी आ गयी थी और उसकी सहेलियां उसको घेरे खड़ी थीं। उनमें कुछ युवक भी थे। प्रियमुख सबसे आगे खड़ा कह रहा था, "क्यों कोकिला, मैंने ठीक कहा था न। मैं मूर्ख नही हूं देवी!"

"परन्तु प्रियमुख! मुझको तुम्हारी बूझ मे भारी संदेह है। तुमने अभी उसको नही देखा।" इतना कह कोकिला ने प्रांगण मे दूर खड़ी एक लडकी की ओर उँगली कर दी। सब उसकी ओर देखने लगे। वह अकेली थी। लम्बी छरहरे शरीर की, छोटा सा अण्डाकार मुख और अंग मे स्फूर्त्ति और चपलता चटक रही थी। प्रियमुख ने भी उधर देखा और कहा, "अभी बच्ची है। किसी आगामी प्रतियोगिता में आ सकती है।"

"वह हम पाचो मे निर्वाचित हो चुकी है।"

"तब क्या हुआ? हम कलाभवन के सब लोग सार्वजनिक निर्वाचनोत्सव में तुम्हारे लिये हल्ला करेंगे। यदि तुम्हारे विरुद्ध निर्णय दिया गया तो प्रमोद जी के लिये कलाभवन चला सकना कठिन हो जावेगा।"

"पर यह लड़की है कौन?" एक अन्य ने पूछा, "उसका कोई संगी-साथी दिखाई नही देता।"

"वह सफल नहीं हो सकेगी।" प्रियमुख का कहना था।

प्रमोद ने लोला को उस प्रांगण में प्रवेश करते देखा तो अपने साथियो को छोड़, उसके पास चला गया और पूछने लगा, "कैसे आई हो लोला ?"

"प्रतियोगिता वाली सुन्दरियों का तमाशा देखने चली आयी हूं।"

"तो इधर आओ, तुम को एक चमत्कार दिखाऊं।"

वह लोला को साथ लेकर उस एकान्त में खड़ी लड़की के पास चला गया। जब वे उसके पास पहुंचे तो वह उनकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी। प्रमोद ने पूछा, "तुम्हारी मा नहीं आयी क्या ?"

"हम दोनो इकट्ठे आये थे। उसको मैं यहा बैठा कर भीतर परीक्षा के लिये गयी थी। हम को भीतर बहुत समय लग गया है। बाहर आयी हूं तो वह यहा नहीं है।"

"शायद कुछ खाने-पीने गयी है।"

"मैं यहीं उसकी प्रतीक्षा करना चाहती हू।"

प्रमोद ने उसका परिचय कराया, "यह है अनुराधा ग्वालिन, कानू ग्वालिन की बेटी। अभी तक हमारी समिति के मत में यह देश की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। अंतिम निर्णय कल होगा।"

लोला ने उसको सिर से पाव तक देखा और उसक अंग-प्रत्यंग के परस्पर अनुपात को देख कर चकित रह गयी। इस समय प्रमोद ने लोला का परिचय कराया, "अनुराधा यह है लोला देवी, पडित सुखदर्शन, न्याय-मत्री की सुपुत्री। यह सगीत और नृत्य में बहुत ही प्रवीण है ?"

अनुराधा ने लोला को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और पूछा, "ये प्रतियोगिता में नही आयीं ?"

"नहीं। मैं अपने आप को कुछ बहुत सुन्दर नही मानती।"

"किसी ने आप को भ्रम में डाल रखा है।"

प्रमोद ने लोला से कहा, "तुम इसको अपने आगार में ले जाओ। मैं इनकी मां का पता कराता हूं। उनको ढूंढकर वहा ही भेज दूंगा।"

लोला अनुराधा को लेकर ऊपर उस आगार में चली गयी, जिसमें

वह रहती थी। प्रमोद ने कलाभवन के एक कर्मचारी को अनुराधा की मां को ढूँढने भेज दिया।

प्रमोद जब अपने कार्यालय में गया तो प्रियमुख अपने कुछ साथियों के साथ वहां आ पहुंचा। प्रमोद ने अपने आसन पर बैठते हुए पूछा, "प्रियमुख! क्या बात है ?"

"आप से हम सब एक विशेष निवेदन करने आये है। वह यह कि कोकिला कला-भवन की विद्यार्थिनी है। इस नाते उसका आप पर भी कुछ अधिकार है। यदि वह सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित होती है तो कला-भवन का मान बढ़ेगा।"

"यह ठीक है।" प्रमोद ने कहा, "परन्तु यह सम्मान देना तो मेरे अधिकार में नहीं है। राज्य ने इसके लिये एक समिति बनाई है। वह कार्य कर रही है।"

"यदि तो समिति ने कोकिला को निर्वाचित किया तब तो ठीक है।"

"परन्तु समिति किसी और के पक्ष में भी तो सम्मति दे सकती है।"

"उस अवस्था मे जनता इसका विरोध करेगी।"

"इस अवस्था में समिति अपने निर्णय पर पुनः विचार करेगी। इस बार उसका निर्णय अंतिम होगा।"

"आप अध्यक्ष है। आप अपना प्रभाव प्रयोग करियेगा।"

"हां, यदि मेरी समझ से समिति का निर्णय ठीक न हुआ तो अवश्य सदस्यों को समझाने का यत्न करूगा, परन्तु निर्णय तो बहुमत से ही होगा।"

"आपकी समझ में अभी तक क्या आया है ?"

"समय से पूर्व बताना उचित नहीं समझता।"

"मैंने आपको निवेदन कर दिया है और उसमें युक्ति भी दी है। हम कला-भवन के सदस्य कोकिला के पक्ष में निर्णय चाहते है।"

"मै अन्य कोकिलाओं का गला नही घोंट सकता।"

"श्रीमान्! न्याय करते समय भी तो स्वार्थ का ध्यान रखना चाहिये।

आज स्वार्थ का युग है।"

"तुम ठीक कहते हो प्रियमुख! मैं भी स्वार्थी हूं। परन्तु मेरे और तुम्हारे में अंतर यह है कि जिसको तुम स्वार्थ समझते हो, मैं उसको अपने लिये अहितकर समझता हूं। मेरा स्वार्थ इस बात में ही है कि इस प्रतियोगिता में न्याय हो।"

"मैं आपसे अधिक नहीं कह सकता। आप समझदार हैं। भला-बुरा विचार कर काम होना चाहिये।"

प्रमोद को प्रियमुख के व्यवहार पर क्रोध चढ़ आया। उसने महामात्य को लिख दिया कि सुन्दरी-प्रतियोगिता और प्रदर्शन के समय दंगा हो जाने की आशंका है इस कारण वह चाहता है कि सेना का पूर्ण रूप में प्रबन्ध कर दिया जावे। इतना कर वह लोला के आगार में चला गया। इस समय तक लोला ने अनुराधा को अपनी प्रिय सखी बना लिया था। दोनो परस्पर बहुत घुल-मिल कर बातचीत करने लगी थी। जब प्रमोद वहां पहुंचा तो लोला ने उसको बताया, "भैया! ये आचार्य जी की परिचित हैं।"

"हां, मुझको यह ज्ञात है। इनका नाम श्री आचार्य जी स्वयं लिखाने आये थे।"

"ये कहती हैं कि एक दिन आचार्य जी इन के गाव के समीप से जा रहे थे और ये दूध की मटकी सिर पर रखे हुए, एक दूसरे गाव से आ रही थीं। उन्होंने देखा और इनकी मा से कुछ बातचीत हुई। पश्चात् एक नट आकर इनको नृत्य तथा संगीत की शिक्षा देने लगा। आज प्रात ये अपनी मां के साथ यहा आयी थी, अब वे नहीं मिल रही।"

"मैंने उनको ढूंढने के लिये एक कर्मचारी को भेजा है।"

"ये कहती हैं कि ये अपना मूल्य नहीं लगवायेंगी। ये बिकना नहीं चाहतीं।"

"क्यों?"

उत्तर अनुराधा ने दिया, "मैं क्रीतदासी बनना नहीं चाहती।"

"इसमें हानि ही क्या है ? महारानी भी तो क्रीतदासी है ।"

"वे महारानी है। मैं महारानी बनने की अभिलाषा नही रखती।"

"पर यह तो इस योजना का एक अंग है।"

"होगा, पर मैं नही बिकूंगी।"

"देखो अनुराधा ! लाखो स्वर्ण मुद्रायें मिलेंगी।"

"क्या करूंगी उनको लेकर ? मैं तो अपने मन-पसन्द का पति पाऊंगी।"

प्रमोद ने इस वार्तालाप को आगे नहीं चलाया। उसको भय था कि समय से पूर्व इस विषय में झगड़ा करने से योजना असफल हो सकती है । इस पर भी उसको विचारने की सामग्री मिल गयी। वह विचार करने लगा कि अनुराधा महाराज पालकदेव के काल की विचारधारा की प्रतीक है । कोकिला नवीन विचारो से ओत-प्रोत । कितना अंतर पड़ गया है दोनों कालों में । केवल तीन वर्ष का काल ही व्यतीत हुआ है, परन्तु विचारो में युग-परिवर्तन हो गया है । इसका श्रेय श्वेतांग को है। वह अवश्य ही महान् व्यक्ति है।"

प्रतिहार ने आकर कहा, "अनुराधा देवी की माता आ गयी है। वे नगर घूमने चली गयी थीं और मार्ग भूल गयी थी। जिस किसी से भी पूछतीं कि वह स्थान कहां है, जहां सुन्दरी-प्रतियोगिता हो रही है, तो लोग यह समझ कि वह स्वयं इस प्रतियोगिता में भाग लेने आ रही है, हंस देते और मिथ्या मार्ग बता देते। इससे उनको भारी कष्ट हुआ है। इस व्यवहार से निराश होकर वे मार्ग के तट पर बैठी थीं कि मनोज जी ने देख लिया। वे रथ पर सवार कहीं जा रहे थे। उन्होंने इनको देखा और इनकी कठिनाई जान रथ पर सवार कर लिया और यहा ले आये।"

"उन दोनों को यहां ले आओ।"

: ४ :

अगले दिन पाच निर्वाचित सुन्दरियो का पुनः निरीक्षण हुआ और सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि अनुराधा सर्वश्रेष्ठ है। उससे न्यून अंक एक पद्मा नाम की लडकी के थे। यह भी देहात की रहने वाली थी। कोकिला तीसरे स्थान पर आयी। दो अन्य लडकिया थीं, जो चौथे और पांचवें स्थान पर रखी गयी।

जब यह परिणाम घोषित किया गया तो चौथे और पांचवें स्थान पर आयी लड़कियो ने सार्वजनिक प्रदर्शन में भाग लेने से न कर दी, परन्तु जब उनको यह विदित हुआ कि उनको मिलने वाला प्रारम्भिक उपहार नही मिलेगा, तो इस उपहार को राशि जान वे तैयार हो गयीं। यह उपहार भी पाच सहस्र स्वर्ण था।

सायंकाल सुन्दरी निर्वाचन का सार्वजनिक आयोजन होने वाला था और इससे पूर्व ही अनुराधा और प्रमोद को धमकी दी जाने लगी। अनुराधा प्रमोद के पास पहुंची और बोली, "मुझको किसी ने यह धमकी दी है कि यदि मै उत्सव से पूर्व ही यहां से चली न गयी तो मुझको मार डाला जावेगा।"

"मै जानता हूं देवी! मैंने इसकी सूचना महामात्य के पास भेज दी है और इस समय भी तुम्हारे शरीर की रक्षा की जा रही है। उत्सव में तो तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध और भी सतर्कता से किया जायेगा।"

इससे अनुराधा निश्चिन्त होकर अपने आगार की ओर चली। जब वह कला-भवन की सीढ़िया चढ़ रही थी तो प्रियमुख सीढिया उतर रहा था। वह अनुराधा को देख खड़ा हो गया। अनुराधा उसका ध्यान किये बिना चढ़ती जाती थी। इस पर उसने मार्ग रोक लिया। अनुराधा ने एक ओर हट कर निकल जाना चाहा, परन्तु प्रियमुख उसको मार्ग नही दे रहा था। विवश वह खड़ी हो उसकी ओर देखने लगी। प्रियमुख मुस्कराने लगा। अनुराधा ने विद्युत की सी गति से एक चपत उसके मुख पर लगा

दी। प्रियमुख अभी समझ ही रहा था कि यह क्या हो गया है कि एक अन्य पुरुष, जो अनुराधा के पीछे-पीछे आ रहा था, दोनों के बीच में आकर खड़ा हो गया। अनुराधा समय पा ऊपर निकल गयी। इस पर प्रियमुख हंस पड़ा और इस बीच में आने वाले व्यक्ति की ओर देखने लगा। जब अनुराधा ऊपर निकल गयी तो उसने प्रियमुख का मार्ग छोड़ दिया। प्रियमुख अब नीचे उतरा नहीं। इस पर उस व्यक्ति ने कहा, "श्रीमान् ! जा सकते हैं।"

"पर तुम कौन हो ?"

"अब मुझ से झगड़ा करोगे ?"

"झगड़ा तो तुम कर रहे हो।"

"मेरा झगड़ा केवल चपत तक सीमित नहीं रहेगा। चले जाओ।" इतना कह उसने मुक्का तान लिया। प्रियमुख चुपचाप नीचे उतर गया।

नियत समय से पूर्व ही सुन्दरी-प्रदर्शन-मंडप दर्शकों से भर गया। पांच सहस्र आसनों में एक स्थान भी रिक्त नहीं रहा। यह मंडप कला-भवन के एक प्रांगण में भवन की एक दीवार के साथ-साथ बनाया गया था। दीवार के साथ ही एक विशाल मंच बनाया गया था। उस मंच से उतर कर चन्द्राकार पांच सहस्र आसन लगाये गये थे। पूर्ण मंडप अग्नि-शिखाओं से प्रदीप्त था। मंच पर प्रकाश सब से अधिक था।

मंच पर भवन की दीवार के साथ महाराज, महारानी और राज्य के मंत्रियों के लिये आसन लगे थे। इन आसनों के सम्मुख और मंच के ऊपर, एक स्थान रिक्त रखा गया था, जिस पर सुन्दरियों का प्रदर्शन होने वाला था। मंडप के बाहर और भीतर सैकड़ों सशस्त्र सैनिक नियुक्त थे और भीतर बिना प्रवेश-पत्र के कोई नहीं जा सकता था।

मंडप के बाहर कला-भवन की छत पर से घड़ियाल ने सूर्यास्त का समय बजाया। दर्शक दत्तचित्त हो गये। सबसे प्रथम आदर्श सुन्दरी की एक नग्न मूर्त्ति भवन की दीवार के पीछे से लाकर मंच पर मध्य में रख दी गयी। पश्चात् उसी मार्ग से महाराज और

महारानी मंच पर आये और अपने अपने आसनो पर बैठ गये। इनके पीछे राज्यपरिषद् के सदस्य और पश्चात् निर्णायक समिति के सदस्य आकर अपने-अपने आसनो पर बैठ गये।

कुमारदेव आज अपनी पूर्ण विजय मानता था। पंडित सुखदर्शन, जो साधारण से नाच पर क्रोध में शाप देने पर तैयार हो गया था, आज नग्न स्त्री का नृत्य देखने आया था।

प्रमोद ने महाराज से आज्ञा पा उत्सव के उद्घाटन की घोषणा की और पश्चात् इस उत्सव के कार्यक्रम के विषय में बताया, "श्रीमान् अवन्तिराज, महारानी जी, अवन्ति के मंत्री गण तथा अन्य प्रतिष्ठित दर्शक गण! आज हम इस राज्य में नवीन प्रयोग कर रहे हैं। इस प्रयोग का उद्देश्य केवल मात्र अवन्ति की स्त्री-जाति में सुन्दर बनने की भावना उत्पन्न करना है। राज्य के विद्वान् अधिकारियो ने स्त्रियो में इस इच्छा के उत्पन्न करने के लिये इस प्रतियोगिता को चलाया है। ऐसा आयोजन प्रतिवर्ष चलाने का विचार है—

"इस प्रथम वर्ष में न तो हमको यह आशा थी कि इसके लिये इतनी लड़कियां अपना नाम देंगी, जितनी इस अर्थ आई हैं और न हीं हमको जनता की ओर से इतने सहयोग की आशा थी, जितना हमको प्राप्त हो रहा है। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाली लड़कियो की संख्या एक सौ से ऊपर हो गयी थी।

"भारत तथा यवन देश के प्रसिद्ध मूर्त्तिकारो ने मिल कर एक आदर्श सुन्दरी की मूर्त्ति बनायी है। वह मूर्त्ति आपके सम्मुख रखी है। इस मूर्त्ति को आदर्श मान प्रत्येक अभ्यर्थिनी के अंग-प्रत्यंग का नाप-तोल इससे तुलना कर देखा गया है। इससे और अंगो की दृढता, चपलता और लचक का अनुमान नृत्य करा कर देखा गया है। नृत्य में यह नहीं देखा गया कि कौन इस कला को अधिक जानता है, प्रत्युत यह देखने का यत्न किया गया है कि किसी भी नृत्य मुद्रा में शरीर के भिन्न-भिन्न अंग कैसे और कितनी चपलता से घूम तथा मुड़ सकते हैं।

"इसके अतिरिक्त बुद्धि की भी परीक्षा की गयी है। स्वर के माधुर्य, गले की लोच और स्वर की दृढ़ता की भी परीक्षा की गयी है। इन सबमे कला मे प्रवीणता की ओर इतना ध्यान नही दिया गया जितना स्वाभाविक योग्यता की ओर।

"इस प्रकार हमने कल एक सौ से ऊपर अभ्यर्थिनियों मे से प्रथम पाच का निर्वाचन कर लिया था। वे पांचो की पांचो आपके सम्मुख उपस्थित की जा रही है। उन पांचो में से सर्वोत्तम आपके सामने निर्वाचित की जायेगी।

"सब दर्शको से इस निर्वाचन में सहायता और सहयोग की प्रार्थना है। इतना आपको भी ध्यान रखना चाहिये कि यहां कला की प्रतियोगिता नही हो रही, प्रत्युत सौन्दर्य की प्रतियोगिता की जा रही है। कला में निपुणता का प्रदर्शन इसी मंडप में कल होगा।

"पूर्व इसके कि यह कार्यक्रम आरम्भ हो, इसमें पुरस्कार के विषय में दो एक शब्द निवेदन कर देना चाहता हूं। मंडप में प्रवेश के लिये शुल्क के रूप में नव्वे सहस्र स्वर्ण प्राप्त हुआ है। इसमे पंडाल पर और अन्य व्यय दस सहस्र स्वर्ण हुए है। राज्य कर बीस सहस्र स्वर्ण निकाल कर शेष साठ सहस्र स्वर्ण में से प्रथम स्थान पर आने वाली को चालीस सहस्र स्वर्ण और अन्य चारो को पांच-पांच सहस्र स्वर्ण उपहार दिया जावेगा। पश्चात् इन पांचों के विवाह के लिये जो कुछ भी मिलेगा वह राज्य कर दे कर शेष उनको दे दिया जावेगा। विवाह के लिये मूल्यांकन भी इसी मंडप में होगा।

"अब महाराज की आज्ञा से प्रतियोगिता आरम्भ होती है।"

पांचो सुन्दरियां गोटे-किनारी के उत्तरीय पट ओढ़े मंच पर आगयीं। इनको देख दर्शकगण वाह-वाह कर उठे। ये सब अपने लम्बे केशो को खोले पीठ पर छोड़े हुए थी। इनको किसी प्रकार का शृंगार करने की स्वीकृति नहीं दी गयी थी। उत्तर पट भी सबके एक समान थे। सर्वथा प्राकृतिक रूप में ही उनका प्रदर्शन होना था।

एक-एक सुन्दरी मंच के मध्य में खड़ी होकर, गाकर और नृत्य कर अपने अंग-प्रत्यग का प्रदर्शन करती थी। नृत्य में अपने एक-एक अंग को मूर्त्ति के उसी अंग के समीप ला कर समानता का प्रदर्शन करती थी और अंत में अपने पूर्ण शरीर को नग्न कर उस मूर्त्ति के समीप खड़ा कर प्रदर्शन करती, जिससे दर्शक उसके सौन्दर्य का अनुमान लगा सकें। जहा कोकिला के सम्बन्ध में सबका मत था कि वह नृत्य कला में सबसे अधिक योग्य है, वहा दोनो देहात की सुन्दरियां अनुराधा और पद्मा शरीर की बनावट में कोकिला से श्रेष्ठ थी। अनुराधा ने अपना देहाती नृत्य दिखाया। उसमें वह वैसी प्रतीत हुई जैसे जंगली हिरणी मंच पर कूद-फाद रही हो ?

यह प्रदर्शन एक प्रहर भर चलता रहा। इसमें सदेह नही था कि अनुराधा और पद्मा का शारीरिक गठन लगभग बराबर था, परन्तु स्वर माधुरी में अनुराधा श्रेष्ठ निकली। कोकिला के विषय में तो यह स्पष्ट हो गया कि वह सुसस्कृत तो सबसे अधिक है, परन्तु सुन्दर अधिक नहीं।

प्रियमुख और उसके साथियो ने पहिले तो कोकिला की बहुत सराहना की। 'धन्य हो ! धन्य हो ! साधु ! साधु !' तथा 'बहुत सुन्दर' इत्यादि वाक्यो से उसके प्रदर्शन का स्वागत किया। जब अनुराधा और पद्मा मंच पर प्रदर्शन करने लगीं तो उसके लिये निन्दासूचक वाक्यो का प्रयोग किया। जब-जब उनकी आलोचना सीमा का उल्लंघन करती थी तब-तब ही सैनिक आकर उनको शात करने का यत्न करते रहते थे। इस पर भी जब वे शात नही हुए तो सेनापति सुधीर ने महाराज की आज्ञा से हल्ला करने वालो को चेतावनी दे दी। उसने कहा, "इस समय मंडप में मेरे पाच सौ सैनिक शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित खड़े है। किंचित् मात्र भी अशिष्टता होने पर उनके खड्ग रक्त पीने लगेंगे।"

इस घोषणा से मंडप में शान्ति विराजमान हो गयी। इस समय प्रमोद ने दर्शको के सम्मुख निरीक्षक समिति की ओर से यह घोषणा की—'अनुराधा सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है। पद्मा को दूसरे स्थान पर और कोकिला को तीसरे स्थान पर रखा गया है।'

इस घोषणा पर प्रियमुख के एक साथी ने खड़े होकर कहा, "मैं महाराज से यह प्रार्थना करता हूँ कि अनुराधा आचार्य भूदेव की दासी है। इस कारण महामात्य को प्रसन्न करने के लिये उसको फोकट में पुरस्कार दिलवाया जा रहा है।"

इस पर महाराज कुमारदेव ने अपने आसन से उठ कर कहा, "मैं दर्शक गण को अपने स्वतंत्र मत देने के लिये कहता हूं। अंत में प्रतियोगिता अनुराधा और पद्मा के भीतर रह गयी है....।"

इस समय एक दर्शक बीच में ही बोल उठा, "महाराज ! कोकिला के साथ भी।"

इस पर दर्शकों में से बहुत से दर्शकों ने आवाजें लगानी आरम्भ कर दीं, "चुप रहो ! चुप रहो !"

इस पर महाराज कुमारदेव ने कहा, "मैं इस प्रकार अनियमितपन स्वीकार नहीं करता। मैं आज्ञा करता हूं कि सेनापति मंच पर आकर दर्शकों का मत ले।"

सेनापति आया और उसने दर्शकों से मत मांगा। पहिले अनुराधा के विषय में मत लिया गया। पश्चात् पद्मा के विषय में और अंत में कोकिला के लिये। इस मतदान पर विवाद के लिये कोई स्थान नहीं रहा कि अनुराधा को सर्वश्रेष्ठ पद मिला। इस घोषणा के पश्चात् महाराज कुमारदेव एक बड़े-बड़े, सुन्दर पाटलों की पुष्प-माला लेकर अनुराधा को पहिनाने के लिये आगे बढ़े। अनुराधा सुन्दरी की मूर्ति के समीप आ कर खड़ी हो गयी। महाराज दर्शकों की जय-ध्वनि में माला उसको पहिनाने के लिये बढ़े। ठीक इस समय मंडप के उसी ओर से, जिधर से कोकिला का समर्थन हुआ था, एक कटार उड़ती हुई आयी और अनुराधा के उत्तरीय को चीरती हुई आदर्श सुन्दरी के वक्षस्थल में लगी और झनकार कर गिर पड़ी।

कटार चलाने वाले का विचार था कि अनुराधा देवी वहीं खड़ी रहेगी। यदि वह वहां खड़ी रहती तो कटार उसके हृदय स्थल में लगती, परन्तु

जब महाराज समीप आये तो वह एक पग आगे बढ़ आई और उसने झुक कर माला गले में ले ली। इससे कटार उसके कंधे पर से उत्तरीय चीरती हुई, मूर्ति को जा लगी।

कुमारदेव ने कटार को मूर्त्ति से टकरा कर भूमि पर गिरते देखा और आज्ञा दे दी, "पकड़ो इस श्वान को।"

एक सैनिक ने प्रियमुख को गर्दन से पकड़ लिया और उसको मच पर घसीट लाया। "मार डालो दुष्ट को। मार डालो दुष्ट को।" ऐसी ध्वनि चारो ओर से आने लगी। ज्यो ही प्रियमुख को मंच पर ला कर खड़ा किया गया, महाराज ने अपना खड्ग निकाल कर उसके पेट में घुसेड़ दिया और जब वह धम्म से मच पर गिरा तो पांव की ठोकर से महाराज ने उसको मच से नीचे धकेल दिया।

: ५ :

अनुराधा ने पुन: झुक कर नमस्कार किया और महाराज का धन्यवाद किया। पश्चात् वह पीछे हट कर भवन की दीवार के साथ लग कर खड़ी हो गयी।

अब प्रमोद ने आगे बढ़ कर अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी से विवाह के इच्छुक लोगों से, सुन्दरी का मूल्य करने के लिये कहा। इस पर एक युवक ने, जो मडप में पीछे के आसनो की पक्ति में एक पर बैठा था, उठ कर पांच सौ स्वर्ण देने की घोषणा की। इस समय अनुराधा पुन. सामने आ गयी और प्रमोद जी से कह कर महाराज से प्रार्थना करने लगी, "मैं अब सनाज हूं और मै कहती हू कि मेरा मोल-तोल न किया जावे। मै बिकना नही चाहती।"

इस पर सब विस्मय में उसका मुख देखने लगे। इस आपत्ति पर महाराज कुमारदेव ने कहा, "देवी! इस प्रतियोगिता का यह एक नियम है।"

"महाराज!" अनुराधा ने दृढ़ता से कहा, "यह नियम महाराज की

घोषणा के विरुद्ध पड़ता है। महाराज ने पूर्ण राज्य में ये शिलालेख लगवाये हुए हैं कि कोई किसी पर बलात्कार करेगा तो मृत्यु दंड पावेगा। इन शिलालेखों की उपस्थिति में सुन्दरी-प्रतियोगिता में यह नियम कि सुन्दरी की इच्छा के विरुद्ध भी नीलामी होगी, अवैधानिक हो जावेगा। यह अधर्म होगा।"

इस युक्ति को सुन महाराज कुमारदेव अवाक् खड़ा रह गया। इस पर अनुराधा ने फिर कहा, "महाराज ने एक और आज्ञा निकाली है कि किसी दास-दासी का क्रय भी तो उसकी इच्छा के बिना नहीं हो सकता। महाराज मैं तो क्रीतदासी भी नहीं। इस कारण मेरी इच्छा का अनादर तो तब तक नहीं हो सकता जबतक आप की उक्त आज्ञायें चालू हैं।"

इस पर महाराज ने महामात्य से इस विषय में व्यवस्था मांगी। आचार्य ने उठकर कहा, "महाराज! यह लड़की ठीक कहती है। राज्य-नियम के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता। इस कारण सुन्दरी-प्रतियोगिता का यह नियम तब ही लागू हो सकता है जब सुन्दरी इस को स्वीकार करे।"

"तो हम को इसी से प्रार्थना करनी पड़ेगी कि वह अपना अमूल्य सौन्दर्य तथा यौवन किसी गंवार मूर्ख ग्वाले के पास देने की मूर्खता न करे। वह इस अनमोल रत्न की रक्षा नहीं कर सकेगा।"

अनुराधा ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "महाराज! मैं आप की प्रजा हूँ। यदि कोई मेरे पर बलात्कार करना चाहेगा तो यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि मेरी रक्षा करे। कोई भी व्यक्ति राज्य से अधिक बलशाली नहीं हो सकता।"

कुमारदेव इस तर्क के सामने निरुत्तर हो गया। कितनी देर तक सब दर्शक आश्चर्य में लड़की की बातों पर विचार करते रहे। अंत में कुमारदेव ने कहा, "देखो देवी! यदि तुम्हारा मूल्य पड़ेगा तो चार-पांच लक्ष स्वर्ण से कम नहीं पड़ेगा। सम्भव है अधिक ही पड़े। तो क्या इतना धन भी तुम को इस कार्य के लिये तैयार नहीं कर सकता?"

"श्रीमान्! क्षमा करें। मेरे विचार में धन एक व्यर्थ की वस्तु है।

जब खाने, पहिरने और रहने को साधन प्राप्त हो जावें तो धन एक बोझा हो जाता है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि देवी किसी के प्रेम-जाल में फंस चुकी है।"

"ऐसी कोई बात नही है महाराज!"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"मैं चाहती हू कि चालीस सहस्र मेरी माता को दे दिया जावे और मुझको यहा से घर जाने की स्वीकृति प्रदान की जावे।"

"तुम अकेली जा सकोगी क्या?"

"अभी तक अठारह वर्ष आयु के व्यतीत हो चुके है और मुझको संरक्षको की आवश्यकता नहीं पड़ी, परन्तु आज इस प्रदर्शन के पश्चात् आपके राज्य-नियम की अवहेलना करने के लिये कोई तैयार भी हो सकता है। इससे मैं श्रीमान् से प्रार्थना करती हूँ कि मेरी रक्षा की जावे।"

इस पर महाराज ने प्रमोद से कह दिया कि अनुराधा विवाह नहीं करेगी। उसके स्थान पर पद्मा तथा कोकिला की नीलामी हो सकती है। पद्मा ने भी बिकने से न कर दी और कोकिला की नीलामी की बारी आ गयी। कोकिला के लिये बोली होने लगी। अनुराधा तथा पद्मा के बिकने से इन्कार करने पर कोकिला की मान-प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगा। परिणाम यह हुआ कि मूल्यांकन बहुत ऊंचा नहीं गया। एक लक्ष स्वर्ण मुद्रा तक पहुंच रुक गया। एक वृद्ध सेठ ने, जिसका नाम बालमुकुन्द था, एक लक्ष की बोली दी और उसके पीछे किसी ने अधिक देना पसन्द नहीं किया।

कोकिला बहत्तर वर्ष के वृद्ध के हाथ एक लक्ष स्वर्ण पर बिक गयी। इसमें से पच्चीस सहस्र राज्य कर देकर शेष कोकिला को देने की आज्ञा हो गयी। ऐसा हो जाने पर कोकिला को वृद्ध महाशय के साथ भेज दिया गया। पूर्व नियत कार्यक्रम के अनुसार अनुराधा और पद्मा की सवारी निकलनी थी। इस कारण दोनो को कपड़े पहिनने को कहा गया और उनको 'सौन्दर्य की रानी' की उपाधि देकर, रथ पर सवार कर नगर में

प्रदर्शन के लिये ले जाया गया। दो सौ अग्निशिखाओ के प्रकाश में इनकी सवारी निकली। नगर के बाहर से आये हुए लाखों की भीड में सवारी घूमी। नगर भर में जनता ने इनकी जयघोष की और इन पर पुष्पवर्षा की।

जब यह सवारी भ्रमण कर रही थी, महाराज कुमारदेव ने मनोज को अपने प्रासाद में बुला कर कहा, "मनोज ! अनुराधा और पद्मा को सवारी के पश्चात् राज-प्रासाद में लाना है।"

"महाराज ! ....।" मनोज कुछ कहना चाहता था परन्तु रुक गया। कुमारदेव ने बात बीच में ही काट कर कहा, "मै उनसे उनकी इच्छानुकूल ही विवाह करूगा।"

"परन्तु, महाराज ! .....।"

"इन पर बलात्कार नहीं होगा।"

"मेरा तो यह कहना था कि महारानी रेखा देवी.....।"

"देखो मनोज ! मै उस वेश्या से सम्बन्ध-विच्छेद करूंगा।"

"महाराज ! सुनिये तो.....।"

"मनोज यह विवाद का विषय नहीं। जाओ, उनकी सवारी राजभवन पर आकर समाप्त होगी। मै नहीं चाहता कि अब वे एक भी रात कहीं अन्यत्र व्यतीत करें। मै उनसे मिल कर यह निश्चय कर लूंगा। और हां, उनकी माताओ को पहिले ही यहां ले आओ।"

मनोज के लिये कुछ कहने को स्थान नहीं रहा। वह महाराज से नमस्कार कर विदा हो आचार्य भूदेव के पास जा पहुंचा। आचार्य एक प्रश्रय का आश्रय लिये अपने आगार में एक गम्भीर विचार में मग्न बैठे थे। इस समय मनोज वहां पहुंच कर बोला, "गुरुदेव !"

आचार्य का ध्यान भंग हुआ। उन्होंने मनोज को देख कर पूछा, "क्या है मनोज ?"

"महाराज ने आज्ञा दी है कि सुन्दरियो की सवारी राज-भवन के द्वार पर समाप्त की जावे और दोनों सुन्दरियों से वे विवाह करेंगे।"

"सत्य ?" आचार्य ने प्रसन्नता से खिलते हुए कहा।

"हा भगवन् !"

"तब तो ठीक है। मेरी यही योजना थी। मैं तो यही विचार कर रहा था कि महाराज ने अभी तक अपनी इच्छा प्रकट क्यो नही की ? लो ठीक ही हो रहा है । हा, उन दोनो कुमारियो को यहा ले आना और महाराज से कह देना कि उनकी मातायें मेरे आगारो में है। इस कारण वे भी यहा आयें। मैं चाहता हूं कि विवाह की बात मेरे सम्मुख हो जावे। पद्मा तो विवाह करेगी नही। उसका विवाह गाव के एक युवक के साथ निश्चय हो चुका है। हा अनुराधा विवाह के लिये तैयार हो जावेगी। एक बात और है मनोज ! तुमने इस विवाह के पक्ष में अथवा विरोध में कुछ नही कहना।"

मनोज आचार्य की इस नीति को समझ नहीं सका। इस पर भी विना उस पर संशय अथवा सम्मति प्रकट किये सवारी का ध्येय बदलने चला गया।

सवारी देखने वालो की भीड़ इतनी अधिक थी कि रथ कलाभवन पर पहुंचते-पहुचते आधी रात से अधिक समय हो गया। वहा मनोज ने सेनानायक को, जो सुन्दरियो की रक्षा के लिये नियुक्त था, महाराज की इच्छा बतायी। इस पर सवारी कलाभवन से राजभवन की ओर घुमा दी गयी और वहां पर पहुंचते-पहुचते प्रात.काल हो गया।

नगर भर में लोग सुन्दरी-दर्शन को ऐसे देख रहे थे जैसे कभी किसी महात्मा, ऋषि-महर्षि को देखने के लिये भी नही हुए थे। जब लोगो को यह विदित हुआ कि दोनो सुन्दरियो ने अपनी नीलामी स्वीकार नही की, तो प्राय. लोग उनको मूर्ख समझते थे और कहते थे कि देहाती गवार ही तो है।

जब जनता को यह पता चला कि सवारी राजभवन पर अटकी है और दोनो भवन में चली गयी है, तो वे खिलखिलाकर हस पड़े। लोग कहते थे कि जो धन से घृणा करती थीं, वे राजपद से मोही गयी है।

: ६ :

सुन्दरी-प्रतियोगिता के दिन महाराज कुमारदेव और महारानी रेखा श्वेतांग के विषय मे बात कर रहे थे। महाराज का कहना था कि उसको पर्याप्त धन देकर काशी जी भेज देना चाहिये। रेखा की इच्छा यह थी कि उसको विष देकर मरवा डाला जाये। एक सैनिक प्रवृत्ति के मनुष्य के लिये किसी को चोरी-चोरी मारना रुचिकर नहीं हो सकता था। अतएव उसने कहा, "प्रिये! इस प्रकार की भीरता करने की क्या आवश्यकता है। मै उससे द्वंद्व युद्ध कर उसको मार सकता हूं। बताओ, उसका दोष क्या है?"

"अब बीती बातों को जगाने से कोई लाभ नहीं। वास्तव में वह मार देने के योग्य ही है। उसने किरण देवी को विष देने का यत्न किया था।"

"क्यों?"

"इस कारण कि वह उससे डरता था। वह चतुर थी, नीति-निपुण थी और पढ़ी-लिखी थी। साथ ही दोनो के विचार नही मिलते थे। किरण का आप पर बहुत प्रभाव था।"

"यह सब कुछ तुम कैसे जानती हो?"

"श्वेतांग ने स्वयं बताया था।"

"तब तो मै उस पर आरोप लगा कर अभियोग चला सकता हूं और राज्यपरिषद् से दंड दिलवा सकता हूं।"

"इससे भारी बदनामी होगी। मेरा आग्रह है कि उसको चुपचाप समाप्त करवा दीजिये। गंदगी उघाड़ने से बदबू फैलती है।"

कुमारदेव यद्यपि रेखा के इस आग्रह को समझ नहीं सका तो भी महारानी बनने पर पहिली ही मांग को वह अस्वीकार नहीं कर सका। इस कारण रेखा को यह कह कि मै शीघ्र ही यह प्रबन्ध करवा दूंगा, एकान्त में आकर विचार करने लगा।

किसी को विष दे कर मरवा देने से उसकी आत्मा में ग्लानि उत्पन्न

होने लगी। वह, जो सैकड़ों को युद्धक्षेत्र में तलवार के घाट उतार चुका था, विष से एक को भी मरवाने के लिये भय खाने लगा। उसने आचार्य भूदेव को बुलाया और श्वेताग के विषय में राय करने लगा, "आचार्य जी! पंडित सुखदर्शन के छूटने से प्रायः सब वन्दी छूट गये हैं और इससे मेरे मन का बोझा बहुत सीमा तक हल्का हो गया है। अब केवल श्वेतांग की समस्या रह गयी है। यह बहुत विकट प्रतीत होती है। उसका क्या किया जावे?"

"महाराज!" आचार्य ने कहा, "आप श्वेतांग को उसके पिता से माग कर लाये थे। आपको उसे उनके पास भेज देना चाहिये।"

"मुझको किसी ने यह सम्मति दी है कि उसको मरवादेना चाहिये। यदि उसे छोड़ दिया गया तो वह भारी ववंडर खड़ा कर सकता है।"

"यह सम्मति महारानी जी ने दी प्रतीत होती है?"

महाराज विस्मय में आचार्य का मुख देखता रह गया। आचार्य भूदेव प्रश्न भरी दृष्टि से महाराज के मुख की ओर देखने लगा। विवश महाराज ने पूछा, "आचार्य जी! महारानी के लिये आपके मन मे यह सदेह क्यों उत्पन्न हुआ है?"

"इतनी भयकर बात अन्य कोई महाराज को कह ही नहीं सकता। किसका इतना साहस है कि अवन्ति महाराज को इतनी घृणित बात कहे?"

"परन्तु उसको यह कहने की आवश्यकता क्यो हुई?"

"अकारण तो कोई बात होती नहीं। परन्तु महाराज! आप इस विषय में क्यों इतने अधीर हो रहे हैं। आप वही करिये जो आपका मन कहे।"

इससे तो कुमारदेव को और भी सदेह हो गया। आचार्य के उत्तर से उसके मन को शान्ति नहीं हुई। उसने कहा, "महामात्य! मैं आज्ञा करता ह कि आप इस विषय को निर्भीकता से कहें। मै श्वेताग के विषय में आज ही कुछ निश्चय करना चाहता हूं।"

"महाराज!" आचार्य ने कुछ दृढता से कहा, "यह एक बहुत ही दुःख की बात है। यदि आप सुनना चाहते हैं तो मन के उद्गारो से मुक्त होकर और

न्यायबुद्धि होकर सुनिये। तब ही आप इस समस्या के रहस्य को समझ सकेंगे।"

"हां! हां! महामात्य! बात को स्पष्ट रूप में कहिये। आपने तो मेरे मन को और भी व्याकुल कर दिया है।"

"तो सुनिये! महारानी का लड़का श्वेतांग का लड़का है। दोनों का सम्बन्ध घना रहा है और दोनों एक दूसरे के अवगुणों को जानते हैं। महारानी नहीं चाहती कि उसके दोषों को प्रकट करने वाला कोई संसार में रहे।"

कुमारदेव आचार्य के कथन को सुन कर स्तब्ध रह गया। आचार्य ने अपना कथन चालू रखा। उसने कहा, "महाराज! आप महारानी के लड़के को ध्यान से देखें तो उसकी आकृति श्वेतांग से मिलती हुई प्रतीत होगी। इसके अतिरिक्त इस बात के अन्य प्रमाण मिल रहे हैं। यदि श्वेतांग पर अभियोग चलाया जावे तो उसका किरण के साथ दुर्व्यवहार के अतिरिक्त और कोई दोष उस पर सिद्ध नहीं हो सकता। रही राज्य की नीति, इसके लिये उस पर अभियोग नहीं चल सकता। उसने कोई भी बात आप से पूछे बिना नही की थी।

"इस कारण मेरा सुझाव है कि इस समस्या का उचित सुझाव उसकी हत्या नहीं, प्रत्युत उससे समझौता है।"

"क्या समझौता होना चाहिये?"

"अभी इस बात का अवसर नहीं आया। राज्याभिषेक उत्सव के पश्चात् इस विषय पर विचार कर लिया जावेगा।"

इस समय कुमारदेव को रेखा से कही एक बात याद आ गयी। उसने पूछा, "किरण को एक बार विष दिया गया था। महारानी का कहना है कि वह श्वेतांग ने दिया था।"

"महाराज! मैंने इस विषय में जांच की है। विष महारानी ने दिया था। श्वेतांग को यह बात विदित हो गयी थी। वह चाहता था कि किरण पर आत्महत्या का दोष लग जावे, परन्तु किरण की चतुराई के सामने वह कुछ कर नहीं सका। जब उसको यह विदित हो गया कि विष देने वाली

महारानी जी हैं, तो वह चुप कर रहा।"

"पर रेखा ने उसको विष क्यो दिया था ?"

"किरण की योग्यता से ईर्ष्या कर।"

आचार्य भूदेव जब महाराज से विदा माग चला गया तो महाराज के मन को शान्ति नहीं हुई। उसको रेखा से ग्लानि उत्पन्न होने लगी। वह महारानी से जितना अधिक प्रेम करता था उतनी ही अधिक अब उसकी प्रतिक्रिया हुई। वह श्वेतांग से शेष बात जानने के लिये चल पडा।

श्वेताग अपने आगार के गवाक्ष में से आ रही सूर्यास्त की किरणों का भोग कर रहा था। जब द्वार खोल कुमार श्वेतांग के सामने पहुंचा, तो श्वेतांग ने बैठे-बैठे ही पूछा "महाराज! कैसे आना हुआ है इस समय ?"

"श्वेतांग! आज मैं वहुत प्रसन्न हू। कल मेरा राज्याभिषेक सम्पन्न हो चुका है। आज तुमसे आयोजित सुन्दरी-प्रतियोगिता होने वाली है। इस सब प्रसन्नता और सौभाग्य के लाने में तुम्हारा भी हाथ है। इस कारण मैं तुम्हें धन्यवाद करने आया हू।"

"राज्याभिषेक की धूम तो कुछ-कुछ इस गवाक्ष में से भी दिखाई पड़ती है। नदी पार का किनारा यहा से,दिखाई देता है और वहा की चहल-पहल मैं देख कर यही अनुमान लगा रहा था। परन्तु विस्मय का विषय तो यह है कि सुन्दरी-प्रतियोगिता का आयोजन आचार्य भूदेव ने सहन किया है।"

"हां, यह विस्मय की बात तो है। परन्तु इससे अधिक विस्मय की एक और बात है। किसी ने यह सुझाव दिया था कि तुम्हे विष देकर मरवा डाला जावे, परन्तु आचार्य भूदेव ने इसका विरोध किया है।"

"तो इस सुझाव को देने वाली महारानी रेखा देवी हैं? अपने महारानी बनने की प्रसन्नता में यह इनाम बांट रही है, अपने हितचिन्तकों को ?"

"महारानी रेखा पर तुम इतना घोर सदेह क्यो करते हो मित्र ?"

"ऐसा प्रस्ताव एक स्त्री के अतिरिक्त और कोई नहीं रख सकता। आज के दिन श्रीमती रेखा के अतिरिक्त और कौन हो सकती है,

जिसकी बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो ? राज्याभिषेक से बढ़कर पागल बनाने वाली बात किसी के लिये और क्या हो सकती है ?"

कुमारदेव को अति विस्मय हुआ। वह विचार करता था कि दोनों महामात्य रेखा के लिये इतना छोटा विचार रखते है और वह स्वयं इतना मूर्ख है कि उसकी प्रकृति को समझ नहीं सका। क्या वह सत्य ही इतनी दुष्टा है ? अभी श्वेतांग के विचारों को और अधिक गम्भीरता से जानने के लिये उसने कहा, "पर मित्र ! यह मान भी लूँ कि महारानी ने तुम्हें विष देने के लिये प्रस्ताव किया है, तब भी इसमें कारण तो कुछ प्रतीत नहीं होता।"

"कारण तो है। परन्तु आप जान कर क्या करेंगे ?"

"मै इसलिये जानना चाहता हूं कि तुम्हारे इस लाञ्छन को कि रेखा तुम्हें विष देना चाहती है, मिथ्या सिद्ध कर दूं।"

"सिद्ध करने से क्या होगा महाराज ! मै रेखा देवी के विषय में बहुत बातें जानता हू और वे चाहती हैं कि उन रहस्यों के जानने वाला इस संसार में न रहे। अब वे महारानी बन गयी है। उनके वह रहस्य, जो केवल क्रीतदासी काल के थे, अब प्रकट नहीं होने चाहियें।"

कुमार इस भूल-भूलैया से ऊब गया था। वह श्वेतांग से स्पष्ट सुनना चाहता था कि रेखा क्यों उसके विरुद्ध हो गयी है ? इस कारण उसने कहा, "देखो ! इस प्रकार की घूम-घुमाव की बातें करने से न तो मेरा सतोष होगा और न ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हारे विरुद्ध आरोप है कि तुमने किरण देवी को विष देकर मार डालने का प्रयास किया था। दूसरे तुमने उससे बलात्कार करने का अपराध किया है।"

"इन दोनो बातों में मेरा कोई दोष नहीं।"

"आचार्य भूदेव का कहना है कि आपके ऊपर अभियोग चलाया जावे और यदि आप दोषी सिद्ध हो तो आप को दंड दिया जावे।"

"यही तो महाराज ! मै चाहता हूं। मुझको विश्वास है कि मेरे स्थान पर दोषी कोई दूसरा सिद्ध होगा।"

"मैं यही तो पूछ रहा हू कि तुम बताते क्यो नहीं कि कौन दोषी है ?"

"तो आप चाहते है कि यहा ही बता दूं ? न्यायालय में न जाना पडेगा क्या ?"

"तुम्हारा मामला तो राज्य-परिषद् में ही उपस्थित होगा। वहा पर भी तो अंतिम निर्णय मेरे हाथ में ही होगा।"

"यदि आप सुनना चाहते है तो सुन लीजिये। रेखा देवी ने किरण को विष देने का यत्न किया था। इसके प्रमाण मेरे कागजो वाले सदूक में रखे है। मेरा किरण पर बलात्कार भी रेखा देवी के कहने पर और उस पर लगने वाले लांछन को छुपाने के लिये था। रेखा देवी के लड़के को देख लीजिये। वह आपको उसके जन्म के विषय में एक नवीन कथा बतायेगा। रेखा देवी आपसे अधिक मनुष्यो की पत्नी है। वह लड़का आपकी सन्तान नहीं है।"

"तो किस की है ?"

"उसके नाक और आंखो की आकृति उसके पिता का परिचय देगी। यदि और प्रमाण चाहते हैं तो महारानी के योनिद्वार पर तिल का चिन्ह देख लें। मै यह सब प्रमाण राज्य-परिषद् में दूंगा और इस पर भी यदि मुझको मृत्यु दंड दिया तो फिर मैं क्या कर सकता हूं ?"

रेखा के योनिद्वार पर तिल के चिन्ह की बात सुन कर तो कुमार सन्न रह गया। वह उसके विषय में जानता था। इससे रेखा के श्वेतांग से सम्बन्ध के विषय में उसको प्रमाण मिल गया। वह और कुछ अधिक जानना नहीं चाहता था। उसने उसको कह दिया, "अच्छी बात है, मैं तुम से कही बातों पर विचार करूंगा और तुम्हारे विषय में आचार्य भूदेव तुमसे शीघ्र बात करेंगे।"

कुमारदेव जब भूगर्भ आगारों से बाहर आया तो उसके मन के सब संशय निवारण हो चुके थे। वह अपने मन में रेखा के विषय में कुछ निर्णय करना चाहता था। उसके मन में यह भय समा गया था कि किसी दिन भी, जब वह उससे रुष्ट हुई, तो उसको विष देकर अपने मार्ग से दूर करने का यत्न

करेगी। यह विचार कर वह कांप उठा। रेखा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह सुन्दरी-प्रतियोगिता पर जाने के लिये तैयार थी।

सुन्दरी-प्रतियोगिता से लौटने पर वह एक और विचार से प्रभावित हुआ था। अनुराधा और पद्मा के धन को ठुकरा कर विवाह के लिये स्वतंत्रता प्राप्त करने पर उसको आश्चर्य हुआ था। रेखा के विषय मे यह विश्वास हो जाने पर कि उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार करने पर भी वह अन्य व्यक्तियों से भी भोग-विलास करती रही है, वह उससे घृणा करने लगा था। अब अनुराधा इत्यादि के व्यवहार से तो उसको रेखा अति निकृष्ट सी प्रतीत हुई। उसने मनोज को बुला कर दोनों सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों को राज-प्रसाद में बुला लिया।

जब वे राज-प्रसाद में पहुंचीं तो प्रभात हो चुका था। वे रात भर सो न सकने के कारण बहुत थकी हुई थीं। इस कारण उनके विश्राम का प्रबन्ध आचार्य भूदेव के आगारो मे कर दिया गया। वहां उनकी मातायें पहिले ही उपस्थित थी।

: ७ :

"देखो श्वेताग !" आचार्य भूदेव कह रहा था, "जो कुछ तुमने अवन्ति के साथ किया है, वह इस राज्य के रहनेवाले शताब्दियों तक स्मरण रखेंगे। उनसे की गई भलाई का फल तो भगवान् ही तुम को देगा। इस समय तो मै तुमसे उस भले कार्य के विषय में पूछ रहा हूं, जो तुमने रेखा देवी से किया है। उस रहस्य को गुप्त रखने के लिये तुम कितना मूल्य चाहते हो ?"

"बीस सहस्र स्वर्ण प्रतिवर्ष।"

"स्वीकार है। तुमको यहां से चला जाना होगा।"

"मै काशी जी चला जाऊंगा।"

"वचन भग नही होगा न ?"

"वचन दोनों ओर से पालन होना चाहिये। जब तक धन मिलता रहेगा तब तक उसको मुझसे भय करने की आवश्यकता नही।"

इस प्रकार श्वेताग से महाराज कुमारदेव ने पीछा छुड़ाया। श्वेतांग को एक अमावस की रात के अंधेरे में रथ पर सवार कर एक वर्ष का वेतन अग्रिम देकर विदा कर दिया गया।

इससे रेखा की चिन्ता नही मिटी। उसको यह विदित हो गया था कि महाराज को उसके पुत्र के श्वेतांग से होने का ज्ञान हो गया है। इस कारण वह महाराज से अपने को सुरक्षित करने के उपाय सोचने लगी। उसकी एक दासी मषीका थी, जो पहिले किरण की सेवा में थी। वह उससे अति अंतरंग हो गयी थी। इससे महाराज के अनुराधा से विवाह कर लेने पर रेखा ने मषीका से राय करना उचित समझा। मषीका का स्पष्ट कहना था "महारानी जी! राजा को बदल देना चाहिये। इससे पूर्व जनता का सहयोग प्राप्त करना चाहिये। जनता से सम्पर्क तो तब ही उत्पन्न हो सकता है जब आप बार-बार ऐसे आयोजन करें, जिनसे आप जनता के सामने बार-बार आती रहे।"

जनता के सम्पर्क में आने के लिये दोनो ने यह विचार किया कि महारानी शैव सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जावें। इसके लिए उज्जयिनी में इस मतके प्रख्यात प्रचारक को महारानी से मिलाया गया। महारानी शिव-मंदिर में जाने लगीं। उनके इस कार्य की सूचना जब महाराज को मिली तो वे आचार्य भूदेव से इस विषय पर विचार करने लगे। आचार्य भूदेव ने बताया "महाराज! मुझको महारानी जी के इस काम का ज्ञान है। इस पर भी मेरा विचार है कि आपको इसमें बाधा खडी नहीं करनी चाहिये। यह ही एक बहाना बनने वाला है, जिससे आप उसका त्याग कर सकेंगे।"

महाराज कुमारदेव ने अनुराधा से विवाह कर लिया था। रेखा इससे जल भुन गयी थी। एक दिन उसने महाराज से कहा था, "महाराज! अब तो आपके दर्शन भी नहीं होते।"

"तो तुम नहीं जानती क्यो?"

"आपने नवीन विवाह कर लिया है न?"

"वह मुझको तुम्हारे पास आने से मना नहीं करती।"

"तो कौन मना करता है ?"

"मेरा मन कहता है कि अब तुम से सम्पर्क रखना ठीक नही है।"

"क्यों ?"

"इसका कारण तुम जानती हो। बार-बार मेरे मुख से इस नीच बात को सुन कर क्या आनन्द आता है तुमको ?"

"किरण के रहते हुए तो कभी-कभी आप उसके आगार को भी सुशोभित करते रहते थे ?"

"ठीक है, पर वह तुम्हारी भांति हरजायी नही थी।"

"पर इसमें हानि ही क्या है ? आप भी तो अपने सुख-स्वाद के लिये अनेकों स्त्रियो से विनोद करते रहते हैं।"

"अनुराधा के आने के पश्चात् मुझको इसकी आवश्यकता अनुभव नही हुई।"

"पर मुझको आपसे मिलने के पश्चात् इसकी आवश्यकता अनुभव हुई थी।"

कुमारदेव यह सुन क्रोध से लाल हो गया। बहुत कठिनाई से वह अपने को रोक कर बोला, "तो अब भी तुम अपनी आवश्यकता किसी अन्य स्थान से पूरा क्यो नही कर लेती ?"

कुमारदेव रेखा के पास से उठ कर चला गया। रेखा को इस बात से संतोष नही हुआ। इससे वह यह इच्छा करने लगी कि उसके लिए एक पृथक् महल बनवा दिया जावे। उसने आचार्य भूदेव के पास आकर कहा, "महामात्य ! मैं राजकुमार की माता हूं। इस प्रासाद में, जहां राजकुमार के पिता, एक अन्य रानी से इतना अधिक प्रेम करें, जितना उसकी माता को प्राप्त न हो, तो उसके मन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। इस कारण मेरी यह मांग है कि मेरे रहने के लिये एक पृथक् प्रासाद बनवा दिया जावे।"

आचार्य भूदेव इस प्रस्ताव को सुनकर हंस पड़ा। पश्चात् उसने कहा, "रानी जी, अपना भला-बुरा विचार कर लें। मैं तो महाराज को राय दे

दूंगा कि आपकी बात मान ली जावे।"

"क्या बुराई की बात हो सकती है इसमें ?"

"मैं कुछ नही जानता। यहा एक ही प्रासाद में रहते हुए तो महाराज आपके आगारो में आते नहीं। यदि आप दूर चली जावेगी, तब तो यह बात सब दुनिया जानेगी और फिर इसका अर्थ अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब निकालेंगे।"

"मैं समझती हूं कि तब महाराज अपनी आन रखने के लिये अवश्य आवेगे।"

"यह, महारानी जी! आप विचार लें।"

"मैंने विचार कर लिया है। मैं इस महल में, जहां उनकी अनुराधा रहती है, नहीं रहना चाहती।"

"अच्छी बात है! मैं महाराज से इस विषय में बात करूंगा।"

आचार्य की अपनी योजना इस बात से और भी भली भाति चल सकती थी। इस कारण महाराज से कह कर रेखा के लिये एक पृथक् महल बनवा दिया। रेखा उसमें गयी तो शैव मतावलम्बियो का महारानी से मेल जोल और भी बढ गया। शैव-मत वालो का मुख्य पुजारी एक महापाद नाम का दक्षिणी ब्राह्मण था। उसने जब यह सुना कि महारानी रेखा एक पृथक् प्रासाद पा गयी है, तो उसने प्रासाद के भीतर ही उपासना का आयोजन करने का प्रस्ताव कर दिया। महारानी भी यही चाहती थी। महापाद तो यह नहीं जानता था कि महारानी का इसमें क्या उद्देश्य है, परन्तु कुछ उपासक इस बात से परिचित थे और वे महारानी की योजना में सहायता करने लगे।

महारानी के प्रासाद में महाशिवरात्रि को उपासना की गयी और उन उपासको ने जो महारानी की योजना में सहायक थे, इस उपासना में सम्मिलित करने के लिये सेनापति सुधीर और कुछ सेनानायको को बुलाया। सेनापति महारानी के सम्पर्क में आया तो उपासना के अतिरिक्त भी कभी-कभी मिलने के लिये आने लगा।

आचार्य भूदेव मामले को इस प्रकार चलते देख चिन्ता अनुभव करने लगा। उसका विचार था कि महारानी रेखा विषयवासना में इतनी लिप्त हो जावेगी कि वह देश में बदनाम होने से अपना मान खो बैठेगी और फिर उसके लड़के को भी सिंहासन प्राप्त करने में कठिनाई उत्पन्न हो जावेगी, परन्तु वह यह आशा नहीं करता था कि सेना के अधिकारी उसके सम्पर्क में आने लगेंगे। इस कारण उसने रेखा की दासी मषीका को बुला भेजा और उससे वहां की सूचनायें लेनी आरम्भ कर दी। मषीका ने आचार्य के कहने पर ही रेखा की सेवा स्वीकार की थी। उनके कहने पर ही उसने रेखा के साथ उसकी पूर्ण योजनाओं में सहयोग देना आरम्भ किया था। इस प्रकार वह रेखा की सब बातों से परिचित थी। जब वह महामात्य के बुलाने पर आयी, तो आचार्य ने पूछा, "मषीका! सुधीर जी कब आये थे, महारानी जी से मिलने के लिये?"

"श्रीमान्! इस समय भी वे वहां बैठे है।"

"क्या करने आते है वे इतनी जल्दी-जल्दी?"

मषीका ने मुख नीचे कर कहा, "श्रीमान्! एक पुरुष एक स्त्री के पास जिस कारण आता है, वही कारण यहां भी है।"

"जो कुछ तुम्हारी महारानी सुधीर से भेंट में कहती है, उसका फल उनको क्या मिलने वाला है।"

"कहना कठिन प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी कुछ निश्चय नहीं हुआ। यदि हुआ है तो उस विषय की बात अभी शयनागार के बाहर नही आयी।"

"तो तुम कैसी दासी हो, जो शयनागार की बात बता नही सकती?"

मषीका ने मुस्कराते हुए कहा, "श्रीमान्! मेरी आखों में वह शक्ति नहीं जो शयनागार की दीवार भेद कर देख सके अथवा कानों में शक्ति नही कि डेढ़ हाथ मोटी दीवार के भीतर का शब्द सुन सके।"

"तो तुम्हारे में यह शक्ति पैदा करनी चाहिये। इधर आओ।"

जब मषीका समीप आयी तो भूदेव ने उसके कान में रेखा के प्रासाद का

एक रहस्य उसको बता दिया। रेखा के प्रासाद के उस आगार में जिसमें महारानी का शयनागार था, गुप्त द्वार बना हुआ था, जिसमें से जाकर कोई भी गुप्तचर महारानी के शयनागार की भूमि के नीचे पहुंच सकता था और वहां से आगार में किये जा रहे वार्तालाप को सुन सकता था।

इस रहस्य के जान जाने से मधीका रेखा और सुधीर में होने वाली गोपनीय बातो के बहुत सीमा तक सुन सकने में समर्थ हो गयी।

: ८ :

सुखदर्शन के न्यायमंत्री बन जाने के पश्चात् मनोज को नगर में न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर दिया गया। जब से पंडित जी को यह विदित हुआ कि लोला मनोज से विवाह की इच्छा रखती है, तब से ही वह उसकी उन्नति में यत्न करने लगे थे। इस यत्न का परिणाम ही यह हुआ था कि वह उस पद पर नियुक्त किया गया।

एक दिन नगरपाल ने एक युवक उसके सामने उपस्थित किया और उस पर अपनी स्त्री की हत्या करने का आरोप लगाया। आरोप इस प्रकार था कि नगर के एक मुहल्ले में एक स्त्री, जिसका नाम कनखैया था, रहती थी। उसका पति एकाएक लापता हो गया और वह अपने पति के पांच मकानो की मालिक हो गयी। इन मकानो से अढ़ाई-तीन सौ रजत मासिक की आय होती थी।

"लगभग एक वर्ष हुआ, यह युवक, जो अपना नाम चन्दु बताता है, उस स्त्री के पास आकर रहने लगा। तीन दिन हुए उस स्त्री का शव नदी तट पर मिला है। जब शव पहिचाना गया तो उसके घर पर खोज गयी। पता चला है कि यह युवक कनखैया के मकान पर एक अन्य स्त्री के साथ रहता है। उसका नाम मीना है। हमारा यह आरोप है कि इसने कनखैया से छुटकारा पाने के लिये उसको मार डाला है और स्वयं उस की सम्पत्ति का स्वामी बन गया है और उस सम्पत्ति का भोग एक अन्य स्त्री से मिल कर कर रहा है।"

मनोज ने आरोप लिखकर, चन्दु से पूछा, "तुम क्या कहते हो ?"

चन्दु ने अपनी स्त्री के राजकुमार के जन्मोत्सव के अवसर पर खो जाने की पूर्ण कथा सुना दी और कहा, "जब मैं अपना देहात का घर छोड़ कर इसके पास आकर रहने लगा, तब मुझको ज्ञात हुआ कि कनखैया देहात ने पकड़ कर लायी हुई लड़कियों का व्यापार करती है। इस व्यापार में उसको एक हट्टे-कट्टे युवक पुरुष की आवश्यकता थी और मैं उसके काम आने लगा। कई बार मैंने इसकी उन लोगों से रक्षा की थी, जिनको इसने धोखा दिया था।

"कुछ दिन हुए मेरे बहनोई की बहन मीना कनखैया के पास आयी और कहने लगी कि जिसके पास उसने उसे बेचा था, वह अब उसको खाने-पीने को नहीं देता। कनखैया ने उसको कोई नया पति ढूंढ देने के लिये अपने घर में रख लिया। जब वह घर मे आयी तब ही मुझको पता चला कि वह कौन है और क्यों आयी है ? मीना कनखैया के घर मे उसकी इच्छा से रहती थी।

"तीन दिन हुए कि कनखैया एक पुरुष को एक लडकी दिखाने गयी थी और फिर नहीं लौटी। मैं नहीं जानता कि क्या हुआ है।"

दोनो ओर से साक्षी उपस्थित किये गये। मीना भी साक्षी के रूप में आयी। उसने बताया, "जब कनखैया गांव में चन्दु के साथ आयी तो उसने कहा था कि मैं व्यर्थ में अपनी जवानी देहात मे गंवा रही हूं। मैं उससे बताये प्रलोभन में फंस गयी और एक दिन घरसे भाग कर उसके पास आयी। मैंने कनखैया को बता दिया था कि चन्दु मेरा सम्बन्धी है। इस कारण मेरे विषय में उसको पता न चले। उसने बहुत ही चतुराई से मेरा विवाह कलाभवन के एक मूर्तिकार से कर दिया। उसने, जैसा कि मुझको पीछे पता चला था, मेरा एक सौ रजत मूल्य प्राप्त किया था। उस मूर्तिकार ने मेरी बहुत सी मूर्त्तियां बना-बना कर बेचीं। उसने मेरी मूर्त्तियों से बहुत धन कमाया और मुझको पत्नी भी बना कर रखा। कुछ दिनों से वह एक और युवति को कहीं से ले आया है और उसने मुझको

रोटी-पानी देना बन्द कर दिया था। इस कारण मैं पुन: कनखैया के पास आयी थी और उसने मेरा दूसरा विवाह करने का वचन दिया था। मेरे आने के दूसरे दिन ही से वह लापता थी और अब मुझको भी बंदी बना लिया गया है।"

मनोज समाज की यह अवस्था देख अति दु:खी था। इस पर भी वह इसको रोकने की क्षमता नहीं रखता था। जहां तक चन्दु की बात थी, नगरपाल यह सिद्ध नहीं कर सका कि उसमें और कनखैया में कभी भी किसी प्राकार का झगडा, मनमुटाव अथवा कोई और कारण हुआ हो जिससे हत्या तक की नौबत आ गयी हो। इससे चन्दु हत्या के आरोप से मुक्त हो गया।

मनोज समाज में इस पतन को देख कर दु:खी मन आचार्य जी के पास जाकर कहने लगा, "यह अवस्था अति हृदय-विदारक है। इसके निवारण का कोई उपाय करिये। अन्यथा इससे छुट्टी पाने के लिये यह नगर छोड़ कहीं अन्य स्थान पर जाना पडेगा।" आचार्य ने पूर्ण कथा सुनी और कहा, "अभी अवस्था असह्य नहीं हुई। अभी पतन और चलना चाहिये। जब तक जनता त्राहि-त्राहि नहीं बोल उठती, तब तक उसको पतन की ओर फिसलने से रोका नहीं जा सकता। उसके पश्चात् ही उन्नति का मार्ग लिया जा सकेगा।

"देखो मनोज! भगवान् ने इस देश के उद्धार का काम मेरे, तुम्हारे और पंडित सुखदर्शन के सिर पर डाला है। हम एक नीति का अवलम्बन कर रहे हैं, जिससे, हमारा विचार है कि देश में विप्लव उत्पन्न हो जावेगा और जनता स्वयं ही वर्तमान अवस्था से घृणा करने लगेगी। हमारा कर्त्तव्य है कि इस अवस्था को लाने का यत्न करते जायें।"

मनोज इससे संतुष्ट नहीं हुआ। वह इस अवस्था के सुधारने में यत्न करना चाहता था। वह यह तो जानता था कि आचार्य के मन में कोई योजना अवश्य है, जिसके पूर्ण होने पर जनता सत्य, धर्म और न्याय के पथ पर आरूढ़ हो कर कार्य करने लगेगी, परन्तु वह इसको न जानते हुए

संतोष अनुभव नहीं कर सकता था।

सायंकाल वह बहुत उदास मन पंडित सुखदर्शन जी से मिलने गया। वह उनसे भी अपने मन की बात कह कर मन हलका करना चाहता था। पंडित जी घर पर नही थे। लोला अपनी एक सहेली से, अपने आगार में बात-चीत कर रही थी। इस कारण मनोज वैठक में पंडित जी की प्रतीक्षा करने लगा। वह कितनी ही देर तक प्रतीक्षा करता रहा और पंडित जी नहीं आये। वह उठने लगा तो उसने लोला को नमस्कार कहला भेजा। इस पर वह भागती हुई आयी और रोष से बोली, "आपने इतनी देर से वैठे रहने पर भी सूचना नहीं भेजी। क्या अपराध हो गया है मुझ से?"

"आप की सेविका से पता चला था कि आप की कोई सहेली आयी हुई है। इस कारण मैंने आप के वार्तालाप में विघ्न डालना नहीं चाहा। अब जाते समय विचार आया कि नमस्कार तो भेज दूं।"

"ओह! वह तो कोकिला है। आप उसको जानते तो हैं। वह तो फिर अपने बूढे पति को केवल गालियां सुना रही थी। वास्तव में वह भी पिता जी की प्रतीक्षा कर रही है। आपने अभी और ठहरना हो तो हम यहीं आ जाते हैं।"

"यदि आपकी सगत का लाभ मिले तो मैं ठहर जाऊँगा। पडित जी के आने का कुछ पता है?"

"आज राज्य परिषद् की वैठक में गये है। विचार है कि भोजन के समय आ जायेंगे।"

मनोज चुप रहा तो लोला ने सेविका को कह दिया कि उसके आगार में से उसकी सहेली को वुला लाये।

कोकिला आई और मनोज को पहिचान वहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा, "यदि मुझे विदित होता कि नगर के न्यायाधीश वैठे है तो आपसे ही राय कर लेती।"

"हां देवी! वताइये मैं क्या सेवा कर सकता हूं?"

कोकिला ने हंस कर कहा, "मैं अपने बूढ़े पति को छोडना चाहती हूं। कैसे छोड़ सकती हू ?"

"छोडना चाहती हो, क्यों ?"

उसने हंसते हुए कहा, "यह क्या विचित्र प्रश्न है ? मेरी आयु अब अठारह वर्ष की हुई है और बूढे महाशय की बहत्तर वर्ष की है। शेष आपको समझ जाना चाहिये।"

मनोज ने कहा, "यह तो ठीक है, पर तुम अपनी इच्छा से बिकी थीं और जब रुपया दिया जा रहा था, तुमने बूढे को देख लिया था। तुम्हारी अवस्था तो एक क्रीतदासी की है।"

"नहीं न्यायाधीश! मुझ से बूढे ने विवाह किया है और उस विवाह का प्रमाणपत्र मेरे पास है। उसमें उसने लिखा है कि बोली की एक लक्ष स्वर्ण मुद्रायें उसने स्त्री-धन के रूप में दी है।"

"इस अवस्था में विवाह किसने कराया था ? यह विवाह कैसा है ? यदि वैदिक धर्मानुकूल विवाह हुआ है तो वह अटूट है। यदि एक सौदा है, तो हर्जाना देकर तोड़ा जा सकता है। हमारे राज्य में दोनो चलते हैं।"

"मेरा तो उससे लिखित व्यापारिक सौदा हुआ है।"

"इस अवस्था में वह बूढ़े महाशय तुम से अपनी हानि माग सकता है।"

"मैं दे दूंगी।"

"कैसे, और कहां से दे दोगी ? एक तो वह पूर्ण धन वापिस करना पड़ेगा, जो बोली में बोला गया था। साथ ही वह हानि मांगेगा। यह भी एक भारी धन राशि हो सकती है।"

"उसकी क्या हानि हुई है। हानि तो मेरी हुई है। मैं कुमारी कन्या थी, उसने मुझको एक स्त्री बना दिया है।"

"पर छोड़ तो तुम रही हो न ? वह तो नहीं छोड रहा। वह कह सकता है कि उसकी स्त्री जब किसी अन्य पुरुष के पास जायेगी तो संसार में उसका अपमान होगा। उस अपमान का मूल्य वह कई लक्ष मांग सकता है।"

"आप क्या समझते हैं? उसके मान को कितना धक्का पहुंचा होगा? आप उसकी मान-मर्यादा का क्या मूल्य आंकते हैं?"

मनोज मन ही मन विचार कर बोला, "यदि मेरे पास तुम्हारा मामला आया, तो मैं तुम्हारे को ले जाने वाले से पांच लक्ष स्वर्ण दिलवाना चाहूंगा।"

"यह तो बहुत अधिक है। इतना तो मैं न दे सकूँगी।"

"कितना दे सकोगी?"

"सब मिलमिला कर दो लक्ष।"

"यह कम है। वास्तव में यह उसके मान का मूल्य नहीं। यह तो तुम्हारे सौन्दर्य का मूल्य है। अवन्ति की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी का इतना मूल्य तो होना ही चाहिये।"

"पहिले तो मैं सर्वश्रेष्ठ नहीं हूं। दूसरे मैं तो अपना मान इसी में समझती हू कि मुझको पाने के लिये कोई नवयुवक तैयार है।"

"यह नवयुवक है कौन?"

"कोई है, जो दो-तीन लक्ष देने को तैयार है।"

लोला हंस पड़ी। मनोज ने उसके मुख की ओर देखा तो उसने बताया, "बूढ़े महाशय के एक पुत्र है, जो अपनी मां को मोल लेने के लिये तैयार है।" मनोज यह सुन अवाक् रह गया। बहुत देर तक विचार कर बोला, "शायद अपने पिता को इस वासना से मुक्त कराने के लिये ही तुम को उनसे पृथक् कराना चाहता होगा।"

"जी नही। मुझको अपनी पत्नी बनायेगा। उसने वचन दिया है कि वह मुझसे राज्य में मान्य विधि के अनुसार विवाह कर लेगा।"

इस समय पंडित सुखदर्शन आगये। वार्तालाप बंद हो गया।

: ९ :

मनोज और पडित भोजन करने बैठे तो मनोज ने अपने मन में उठ रहे उदगार वर्णन कर दिये। उसने वह सब बातें बतायी, जिनके कारण

उसके मन में उदासीनता उत्पन्न हुई है। उसने लोला की सहेली कोकिला की कथा भी सुनाई। मनोज को चिन्तित देख पंडित जी ने कहा, "मनोज बेटा! यह सब बात हमारे ज्ञान में है। इससे हम घबराते नहीं। मेरी व्यवस्था अभी भी लागू है। कुमारदेव ने जिसके कहने से देश में यह अव्यवस्था की है, वह उस व्यवस्था से बच नहीं सकता। ब्राह्मण का कहा व्यर्थ नहीं जायेगा।"

"यह तो ठीक है भगवन्! परन्तु मैं तो कहता हूं कि जनता की अवस्था को सुधारने के लिये भी तो कुछ उपाय होना चाहिये। हम काठ के घर में रहते हुए आग से नहीं खेल सकते। इस घर को आग लग गयी तो हम भी अवश्य झुलस जायेंगे।"

पंडित सुखदर्शन बात का अर्थ न समझ, प्रश्न भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। इस पर मनोज ने अपने आशय की व्याख्या कर दी। उसने कहा, "मेरा अभिप्राय यह है कि जब लोला की सहेली के मन की ऐसी भयकर अवस्था है, तो उसको आप रुई में लपेट कर कब तक रख सकते हैं?"

समस्या का यह पक्ष देख पंडित सुखदर्शन गम्भीर विचार में पड़ गया। वह चुपचाप भोजन करता गया। अंत में उसने मनोज के मुख की ओर देखते हुए पूछा, "तो तुम्हारा यह अभिप्राय है कि उसका विवाह हो जाना चाहिये, जिससे उसका पति उसके मन में विकार उत्पन्न न होने दे?"

एकाएक लोला के विवाह का प्रश्न उत्पन्न हो जाने से मनोज प्रसन्न तो था, इस पर भी उसने किसी प्रकार से मन के भावों को प्रकट न होने देकर कहा, "पर यह तो आप अपना उत्तरदायित्व किसी दूसरे के कंधों पर डाल कर निश्चिन्त होना चाहते हैं?"

"इसमें नवीन बात कौन है? मनोज! सुनो। एक समय आचार्य जी का यह विचार था कि लोला का विवाह कुमार शतवीर से हो जावे, परन्तु मैंने यह विचार कर कि राजकुमार का उससे विवाह हो जाने पर

हम उसको राज्य दिलवाने पर बाध्य हो जावेंगे और वह राज्य के योग्य नहीं है, मैंने आचार्य जी से न कर दी थी। मैंने एक समय यह अनुमान लगाया था कि लोला तुम्हारे लिए अपने मन में कुछ कोमलता रखती है। मैंने उससे इस विषय में प्रश्न किया तो उसका कहना था कि पुरुष को स्त्री की लज्जा और मान-मर्यादा का ध्यान रख, उससे विवाह का प्रस्ताव स्वयं करना चाहिये।"

"पर भगवन्! यह बात तो हमारी संस्कृति तथा सभ्यता के विपरीत प्रतीत होती है। हमने यह अधिकार स्त्रियों को दे रखा है कि अपने लिये पति स्वयं ढूँढें।"

"तुम्हारी बात ठीक तो है, परन्तु लोला के कहने में भी कुछ तथ्य प्रतीत होता है। उस ने कहा था कि निर्वाचन का अधिकार लड़की को है सही, परन्तु उसके ढोल पीटने का कर्त्तव्य उसका नहीं है।"

"तो यदि लोला देवी का यह आशय है कि ढोल पीटने का काम मुझको ही करना है, तो वह मैं कर सकता हूं।" मनोज ने मुस्कराते हुए कहा, "वास्तव में ढोल पीटने से पहिले मुझको यह ज्ञान होना चाहिये कि जो मुनादी मैं करने जा रहा हूं, उसमें क्या उसका स्वर भी मिश्रित है? आपके कहने से तो मैं यह समझा हूं कि मेरे ढोल के स्वर में उसका स्वर भी बोलेगा, इसकी मुझको प्रसन्नता है।"

"हां, मैं ऐसा ही समझता हूं। शेष तुम स्वयं निश्चय कर लो।"

भोजनोपरान्त जब वह लोला से विदा मांगने गया तो उसने अपने मन की बात कह दी। उसने कहा, "लोला देवी! क्या अब समय नहीं आ गया कि आपके मन के भावों को विश्लेषण करने में मैं आपकी कुछ सहायता कर दूं?"

"कैसे भाव?"

"हम यौवनावस्था में पदार्पण कर चुके हैं और सृष्टि के नियमानुसार हमको अपना जीवन साथी ढूँढना है। मैंने अपने विषय में कुछ धारणा बनायी है। क्या मैं आपके विषय में भी कुछ अनुमान लगा सकता हूँ?"

"तो क्या मेरे मन की बात आप समझना चाहते हैं ?"

"मैंने समझने का यत्न किया है और मेरा विचार है कि मैं जान गया हूं। मैं आपसे अतिशय प्रेम करता हूं।"

"यह तो आपके मन की बात हो गयी।"

"हां, आपके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि आप अभी तक मेरे प्रेम का निरादर करने का विचार नहीं रखतीं।"

लोला ने विचार कर कहा, "मैं समझती हूं कि आप मेरे भावों को ठीक नहीं समझ सके। मैं तो किसी ऐसे की खोज में थी, जिसकी चरण रज मेरी मांग भर सके। आज वह खोज समाप्त हुई प्रतीत होती है।"

इतना कह उसने चरण-स्पर्श करने का यत्न किया, परन्तु मनोज ने उसको उठा कर अंग से लगा लिया। लोला उसकी भुजाओं में आनन्द-विभोर होती हुई, मुस्करा कर कहने लगी, "यह क्या ? पहिले ही पथच्युत करने की ठान ली है ?"

लोला का विवाह मनोज से हुआ तो उसमें शतवीर भी आमन्त्रित था। वह लोला से मिलने का अवसर पाकर कहने लगा, "लोला ! यह क्या कर दिया है तुमने ?"

लोला ने मुस्कराते हुए कहा, "राजकुमार ! ऐसा प्रतीत होता है कि आप का वशीकरण किसी दूसरी स्त्री के लिये हो गया है।"

राजकुमार अपने अभिमान की बात स्मरण कर कुछ लज्जित अवश्य हुआ, परन्तु लोला को नीचा दिखाने के लिये बोला, "कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है। शायद जप करते समय कोई सुन्दरी मेरे मन में आती रही है। वह निस्सन्देह तुमसे अधिक सुन्दर रही होगी।"

"तब तो आपको मेरी बधाई स्वीकार करनी चाहिये। राजकुमारों का अधिक सुन्दर स्त्री से विवाह होना ही चाहिये।"

शतवीर इस फटकार से हतबुद्धि हो गया। लोला और मनोज को एक ही वेदी पर खडे देख, वह जल-भुन गया और वहां से उठ अपने आगार में जा कर सो रहा। अगले दिन ही वह आश्रम को चला गया।

घोड़े से उतर सीधा महर्षि की कुटिया में पहुंचा। वे एक अति ओजस्वी लड़की से बातचीत कर रहे थे। शतवीर उसको नहीं जानता था। इस कारण वह महर्षि की कुटिया के द्वार पर ही रुक गया। महर्षि ने उसको देख लिया और भीतर से ही पुकारा, "इधर आओ राजकुमार ! तुम्हारा इनसे परिचय करायें।"

शतवीर भीतर चला गया और आदर से एक ओर बैठ गया। महर्षि ने सामने बैठी स्त्री की ओर देख कर कहा, "ये महाराज पालकदेव के पुत्र शतवीर हैं। श्वेताग ने अपनी नीति चलाने के लिये इनको यहां आश्रम में भेज दिया था। हमने इनको योग और सिद्धि के मार्ग पर ले जाने का यत्न किया है। पश्चात् उसने इसको पुनः राजगद्दी पर बैठाने के लिये बुलाया था, परन्तु इसमें वह सफल नहीं हुआ और इसको गद्दी पर बैठाने के स्थान, स्वयं पदच्युत और अनादरित हो काशी चला गया है। वर्तमान महामात्य आचार्य भूदेव ने भी इसको वहां रखा हुआ था, जिससे यह राजकार्य के योग्य हो सके। अब आज यह एकाएक यहा आ गया है।"

"भगवन् ! क्या इसमें भी आप भाग्य का हाथ नहीं देखते।" सामने बैठी लड़की ने कहा।

"भाग्य कोई वस्तु नहीं, किरण देवी ! अभी तक इसकी सहायता करने वाले उन शक्तियों को समझ नहीं सके, जिनके आश्रय इसका जीवन चल रहा है।"

शतवीर किरण का नाम सुन सन्न रह गया। उसने उज्जयिनी में सुना था कि उसका मूल्य एक लक्ष स्वर्ण देकर भी कुमारदेव समझता था कि वह धन इसके योग्य नहीं था। शतवीर ने झुककर किरण देवी को नमस्कार कर कहा, "देवी जी के विषय में बहुत सुना है। आज उनके दर्शन का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है।"

"किससे सुना है कुमार ?" किरण ने पूछा।

शतवीर ने कहा, "एक तो आपकी प्रशंसा लीला देवी से सुनी थी।"

"क्या करती है अब वह ?"

"वह उज्जयिनी के न्यायाधीश मनोज की पत्नी है । उनकी सेवा करती है।" शतवीर कह कर मुस्कराया।

किरण यह समाचार सुन कर प्रसन्न हुई। उसने कहा, "यह तो एक बहुत ही अच्छा समाचार लाये हैं आप।"

किरण की उसके लिये शुभ कामना सुन शतवीर को प्रसन्नता नहीं हुई। इस पर वह वहां आने का प्रयोजन स्मरण कर महर्षि से कहने लगा, "गुरुवर ! आपका मन्त्र सफल नहीं हुआ।"

"कौन मन्त्र सफल नहीं हुआ ?"

"वही, जो वशीकरण का आपने दिया था।"

"कहां प्रयोग किया था उसका तुमने ?"

"यही लीला पर महाराज ! मैं उससे विवाह करना चाहता था। एक वर्ष के जप करने पर भी उसका विवाह मनोज से हो गया, और वह अपने विवाह से अति प्रसन्न प्रतीत होती है ।"

"तो इसका अर्थ यह निकला कि तुम अभी अपने मन को एकाग्र नहीं कर सके। इसके लिये अभी और अधिक अभ्यास की आवश्यकता है। जाओ अभ्यास करो।"

: १० :

विन्ध्याचल पर्वत के पार्श्व में निर्विन्ध्या नदी के तट पर एक अति रमणीक स्थान पर महर्षि वामदेव का आश्रम था। किरण कलाभवन से निकल और एक देहाती शिव मन्दिर में लिंगायतवादियों का कटु अनुभव प्राप्त कर घूमती हुई इस आश्रम में पहुंच गयी । आचार्य भूदेव की बातो से उसके मन में इस आश्रम से पूर्ण शान्ति प्राप्त करने की आशा नहीं थी। इस पर भी वह यह समझती थी कि यहा पर कुछ काल पर्यन्त ठहर कर वह अपने लिये मार्ग विचार कर सकेगी। यहा पहुंच वह महर्षि तथा अन्य आश्रमवासियों का सामर्थ्य देख चकित रह गयी। आश्रम धन-धान्य से

भरपूर था। सहस्रों दुखियारे नित्य आते थे और अपनी मनोकामना प्राप्त कर हंसते-खेलते जाते थे। आश्रम में पुरुष और स्त्रियां दोनो रहते थे और दोनो स्वच्छन्दता से विचरते थे। इस पर भी वायुमंडल में वासना का कुछ अधिक समावेश प्रतीत नहीं होता था। जो भी प्राणी इसमें प्रवेश के लिये आता था उसको पहिले परीक्षा के लिये एक पृथक् स्थान पर रखा जाता था। वहां उसको एकान्त-वास करना पड़ता था। इस एकान्त-वास मे महर्षि तथा उनसे नियुक्त दूत के अतिरिक्त और कोई उससे मिल नही सकता था। नवीन आने वाले व्यक्ति को इस काल में आत्मनिरूपण और आत्मशुद्धि का अवसर दिया जाता था। इस अवसर में महर्षि अभ्यागत की परीक्षा के लिये अनेक प्रकार के प्रलोभन उसके मार्ग में लाते थे। इन प्रलोभनो के होने पर भी, यदि नवीन आने वाला व्यक्ति मन के सतुलन को स्थिर रख सकता था, तब ही उसको आश्रम मे प्रवेश मिलता था। कभी-कभी इस परीक्षा में महीनों ही लग जाते थे और प्राय: व्यक्ति इस कठोर परीक्षा में असफल, लज्जित हो लौट जाते थे।

किरण के लिये भी परीक्षा काल आया। वह जब आश्रम के द्वार पर आयी तो उसका परिचय प्राप्त कर महर्षि को बताया गया। महर्षि से स्वीकृति प्राप्त कर उसको आश्रम के बाहरी गोल में रखा गया। जंगल में एक कुटिया उसके लिये नियत कर दी गयी। उसको कहा गया कि अपने पास का सब धन-दौलत और सांसारिक वस्तुएं आश्रम में जमा करा दे। किरण के पास कुछ स्वर्ण मुद्रायें थी, जो उसने निकाल कर दे दी। इस पर जो स्त्री उससे यह कहने आयी थी, बोली, "और यह वस्त्र तथा भूषण क्या सांसारिक नहीं है?" इस पर किरण सलज्ज गयी। उसने भूषण उतार दिये, अपने उत्तरीय भी उतार दिये। केवल अपने वक्षोज को समेटने के लिये तथा गुह्य अंगों को ढांपने के लिये दो वस्त्र रख, शेष सब उतार कर दे दिये। महर्षि से भेजी गयी स्त्री इससे भी संतुष्ट नही हुई। परिणाम यह हुआ कि किरण को वे किंचित् वस्त्र भी

उतार कर उस स्त्री को देने पड़े। सर्वथा दिगम्बर हो वह कुटिया में चटाई पर बैठ गयी और महर्षि की दूती उसका सब कुछ लेकर चली गयी।

किरण इसका अर्थ नही समझ सकी। इस पैर भी वह धीरज से किसी अधिकारी की प्रतीक्षा करने लगी। कुटिया के पास कुछ कदली वृक्ष थे, जो फल रहे थे। उसके फलो के अतिरिक्त उसको खाने को कुछ भी उपलब्ध नहीं था। वह प्रातः उठती, शौच इत्यादि मे छुट्टी पा, एक प्रहर भर ध्यानावस्थित रहती। भूख लगने पर कदली फल उतार कर खाती और नीद आने पर चटाई पर सो रहती। कई दिन व्यतीत हो गये। किसी स्त्री पुरुष के दर्शन नहीं हुए। वह निर्वस्त्र एकान्त-वास करती रही। प्रारम्भ में तो उसको आश्रमवासियों के इस व्यवहार पर क्रोध आया, परन्तु धीरे-धीरे वह क्रोध शान्त होने लगा और उसके मन से निर्वस्त्र होने से उत्पन्न सकोच मिटने लगा।

एक दिन, जब वह ध्यानावस्थित बैठा हुई थी, एक जटाजूटधारी पुरुष सामने आ खड़ा हुआ। केवल कौपीन पहिने हुए, एक हाथ में कमण्डल लिये और दूसरे हाथ में बैरागन लटकाये हुए था। किरण सर्वथा निर्वस्त्र पलथी मारे आखे मूँदे बैठी थी। कितनी ही देर तक वह साधु सामने खडा रहा। जब किरण की आख नहीं खुली, तो उसने आवाज दी, "जय जगदम्बे !"

किरण का ध्यान भग हुआ। अपने सामने एक पुरुष को खड़े देख, संकोच से सिकुड़ गयी। उसके मन के भाव को देख वह साधु मुस्कराया और बोला, "मां भगवती ! किस अर्थ इस घोर यंत्रणा को सहने के लिये यहां आयी हो।"

मां का शब्द सुन कर किरण अपने संकोच पर लज्जित हुई और पुनः उस पुरुष की ओर देख कर बोली, "किस महान् आत्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है ?"

"मां भगवती के एक तुच्छ अंश मात्र का ही दर्शन तो है।"

"फिर भी भगवन्! मेरी अभिलाषा महर्षि जी से मिलने की थी।

क्या मैं उन के दर्शन कर रही हूं ?"

"क्या काम है तुम्हारा उनसे ?"

"मैं उनके आश्रम में रह कर अपना मार्ग जानने के लिये आयी हूं।"

"तुम उनके आश्रम में तो हो और उनके संरक्षण में भी हो। यदि सत्य ही तुम्हारी इच्छा मार्ग-दर्शन की होगी तो वह पूरी होगी।"

"तो महाराज ! आपके आने का क्या प्रयोजन है ?"

"मैं महर्षि जी का एक क्षुद्र अनुचर हूं। यह देखने आया था कि तुम को कोई कष्ट तो नहीं। यहां जीवन चलाना तो इतना सुगम है कि इसके लिए किसी की देखभाल की आवश्यकता नहीं। मां प्रकृति ने यह स्वच्छ जल की नदी बहा रखी है। यह कदली वृक्ष अनायास ही फल देता है। सूर्य ऊष्मा देता है। चन्द्र शीतलता प्रदान करता है। यह देश न तो अधिक उष्ण है और न ही अति शीतयुक्त। इस कारण यहां शारीरिक कष्ट तो होना नहीं चाहिये।"

"वैसे तो मैं ठीक हूं, परन्तु इस प्रकार निर्वस्त्र बैठे रहना, अभ्यास न होने के कारण भला प्रतीत नहीं होता।"

"इस आश्रम में इसको अस्वाभाविक नहीं माना जाता। इसको प्रकृति के अनुरूप ही माना जाता है। वस्त्र तो शरीर को ऋतु सम्बन्धी परिवर्तनों के प्रभाव से बचाने के लिये होते हैं। इस देश और स्थान में तो ये भार रूप ही होंगे।"

"एक बात और भी तो है। स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे को नग्न देख कर वासना में भी तो लिप्त हो सकते हैं।"

"वासना लुकाव-छुपाव से नहीं मरती। वस्त्रों का आविष्कार वासना से बचने के लिये नहीं किया गया। इसकी आवश्यकता तो सर्दी, गर्मी, वर्षा, सूखा इत्यादि के प्रभाव से शरीर को बचाने के लिये होती है। वस्त्र पहिनने से तो वासना को प्रोत्साहन ही मिला है।"

"महात्मन् ! आपकी युक्ति तो ठीक प्रतीत होती है, परन्तु यह अनुभव के अनुकूल नहीं है।"

"तो तुम्हारे मन में कुछ विकार उत्पन्न हो रहा है ?"

"यह बात नहीं है ! मैं आपसे कई बातें पूछना चाहती हूं, परन्तु आपको कुटिया के भीतर आने का निमत्रण नहीं दे सकती। मुझको आप के मन में विकार उत्पन्न हो जाने का भय है । यदि कहीं ऐसा होगया, तो क्या होगा ?"

"प्रथम तो ऐसा होना नहीं चाहिये। हम यहां जप-तप-ध्यान के लिये आये हुए हैं और इस ओर ध्यान करने से अपना अमूल्य समय व्यर्थ जाने का डर है । इस पर भी यदि जीवन वासनामय हो जावे तो उसको भूल समझ कर, उसका सुधार करने का पुन प्रयत्न होना चाहिये।"

"परन्तु भगवन् ! जिससे भाग कर यहां आयी हूँ, उसको भूल स्वीकार कर ही तो आयी हूं। यहां आने पर भी उसको करू और फिर भूल ही मानूं, तो यहा आने का क्या लाभ हुआ ?"

"यहा आने का लाभ यह है कि यहा रोग की चिकित्सा होती है। रोग से भाग जाने का उपाय बताने की आवश्यकता नही समझी जाती।"

"मै उस चिकित्सा कराने के लिये ही आयी हूं।"

"वह चिकित्सा तो हो रही है । तुम्हारे सामने एक महान् प्रलोभन खडा कर तुम्हारे मन को सुदृढ करने का यत्न किया जा रहा है। भील, गोड अथवा अन्य जंगली जाति के लोग, स्त्री-पुरुष, सब नग्न घूमते हैं, परन्तु वे कहे जाने वाले सभ्य लोगो से अधिक वासनामय नही होते।"

"उनका यह जीवन स्वाभाविक है । उन्होंने यह स्वभाव पीढियो तक एक वातावरण में रह कर बना लिया है । हम लोग जो नगरो के वातावरण में रह कर आये हैं, इस प्रकार की उच्छृंखलता को सहन नहीं कर सकते।"

"इसको सहन कर सकना ही इस वासना से मुक्त होने का प्रथम चरण है । इससे बच कर भागना नही।"

किरण इस सबका अर्थ और इस युक्ति में दोष ढूंढने में लग गयी। उसको चुप देख वह पुरुष वहां से जाने को तैयार हो गया । जाने से

पहिले उसने कहा, "देवी भगवती ! जो कुछ मैंने कहा है, उस पर चिन्तन करो और मार्ग मिल जायेगा।"

इतना कह कर वह चला गया। किरण इस सब में प्रयोजन ढूँढती रही। उसकी दिनचर्या चलती रही। फिर कई दिन व्यतीत हो गये और उससे कोई मिलने नहीं आया। अब उसको आश्रम में आये एक पखवारा व्यतीत हो चुका था। उसका मन वहां अब लग रहा था। जो अपनी नग्न अवस्था में अस्वाभाविकता उसको प्रतीत हो रही थी, वह नहीं रही थी। अब उसको प्रातः उठकर नदी में स्नान करना, जंगल में घूमना और निश्शंक हो सो रहना, बुरा मालूम नहीं होता था। इस पर भी उसको सतोष नहीं था। वह मनुष्य से पशु बनने नहीं आई थी। अब तो उसका चित्त, पेड़ पर बन्दरों की भांति चढ़ने और वहा से कूदने को पसन्द करने लगा था। इस कारण वह विचार करती थी, "इसमें क्या सिद्धि है ?"

उसको अब अपना निर्वस्त्र होना इतना अखर नहीं रहा था, जितना निसंगति में होना। एक बार उसने नग्नावस्था में ही वहां से निकल आश्रम में चले जाने का यत्न किया। वह मार्ग नहीं पा सकी। ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ती गयी, जंगल घना ही घना होता गया। अंत में वह लौट आयी। उसकी इच्छा हुई कि नदी में वह जाये। कहीं तो वह पहुंच ही जायेगी। वह तैरना जानती थी, इस कारण उसको डूबने का भय नहीं था।

उसने नदी में छलांग लगा दी। इसी समय किनारे पर से किसी के खिलखिलाकर हंसने का शब्द हुआ। वह वहां पानी में ही खड़ी हो गयी और किनारे की ओर घूम कर देखने लगी। वही महात्मा था, जो कई दिन पूर्व उसके कष्ट पूछने आया था। किरण ने पूछा, "महात्मन् ! हंस क्यों रहे थे ? नदी में कूदना अथवा तैरना क्या स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक है तो हंसने में क्या प्रयोजन है ?"

"भगवती ! तुम्हारे नदी में कूदने-फांदने से मैं नहीं हंसा। तुम्हारी चंचलता देख मैं हंसा हूं।"

"इसमें वैचित्र्य है क्या ?"

"हां ! यह तुम्हारे मन की चचलता को प्रकट करता है।"

"तो इसका उपाय बताओ न ? मैं एकान्त में रहती-रहती ऊब गयी हूं।"

"तो तुम को तुम्हारे वस्त्र वापिस भिजवा देता हूं और तुम समीप के नगर में जा सकती हो, जहां तुमको बहुत सगत मिल सकेगी।"

"तो क्या समाजविहीन रहने में भी कोई गुण है ?"

"मन को मारने में गुण है। मन को नियन्त्रण में करने से ही अपने पर नियंत्रण रख सकोगी ? व्यर्थ की इच्छाओं को मिटा देना ही संसार-विजय करने की ओर जाना हो सकता है।"

"सगति की इच्छा आप व्यर्थ की इच्छा मानते हैं ?"

"हां !"

"तो सार्थक इच्छा क्या है ?"

"संसार को जानना। प्रकृति के गूढतम रहस्यो को समझना और फिर उन पर आधिपत्य प्राप्त करना।"

इस समय किरण जल से बाहर निकल आयी। वह महात्मा मुस्कराया। किरण ने पूछा "क्या है ?"

"अब तुमको मेरे सामने इस प्रकार आने में संकोच नही होता न ?"

इस प्रकार संकोच का स्मरण करने पर एक क्षण के लिये वह ठिठक गयी और उसका मुख लज्जा से लाल हो गया, परन्तु अगले ही क्षण वह संभल गयी। उसने मुस्करा कर कहा "तुम बहुत ही खराब हो। मैं जो भूलना चाहती हूं, उसको तुम स्मरण कराते हो।"

"भूल जाना इस रोग की चिकित्सा नही है। संसार की बातों को तथा उनके स्वाद को स्मरण कर, फिर उनका त्याग ही उन्नति की ओर जाना है।"

अब किरण उसके समीप आकर खड़ी हो गयी थी। वह एक पत्थर पर, जो नदी के किनारे पर पड़ा था बैठ गया और किरण से बोला, "आओ !

बैठ जाओ !"

किरण को उसके समीप बैठने में संकोच हुआ, परन्तु वह अपने पर नियंत्रण कर बैठ गयी। महात्मा मुस्कराता हुआ नदी की ओर देखता रहा। जब वह बैठ गयी तो उसने गम्भीर हो कहना आरम्भ किया, "कितना सुन्दर दृश्य है? आंखों को कितना प्यारा प्रतीत होता है? परन्तु यह है क्या? प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करने पर तो परमाणु और फिर उन मे सत्व, रज, तम के अतिरिक्त भी कुछ है क्या?

"देखो! मैं, तुम, नदी, जल, पत्थर, पेड़, अभिप्राय यह कि दीखने और न दीखने वाली प्रत्येक वस्तु प्रकृति के इन मूल तत्वों से ही तो बनी है। फिर क्या भेद है इस पत्थर मे और मेरे में? जैसे तुम इस पर निस्सकोच बैठी हो उसी प्रकार मेरे सम्पर्क मे आने मे संकोच क्यों है?"

"मुझ को भय है कि जिस उद्देश्य से मैं यहां आयी हूं, उससे पतित हो ससार मे भटकती न फिरू।"

"अभी तुम मे कोमलता है। इस पत्थर की भांति कठोर हो जाओ। फिर पतित होने का प्रश्न ही नही रहेगा।"

"मैं तो यह समझती हूं कि इस पत्थर की भांति निर्जीव होने से तो उन्नति के स्थान अवनति हो जावेगी। मैं ज्ञानशून्य हो जाऊंगी।"

"यही तो तुम अभी तक समझी नही। कठोर तो इन्द्रियों को करना हैं और मनको ज्ञानयुक्त रखना है। पत्थर में और तुम में जहां तक प्रकृति के मूल तत्वों का प्रश्न है, कुछ अंतर नही है। तुममे इस रहस्य को समझने की शक्ति है और तुम कैसे जानती हो कि इस पत्थर मे वह शक्ति नही है?"

"तो यह वासना क्या है?"

"भ्रम है, जो अभ्यास से मिट जाता है।"

: ११ :

इस प्रकार किरण को पग-पग पर एक निश्चित लक्ष्य की ओर

ले जाया गया। समय आया जब वह प्रत्येक प्रकार के मनोद्‌गार छोड़ बैठी। पुरुष-स्त्री, जड़-चेतन, कड़वा-मीठा, सब में भेद भाव समझना भूल गयी। वह भगवती प्रकृति को ही सर्वत्र व्यापक देखने लगी। वह समय आया, जब महर्षि वामदेव उसके पास आने लगे और उसका पथ-प्रदर्शन करने लगे। अब उसको उसके वस्त्र लौटा दिये गये थे। उसको अब आश्रम में आने-जाने की स्वीकृति मिल चुकी थी। इस पर भी वह कुटिया में रहती थी और अब उसको निर्वस्त्र रहना अधिक रुचिकर था। वह महर्षि की कुटिया में भी निधड़क चली जाती थी और वहा बैठी अनेकानेक विषयो पर शका-समाधान करती थी।

महर्षि ने उसको वताया कि रज और वीर्य शरीर के सत्व हैं। इनमें अपार शक्ति है। इस शक्ति का सचय करना ही ससार में विजय प्राप्त करना है। इस संचित शक्ति के प्रयोग का ढग ही योग-साधना है, अर्थात् सिद्धि है।

"रज और वीर्य स्नायुमंडल मे ओज बन कर व्यापक रहते हैं। इनकी अपार शक्ति स्नायुमडलो के सप्त चक्रो के द्वारो से वाहर निकाली जा सकती है। पर जिस पर जैसा इसका प्रभाव डाला जावे, वैसा ही वह करने लगता है। मनुष्य तो एक अति दुर्बल प्राणी है, जंगल के हिंसक जीव-जन्तु भी अपने अनुकूल हो जाते हैं। पत्थर और जल अपनी शक्ति उगलने लगते हैं। इस शक्ति को सचित करने का अभ्यास तो तुम को हो गया है, अब इसको प्रयोग करने का ढंग भी तुमको [illegible]ाना चाहिये। दूसरे शब्दो में सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। उसके लिये जप-ध्यान-योग की क्रियायें हैं, उन्हे करो।"

किरण ने समाधिस्थ हो जप करना आरम्भ कर दिया। इससे उसने अनुभव किया कि उसको अब महर्षि के पास जाने की आवश्यकता अथवा इच्छा नही होती। दिन-रात बैठी 'ओ श्री, ह्रो, क्लो...।' इत्यादि का निरंतर जप होने लगा। स्नान और कदली फल का भोजन करने के अतिरिक्त, आसन पर बैठे हुए जप करते रहना ही उसका कार्य हो

गया। इस अवस्था में उसको अनेकानेक बातों का ज्ञान स्वयमेव होने लगा। सामने बैठे मनुष्य के अंतरतम मन की बातें वह उसके मुख पर पढ़ने लगी और अंत में उसको ऐसा अनुभव होने लगा, मानो वह स्वयं वृक्षों, नदी, झीलों से बातें कर सकती है।

इस समय महर्षि ने उसको बुला भेजा। जब वह वहां पहुंची, तो उन्होंने उसको कहा, "किरण! तुमको हमारे साथ चलना होगा।"

"कहां महाराज?"

"मल्ल राज्य की राजधानी पावा में भगवती प्रकृति देवी का मंदिर निर्माण हुआ है। उस मंदिर की अधिष्ठात्री बन, तुमको संसार का कल्याण करना है। ये नागरिक अज्ञानता के घोरतम अंधकार में अति दुःखी हो रहे हैं। इनको मार्ग पर लाना हमारा कर्त्तव्य है।"

किरण को जो रस योग और ध्यान से आ रहा था उसमें विघ्न उसको रुचिकर नहीं था। इस पर भी महर्षि की आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सकी। इस कारण उसने कहा, "गुरुवर! वहां क्या करना होगा?"

"वहां एक अति विशाल मंदिर की स्थापना हुई है। उसमें मां भगवती की स्वर्ण मूर्त्ति रखी गयी है। उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने मैं जा रहा हूं। पश्चात् तुम आश्रम की अन्य पचास के लगभग उपासिकाओं के साथ रहोगी। तुम अधिष्ठात्री होगी और तुम अपने प्रकृतिवाद की प्रतिष्ठा स्थापित करोगी।"

किरण को आश्रम में आये दो वर्ष के लगभग हो चुके थे और अपने प्रयत्न से तथा पूर्व जन्म के कर्मों के फल से, वह इस काल में एक सिद्धिप्राप्त देवी की उपाधि से विभूषित मंदिर की अधिष्ठात्री के रूप में प्रसिद्ध होने लगी।

इन्हीं दिनों में एक दिन किरण, महर्षि जी के पास बैठी कुछ पूछ रही थी कि शतवीर कुटिया के बाहर आ खड़ा हुआ। शतवीर लोला से विवाह न कर सकने पर निराश लौटा था। जब महर्षि ने उसको कहा कि वह अभी और अभ्यास करे तो वह मुख लटकाये हुए वहां से चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात् किरण ने पूछा, "क्या करता है यह यहां आश्रम में ?"

"देखो किरण ! प्रकृति आदि रूप में सत्, रज, तम की एक साम्यावस्था है। जब ये तीन तत्व असतुलित अवस्था में होते हैं तो पहिले महातत्व और पीछे तीन अहकार उत्पन्न हो जाते हैं। जब सात्विक अह्कार का सयोग तैजस अहंकार से होता है, तो जीवन शक्ति प्रकट होती है, जो तैजस अहकार और भूतादि अहकार के संयोग से बने, पाचभौतिक शरीर में जाकर, प्राणी का रूप धारण करती है। सात्विक अहंकार और तैजस अहंकार के संयोग से बनी जीवन-शक्ति शरीर के साथ मिट नहीं जाती। एक से दूसरे शरीर मे भ्रमण करती रहती है। इसको मरण और जन्म कहते हैं। यह जीवन-शक्ति योग, तप, जप और ध्यान से उत्तरोत्तर उन्नत होती रहती है। प्राणियो में यह अधिक उन्नत अवस्था में होती है और दूसरो में यह अभी प्रारम्भिक अवस्था में ही होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी यह शक्ति, जिसको तुम्हारी आत्मा भी कहा जा सकता है, पहले ही बहुत उन्नतावस्था में थी और इस बालक की तो अभी बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में है। इस प्रकार जो कुछ तुम दो-अढाई वर्ष में कर सकी हो, वह यह बालक कई जन्मो में प्राप्त कर सकेगा। कुछ लोगो को हम भांग, गाँजा, सुरा आदि मादक द्रव्य पिला कर उनमें एकाग्रता लाने के लिये यत्न करते हैं। तुम्हारी अवस्था में तो इसकी भी आवश्यकता नहीं पड़ी।"

इस दिन के पश्चात् शतवीर कई बार किरण से मिला। उसने इससे अनेको विषयो पर बातचीत की और उसको अनुभव हुआ कि महर्षि जी का इसके विषय में कथन सर्वथा सत्य है। कई बार शतवीर उसकी कुटिया में आया, जब वह निर्वस्त्र बैठी होती थी। किरण को अब इसमें संकोच नहीं होता था, परन्तु शतवीर को उसे इस अवस्था में देख आग लग जाती थी। वह उससे प्रेम प्रकट करने लगता, तो वह हंस देती। एक दिन वह स्नान कर कुटिया में आयी ही थी और अभी ध्यानावस्थित नहीं हुई थी कि शतवीर आ गया। आज वह मद्यपान किये हुए था।

किरण ने उसको देखा तो वस्त्र पहिन लेने उचित समझे । उसके प्रेम-प्रलाप का उस पर तो कोई प्रभाव नहीं होता था, परन्तु शतवीर का विचार कर वह ऐसा करने पर तैयार हो गयी । शतवीर ने उसके कपडे पहिनने में बाधा डाली । इस पर किरण ने एक बात मन में विचार कर, उससे पूछा, "क्या चाहते हो बालक ?"

"देवी ! तुम से सहवास ।"

"मुझसे ?" किरण ने अचम्भा प्रकट करते हुए पूछा, "तनिक देखो किसको कह रहे हो । देखो !"

शतवीर को उसके स्वर में एक ऐसी ध्वनि अनुभव हुई, जिसको वह भलीभांति पहिचानता था। उसने आश्चर्य में मुख उठा कर किरण की ओर देखा। उसे यह समझ आया कि उसकी माता, महारानी पद्मावती उसके सामने खडी है और वह उसका चीर खैंच कर, उसको नग्न कर रहा है । इस बात का अनुभव करते ही उसके हाथ से किरण का कपडा छूट गया और उसके मुख का रंग विवर्ण हो गया । किरण ने तुरंत कपड़े पहिन लिये और शतवीर को, जो उसके चरणों के पास अपने सिर को दोनों हाथो में पकडे हुए बैठा था, कहा, "उठो शतवीर ! जाओ अपने अशिष्ट कर्म के लिये प्रायश्चित्त करो ।"

शतवीर का नशा उतर चुका था। उसने पुनः किरण की ओर देखा। उसको अभी भी वह अपनी माता ही प्रतीत हुई। इससे अति विक्षुब्ध हो, उसने पूछा, "भगवती ! यह क्या चमत्कार है ?"

"अब तुम जाओ और जो कुछ तुमने देखा है, उस पर मनन करो। अपनी माता की पुण्य स्मृति को दूषित न करो।"

शतवीर उठा और सिर लटकाये हुए अपनी कुटिया में चला गया।

प्रतिक्रिया

: १ :

कई दिनो से सायंकाल पद्मा नदी के तट पर, जब नित्य की भांति रंगरलिया मनाई जा रही थी, एक ब्राह्मण, घाट पर एक पेड़ के नीचे बैठा, पद्मासन लगाये हुए जप कर रहा था। वह केवल एक धोती पहिने था और कटि से ऊपर नंगा था। यज्ञोपवीत और सिर पर बडी सी चोटी दूर से दिखाई देती थी। वह ध्यानावस्थित नदी की ओर देखता हुआ भगवत् स्तोत्र पढ़ रहा था। उसकी ध्वनि बहुत ही मीठी, न बहुत ऊची और न बहुत धीमी थी। वह कह रहा था,

"श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ! श्रीमन्नारायण नारायण नारायण !!"

कभी-कभी बीच में कह उठता था,

'सशंखचक्रं सकिरीटकुण्डलं, सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं, नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ।।

फिर कभी वह गाने लगता,

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या, द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं, मम देव देव !!

प्राय 'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण' की रट लगाये हुए था।

नारायण शब्द सुनने का स्वभाव लोगो में नही रहा था। कई वर्षों से उज्जयिनी में इस शब्द का उच्चारण नहीं हुआ था। नदी के घाट पर तो, "छननन छननन बाजे पैजनिया !" अथवा, "पिला दे री मधुबाला मदभरे नैन कटोरो में !" यह ध्वनि ही सुनने को उत्सुक लोग आते

थे। आज कोई ब्राह्मण देवता चन्दन के तिलक से मस्तक चित्रित किये, शिर, ग्रीवा और मेरु-दंड को एक रेखा में किये, 'श्रीमन्नारायण नारायण' गा रहा था। पहिले तो कुछ लोग देख विस्मय करते हुए चले गये। किसी की कोई प्रेयसी प्रतीक्षा कर रही थी अथवा किसी को अपने प्रियतम से मिलने जाने की जल्दी थी। कोई नशा लेने का समय हो जाने से, मधुशाला को जाने के लिये व्याकुल हो रहा था। इस प्रकार लोग इस ब्राह्मण को देखते थे और चले जाते थे। जब कुछ अंधेरा होने लगा, तो ऐसे लोग भी घाट पर आने लगे, जो निःशुल्क मनोरंजनार्थ वहां आते थे। वे इसको भी एक मनोरंजन समझ, इस समाधिस्थ व्यक्ति को देखने खड़े हो गये। खड़े-खड़े ये लोग उसकी चर्चा करने लगे। एक ने कहा, "कोई ढोंगी प्रतीत होता है।"

"मूर्ख है। यहां रसिकों से भला क्या पावेगा?"

"सुन्दरी की पायलों की ध्वनि से नारायण भाग जायेंगे।"

"कायर, नारायण का भक्त, बहुत शौर्य प्रकट करने आया है। भूख सतायेगी तो भाग खड़ा होगा।"

इस पर भी वह ब्राह्मण, 'श्रीमन्नारायण नारायण' की अखण्ड रट लगाये हुए था।

एक प्रहर रात बीत गयी। वह वहीं बैठा था। लोग उसको छोड़, कभी एक नर्तकी, कभी दूसरी नर्तकी को देखने चले गये। नाच से ऊब कर जब पुनः उस ओर से निकले तो ब्राह्मण को वैसे ही निश्चल बैठे देख, चकित हो खड़े रह गये।

मध्य रात्रि से पूर्व उसको देखने वालों की भीड़ घटने लगी। लोग मनोरंजन से थक कर घरों को लौटने लगे। गाने-नाचने वालियों ने अपनी ढोल-ढमकोरी लपेटनी शुरू कर दी। सारंगी-तबले वाले नदी के तट पर बैठ, लोगों से मिले रजत गिनने लगे। दूकानदार अपना सामान बेच, अपने बर्तन उठाने लगे। मद्य में मदमत्त पुरुष स्त्रियों की कमर में हाथ डाले हुए, उनको घने निकुंजों की ओर धकेलते हुए जाने लगे। इस पर भी

वह ब्राह्मण वैसे ही बैठा, 'श्रीमन्नारायण नारायण नारायण' का जप कर रहा था।

मध्य रात्रि का घड़ियाल बज गया। लोगो ने नदी का तट छोड घरो का मार्ग पकडा। कही-कहीं पेड़ो के झुरमट में अथवा पुष्प-लताओ के निकुज से में किसी के अपनी प्रेयसी के मुख चूमने की चटकार कभी-कभी सुनाई देने के अतिरिक्त, नदी तट पर नीरवता छा गयी। इस पर भी वह ब्राह्मण अपने जप में लीन था। इस समय एक स्त्री नदी तट पर बैठी अपने मुख पर से शृगार प्रसाधन धो रही थी। जब उसको विश्वास हो गया कि मुख साफ हो गया है, तो उसने अपने आचल से मुख पूंछ डाला और नदी पार से कृष्ण अष्टमी का उगता हुआ चन्द्र देखने लगी। आभा-हीन, पीत चन्द्र देख, उसने अपने मन में विचार किया, "अमावस की ओर जा रहा है। पूर्ण काला, अंधकारमय हो जावेगा।

"यही दशा मेरी भी हो रही है। अढाई वर्ष में यह अंतर। तीन बार विवाह और फिर वेश्या वृत्ति।" वह इतना विचार कर काप उठी। पश्चात् मन दृढ कर घूमी और सामने चन्द्र के धीमे प्रकाश में 'नारायण नारायण' जपते ब्राह्मण के दर्शन हुए। उसको विचार आया, "इसने कुछ खाया नहीं है। मैं तो दो बार पेट भर चुकी हूं। आज धन मिला भी बहुत है।" ऐसा विचार करते हुए उसने अपने सलूके की जेब को हाथ लगा कर टटोला। जेब भारी थी। उसके मन में आया कि इस बाबा को कुछ भोजन ला दे। वह लेगा क्या? भूखा होगा तो अवश्य ले लेगा। लेगा तो उसकी कमाई का कुछ दोष तो कम हो जावेगा।"

ऐसा विचार कर वह घाट पर देखने लगी कि कोई दूकान खुली है या नही। दूर एक भाग्यहीन दूकानदार अभी बैठा था। यह स्त्री उधर ही चल पड़ी। वहा जाकर उसने देखा कि उसके पास कुछ हलुआ, कुछ पूरी शेष बची थी। स्त्री ने आठ पूरी और उस पर हलुआ ले लिया। दोनो को पत्तो में लपेट, वह उस ब्राह्मण के सम्मुख आयी और बोली, "महाराज!"

ब्राह्मण ने आंखें खोल दीं। एक स्त्री सामने देख पूछने लगा, "क्या है भगवती ?"

"महाराज मध्य रात्रि हो चुकी है। थोड़ा सा प्रसाद लायी हूं। इसे ग्रहण कर लीजिये।"

"व्यर्थ का प्रयास किया है देवी! सूर्योदय से पूर्व भोजन नही करूंगा। जाओ विश्राम करो। इसको ले जाओ।"

वह स्त्री इस बात को सुन चिन्तित प्रतीत हुई। वह स्वयं बहुत कुछ खा चुकी थी। उससे प्रेम करने वालो ने उसको खूब खिलाया-पिलाया था। साथ ही वह यह सब कुछ उस ब्राह्मण देवता के लिये लायी थी। इस कारण बोली, "महाराज यह यहा रख कर जा रही हूं। जब इच्छा हो तब ग्रहण कर लीजियेगा।"

"कुत्ते खा जायेंगे और सब व्यर्थ जायेगा।"

वह ब्राह्मण पुन. अपने जप में लीन हो गया। वह कह रहा था—

"यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यै स्तवै-
र्वेदै. सागपदक्रमोपनिषदै गायन्ति य सामगाः।
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण!!

उस स्त्री का विचार था कि महात्मा आखे खोलेगा और फिर उससे पूछेगा कि क्यो बैठी है। वह कहेगी कि इस पदार्थ को वह अंगोछे में बांध कर रख जाती है, प्रातःकाल नदी घाट पर खाने को कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु उस ब्राह्मण ने आंख नही खोली। और निरंतर जप करता रहा।

वह स्त्री बैठी-बैठी ऊघने लगी और फिर वही सो गयी। ब्राह्मण ने अपना जप ब्रह्म-मुहूर्त में समाप्त किया और उस स्त्री को वहां लेटे देख विस्मय करने लगा। उसके हाथ में वह दोना, जिसमे पूरी-हलुआ रखा था, पडा था और एक कुत्ता उसको बहुत शान्ति से खा रहा था। वह ब्राह्मण शौचादि के लिये धोती उतार, लगोटा बांध, नदी तैर कर पार चला गया। वहा शौचादि से निवृत्त हो पुनः तैरता हुआ और स्नान कर,

इस ओर आ कपड़े पहिन, अपने आसन पर आ बैठा। वह स्त्री अभी भी सो रही थी। कुत्ता हलुआ-पूरी खा कर कहीं अन्यत्र जा चुका था। ब्राह्मण ने अपना जप पुन: आरम्भ कर दिया। सूर्य क्षितिज से पर्याप्त ऊपर आ चुका था, जब उस स्त्री की जाग खुली। उसके हाथ में खाली दोना था, जो कुत्ते ने भली भांति चाट कर साफ कर रखा था। उसने महात्मा को देखा और दोने को देखा। वह सब समझ गयी और उसको बहुत शोक हुआ। पेड़ की डाल पर लंगोटा और अगोछा सूखने के लिये लटका देख समझ गयी कि उसका पूर्ण प्रयास विफल गया है। इस समय महात्मा ने आंखें खोलीं और कहा, "बेटी! अब जाओ।"

"बहुत शोक है कि आपके लिये जो लायी थी वह.....।"

"जिसके भाग्य में था वह खा गया है।"

"अब आपका भोजन कहां होगा?"

"मेरा प्रबन्ध है। तुम चिन्ता न करो।"

"आप नगर को जाइयेगा क्या?"

"तुम मेरी चिन्ता न करो बेटी! तुम जाओ। तुम्हारे घर वाले चिन्ता करते होंगे।"

"कोई चिन्ता करने वाला नहीं है, महाराज! कोई ऐसा भी नहीं, जिसकी मुझको चिन्ता करनी हो। आप यदि यहीं पेड़ के नीचे रहेंगे, तो मैं नदी में स्नान कर आपके लिये कुछ ले आती हूं।"

"पर तुम क्यों यह कष्ट करोगी?"

उस स्त्री ने उत्तर नहीं दिया और चुपचाप चल दी। वह मध्याह्न तक लौटी। वह उसी पेड़ के नीचे कुछ भूमि साफ कर गाढ़ निद्रा में सो रहा था। वह पुन: पूरी इत्यादि लायी थी। इस बार उसको कुछ अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह जागा और जब स्त्री ने सामने भोजन ला रखा, तो उसने विस्मय में आकाश की ओर देखा। समय का अनुमान लगा कर पूछने लगा, "कब से बैठी हो बेटी?"

"महाराज दो मुहूर्त्त के लगभग हो गये हैं।"

"तब तो बहुत कष्ट किया है तुमने। पर यह सब तुम क्यों कर रही हो? मेरा भोजन एक कुम्हार के घर पर है।"

"कुम्हार ?" स्त्री ने विस्मय से पूछा, "कहां महाराज !"

"यहीं समीप एक गांव है। वहां तारा कुम्हार के घर भोजन के लिये जाना है।"

वह स्त्री तो एक दम पीली पड गयी। उसके हाथ कांपने लगे और वह अवाक् ब्राह्मण का मुख देखती रह गयी। ब्राह्मण ने उसके मुख को देखा और उसके मन के भावो का अनुमान लगा कर पूछा, "क्यों बेटी ! क्या विचार कर रही हो ? मै समझता हू कि यह भोजन अब तुमही कर लो।"

"मेरा दुर्भाग्य है महाराज !" स्त्री ने अपने मन के भाव को छुपा कर कहा, "मै दो बार ले कर आयी, दोनो बार यह ग्रहण नही हो सका।"

"आज यह तुम ही करोगी। भगवत् इच्छा हुई तो फिर किसी दिन हो सकेगा।"

इतना कह ब्राह्मण उठा। उसने अपना लंगोटा पेड से उतारा और गाव की ओर चल दिया।

: २ :

वह स्त्री मन मे विचार करती हुई नगर की ओर चल दी। वह विचार कर रही थी कि इस महात्मा ने जान-बूझ कर उसका भोजन स्वीकार नही किया अथवा अनजाने से ऐसा हो गया है। यदि तो अनजाने मे हुआ है तो कल अपने घर पर बुलायेगी, परन्तु वह तारा को जानता है। क्या यह भी एक घटना मात्र है ? क्या वह मुझको भी पहिचानता होगा ?

इस प्रकार रात की और अब की घटना पर विस्मय करती हुई, घर पर पहुची तो मकान की डयोढी मे एक हट्टे-कट्टे पुरुष को देख खड़ी हो गयी। वह मार्ग नही छोड़ रहा था। उसने कहा, "चन्दु भैया ! एक ओर हो जाओ न।"

"क्यो ?"

"मैंने भीतर जाना है।"

"यह जो हाथ में है। मुझको दे जाओ।"

वह स्त्री तारा की बहन मीना थी और अभी तक चन्दु के मकान में, जो कनखैया के मकान में रहता था और उसका काम करने लगा था, रहती थी। मीना जब फिर अपने पति के घर से निकाल दी गयी तो चन्दु के पास ही रह कर वेश्या-वृत्ति करने लगी थी। रात को जब वह घर आती थी तो उसके घर में रहने का भाडा दे देती थी। आज रात वह आयी ही नहीं और पिछले दिन का भाड़ा उसने नही दिया था। यही कारण था कि चन्दु ने मार्ग रोक लिया था। अब उसको खाने-पीने का सामान हाथ में लिये देख, उससे हंसी करने लगा। मीना उसको, जो वह एक महात्मा के लिये लायी थी, चन्दु जैसे पतित को देना नहीं चाहती थी। इस कारण उसने कह दिया, "यह तुम्हारे लिये नहीं है।"

"ओह!" चन्दु ने मुख लम्बा कर कहा, "तो यह किसी प्रेमी के लिये लायी हो। क्या कोई दिन में ही फसा लिया है। मेरा रात का भाड़ा तो लाओ।"

"ऊपर आओ देती हूं।"

"तो तुम्हारा प्रेमी नही है वहा?"

"अभी नही है।"

"तो आने वाला है क्या?"

"हां।"

मीना को मार्ग मिल गया, परन्तु चन्दु उसके पीछे-पीछे उसके आगार में जा पहुंचा।

मीना ने पूरी-हलुआ एक ओर ऊंचे स्थान में रख दिया और अपनी जेब में से एक रजत निकाल, एक दिन का भाड़ा देने लगी। चन्दु ने रजत नहीं पकड़ी और भूमि पर बिछी चटाई पर बैठ कर कहने लगा, "मीना! बैठो।"

मीना बैठ गयी। चन्दु ने कहा, "तुम आज बहुत सुन्दर प्रतीत हो

रही हो।"

"फिर वही बात होने लगी है ?"

"जब-जब तुम्हारे ग्राहक आते हैं, मुझको ईर्ष्या होने लगती है।"

मीना ने बात बदल दी और कहा, "कल की यह रजत ले लो। आज के लिये फिर सायंकाल दूंगी।"

"मैं कुछ कहता हूं, तुम कुछ और ही कहने लगती हो। देखो मीना! मैं तुमको अपनी पत्नी बना कर रखना चाहता हूं।"

"और मैं तुम्हारी पत्नी बनना नही चाहती। तुम मेरे भाई लगते हो।"

"और जो दूसरे तुम्हारे आते हैं, सब विवाहे पति ही होते है न ?"

"उनकी बात उनसे कहती हूं।"

चन्दु रजत लेकर आगार से बाहर निकल गया, पर गृह की डचोढ़ी में मीना के प्रेमी की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। वह देखना चाहता था कि किसको वह उस पर उपमा दे रही है।

चन्दु को मीना के प्रेमी की प्रतीक्षा करते हुए तीसरे से चौथा प्रहर हो गया। उसके घर में एक अन्य स्त्री भी रहती थी। वह शृंगार कर नदी तट की ओर चली गयी। मीना अपने आगार में बैठी अपने जीवन पर विचार कर रही थी। वह इससे ऊब गयी थी। आज उसके मन में बार-बार यह आ रहा था कि वह यह कार्य छोड दे। फिर जीविकोपार्जन कैसे होगा? जब यह प्रश्न उसके मन में आता था, तो वह देखती थी कि अनेकों मनुष्य अनेकों प्रकार से धन कमाते हैं। वह भी ऐसे ही कर लेगी। चन्दु से विवाह तो वह पसन्द नहीं करती थी। उसको कनखैया का अंत विदित था। वह उस प्रकार मरना नहीं चाहती थी। वह समझती थी कि यदि भूखी मरने लगी, तो पद्मा में डूब कर मर जायेगी।

जब सायंकाल होने लगा और मीना का प्रेमी नहीं आया, तो चन्दु भीतर जाकर पूछने लगा, "मीना! क्या हुआ है तुम्हारे ग्राहक का ?"

मीना ने भीतर से ही उत्तर दिया, "वह नहीं आया।"

"तो हलुआ-पूरी का क्या हुआ ?"

"मैंने स्वयं खा लिया है।"

"सब ?"

"हां, बहुत भूख लग रही थी।"

"ओह मीना ! मुझको ही बुला लेती।"

"देखो चन्दू भैया ! मुझको ऐसी बात मत कहा करो। तुमको देख मुझको तारा भैया की याद आने लगती है।"

"अच्छा यह बताओ। आज घाट पर नहीं जा रही ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"मैं कुछ दिन आराम करना चाहती हूं।"

"तो खाना-पीना कैसे चलेगा ?"

"तुमको तो एक रजत नित्य चाहिये न ? सो तुम को मिल जाया करेगा।"

"कौन देगा तुमको ?"

"है एक।"

जब मीना विना शृंगार किये घर से बाहर निकली तो चन्दू उसके साथ चलने को तैयार हो गया। मीना ने कहा, "मैं अकेले जाना चाहती हूं।"

"मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा।"

"मुझको किसी की रक्षा की आवश्यकता नहीं।"

"तो तुम मुझ से चोरी-चोरी कोई काम करना चाहती हो ?"

"हां।"

"अच्छी बात है, जाओ।"

मीना चली तो वह उसके कुछ अंतर पर पीछे-पीछे जाने लगा। मीना ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह नदी घाट पर गयी और उस पेड की ओर चल पड़ी, जहा पिछली रात वह ब्राह्मण 'नारायण नारायण' जप रहा था। वह आज भी वहां जप कर रहा था। बहुत लोग उसको

देख रहे थे। वह अपने ध्यान में मस्त श्रीमन्नारायण का जाप कर रहा था।

मीना वहां जा भीड़ के आगे ही चौकड़ी मार एक ओर बैठ गयी। इस पर कुछ लोगों को विस्मय हुआ और कई ऊँचे स्वर से हंसने लगे।

एक ने कहा, "अब रंग जमा है। यह वेश्या इसकी तपस्या सफल कर देगी।"

"ही-ही-ही" सब हंसने लगे।

"यह बहुत सुन्दर नहीं है। इसकी तपस्या यह नहीं डिगा सकेगी।" एक और ने कहा "तो तुम अपनी दासी को ले आओ न। थोड़ा आनन्द आ जायेगा।"

"न दादा! वह मुझको बहुत प्रिय है। कहीं इस महात्मा के चँगुल में फंस गयी तो वैसी और कहां से लाऊँगा।"

"हा-हा-हा" फिर सब हसने लगे।

इस प्रकार डेढ प्रहर के काल में बहुत आये और ब्राह्मण देवता पर टीका-टिप्पणी कर चल दिये। ब्राह्मण किसी की सुन नहीं रहा था। वह आंखें मूंदे अपने जप में व्यस्त था।

चन्दु मीना को इस ब्राह्मण के सामने बैठा देख, विस्मय करता हुआ, भीड़ के पीछे खडा देख रहा था। वह समझ नही सका था कि इस के पास वह क्या लेने आयी है?

मध्य रात्रि हुई। लोग विदा होने लगे। मीना उठी और नदी में से मुख हाथ धो, हलवाई की दूकान से आज फिर पूरी, शाक-भाजी और मिठाई ले आयी। महात्मा के सामने आ बोली, "महाराज! भोजन लायी हू।"

चन्दु दूर खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। वह मीना को आगे आ, महात्मा से बातें करते देख उनकी बातें सुनने के लिये पेड़ के पीछे छुप कर खडा हो गया।

ब्राह्मण ने आंखें खोलीं और सामने पिछली रात वाली स्त्री को बैठे देख कहा,

"तो तुम फिर यहां आ गयी हो?"

"हां, महाराज! भोजन लायी हूं।"

"मैं तो आठ प्रहर में केवल एक बार खाता हूं।"

"तो कल मध्याह्न के समय भोजन मेरे यहां करियेगा।"

"नहीं, अभी नहीं। फिर किसी दिन।"

"कल क्यों नहीं महाराज?"

"देखो बेटी! अपने मन से पूछो। उत्तर मिल जावेगा।"

मीना का साहस नहीं हुआ कि और अधिक पूछ सके। वह भोजन स्वीकार न करने का कारण विचार करती हुई वहां बैठी रह गयी। इसपर उस बाबा ने कहा, "यह तुम स्वयं खा लो और जाओ विश्राम करो। तुमको इसकी बहुत आवश्यकता है।"

मीना ने झुक कर नमस्कार किया और वहां से उठ नदी के तट पर आ बैठी। वहां एक पूरी और कुछ मिठाई नदी में प्रवाह कर शेष खाने बैठ गयी। उसने पहिला ग्रास मुख में डाला ही था कि पीछे से आवाज आयी, "बहुत भूख लगी है मीना!"

यह चन्दु था। मीना ने उसको देखा और कहा, "हां!"

"मैं भी आऊं?"

"यह लो।" उसने चार पूरी और कुछ हलुआ उसके हाथ पर रख दिया। वह भी उसके समीप बैठ खाने लगा।

खाते-खाते चन्दु ने पूछा, "यह कौन है?"

"कौन कौन है?"

"वह जो 'नारायण नारायण' कर रहा है?"

मीना मुस्कराई और बोली, "उसी से जा कर पूछ लो न?"

"तो तुम नहीं जानतीं?"

"नहीं।"

"तो ऐसे ही उसको खिलाने के लिये हलुआ-पूरी ले गयी थी।"

"मन ने कहा और ले गयी। मन ने कहा तो तुम को दे दिया। तुम-

ही बताओ न कि तुम को क्यों दिया है ?"

"मैं तुमको अपने मकान में आश्रय दिये हुए हूँ।"

"उसका तो मैं भाड़ा देती हूं।"

"इस पर भी मैं हूं तो मालिक।"

"किस के मालिक हो?"

"तुम लोगो का, जो मेरी रक्षा में व्यापार करते हो।"

"मैं कई बार कह चुकी हूं कि मुझको तुम्हारी संरक्षा की आवश्यकता नहीं है।"

"यह आज तुमको हो क्या गया है, मीना ?"

"मन में कुछ अंतर आ गया है। एक व्यर्थ के प्रयोग से युवावस्था ढल गयी प्रतीत होती है। यौवन का उन्माद कम हो रहा है।"

"तो निर्वाह कैसे होगा?"

"यही विचार कर रही हूं।"

"विचार करने में सहायता दूं?"

"दे सकते हो।"

"तुम मेरी पत्नी बन जाओ और हम दोनों इस धंधे को और भी उन्नति देंगे।"

"दूसरो की बहू-बेटियो को बिगाड़ने का धंधा। तुम्हारी कनखैया ने मेरा सत्यानाश किया और तुम चाहते हो कि मैं दूसरों को इसी गर्त में गिराने का यत्न करूं? मैं यह नही करूंगी।"

"हम किसी को बिगाड़ते थोड़े ही हैं? बिगड़ती तो वे हैं समाज की अवस्था देख कर। हम तो उनके बिगडने से उत्पन्न लाभ मे अपना-अपना भाग बटवा लेते हैं।"

"नही चन्दु देवता! मुझसे यह नही हो सकेगा।"

"तो मालूम होता है कि तुमने बहुत कमा लिया है। जीवन भर खाने के लिये काफी हो गया है।"

"बहुत तो नही।" चन्दु को वह अपनी सम्पत्ति बढ़ा-चढ़ा कर

बताना नहीं चाहती थी। उसको भय था कि कहीं उसको लोभ आ गया, तो वह उसका गला घोट कर, उसका धन लूटने का यत्न करेगा। इस कारण उसने कहा, "दो मास भर खाने के लिये हैं।"

"तो क्या इस महात्मा ने कोई आशा दिलायी है।"

मीना ने उत्तर नहीं दिया। चन्दु सब पूरी समाप्त कर चुका था। मीना के पास अभी पाच-छै और बची थीं। उसने कहा, "मालूम होता है कि अपने महात्मा के लिए बहुत सी लायी थी।"

"हा!" इतना कह मीना ने दो और उसके दोने में फेंक दीं। वह विचार कर रही थी कि कल सब कुत्ता खा गया था। आज इसके पेट में गयी हैं। चलो ठीक हुआ। कमाई जैसी है, वैसो के पेट में जा रही है। अब उसको समझ आ गया कि क्यो महात्मा ने उसका भोजन स्वीकार नहीं किया। वह समझी कि शायद वह उसको पहिचानता है।

: ३ :

दिन पर दिन व्यतीत होने लगे। सायंकाल महात्मा के दर्शको की संख्या बढ़ने लगी। दर्शको के साथ-साथ, उसके भक्तो की सख्या में भी वद्धि होने लगी। दस-बीस स्त्री-पुरुष उसके मधुर स्वर में, "सशंखचक्रं सकिरीटकुण्डलम्।" उच्चारण को अथवा "श्रीमन्नारायण" के जप को रुचि-सहित सुनने वाले आने लगे। मीना इनमें सबसे आगे बैठती थी।

एक दिन इन भक्तो ने निश्चय किया कि सब उसके स्वर के साथ स्वर मिला कर 'श्रीमन्नारायण' का जाप करें। अतएव एक स्वर में बीस स्वर और मिल 'नारायण नारायण' जपने लगे। इससे तो और भी हल्ला मच गया। एक और मास व्यतीत होते-होते महात्मा तत्त्वदर्शी, जिसका नाम उज्जयिनी के नर-नारी के मुख में चढ गया था, घर-घर में निन्दा और प्रशसा का विषय बन गया। वे भीरु लोग जो पहिले का अनाचार, अविचार और नास्तिकता देख-सुन चुप कर रहते थे, अब इस विचारनिष्ठ ब्राह्मण को रसिको की उच्छृंखलता के मध्य में, भगवान् के नाम का नाद

बजाते देख उत्साहित हो अपने मन की बात कहने लगे, "इस नास्तिकवाद ने राज्य में घोर अनाचार फैला रखा है। भगवान् ही इससे छुटकारा दिलवायेगा।"

इस पर भी भगवान् के नाम का विरोध करने वालों की संख्या बहुत अधिक थी। वे लोग कहते थे, "यह ब्राह्मण पुनः संसार की गाड़ी को पीछे की ओर ले जाना चाहता है। यह सहस्रों वर्ष पूर्व का काल फिर लाना चाहता है। हमारे बच्चों को भगवान् से डरा कर, पुनः भीरु बनाने का यत्न कर रहा है। हमारी लड़कियां फिर घरों की चार-दीवारी में बंद कर, धनिकों की सेवा करने के लिये दासियां बना दी जायेंगी। फिर धर्मपत्नी इत्यादि शब्दों की आड़ में स्त्रियों को दासता की प्रेरणा दी जावेगी।

"हम इसको सहन नहीं कर सकते।"

इस प्रकार नगर भर में घोर वाद-विवाद चल पड़ा था। नगर की स्त्रियों ने पंडित तत्त्वदर्शी के आंदोलन का घोर विरोध आरम्भ कर दिया। इन्होंने पद्मा के तट पर एक सभा कर पंडित के व्यवहार की घोर आलोचना की। इस सभा में स्त्रियों ने कहा, "यह ब्राह्मण पुनः कन्यादान, पतिभक्ति, सती-धर्म इत्यादि दासता की बातें समाज में चलाना चाहता है।" स्त्रियों का एक शिष्टमंडल महामात्य भूदेव से मिला और फिर महारानी रेखा से मिला। इस शिष्टमंडल की मांग थी कि इस पंडित को नदी के तट पर कीर्तन करने की स्वीकृति न दी जाये। आचार्य भूदेव का तो यह कहना था, "आपको इससे क्या कष्ट होता है?"

इस शिष्टमंडल की नेत्री एक वेश्या थी। उसने कहा, "भगवन्! किसी कपड़े वाले की दूकान के सामने कोई खड़ा हो कर यह कहने लगे कि इस दूकान में कपड़ा सड़ा-गला बिकता है, तो यह अपराध नहीं होगा क्या?"

"तो उसने ऐसा कहा है कभी?"

"वह 'नारायण-नारायण' का नाम लेता है। इससे तो यही सिद्ध

होता है कि वह कह रहा है कि सांसारिक सुख-वैभव क्षणभंगुर है। यह नृत्य-संगीत और मद्य-मास के अड्डो के सामने जाकर कहना, कपड़े की दूकान के सामने कपडे की निन्दा करने के तुल्य ही तो है।"

"इसको ऐसा क्यो नहीं समझतीं," महामात्य का सुझाव था, "कि दूकान के साथ ही एक दूसरी दूकान निकल आयी है। एक रेशम का कपडा बेचती है तो दूसरी सूती। तुम्हारी दूकान सांसारिक-सुख विक्री करती है और उसकी दूकान परमार्थ का आनन्द विक्रय करती है। तुम अपना माल इतना बढिया रखो कि उसके पास कोई ग्राहक ही न जाये। वह अपने आप अपनी दूकान बन्द कर चला जावेगा।"

इस प्रकार उत्तरहीन हो वह शिष्टमंडल महारानी रेखा की सेवा में गया। वहा उसी नेत्री ने अपनी माग और महामात्य का उत्तर बताया। इस पर रेखा ने कहा,

"मैं आपके भय को समझती हूं। महामात्य अति दुष्ट व्यक्ति है। महाराज अपनी अनुराधा के कारण महामात्य का विरोध नहीं कर सकते। मेरी आजकल उनसे नहीं बनती। एक बात तुम कर सकती हो। महामात्य के कथनानुसार, तुम भी अपनी दूकान की सजावट बढा-चढा कर रखो। वे 'नारायण नारायण' करें तो तुम उसकी दूकान के सामने कुछ ऐसा कहो न—

"अँखिया मटक-मटक क्या कहतीं
इस जीवन के सुलभ स्वाद को
मूर्ख छोड असत्य आशा पर
भटकत-भटकत क्यो रहतीं।
अँखिया मटक-मटक क्या कहतीं।"

महारानी रेखा के सुझाव पर इन स्त्रियो ने एक क्रियात्मक कार्य-क्रम बनाया। जहां तत्त्वदर्शी का कीर्तन होता था, वहां पर उसके चारो ओर नाचने वालियो ने अपने अखाड़े लगाने आरम्भ कर दिये।

तत्त्वदर्शी नदी तट से दो सौ पग के अंतर पर एक पेड़ के नीचे बैठता था। इस पेड़ के चारों ओर तीन-चार सहस्र कीर्तन करने वाले एकत्रित होने लगे थे। महामात्य के स्त्रियों के शिष्टमंडल को दिये उत्तर को सुन, तो कीर्तन करने वाले और भी अधिक संख्या में आने लगे थे। इस कीर्तन करने वालो और नदी तट के मध्य, एक नर्तकी ने अपना अखाड़ा लगा दिया। कीर्तन करने वालो के उत्तर-पश्चिम-दक्षिण में भी अन्य नर्तकियो ने अपने प्रदर्शन आरम्भ कर दिये। 'नारायण नारायण' की ध्वनि को डुबोने के लिये चारो ओर से पायलो की झकार, मृदंग की धमक, वीणा की स्वरलहरी गूँजने लगी। परन्तु सहस्रों नर-नारियो के कण्ठ से उठ रही 'नारायण नारायण' की ध्वनि में यह सब प्रयास विफल गया।

यह देख नगर की नर्तकियो ने एक षड्यंत्र किया। प्रायः सायं, दिन के चौथे प्रहर के आधे व्यतीत हो जाने पर, भक्त जन एकत्रित हुआ करते थे और रात्रि के एक प्रहर व्यतीत हो जाने तक कीर्तन चलता था। नर्तकियो ने दिन के तीसरे प्रहर को ही पंडित तत्त्वदर्शी के सामने, उसी पेड के नीचे जा अखाडा लगाया। और जब भक्त लोग नित्य के समय पर आये तो वहां पर एक सुन्दर नर्तकी को नृत्य करते देख चकित रह गये। महात्मा नित्य की भांति पेड़ के नीचे पद्मासन लगाये, आंखे मूंदे 'नारायण-नारायण' जप रहा था।

नर्तकी गा रही थी—

"गोरी पनिया भरन चली पनघट में,
भारी गगरिया गरदन मुचकाये री,
पतली कमर मुड़-मुड़ बल खाये री,
छतिया धरकत मोरी न छुपत पट में।
गोरी पनिया भरन चली पनघट में॥"

'छननन छन छननन्न छन' पायलो की झनकार के साथ यह गाना हो रहा था। जब यह नृत्य समाप्त हुआ तो एक और नाचने वाली उठी और नाचने लगी। इस समय तक भक्तजन भारी संख्या में एकत्रित हो गये

थे। उन्होंने कहना आरम्भ कर दिया, "बस करो! बस करो! नाच बन्द करो।"

नाच बन्द नहीं हुआ। दोनो ओर से आवाजें आने लगी। एक पक्ष के लोग कहते थे, "नाच बंद करो," दूसरे पक्ष के लोग कहते थे, "कीर्तन नहीं होगा।"

इस समय तत्वदर्शी ने आखें खोली और हाथ खड़ा कर शान्ति-स्थापन करने के लिये कहा। भक्त-जन तो चुप कर गये, परन्तु नाच के पक्ष वाले लोग हल्ला करते रहे। जब हल्ला बंद नहीं हुआ, तो तत्वदर्शी ने, ऊचे और मीठे स्वर में, भगवत् भजन आरम्भ कर दिया, "श्री मन्नारायण नारायण।"

सहस्रो एकत्रित भक्तो ने स्वर के साथ स्वर मिला दिया। जब नाच के पक्ष वालो की मृदंग और वीणा की कोमल ध्वनि, उस नारायण की पुकार में डूब गयी, तब इन नर्तकियो के समर्थको ने लाठिया निकाल ली और भीड पर पिल पडे। बहुत से लोग तो भाग खड़े हुए। भागते हुए उन्होने कइयो को पावो के नीचे कुचल डाला। जो बैठे रहे, उनका नाच-गाने के पक्ष वालो ने मलीदा बना दिया।

जब लाठियो के प्रहार तत्वदर्शी पर होने लगे तो कई भक्त भाग कर उसके ऊपर लेट गये। इनमें मीना भी थी। चन्दू लाठी चलाने वालो में सबसे आगे था। उसकी लाठी मीना पर पड़ी तो मीना के मुख से 'आ, आ' की चीख निकल गयी। चन्दू पहिचान गया। उसने चिल्ला कर कहा, "अरे! ये तो मर गये।" लोग रुक गये।

कुछ ही क्षणो में यह काड हो गया। पचास-साठ लोग कराहते हुए वहां रह गये। तीन सर्वथा मर गये। अनेको अचेत हुए। अचेतो में मीना और तत्वदर्शी भी थे। शेष सब भाग गये।

चन्दू कुछ काल पश्चात् मीना को देखने वहां आया। पीड़ा से कराहते हुए भक्तो के ऊपर से कूदता हुआ, चन्दू तत्वदर्शी के बैठने के स्थान पर पहुंचा, तो उसने देखा कि मीना बुरी भांति घायल हो वहां बैठी थी।

उसको चेतनता हो चुकी थी और वह महात्मा के हृदय स्थान पर हाथ रख देख रही थी कि वे जीवित है अथवा नही। इस समय चन्द्रू वहां पहुंचा। चन्द्रू मीना को जीवित देख, प्रसन्न हो बोला, "भगवान् का धन्यवाद है कि तुम बच गयी हो। चलो घर ले चलूं।"

इस समय तक मीना यह देख चुकी थी कि तत्त्वदर्शी भी जीवित हैं। इस कारण वह चन्द्रू का आश्रय ले उठी और नदी से आंचल भिगो, जल ले आई और उसके मुख और आंखों पर लगा कर उसको सचेत करने लगी। चन्द्रू यह सब कुछ देख रहा था। उसको समझ नहीं आ रहा था कि वह क्यो उसकी सेवा कर रही है। जब तत्त्वदर्शी सचेत हो गया तो फिर उसने कहा, "अब तो चलो मीना! वह अपने नारायण से सहायता माग लेगा।"

"चन्द्रू एक रथ ले आओ। इनको भी घर ले चले।"

"क्यो ?"

"वहा इनकी सेवा कर इनको ठीक कर देंगे।"

चन्द्रू खिलखिलाकर हस पड़ा। वह मन में विचार कर रहा था कि उसने ही तो उसको मार डालने का यत्न किया था और अत वह ही उसकी जान बचाने का यत्न करे? कुछ विचार कर बोला, "रथ वाला दो रजत मागेगा।"

"तो दे देंगे।"

"मेरे पास नही है।"

"पहिले कब तुम मेरे लिये खर्चा करते हो, जो आज चिन्ता कर रहे हो ?"

"तो ठीक है। घर पर रखने का खर्चा भी पडेगा ?"

"चन्द्रू! जाओ रथ ले आओ।"

"नहीं देवी!" तत्त्वदर्शी ने धीमे स्वर में कहा, "तुम कष्ट...।" इतना कहते-कहते वह पुनः अचेत हो गया। मीना का कड़ा स्वर सुन चन्द्रू रथ लेने चला गया। मीना ने फिर उसको सचेत करने का

यत्न किया, परन्तु इस बार वह सफल नहीं हुई। इसी अचेत अवस्था में चन्दू और मीना ने उसको रथ में डाला और घर पर ले गये।

घर पर ले जाकर, मीना ने उसको अपनी खाट पर लेटा दिया और चन्दू को उसी रथ पर भेज दिया कि वह वैद्यराज को बुला लाये। चन्दू फिर विस्मय में मुख देखने लगा।

"जाओ न चन्दू!" मीना ने चन्दू का हाथ पकड़ बाहर धकेलते हुए कहा।

"पर धन?"

"इस समय के लिये है।"

"फिर कल क्या होगा?"

"मै पैदा कर लूँगी।"

'तो फिर वेश्या-वृत्ति करोगी?"

"हां।"

"इस बुड्ढे के लिये?"

'हां।"

चन्दू हंसता हुआ चला गया।

वैद्य आया। उसने नाडी देखी और अपनी पोटली में से एक गुटिका निकाल, एक छोटे से खरल में घिस कर, मधु में लपेट, महात्मा जी की जिह्वा पर लगा दी। ज्यों ही औषधि मुख में गयी, महात्मा जी की आखें खुलने लगीं। एक चौथाई घडी में महात्मा जी को चेतना हो गयी। पश्चात् वैद्यराज ने अपने झोले में से एक तेल निकाल, घावों पर लगा, पट्टी बाध दी।

दो मात्रा औषधि देकर वैद्य जी बोले, "कल फिर आऊंगा और पट्टी बदल दूंगा। दस रजत मेरी भेंट दो और दो रजत औषधि का दाम। इतना ही कल लगेगा।"

मीना ने बारह रजत वैद्य की हथेली पर रख दिये और चार रजत रथ वाले को दे दिये। वैद्यराज से छुट्टी दो दिन में नहीं हो सकी।

पांच दिन लग गये और सब खर्चा लगभग सत्तर रजत हो गया।

सीता का संचित धन समाप्त हो गया। केवल दस रजत रह गये थे। अर्थात् दो दिन का खर्चा उसके पास और था।

: ४ :

जिस दिन से नदी तट पर नारायणपंथियों और नर्तकियों के पक्षपातियों में झगड़ा हुआ था, नगर में इसकी चर्चा होने लगी। रसिकों ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की। घर-घर में कीर्तन करने वालों के सिर फूटने के औचित्य पर वादविवाद चल पड़ा। इस घटना का समाचार महामात्य और महाराज को भी मिला। इसकी भीषणता का अनुमान लगा, महाराज ने इस प्रश्न को राज्य-परिषद् में विचारार्थ रख दिया।

इस घटना के दो दिन पीछे की बात थी। महाराज कुमारदेव ने राज्य-परिषद् में कहा, "यह अव्यवस्था राज्यसत्ता को हानि पहुंचाने वाली है।"

न्यायमंत्री ने कहा, "आज इस घटना को हुए दो दिन हो चुके हैं। किसी ने भी इसका अभियोग न्यायालय में नहीं चलाया। हमारे गुप्तचर विभाग को यह सूचना मिली है कि वह ब्राह्मण घायल होकर, उसके घर में ही गया है, जिसने कीर्तन करने वालों पर सबसे अधिक लाठी चलायी थी। यह भी कहा जाता है कि उसको घायल करने वाला भी वही बदमाश है। हमारे एक गुप्तचर का यह भी कहना है कि चन्द्र बदमाश के घर में, जहां वह ब्राह्मण रह रहा है, एक वेश्या भी रहती है और वह कीर्तन करने वालों में सब से आगे जाकर बैठती थी।"

"तो आप क्या यह समझते हैं कि इस वेश्या के लिये ही लाठियां चली हैं?"

उत्तर महामात्य ने दिया, "यह बात नहीं है। यह वेश्या और चन्द्र बदमाश दोनों ही इस ब्राह्मण, जिसका नाम तत्त्वदर्शी है, के गांव के रहने वाले है। वह वेश्या तो इस बात को जानती है, परन्तु न तो वह ब्राह्मण

जानता है और न ही चन्द्र को यह बात पता है । मीना, यह वेश्या का नाम है, अपनी वेश्या-वृत्ति छोड़ चुकी है । वह अपने मन में इस महात्मा की चेली बन चुकी है। अभियोग न तो वह ब्राह्मण चलायेगा और न ही मीना। महात्मा तो इस में रुचि नहीं रखता और मीना जानती है कि चन्द्र सबसे बडा अपराधी है। वह अपने को और चन्द्र को इस अभियोग में आने नहीं देना चाहती। इस कारण मैं समझता हूं कि इस घटना के विषय में राज्य की ओर से जाच कर अपराधियो को दड का विधान करना चाहिये ।" इस बात का समर्थन महाराज ने भी कर दिया ।

अगले ही दिन नगरपाल को आज्ञा हो गयी कि दुर्व्यवस्था करने वालों को राज्य-दंड दिलवाने का आयोजन करे। यह किसने उत्पन्न की है, इसका निर्णय न्यायालय करे ।

नगरपाल ने लगभग एक सौ व्यक्तियो को पकडने की आज्ञा कर दी। तत्त्वदर्शी के बीमार होने के कारण उसको और चन्द्र और मीना को नहीं पकडा गया। उनके घर के चारो ओर रक्षक बैठा दिये गये, जिससे वे भाग न सकें।

तत्त्वदर्शी को जब यह पता मिला कि उसको पकड़ने के लिये नगर सुरक्षाविभाग के लोग बैठे है तो उसको मन में शान्ति मिली । उसने कहा कि वह देखेगा कि भगवद्-भजन के लिये उसको मृत्यु दड दिया जाता है अथवा नही। मीना ने जब इस पर चिन्ता प्रकट की तो महात्मा ने कह दिया, "उसको ध्रुव की भांति कष्ट भोगने देना चाहिये, तब ही हिरण्यकश्यप के संहार के लिये नरसिंह का अवतार होगा।"

एक दिन न्यायाधीश पंडित मनोज उससे मिलने आया और तत्त्वदर्शी से प्रश्नोत्तर करने लगा। न्यायाधीश ने पूछा, "आप कहा के रहने वाले है ?"

"आपके पूछने का इसमें प्रयोजन क्या है ?"

"मैं राज्य का न्यायाधीश हूं। उस दिन की नदी के तट पर हुई मार-पीट की जांच के सम्बन्ध में यह जानने आया हूं।"

"पीटने वालों का लक्ष्य मैं था और मैं इस विषय में कोई अभियोग चलाना नहीं चाहता।"

"अपने पीटे जाने के विषय में आप यह कह सकते हैं। परन्तु उस समय तो लगभग पचास लोग घायल हुए थे और तीन मृत्यु के ग्रास हो गये हैं। उनकी ओर से तो आपको दोषियो को क्षमा कर देने का अधिकार नहीं है। साथ ही यह बात तो अभी विचारणीय है कि दोषी कौन है? आप भी तो अपराधी सिद्ध हो सकते हैं?"

"यह ठीक है। आप पूछिये। क्या जानना चाहते हैं?"

"आप कहां के रहने वाले हैं?"

"पंवार गांव का रहने वाला हूं।"

"आपको विदित है कि यह मीना और चन्दू किस गांव के रहने वाले हैं?"

"नहीं, मै नही जानता।"

"तो आप इसके घर में क्यो आये है?"

"मै आया नही। मै अचेत था। मुझको ये लोग यहां ले आये थे। नगर के वैद्यराज इसके साक्षी है कि मैं यहां अचेत था।"

"अभी आप यहां से जाने के योग्य हैं अथवा नहीं?"

"वैद्यराज अभी मेरे यहां से चले जाने को ठीक नहीं समझते।"

"उनकी सम्मति में आप कब तक इस घर को छोड़ सकेंगे?"

"उनके विचार में अभी दो-तीन दिन और लगेंगे।"

"आप तब कहां जावेंगे?"

"नदी तट पर कीर्तन करने।"

"अपने गांव को क्यों नहीं चले जाते?"

"भगवान् का नाम सुनाने की आवश्यकता नदी तट पर अधिक है।"

"पर हमारा पूछना यह है कि भगवान् के भजन का तुमने ठेका ले लिया है?"

"हां, आपने इसको अभी किसी प्रकार की आज्ञा से बन्द नहीं किया।"

"इस पर भी यदि किसी बात को लोग पसन्द न करें तो वह नहीं करनी चाहिये।"

"मैं समझता हूं कि मैंने ऐसा करने से न तो किसी प्रकार से राज्य-नियम का भंग किया है और न ही लोगो को किसी बात के लिये विवश किया है। इसके विपरीत कुछ बदमाशों ने अकारण हम पर लाठियां चलायी हैं।"

"तो उन बदमाशो को तुम दंड दिलवाना चाहते हो?"

"हां, परन्तु उससे ही, जिसके भजन करने वालो को इन्होंने पीटा है।"

"वह कैसे दड देगा इनको?"

"यह तो मैं नहीं बता सकता। उसके ढंग न्यारे हैं। वह कौन उपाय प्रयोग करेगा, यह उसके ही विचार करने की बात है।"

"तो आपका अभिप्राय यह है कि राज्य अपने न्यायालय को बंद कर दे। वह अर्थात् भगवान् स्वयं ही अपराधियो को दंड देता रहेगा।"

"मैंने यह नहीं कहा। यह राज्य का काम है कि किसी को दंड दे अथवा न दे। मैं राज्य नहीं और मुझको किसी पर दोषारोपण नहीं करना।"

न्यायाधीश ने मीना और चन्दू से भी पूछगीछ की। मीना ने कहा, "मैं जानती हूं कि किस-किस की लाठी से मैं और महात्मा जी घायल हुए हैं, परन्तु मैं बताना नहीं चाहती।"

"क्यो?"

"मैं नहीं चाहती कि मेरे लिये किसी को भी दंड दिया जावे।"

"यही तो पूछ रहा हूं कि क्यो?"

"मैं पापिन हूं। मैंने भारी अपराध किये हैं। शायद मेरे उन्हीं अपराधो के दंडस्वरूप मेरी पिटाई हुई है।"

"तो तुम राज्य-प्रबन्ध में विघ्न डालना चाहती हो?"

"मेरा पीटा जाना किसी प्रकार भी राज्य-प्रबन्ध को बिगाडने वाला

नहीं हुआ। इस पर भी यदि राज्य यह समझता है कि उस दिन के दंगे से किसी प्रकार को भी उसको हानि हुई है, तो वह अपराधी को दंड देने मे स्वतंत्र है ।"

"और यदि तुम अपराधी को जानते हुए भी, उसका नाम नहीं बताना चाहती, तो तुम भी अपराधी होगी।"

"इसका अर्थ तो यह होगा कि अपने सूचनाविभाग के दोषो के लिये मुझको दंड दिया जावेगा । आप अपने कर्मचारियो के द्वारा अपराधियो का पता करिये और उनको दड दीजिये । मुझको इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ?"

मनोज समझ गया कि ये दोनो लोग उसको कुछ नही बतावेगे। चन्दू भी मीना की बात को सुन रहा था । उसके मन में मीना के, उसके विरुद्ध अभियोग चलाने से न कर देने पर, उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। जब मनोज चला गया तो उसने मीना से कह दिया, "तुमने मेरे विरुद्ध कह क्यो नही दिया ?"

"तुमने तो मुझको पीटा नहीं, फिर मै तुम्हारा नाम क्यो लेती ?"

"तुम जानती तो हो कि मेरी लाठी से ही महात्मा जी घायल हुए थे ?"

"तो महात्मा जी से जाकर कहो न कि वे तुम्हारा नाम बता दें।"

"तुम भी तो बता सकती थीं।"

"न बाबा ! तुमने पीटा महात्मा जी को और तुम्हारी निन्दा करूं मै। यह नही हो सकेगा।"

"तुमने मुझको बचा लिया है। मै तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"व्यर्थ की बाते मत करो चन्दू ! मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं।"

उसी सायं चन्दू ने महात्मा तत्त्वदर्शी से कहा, "महाराज ! मै नहीं जानता था कि आप हमारे गांव के रहने वाले है। मै और यह मीना भी पंवार के रहने वाले है। यह वहां के तारा कुम्हार की बहिन है। इसका भाई मेरा बहनोई है ।"

"तारा की बहिन ?" तत्त्वदर्शी ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा।

उसने मीना को बुला कर कहा, "तुमको मालूम है कि मैं तारा के यहां भोजन करने जाया करता हू और तुमने मुझको बताया भी नहीं कि तारा तुम्हारा भाई है ?"

"महाराज ! मुझको अपने व्यवसाय पर लज्जा आ रही थी और मैं अपने भाई को बदनाम नही करना चाहती थी।"

"बेटी ! तुम तो मेरी अपनी हो। तारा बहुत ही अच्छा लडका है। वह तुमको पुन. अपने घर रख लेगा। तुम यह व्यवसाय छोड़ कर गांव में चली चलो।"

"पर मैं तो महाराज !" चन्दू ने कहा, "यह जानने आया था कि प्रातः जब न्यायाधीश आपसे पूछने आये थे कि आप अभियोग चलाते क्यो नहीं ? आपने न क्यो कर दी थी ?"

"चन्दू बेटा ! मुझको मालूम भी तो नहीं कि मुझको किसने क्यों पीटा है ?"

"पीटे जाने का कारण तो आपको विदित ही है। हम लोग आपका कीर्तन वहां पसन्द नहीं करते थे। इस कारण हमने आपको पीटा है।"

"तो बेटा ! तुम स्वयं ही वहां जाकर कह दो न कि तुमने मुझको क्यो पीटा था।"

"यदि मैं सत्य-सत्य बता दूँ तो मुझको तो मृत्यु-दंड मिल जावेगा।"

"तो क्या तुमने इतना घोर अपराध किया है ?"

"हां महाराज ! हमने यह निश्चय किया था कि आपको मार ही डालेंगे। मैं तो मार ही डालता, यदि यह मीना बीच में न आ कूदती। जो लाठी इसकी पीठ पर पडी थी, वह आपके सिर पर पड़ने के लिये थी। वह लग जाती तो आपकी खोपडी अवश्य दो टूक हो जाती।"

"तब तो यह और भी आवश्यक हो गया है कि तुम जाओ और न्यायाधीश के सामने अपना अपराध स्वीकार करो, जिससे तुमको दंड मिल सके और भगवान् को दंड देने का अवसर ही न मिल सके। क्या जाने उसके यहा से मृत्यु से भी कोई अधिक कठोर दड मिल जाये।"

"तो मृत्यु से भी कोई कठोर दंड हो सकता है ?"

"क्यों नहीं। मान लो, तुमको कुष्ठ रोग हो जावे, जिससे तुमको जीवन भर कष्ट सहन करना पड़े। दिन-दिन में तुम्हारा शरीर गल-गल कर झरता चला जावे और तुमको यह गलता देख एक निश्चित परन्तु दूर से समीप आती हुई मृत्यु दिखाई दे। कितना भयंकर दृश्य होगा यह ? और फिर दिन प्रति दिन धीरे-धीरे समीप आती हुई मृत्यु कितनी दुःखदायी होगी ?"

चन्द्रू इस बात को सुन कांप उठा। उसने कहा, "महाराज ! क्या इस अपराध का यह दंड हो सकता है ? मैंने तो ऐसा नही समझा था।"

"तो क्या समझा था तुमने ? मुझको मार डालने के अपराध में तुमको क्या दंड मिलना चाहिये, तुम्हारे विचार में ?"

"मैं तो समझता था कि मैं मार कर भाग जाऊंगा। कोई मुझको पकड़ नहीं पायेगा। किसी राज्याधिकारी को पता चलेगा नहीं और मुझको दंड मिलेगा नहीं।"

"यह तो ठीक है। किसी राज्याधिकारी ने नही देखा, परन्तु भगवान् तो सब को सदैव देखता रहता है। उसकी लाखो आखो से तुम कैसे बच सकते हो ?"

"पर महाराज ! मेरा मन न्यायालय मे जाने से डरता है।"

"यह तुम्हारे मन की इच्छा है। मैं तुम्हारी बात किसी से नही बताऊंगा। इस पर भी क्या तुम मुझको बता सकोगे कि तुमने मुझे मार डालने का निश्चय क्यों किया था ? मैंने क्या अपराध किया था ?"

"आपके उपाय से तो हम सब भूखे मर जाते ? नदी तट पर विषय-वासना में लिप्त मनुष्यो का आना-जाना बंद हो जाता। इससे हमारे व्यवसाय अर्थात् युवा-पुरुषों के पास वेश्याओं को पहुंचाने का काम कम हो जाता और हम भूखों मरने लगते।"

"यह काम तो मैं बंद कराने के लिये अभी भी वहां जाया करूंगा।"

"अब मेरी इस काम में रुचि नहीं रही।"

"तब तो ठीक है। न्यायालय में जाकर, जहां तुमको चाहिये कि अपना अपराध स्वीकार कर लो, वहां भविष्य में इस काम को न करने का वचन देते हुए, पिछले अपराध के लिये क्षमा मांग लो।"

"कौन क्षमा कर सकता है ?"

"मनुष्य तो क्षमा करता ही है। कई अपराधियों की दशा देख, कई राजे-महाराजे क्षमा करते हैं।"

चन्दू के मन में बात बैठ गयी। वह इस समस्या को इस प्रकार विचार करने लगा कि उसने अपराध तो किया है। यदि मनुष्य के सामने अपराध स्वीकार करके क्षमा याचना करेगा तो क्षमा किया भी जा सकता है। यहां लुकाव-छुपाव करके भगवान् से क्षमा-याचना करेगा तो वह क्षमा क्यों करेगा? वह तो कष्ट देगा ही। इस प्रकार वह बहुत काल तक विचार करता रहा। रात भर इन विचारों में वह सो नहीं सका। अगले दिन उसने मीना से पूछा, "मीना! तुम क्या समझती हो कि न्यायाधीश के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिये?"

मीना ने चन्दू और महात्मा जी के भीतर हुई बात सुनी थी। इस पर भी उसने कहा, "चन्दू भैया! अपने मन में निश्चय कर लो। यह भी संभव है कि तुमको क्षमा न किया जा सके। उस अवस्था में तुम मृत्युदंड पा जाओगे।"

"पर महात्मा जी तो कहते थे कि महाराज के यहां से क्षमा की आशा अधिक है।"

"यह अनुमान ठीक तो प्रतीत होता है, इस पर भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। यदि तुमने अपना अपराध इस लिये स्वीकार करना है कि तुम अवश्य ही क्षमा कर दिये जाओगे, तो मत जाओ। अपराध स्वीकार तो इस लिये करना चाहिये कि किये अपराध को छुपाना तो अपराध को और अधिक करना है। जितनी देर तक अपराध छुपा कर रखा जावेगा उतना ही दंड बढ़ता चला जावेगा। इससे यह विचार

कर अपराध स्वीकार करना चाहिये कि एक बोझा उतारना है। यदि यह विचार नहीं है तो जाने में लाभ नहीं होगा।"

: ५ :

जब नगरपाल की आज्ञा से नगर में पकड़-धकड़ आरम्भ हुई तो एक भारी हल्ला मचने लगा। पकड़े जाने वालों में कीर्तन करने वाले भी थे और नर्तकी का नाच देखने वाले भी। इस कारण दोनों पक्ष के लोग महामात्य, महाराज और रेखा देवी के पास पहुंचने लगे और अपने-अपने पक्ष के समर्थन में मांग करने लगे। महाराज ने यह उचित समझा कि एक सार्वजनिक स्थान पर कीर्तन करना अपराध है अथवा नहीं, इसका निर्णय राज्य-परिषद् करे। इस विषय में विधान करना चाहिये कि एक सार्वजनिक स्थान पर कौन-कौन काम किया जा सकता है।

इस वि य पर न्यायाधीश मनोज ने भी स्पष्टीकरण की मांग की थी। अतएव इस विषय पर विचार करने के लिये राज्य-परिषद् की एक विशेष बैठक की गयी।

नगरपाल का कथन यह था कि राज्य ने नदी-तट जनता के मनोरंजन के लिये नियत किया है। वहां इसके अतिरिक्त कोई अन्य कार्य करना अपराध होना चाहिये। महाराज कुमारदेव का भी ऐसा ही मत था और वह इस विषय पर राज्य-सभा से व्यवस्था चाहता था। इस कारण राज्य-परिषद् की यह बैठक हुई और उसमें नगरपाल और मनोज का मत उपस्थित कर दिया गया।

महामात्य ने प्रश्न को उपस्थित करते हुए इसकी व्याख्या कर दी। उसने कहा, "विचारणीय विषय यह है कि मनोरंजन किसको कहते हैं। क्या केवल नाच-गाना ही मनोरंजन के साधन हैं अथवा कुछ और भी बातें हैं जो मनोरंजन में आ सकती हैं। एक व्यक्ति नदी में तैरता है। दूसरा नदी के तट पर बालू में लेटता है। एक गाना गाता है। दूसरा नाचता है। एक तट पर के निकुंजों में अपनी प्रेमिका से सहवास:

करता है और दूसरा हलवाई की दूकान पर बैठ कर हलुआ खाता है। इस कारण मनोरंजन का विश्लेषण करना चाहिये।"

इस पर राघव ने कहा, "इन्द्रियो के सुख-स्वाद को मनोरजन कहना चाहिये।"

पंडित सुखदर्शन ने पूछ लिया, "कविता लिखना क्या होगा? यह मनोरजन माना जावेगा अथवा नही? एक पुरुष नदी तट पर बैठ कर विरह-गीत गाता है। इसको आप क्या कहेगे? एक व्यक्ति को अपनी प्रेमिका को किसी अन्य की संगत में देख, मनोरजन होगा अथवा कुछ और?"

"मनोरंजन का अर्थ केवल दूसरो को सुख पहुचाना होना चाहिये।"

"परन्तु जब कोई पुरुष अपनी प्रेमिका को किसी दूसरे की संगत में देखेगा तो दूसरे के लिये सुखकारक होते हुए भी मनोरजन नहीं होगा।"

"प्रेमी को इसमें दुख नहीं मानना चाहिये।"

"तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि किसी का मनोरंजन किसी दूसरे को चिकर न हो तो वह उससे दुःखी न हो। वह वहा पर जावे ही नहीं।"

"हा, ऐसा ही होना चाहिये।"

इस पर महामात्य ने कहा, "यदि कोई बहुत भद्दे स्वर में गा रहा हो और कुछ सुनने वालों को वह स्वर पसन्द न हो तो वे वहा सुनने न जावें। यही अभिप्राय है न आपका?"

"भद्दे स्वर में गाने वाला न गाये।" महाराज का कहना था।

"भद्दे और मीठे स्वर में भेद सुनने वाला करे अथवा गाने वाला? फिर यदि सुनने वालो में मतभेद हो जावे तो निर्णय कौन करे? इसमें एक बात और भी है। कोई गाता है, 'तोरे नैनन तीर चलावत हे।' दूसरा गाता है, 'मै रसिया तुम रस भरी।' एक और गाता है, 'मत-खेलो होरी गोरी, फगुआ निवट गया।' इसी प्रकार भिन्न-भिन्न भाव के

गीत गाये जा सकते हैं। तो किसकी पसन्द चलेगी ? इस प्रकार तो काम नहीं चल सकता। हमारा कहना है निर्णय यह होना चाहिये कि यह घाट सार्वजनिक है। सब कोई वहां जाकर अपने विचार और रुचि के अनुसार अपना मनोरंजन कर सकते हैं। शर्त केवल यह है कि दूसरे के मनोरंजन में बाधा न डाले।"

"पर वहा तो एक मत का प्रचार हो रहा था। हम एक स्थान पर, जो मनोरंजन के लिये नियत किया गया है, एक मत के प्रचार के लिये प्रयोग करने नहीं दे सकते।"

"राज्य का तो कोई मत है नहीं। इस कारण हम किसी के मत में हस्तक्षेप नही करते। हम मत को न पसन्द तो कर सकते है परन्तु मत पर आचरण करने वाले के मार्ग में बाधा नही डाल सकते। इस कारण प्रश्न तो यह रह जाता है कि 'श्रीमन्नारायण नारायण' का जप करना किसी के भी लिये मनोरंजन होसकता है या नही ? यदि हो सकता है तब वह नदी तट पर भी हो सकता है। इस कीर्तन में सहस्त्रों लोग सम्मिलित होते थे। इस कारण इसको मनोरंजन भी कहा जा सकता है। कम से कम यह दु:खदायी तो नही कहा जा सकता। यदि किसी को यह पसन्द नही था, तो उसको वहां जाना नहीं चाहिये था।"

"पर मै तो कहता हूं कि यह एक पंथ का प्रचार था। इस कारण एक सार्वजनिक स्थान पर इसका आयोजन ठीक नही था।"

"यह प्रचार था अथवा नही ? इसका भी तो निर्णय होना चाहिये। भगवान् का भजन करना यदि प्रचार माना गया तो एक नर्तकी का नृत्य भी एक विचार का प्रचार हो जायेगा। और फिर दोनों को मना करना पड़ेगा।"

"यह कैसे ?" महाराज का प्रश्न था।

"नाच-रंग में जीवन व्यतीत करना भी तो एक विचार है। कुछ लोग इसको भी ठीक नही मानते। इस कारण यदि नाच करना मात्र एक प्रचार मान लिया गया, तब तो वे लोग इसके एक सार्वजनिक

इस कारण मनोज ने पूछा, "तुम अपने अपराध के लिये क्षमा प्रार्थना करते हो अथवा नहीं ?"

"मैं अपने अपराध के लिये प्रायश्चित्त करना चाहता हूं। जिस प्रकार भी यह हो सके होना चाहिये । मैं करने को तैयार हूं।"

मनोज को अपनी अवस्था का स्मरण हो आया। उसको भी मृत्यु-दंड हुआ था, परन्तु काशीराज ने उस पर दया कर, उसको छोड़ दिया था। इससे उसके लिये मार्ग मिल गया।

मनोज ने सबको यह कह छोड़ दिया कि सब अपने किये पर पश्चात्ताप करते हैं, इस कारण उनको सचेत कर छोड़ दिया जाता है । चन्दू को देश से निर्वासित कर दिया गया। इस प्रकार मनोज की नम्रता पर दोनों पक्ष प्रसन्न थे। अगले दिन से ही तत्त्वदर्शी ने नदी तट पर पुन. कीर्तन आरम्भ कर दिया।

: ६ :

चन्दू को आज्ञा हो गयी कि वह दो दिन के भीतर अवन्ति छोड दे । यदि इस काल के पश्चात् वह अवन्ति में देखा गया तो आजन्म बंदीगृह में रखा जावेगा। वह घर पर आया तो मीना अपना सामान बांध महात्मा के साथ अपने गांव को जाने के लिये तैयार हो रही थी। उसको छूट गया देख मीना को बहुत प्रसन्नता हुई। जब चन्दू ने बताया कि उसको देश-निर्वासन की आज्ञा हुई है तो मीना ने पूछा, "अब कहा जाओगे चन्दू ?"

"अभी निश्चय नहीं किया। तुम कहां जा रही हो ?"

"महात्मा जी मुझको मेरे भाई के घर ले जा रहे हैं। उनका कहना है कि भाई मुझको घर पर रख लेगा।"

"कब जा रही हो ?"

"आज ही । महात्मा जी के कीर्तन से आते ही हम चल देंगे।"

"तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"क्या करने चलोगे ?"

"तुम्हारे भाई से तुम को मांगने।"

आज मीना ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह गम्भीर विचार में पड़ गयी। उसको चुप देख चन्दू ने उत्साहित हो कहा, "मीना ! अब मै अपना व्यवसाय तो कर नहीं सकूंगा। किसी परदेश मे जाकर मेहनत-मजदूरी कर पेट भरने का विचार कर लिया है। इस कारण अब तुमको मझसे भय नहीं करना चाहिये। चलो मेरे साथ। मैं तुमको बहुत आदर से रखूंगा।"

"महात्मा जी भी यही कह रहे थे। उनका कहना था कि वे महामात्य से मिलकर आये हैं और महामात्य तुमको छोड़ देने का विचार रखते हैं। ऐसी अवस्था में उनका कहना था कि मै तुमसे विवाह कर अपना जीवन सुख और आराम से व्यतीत करूं। अब जब तुमने फिर वही बात कही है, तो मैं विचार करती थी कि यहा से ही तुम्हारे साथ चली जाऊँ तो क्या ठीक न होगा?"

"तब महात्मा जी को आ जाने दो। यदि वे हमारा आज रात ही विवाह करा दें, तो कल प्रातःकाल ही मै और तुम दोनो अवन्ति से मल्ल राज्य की राजधानी पावा के लिये चल सकते है।"

महात्मा तत्त्वदर्शी के न्यायालय द्वारा छोड़ दिये जाने से, उसकी मान-प्रतिष्ठा में बहुत उन्नति हो गयी थी। छूटने के पीछे, पहिले ही दिन जब वह नदी के घाट पर कीर्तन के लिये गया, तो एक सेठ गोपाल ने उसके पास आकर पूछा, "महाराज ! आप रात कहां सोते है?"

"यहीं नदी के तट पर। बीच में, जब तक बीमार था, चन्दू के घर पर सोता रहा हूं।"

"तो महाराज मेरा एक मन्दिर है। चार साल से वह बंद है। कोई ब्राह्मण वहां पूजा-पाठ के लिये मिलता ही नही। अब यदि आप चल कर रहना पसन्द करें तो वहां पूजा-पाठ आरम्भ किया जा सकता है। लिंगायतवादी शैव कई बार उसको अपनी उपासनाओं के लिये मांगते रहे हैं। मैंने अभी तक उनको नही दिया। सो आप चल कर वहां

रहिये तो मैं अपना अहोभाग्य मानूँगा।"

पंडित तत्त्वदर्शी मान गया। उसने मन्दिर देखा और उसको पसन्द कर लिया। यह प्रबन्ध कर वह चन्दू के घर आया और वहां मीना और चन्दू को परस्पर घुल-घुल कर बातें करते देख, प्रसन्न हो पूछने लगा, "चन्दू भैया! छूट आये हो?"

"आप की कृपा है महाराज! मैं छूट गया हू और देश छोड कर कहीं बाहर जाने की आज्ञा हो गयी है। साथ ही एक और सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मीना ने मेरे से विवाह करना स्वीकार कर लिया है।"

तत्त्वदर्शी ने दोनो को आशीर्वाद दिया और उनको विवाह कर लेने की राय दे दी। उसी रात दोनो का विवाह हो गया और दिन निकलते ही चन्दू अपनी सब नकदी लेकर उज्जयिनी के पश्चिमी द्वार से बाहर निकल गया। जब वे पावा की सड़क पर जा रहे थे तो मीना ने कहा, "मैं यह आशा नहीं करती थी कि तुम न्यायालय में अपना अपराध स्वीकार कर लोगे।"

"मैं स्वय यह विचार नही कर सकता था कि मैं अपना अपराध मान लूँगा। जब मैं न्यायालय की ओर ले जाया जा रहा था, तब भी मैं विचार करता था कि यदि मैं झूठ बोल दूँ, तो कौन मेरे विपरीत साक्षी करेगा? परन्तु मैंने देखा कि सब लोग झूठ बोलकर अपने दोष को कम करने का यत्न कर रहे है, तो मुझको क्रोध आ गया। मैंने मन में विचार किया कि ये सब भीरु है? मैं सत्य बोल दूंगा। जब यह बात मेरे मन में एक बार आयी, तब फिर आगे सब कुछ स्पष्ट हो गया। भगवान् की कृपा है कि इस पर भी मैं छूट गया हूं।"

"तुम्हारी इस वीरता ने ही मेरे मन में तुम्हारे लिये मान बढा दिया था और यही कारण है कि मैं तुम से विवाह करने पर तैयार हो सकी हूं।"

"तब तो यह कहना चाहिये कि अभी ससार में सत्य का मान करने वाले विद्यमान है।"

: ७ :

नारायणपंथियों के छूट जाने से महामात्य आचार्य भूदेव ने अपनी योजना के सफल हो जाने पर अति प्रसन्न मन से पंडित सुखदर्शन और मनोज को बुला कर बताया कि पंडित तत्त्वदर्शी का कीर्तन उसके द्वारा ही आयोजित था। वह इससे जो प्रयोजन सिद्ध करना चाहता था, वह बहुत अंशों में हो गया है। परमात्मा के भक्तों में जो उत्साहहीनता बढ़ रही थी, वह न केवल रुक गयी है, प्रत्युत अब लोगों में, कीर्तन में सम्मिलित होने के लिये साहस उत्पन्न हो गया है। गोपाल सेठ ने अपना मंदिर उनको कथा-कीर्तन के लिये दे दिया है। आस्तिकता की ओर यह एक भारी पग है।

"पर आचार्य जी! आपने हमको बताया तक नहीं और कहीं हम ही आप का राज्य-परिषद् में विरोध करने लगते तो क्या होता?"

"यही तो राजनीति है। बात वही की है, जो स्पष्ट रूप में ठीक ही प्रतीत होती है। अब आगे बताता हूं। मैं शैव-मत वालों के विरुद्ध विचार उत्पन्न करना चाहता हूं। इसमें महारानी रेखा और उसके साथ सेनापति सुधीर, सब हवा में उड़ जायेंगे। आगामी राज्य-परिषद् की बैठक में महारानी, सुधीर और अन्य कई सैनिकों का प्रश्न उपस्थित होने वाला है। मैं अभी इनके षड्यंत्र को परिषद् में बता कर, रेखा और सेनापति सुधीर को दंड दिलवाना नहीं चाहता। इस पर भी षड्यंत्र को आगे बढ़ने से रोकना आवश्यक हो गया है। इसके लिये मैं बहुत काल से प्रमाण पाने का यत्न कर रहा था। अब वह प्रमाण प्राप्त हो गया है। मैं आज सायंकाल महाराज से मिलने जा रहा हूं। राज्य-परिषद् में आपने वही कहना है जो मैं कहूं। मैं यह करना चाहता हूं कि सेनापति सुधीर को अवन्ति से बाहर किसी राज्य-कार्य के लिये भेज दूं। सुधीर के स्थान पर सेनानायक बलभद्र को सेनापति बनाने का विचार है।"

"सुधीर को हटा देने से क्या सेना में अशान्ति नहीं फैल जायेगी?"

"अभी तो ऐसा प्रतीत नही होता। सेना में शैवों की सख्या अभी वहुत कम है। उनको दवाया जा सकता है। और यह वलभद्र के सेनापति वन जाने से ही हो सकेगा।"

"इस पर भी यह वात तो विचारने योग्य है ही कि शैव-मत एक पंथ है। राज्य इसमें कैसे हस्तक्षेप कर सकता है ?"

"मैंने सव विचार लिया है। हम इस पंथ में हस्तक्षेप नही करेंगे। 'प्रत्येक पंथ को अपना कार्य करने की स्वतत्रता' की नीति का अवलम्बन करेंगे। परन्तु हम राज्य से सम्वन्ध रखने वाले अधिकारियों को इसमें रहने नही दे सकते। अधिकारियो के इस पंथ में सम्मिलित होने से, इस पथ की मान-प्रतिष्ठा वढ गयी है। यह होता ही है। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत तो सवको विदित ही है।"

"कौन-कौन अधिकारी इसमें सम्मिलित है ?"

"प्रथम तो महारानी रेखा है। द्वितीय सेनापति सुधीर और तृतीय उपसेनापति शत्रुघ्न है। इनके अतिरिक्त कुछ लोग और भी है, जो इस पंथ में सम्मिलित होकर इसकी मान-प्रतिष्ठा वढा रहे है। इन सव लोगो को हम उज्जयिनी से वाहर कर देना चाहते है। इनके यहा से चले जाने से इस पथ की महिमा कम हो जावेगी। पश्चात इस को वश मे करना सुगम हो जावेगा।"

"और तो सव ठीक है, पर महारानी रेखा को यहा से निकालना सुगम नहीं।"

"यह आपका कहना ठीक है, इस पर भी कुछ न कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा।"

यद्यपि पंडित सुखदर्शन और पडित मनोज आचार्य जी के उद्देश्य को समझ गये थे, परन्तु वह यह नहीं समझ सके कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे क्या करेंगे ?

वात राज्य-परिषद् में स्पष्ट हो गयी। इस विषय पर विचार महाराज ने स्वयं ही उपस्थित किया। उन्होंने कहा, "मुझको यह सूचना

मिली है कि महारानी रेखा मुझको बंदी बना कर, राज्य अपने अधीन करने का यत्न कर रही है ।"

पंडित सुखदर्शन ने पूछा, "महाराज ! इस विषय में किसी सुदृढ़ प्रमाण के बिना बात करनी ठीक प्रतीत नहीं होती ।"

"प्रमाण है । महामात्य ! तनिक इनको वह पत्र, जो महारानी ने पावा के दैवयात को लिखा है, दिखा दीजिये ।"

आचार्य भद्देव ने अपने समीप रखे पत्रों के ढेर में से एक पत्र निकाल कर, पढ़ कर सुनाया । उसमें लिखा था, "श्रीमान् दैवयात ! मुझको यह जान कर अति प्रसन्नता हुई है कि आप मल्ल राज्य के गणपति निर्वाचित होने का यत्न कर रहे हैं । यदि इस कार्य के लिये धन की अथवा और किसी प्रकार की आवश्यकता हो तो लिखें । जब आप गणपति हो जावेंगे, तब मैं आप से अपना वचन पूरा करने के लिये कहूंगी । सेनापति मेरा अपना व्यक्ति है । सेना में भी मेरे पक्ष में बहुत से लोग है । यदि राजकुमार स राज्य का अधिकारी घोषित हो गया तो मैं उसकी मां होने से निस्संदेह भारी अधिकारो को पा जाऊंगी । तब हम इन दोनों राज्यों को एक करने की योजना बना लेंगे । अभी तो आपके गणपति निर्वाचित हो सकने की बात है । सफलता मिलते ही सूचना दें ।"

महामात्य ने आगे बताया, "यह पत्र महारानी ने सेनापति के सम्मुख बैठ कर लिखा था, परन्तु इसके जाने के पूर्व यह मेरे पास आ गया और मैंने इस पत्र को तो अपने पास रख लिया और इसकी नकल उतरवा कर दैवयात के पास भेज दी है । दैवयात से जो उत्तर आया है, वह भी हमको मिल गया है । वह इस प्रकार है :

"श्रद्धेय महारानी जी ! पत्र आपका मिला । मैं जब आप से उज्जयिनी में मिला था, तब जो बातचीत की थी, वह उस समय के गणपति से राय कर कही थी । इस पर भी यदि मैं गणपति बन सका तो वे सब वचन पालन करने अति सुगम हो जावेंगे । आपकी शुभकामना और सद्भावना से मैं गणपति बन सकूँगा । कठिनाई एक बात में है । वर्तमान

गणपति बहुत धनी व्यक्ति है । मैं तो उस जितना व्यय नहीं कर सकता । पिछली बार भी मैं धनाभाव के कारण गणपति बन नहीं सका था। अब मैंने कुछ तो प्रबन्ध किया है और अपनी ओर से पूर्ण यत्न कर रहा हूं ।"

"इस पत्र के उत्तर में महारानी जी ने यहां से दस सहस्त्र स्वर्ण वहां भेजा है, जिसको स्वीकार करते हुए दैवयात ने लिखा है, "प्रिय महारानी जी! आपका भेजा दस सहस्र स्वर्ण मिला। इससे मेरे गणपति बनने की आशा चमक उठी है। कम से कम मैं देश भर में घूम कर जनता को समझा तो सकूंगा कि मैं देश में किस प्रकार उन्नति करूंगा।"

इसके पश्चात महाराज ने पुन यह प्रस्ताव रखा कि इस प्रकार विद्रोह करने वालो को मृत्युदड मिलना चाहिये। इस पर महामात्य ने कहा, "मेरा मत यह है कि सेनापति तथा उपसेनापति को तो मार्ग से दूर कर देना चाहिये और महारानी को और आगे बढने दिया जावे। जब वह इस षड्यन्त्र मे और फस जावे, तब ही उसको रंगे हाथ पकडना चाहिये।"

"इसमें भय भी तो है। यदि हम से कुछ भी भूल हो गयी तो देश को हानि तो हो ही जावेगी। पीछे हम महारानी को दड दे भी सके तो क्या लाभ होगा ?"

"आप ठीक कहते है, परन्तु इस बात को उस सीमा तक पहुंचने ही नही देना चाहिये और यदि महारानी को और फसने न दिया गया, तो जनता को समझाना सुगम नहीं होगा।"

पंडित सुखदर्शन ने महामात्य की बात का समर्थन कर दिया। दूसरे मंत्रियो ने भी महामात्य की बात मान ली। इस पर महाराज कुमारदेव ने पूछा, "इन सेना के अधिकारियो का क्या किया जावे ?"

"इस बात के लिये ही तो मै महारानी को अभी छूना नहीं चाहता। पहिले सेना में आ गये दोष को तो दूर कर ले। इसमें मेरा यह सुझाव है कि सेनापति सुधीर को राजगृह में अवन्ति का राजदूत बनाकर

भेज दिया जावे और उपसेनापति शत्रुघ्न को राजदूत बना कर कौशाम्बी भेज दिया जाये। बलभद्र को सेनापति नियुक्त कर दिया जावे और उपसेनापति किसी अन्य सेनानायक को बना दिया जाये।

"बलभद्र के सहयोग से सेना पर आये भय को टाल सकेंगे। वह सेना में महारानी के प्रभाव को नहीं चलने देगा।

"इस प्रकार सेना की ओर से निश्चिन्त हो, हम महारानी पर कोई कार्यवाई कर सकते हैं। बिना इस बात को किये महारानी को हाथ लगाना भयरहित नही होगा।"

इस विषय में महामात्य के कहने के अनुसार निर्णय किया गया और पश्चात महाराज ने शैव-मत के विषय में मत मागा। महामात्य का उत्तर था कि जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि किसी लड़की अथवा लड़के पर बलात्कार किया गया है, तब तक राज्य इस मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। पंवार गांव के शिव-मंदिर की बात पंथ के विरुद्ध नहीं चल सकी थी। उसमें प्रधान साक्षी ने साक्षी देने से न कर दी थी। यही कारण था कि अभियोग ही नहीं चल सका।"

"किरण ने साक्षी करने से अस्वीकार क्यो कर दिया था?"

"पहिले एक वर्ष तक तो उसका उत्तर ही नहीं आया। अब आया है, और उसने लिखा है "मैं किसी को फसाने में रुचि नही रखती।"

"यह क्या हो गया है किरण को?"

"वह पहिले भी ऐसी ही थी। उसके मन मे यह बात बैठ गयी प्रतीत होती है कि उसने पिछले जन्म में कोई भारी पाप किया है जिससे वह क्रीतदासी बनी है और भावी जन्म में कोई अच्छी स्थिति प्राप्त करने के लिये उसको किसी को कष्ट नही देना चाहिये और जितनी भी भलाई वह दूसरों की कर सके, ठीक है।"

: ८ :

जब रेखा ने सेनापति सुधीर से षड्यंत्र किया तो वह सेना और

शैव जनता की सहायता से राज्य पलटने के स्वप्न देखने लगी थी। उसकी योजना अभी पूर्ण नहीं हो सकी थी कि सुधीर को राजगृह में और शत्रुघ्न को कौशाम्बी भेजने का निर्णय हो गया। रेखा को इससे बहुत शोक हुआ। दोनों नवीन राजदूतों को दो दिन में ही अवन्ति से विदा हो जाने की आज्ञा हो गयी।

दोनो महारानी रेखा से मिलने के लिये आये तो रेखा ने उनके अवन्ति से बाहर भेजे जाने पर विस्मय प्रकट किया। इस पर सुधीर ने कहा, "महाराज ने मेरी और शत्रुघ्न जी की योग्यता का विचार कर, हम दोनों को वेतन में वृद्धि कर तथा अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य पर भेजने का निश्चय किया है।"

"मैं समझती हूं कि बात इस प्रकार नहीं है। हमारे षड्यंत्र का समाचार किसी प्रकार बाहर निकल गया है। उससे महामात्य ने सतर्क हो आप दोनों को, जो हमारी योजना में मुख्य व्यक्ति हैं, अवन्ति से बाहर कर दिया है।"

"यही तो उनकी भूल है। मुख्य व्यक्ति तो आप हैं। यदि आप यहां अवन्ति में रहेगी तो षड्यंत्र चलता रहेगा। हम तो आपकी सूचना पाते ही एक पखवारे में यहां पहुंच जावेंगे।"

रेखा ने उन लोगो से वचन लिया कि वे उसके षड्यन्त्र में बने रहेंगे। ऐसा कर उन को जाने की स्वीकृति दे दी। रेखा को विश्वास हो गया था कि सेना में उसके बहुत से सहायक हैं और यदि नवीन सेनापति बल-भद्र उसके पक्ष में आ जाये तो उसकी योजना और भी सुगमता से चल सकेगी।

बलभद्र आचार्य भूदेव का अपना शिष्य था। वह अभी युवक था और उसने केवल एक मल्ल युद्ध देखा था। इस पर भी वह शूरवीर, साहसी और बुद्धिमान् था। उसने सुधीर और शत्रुघ्न के चले जाने पर दो सेनानायको को उन्नति दे दी। एक दिन सब सेनानायको की सभा बुला कर, उसने उनको समझा दिया, "राज्य का नियम है कि राज्य

पंथ-निरपेक्ष रहेगा। इस कारण हम अपने व्यक्तिगत व्यवहार में भले ही किसी पंथ से सम्बन्ध रखें परन्तु सेना में कार्य करते समय हमको निष्पक्ष व्यवहार रखना होगा। हम किसी का पक्षपात नहीं कर सकते। सेना में होने पर यदि हम किसी पंथ से पक्षपात करेंगे तो दंड के भागी बनेंगे।

"राज्य का मस्तिष्क है राज्य-परिषद्। भुजायें है सेना। भुजायें मस्तिष्क का काम नहीं कर सकतीं। इसको मस्तिष्क अर्थात् राज्य-परिषद् का आदेश मानना पड़ेगा।

"सैनिक लोग जब छुट्टी पर हों तो वे स्वतंत्र है। तब वे अपने व्यवहार के स्वयं उत्तरदायी हैं, परन्तु जब वे शिविर में हों, तब वे सेना का एक अंग होने से स्वतत्र नहीं। वे सेना के नियम में बंधे हुए है। स्वतन्त्र अवस्था में किये गये काम का फलाफल देना न्यायाधीश का अधिकार है, परन्तु सेना के रूप में किये काम का फल देना मेरा कर्तव्य है।"

बलभद्र ने जो कहा, वह करना भी आरम्भ कर दिया। कई सैनिक नगर में नियम भंग करते पकड़े गये और उनको न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित किया गया। जब वे सैनिक गणवेश में अपराध करते पकड़े गये, तब तो न्यायाधीश ने उनको सेनापति के पास दंड के लिये भेज दिया और जब बिना गणवेश के पकड़े गये, तब उनको न्यायाधीश ने दंड दे दिया।

जब इस नियम पर कठोरता से पालन किया गया तो सेना में नियंत्रण बहुत बढ़ गया। प्रायः सैनिक सदा गणवेश में ही नगर में जाना पसन्द करने लगे और उस वेश में वे अपना प्रत्येक कार्य बहुत सोच-विचार कर करने लगे।

रेखा ने बलभद्र से अपना सम्पर्क उत्पन्न करने का यत्न किया। उसका विचार था कि जब वह उसके सम्मुख आवेगा तो वह उसके सम्मोहिनी प्रभाव में आकर उस के अनुकूल हो जावेगा। कुछ शैव उपासकों द्वारा बलभद्र को एक कृष्ण चतुर्दशी को उपासना में सम्मिलित होने का निमं-

त्रण दिया गया। वह गया। उसमें उसने भाग भी लिया, परन्तु वह महारानी के प्रभाव में नहीं आया। उपासना के अगले दिन सायं रेखा ने उसको भोजन पर बुलाया। भोजन करते समय पिछली रात की उपासना पर बात चल पड़ी। रेखा ने पूछा, "बलभद्र जी! यह शिव उपासना आपको कैसी जची है ?"

"महारानी जी! इसने मस्तिष्क में ऐसी हलचल मचा दी है कि विचार-शक्ति कार्य ही नहीं करती।"

"यह स्वाभाविक ही है। मनुष्य के संचित संस्कार ही इस हलचल में कारण हैं। पुराने सस्कार जब अयुक्तिसगत प्रतीत होने लगते हैं, तब एक बार तो ऐसी घबराहट प्रतीत होती ही है। निष्पक्ष मन से विचार करिये तो स्फटिक मणि की भांति सब बात निर्मल तथा स्पष्ट हो जावेगी।"

उपासना की रात, जो कुछ युवक सेनापति ने देखा और किया वह उन्माद उत्पन्न करने वाला था। उसके प्रभाव को वह अभी तक अपने मस्तिष्क से निकाल नहीं सका था। अब रेखा देवी उस उपासना का आधारभूत सिद्धांत समझाने लगी थी। अभी बलभद्र पिछली रात की उपासना की मादकता का अनुभव कर विचार ही रहा था कि रेखा ने कहा, "सेनापति! इधर आइये। बात स्पष्ट हो जावेगी।" वह उसको अपने प्रासाद के एक आगार में ले गयी। वहां लिंग की स्थापना थी।

आगार के मध्य में लिंग बना था। पूर्ण आगार में श्वेत चिकना पत्थर लगा था। लिंग भी दूध के समान श्वेत पत्थर का था। आगार के बाहर वैसे ही श्वेत पत्थर का एक बैल बना था, जो बैठा हुआ, श्रद्धा से लिंग की ओर देख रहा प्रतीत होता था। इस बैल के ऊपर छत से, लोहे के सांकल से कांसी का एक बडा सा घंटा लटक रहा था। रेखा ने वहां पहुंच, हाथ ऊंचा कर, घंटे की जिह्वा को हिला दिया। टन-टन घंटा बजा और रेखा ने हाथ जोड, झुक कर लिंग को नमस्कार किया। लिंग पर पडे जल और फूलो से प्रतीत होता था कि पूजा हो चुकी है। रेखा कुछ काल तक हाथ जोड़, आंखें मूंदे, आगार की ड्योढ़ी में खड़ी

रही। बलभद्र उसके पीछे खड़ा था। रेखा ने देवता को प्रणाम कर बिना सेनापति की ओर देखे कहना आरम्भ कर दिया। वह अभी भी उसके पीछे खड़ा था।

"सेनापति! देखते हैं न? यह क्या बना है। यह पुरुष शक्ति का संकेत है और उसके नीचे स्त्री शक्ति की प्रतीक भग बनी है। दोनों के संयोग से ही संसार की पूर्ण चेतन सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। यही वास्तविक शक्ति है, जिससे इस संसार का कार्य सम्पन्न होता है। यही इष्ट देव है, जिसको भली-भांति समझने से और जिसकी उपासना से वास्तविक कल्याण की आशा की जा सकती है। यह देवन के देव महा-देव सब देवताओं अर्थात् कल्याणकारी शक्तियों के स्वामी हैं।"

रेखा इतना कह आदर और भक्ति से मूर्ति की ओर देखती रही। पश्चात् वह घूम कर बलभद्र की ओर देख बोली, "इस शक्ति-उपासना की महिमा संसार में स्थापित करने के लिये हम लोग यत्न कर रहे हैं।"

बलभद्र ने देखा कि रेखा की आखों में विद्युत् की सी एक चमक उत्पन्न हो गयी है। उसका मुख लाल हो गया, जैसे कि पूर्ण शरीर का रक्त वहां एकत्रित हो गया हो। रेखा ने अपना हाथ बलभद्र के हाथ पर रख कर कहा, "सेनापति! इसको समझने का यत्न करो। इसको समझते ही आपको अवर्णनीय स्फूर्त्ति और सतर्कता उत्पन्न होती प्रतीत होगी। यही संसार में सफलता का स्रोत है।"

बलभद्र ने अनुभव किया कि रेखा का हाथ कांप रहा है और उसके स्वर में कम्पन आ गया है। वह इसका अर्थ यह समझा था कि स्त्रीत्व शक्ति का ज्वार उसमें उठ रहा है। उसने इसका मार्ग बदलने के लिये देवता को नमस्कार किया और उधर देखते हुए कहा, "श्रीमती जी! आप की शैव मत की यह व्याख्या अद्भुत है। मैं इस पर विचार करूंगा। आपने जो कुछ मुझको बताया है, उस पर मनन और चिन्तन करूंगा।"

इतना कह उसने लौटने के लिये छुट्टी मांगी। रेखा की आंखें लज्जा से झुक गयी और वह मार्ग दिखाती हुई पुनः बैठक गृह में

चली आयी।

जब रेखा ने शैव मत के सिद्धांत की व्याख्या आरम्भ की थी, तब तो वह उसमें कोई आपत्ति अनुभव नहीं करता था, परन्तु जब रेखा के मुख पर रक्त का वेग बढ़ने लगा और उसकी वाणी में कम्पन आरम्भ हुआ, तब उसका हृदय भी धक-धक करने लगा था। जब रेखा ने अपना हाथ उसके हाथ पर रखा, तब उसने अपने पूर्ण शरीर में रोमाच होते अनुभव किया। यदि उस समय वहां कुछ काल और ठहरता तो प्राकृतिक वेग उसको अपने में बहा कर ले जाते । वह उस समय वहां से चला आया और बैठक में पहुंचते-पहुंचने उसका मन स्वस्थ हो विचारशील हो गया।

इस पर भी वह तो समझ गया था कि लैंगिक आकर्षण एक अति प्रबल शक्ति है । अपने संस्कारो से प्रभावित वह समझता था कि इस शक्ति के प्रवाह में वह जाना अनुचित है । यही कारण था कि जब काम का वेग उसको बहा ले जाने वाला था, वह संभल गया। इस पर भी वह इसको अपनी और रेखा की व्यक्तिगत दुर्बलता ही समझा था। इसका अपने सेना-सबंधी कार्य पर कोई प्रभाव हो सकेगा, यह वह नहीं जान सका था।

इसका ज्ञान उसको तब हुआ, जब महामात्य ने उसको बुला कर, उसको वह सब कुछ बताया, जो कुछ रेखा से उस दिन बीती थी। महामात्य ने जब इस घटना और उसके मन के भावो का वर्णन सुनाया, तो वह चकित रह गया। उसने कहा भी, "आचार्य जी! मैं वहां पर व्यक्तिगत रूप में गया था।"

"बलभद्र! तुम अवन्ति राज्य के सेनापति हो । तुम्हारा व्यक्तित्व अवन्ति के हित-अहित से पृथक् नहीं हो सकता। देखो मैं तुमको एक बात बताना चाहता हूं कि इसी भ्रम के कारण सुधीर और शत्रुघ्न को देश से बाहर भेजना आवश्यक हो गया था।"

बलभद्र समझ गया और इसके पश्चात महारानी के बुलाने पर भी

वह वहां नहीं गया। महारानी रेखा ने बलभद्र का विचार छोड़ सैनिकों से सम्पर्क बढ़ाना आरम्भ कर दिया।

: ६ :

तत्त्वदर्शी के अभियोग के परिणाम को जान कर तथा सुधीर और शत्रुघ्न के विद्रोहात्मक कार्य के ज्ञान से महाराज कुमारदेव घबड़ा उठा था। ज्यों-ज्यो विद्रोही तत्त्वों को अवन्ति से बाहर किया जाने लगा, वह भूदेव की कार्यकुशलता पर संतोष अनुभव करने लगा। जहां तक अनुराधा का सम्बन्ध था, वह उससे प्रसन्न तो था, परन्तु वह समझता था कि वह राजनीति में उसको उचित सम्मति देने के अयोग्य है। इस विषय में किरण-सी योग्य साथिन उसको नहीं मिल सकी। रेखा तो केवल मात्र उसके शरीर की एक आवश्यकता को ही पूर्ण कर सकती थी। यह आवश्यकता अनुराधा भी पूरी कर रही थी। इसके अतिरिक्त उसका व्यवहार इतना प्रत्यक्ष और सरल था कि वह रेखा की भांति उसके असली होने की आशंका नहीं करता था।

अनुराधा ने भी उसको एक पुत्र दिया था। वह अपनी माता के समान सुन्दर था और कुमारदेव उससे बहुत प्रसन्न था। इस पर भी वह उससे कभी राजनीति के विषय में बात नहीं करता था। इसमें उसको सर्वथा अयोग्य मानता था। प्राय: वह राज्य सम्बन्धी बातें उससे करता ही नहीं था। परन्तु एक दिन बात चल ही पड़ी। महाराज कई दिनों के पश्चात् प्रसन्नवदन उसके शयनागार में आये थे। वह अनुराधा से विनोद कर रहे थे, तो उसने पूछ ही लिया, "आज इस सौभाग्य के लिये मैं किसका धन्यवाद करूं महाराज ?"

"किस बात के लिये कह रही हो देवी !"

"श्रीमान् जी के इस आगार को सुशोभित करने के लिये ही तो कह रही हूं।"

कुमारदेव ने हंस कर कहा "मेरी रानी जी ! परमात्मा का धन्य-

बाद करो कि मैं आ सका हूं। हमारे शत्रुओं ने तो हमारे इस संसार से विदा होने का प्रबन्ध कर ही दिया था।"

"क्यों, क्या हुआ है महाराज? आपने इस दासी को कभी कुछ बताया ही नहीं। क्या मैं आपकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकती?"

"यह राज्य के झञ्झट ऐसे हैं कि तुम जैसी कोमलांगी के हृदय को अति दुःखदायी सिद्ध होते।"

"तो महाराज। मुझको इस योग्य भी नहीं समझते कि मैं उनके सुख-दुःख की बात को जान भी सकूं?"

इतना कह अनुराधा ने रूठ कर मुख मोड़ लिया। महाराज उसको मनाने लगे। इस पर उसने कहा, "मैं इस बात को अनुभव करती थी और इसी कारण मैं आप से विवाह करना नहीं मानती थी। आप क्या भूल गये हैं कि उस समय आपने कहा था कि आपको मेरी बुद्धि पर विश्वास है। एक सुन्दर शरीर में श्रेष्ठ मस्तिष्क ही हो सकता है। मैं नहीं जानती कि मैंने कभी कोई ऐसा काम किया है, जिससे आप कह सकें कि मैं मूर्ख हूं।"

"प्रिय अनुराधा! मैंने यह कब कहा है कि तुम बुद्धि नहीं रखती?"

"मैंने सुना है कि आपकी एक क्रीतदासी थी और आप उससे राज्य-कार्य में राय लेते थे। मैं यही विचार करती रहती हूं कि उसमें कौन बात थी, जिससे वह आपकी विश्वासपात्र बन सकी थी। मेरे साथ तो आपका केवल शरीर का सम्बन्ध प्रतीत होता है। मन और आत्मा का संबंध आप मुझसे कर ही नहीं सके।"

"इस पर भी अनुराधा! मैं तुमको महारानी रेखा से बहुत ही श्रेष्ठ मानता हूं। किरण के विषय में तो मैं अब भी नहीं कह सकता कि मैं उसको समझ सका था। वह जब तक यहां रही, मेरे लिए एक पहेली ही रही। अब भी वह एक समस्या ही कही जा सकती है।"

"तब तो उसके दर्शन करने चाहियें। सुना है कि वह महर्षि वामदेव जी के आश्रम में रहती है।"

"राज्य की ओर से उसको कई पत्र लिखे गये। आचार्य भूदेव ने अपने हाथ से लिख कर अपने एक विशेष दूत के हाथ भी एक पत्र भेजा, परन्तु उसने उत्तर ही नहीं दिया। अंत में जब उत्तर आया तो वह भी विस्मय में डालने वाला है। उसने लिखा था, 'मैं अपने मसीपात्र में किसी प्राणी के विरुद्ध लिखने के लिये मसी नहीं पाती।'

"इस प्रकार उसने एक भयंकर अपराधी को बचा ही नहीं लिया, प्रत्युत उसको और अपराध करने का अवसर दिया है।"

"पर महाराज! किरण चाहे कैसी भी रही हो, आपने कभी अनुराधा को अपने अंतरात्मा का साथी बनाने का यत्न नहीं किया। मुझको आपने केवल एक वासनातृप्ति का साधन बना रखा है।"

"यह तो नहीं है। इस पर भी तुम मुझको बताओ क्या चाहती हो मुझसे?"

"मैं आपकी पत्नी बनना चाहती हूं। एक रखेल मात्र नहीं।"

"पत्नी कैसे बनना चाहती हो और रखेल कैसे तुम अपने को समझती हो?"

"रखेल की भांति आप मेरे पास अपनी वासनातृप्ति के लिये आते हैं और बस। इसके अतिरिक्त मेरा आपके पास प्रयोग ही क्या है?"

"मान लो, तुम मुझसे विवाह न करती और देहात के किसी पुरुष से तुम्हारा विवाह हो जाता, तो तुम क्या उसकी वासनातृप्ति मात्र के लिये न होती?"

"यदि यह होता तो क्या होता, और यदि अमुक बात न होती तो यह न होता क्या, इसको ही आप युक्ति कहते हैं क्या? मैं तो यह कहती हूं कि यदि वह बुद्धिमान् व्यक्ति होता, तो मेरी बुद्धि और सद्भावना से लाभ उठाता। जैसी-जैसी किसी की आवश्यकता होती है, वैसा ही तो काम किया जा सकता है।"

कुमारदेव ने कुछ विक्षुब्ध होकर कहा, "परन्तु अनुराधा! प्रत्येक कार्य के लिये शिक्षा अनिवार्य होती है। राज्यकार्य गौओं के दूध

दुहने के समान नही है ।"

"पर महाराज ! आपने कब मेरी परीक्षा ली है, जिससे आप यह समझ गये हैं कि मै दूध दुहने के अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकती ?"

"मुझको नहीं मालूम कि तुम किसी पाठशाला में पढी भी हो ?"

"मुझको विस्मय हो रहा है कि आप राज्य-कार्य कैसे चलाते हैं। आपके पास मुझको रहते हुए दो वर्ष से ऊपर हो गये हैं और आपको यह भी मालूम नहीं कि मै किसी पाठशाला में पढ़ी भी हूं या नहीं ? बात भी ठीक है, कि जिस प्रयोजन के लिये आपने मुझको अपने प्रासाद में रखा हुआ है, उसके लिये किसी पाठशाला में पढ़े होने की आवश्यकता नहीं। यही न ?"

"आज तुमको हो क्या गया है, अनुराधा ?"

"कुछ नहीं महाराज ! कई मास से मै अपने मन मे यह समझ रही हूं कि आपका एक और विवाह हो जावे, तो मै अपने गांव में जाकर स्वच्छंदता से विचर सकूं।"

"तो बिना विवाह के तुम क्यो नही जा सकतीं ?"

"केवल इसलिये कि आपकी एक आवश्यकता को पूर्ण तो मै कर ही सकती हूं। यदि उसकी पूर्त्ति किसी और से होने लगे, तो व्यर्थ की हो जाऊंगी।"

"तो मेरी वह आवश्यकता कोई और भी पूरी कर सकेगा ? यह तुम कैसे कह सकती हो ?"

"मुझसे पहिले आपकी वह आवश्यकता रेखा देवी पूरी करती थीं। उससे आप ऊब गये तो मैं आ गयी। अब कोई और आ जाये तो मैं व्यर्थ की ही हो जाऊँगी ?"

"हां, मिल जाये तब न ?"

"तो वह मिल जायेगी। एक सुन्दरी प्रतियोगिता फिर करवा दीजिये।"

उस रात महाराज की मनोकामना पूरी नहीं हुई। ऐसा अवसर पहिले कभी नहीं आया था। इस बात के होने पर महाराज कुमारदेव

रात भर विचार करते रहे कि अनुराधा में क्या नवीन बात आ गयी है। अगले दिन उन्होंने उसकी गतिविधि को जानने के लिये उसके पीछे गुप्तचर लगा दिये। दासियों को भारी उपहार का प्रलोभन देकर उसकी प्रत्येक बात के जानने और फिर बताने के लिये कह दिया।

कई मास की देखभाल के पश्चात् महाराज कुमारदेव केवल एक बात जान पाये। वह यह थी कि अनुराधा अपना बहुत सा समय भगवद्-भजन में व्यतीत करती है। इस सूचना पाने के पश्चात् महाराज ने एक बार पुनः उससे सम्पर्क प्राप्त करने का यत्न किया। अनुराधा ने अब शृंगार करना छोड़ दिया था। राज-प्रासाद की कोमलताओं और सुख-सुविधाओं को छोडना आरम्भ कर दिया था। उसने भूषणों में से केवल मंगलसूत्र पहिन रखा हुआ था, शेष सब भूषण उतार संदूकची में रख दिये थे। श्वेत वस्त्र और साधारण रूप में बधी वेणी में उसको देख कुमारदेव ने एक दिन विस्मय प्रकट कर पूछा, "देवी! यह शोक किस कारण मनाया जा रहा है?"

"मेरे मुख पर देखिये महाराज! क्या उस पर शोक के लक्षण प्रतीत होते हैं?"

"तुम्हारे वस्त्रों और अभूषित शरीर को देख कर तो यही प्रतीत होता है कि तुमको किसी बात का भारी शोक है।"

"और मेरे मुख को देखकर, किसी अत्यानन्द का मेरे में व्याप्त होना विदित नही होता क्या?"

"मन मे आनन्दित होने से भूषण उतार दिये जाते है क्या?"

"भूषण पहिनने का प्रयोजन मन के आनन्द को प्रकट करना ही नहीं महाराज! ये तो किसी दूसरे को आनन्दित करने के लिये होते हैं।"

"तो तुम किसी दूसरे को आनन्दित करना नहीं चाहतीं?"

"संसार में केवल एक प्राणी है, जिसको प्रसन्न रखना मेरा कर्तव्य है और वह प्राणी कभी दर्शन ही नहीं देता। आज भी यदि उसके आने की आशा, अथवा सूचना होती, तो मन को इसके लिये तैयार कर लेती।"

"और उसके अतिरिक्त क्या भूषण-वसन की तुमको आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ?"

"वसन तो पहिनने ही पडते है महाराज ! परिवर्तनशील ऋतुओ की गर्मी-सर्दी से बचने के लिये ही वस्त्र होते है। सजावट तो महाराज ! आप के लिये, यदि आपको आवश्यकता अनुभव होती है, तो अभी कर लेती हू।"

"अनुराधा तो बिना भूषणो और वस्त्रो के ही पसन्द की गयी थी। मै तो केवल यह कह रहा था कि क्या ये तुमको पसन्द नही है ?

'आज मै तुम्हारे आगार में निवास करूगा।"

अनुराधा चुप रही। इस पर कुमारदेव ने पूछा "तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया अनुराधा ?"

"तो आपने कुछ प्रश्न पूछा था मुझसे ? मै तो समझी थी कि आपकी इच्छा आज इस आगार को भूषित करने की है। इसमें उत्तर देने की कोई बात नहीं थी।"

"अच्छी बात है।" इतना कह कुमारदेव ने आसन ग्रहण कर लिया।

: १० :

अनुराधा को ज्यो-ज्यो विश्वास होता गया कि वह राज-प्रासाद में एक चौकी-पलग से अधिक कुछ नही, त्यो-त्यो वह संसार से विरक्त होती गयी। भोजन में स्वच्छता और सरलता ग्रहण कर ली। दिन में एक बार खाना और एक बार केवल दूध पर ही निर्वाह करना आरम्भ कर दिया। अतः प्रात. ब्रह्म मुहूर्त्त में उठ स्नानादि से निवृत्त होकर आसन जमा, वह योग-ध्यान में लग जाती थी। इस अर्थ उसने एक आगार पृथक् नियत कर रखा था। दिन निकलने के एक प्रहर पश्चात् तक वह अपने पूजा-कर्म में लगी रहती थी। पश्चात् वह साधारण वस्त्र पहिन, अपनी बैठक में आ जाती और वहा राजभवन की दास-दासिया एकत्रित हो जाती। भवन के विषय में और अन्य उनके अपने विषय की बाते होती। किसी को

वेतन की आवश्यकता होती, किसी को घर जाने के लिये अवकाश की, किसी को किसी अन्य दासी के विरुद्ध कोई शिकायत होती और किसी को अपने विरुद्ध शिकायत की सफाई देनी होती। इस कचहरी के पश्चात भोजन का समय हो जाता। भोजन के पश्चात् वह कुछ विश्राम करने के लिये अपने शयनागार में चली जाती। मध्याह्न के उपरान्त, वह स्वाध्याय करने बैठ जाती। इस समय भी भवन की दासियां उससे कोई कथा-वार्ता सुनने आ जातीं। इस प्रकार सायंकाल हो जाता और तब वह पुनः सन्ध्योपासना में लग जाती। एक प्रहर रात बीत जाने पर वह दुग्ध पान करती और सोने चली जाती।

इस प्रकार उसकी दिनचर्या चल रही थी। कभी महाराज उससे मिलने आते तो इस नियम में अंतर पड़ता। महाराज से वह कभी भी अनादर की दृष्टि अथवा भाव में नहीं देखी जाती थी। इस प्रकार कुछ काल तक जीवन चलता रहा। एक दिन महाराज कुमारदेव ने कह ही दिया, "मेरी साधनी रानी जी! यह शीतल व्यवहार कब तक चलेगा?"

"आप आज्ञा करिये। किस प्रकार मैं इसमें उष्णता ले आऊं?"

"यह बात तो प्रत्येक स्त्री जानती और समझती है।"

"तो क्या वह मै नही समझती हूं? मुझसे अधिक जो और समझती थी, उनकी भांति क्या मुझसे भी चाहते है? मै वैसा कर नहीं सकूंगी।"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा अनुराधा?"

"मै आपका आदर करती हूं। आपसे प्रेम-आलाप भी करती हूं यदि कुछ नहीं करती तो केवल वही नहीं करती जो महारानी रेखा करती रही थी अथवा कर रही है।"

"इसके लिये मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूं अनुराधा! परन्तु मै चाहता हूं कि तुम मुझसे हंसी-विनोद करो, जिससे मै राज्य-कार्य से मुक्त होकर मन बहला सकूं।"

अनुराधा हस पड़ी। उसने कहा, "महाराज! आप पुन. चार-पांच वर्ष के बालक बनना चाहते हैं क्या? मुझको तो लज्जा आती है

आपसे एक बालक-जैसा व्यवहार करते हुए। देखिये महाराज! आपने खेल-तमाशों में जीवन का बहुत सा भाग व्यतीत किया है। अब कुछ आगे की भी सोच लेंगे तो क्या किसी प्रकार की हानि होगी? मेरा निवेदन तो यह है कि इस जीवन के प्रयोजन को समझने का यत्न करिये और तब आपको विदित हो जायेगा कि बालकपन छोड़ कर सज्ञान जीवन व्यतीत करने में कितना आनन्द आता है।"

कुमारदेव हंस पडा। उसने अनुराधा से आलिंगन करते हुए कहा, "देवी! जो आनन्द इसमें है, वह पुराणों में कथित स्वर्ग में भी नहीं। देवलोक में भी तो अप्सराओं के बिना कार्य नहीं चल सका।"

"मैंने आपको अप्सराओं में विचरने से कब मना किया है?"

"मेरे लिये तुम ही अप्सरा हो और मैं तुमको प्रसन्नवदन देखना चाहता हूं।"

"आपने मुझको कब रोते हुए देखा है? मैं तो आपको यह कह रही थी कि इस प्रसन्नता से भी अधिक प्रसन्नता है ज्ञान की। ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञानियों की संगत और ध्यान से। आप अपना कुछ समय निकाल कर उस ओर भी लगायें तो फिर देखिये यह विनोद आपको कितना फीका प्रतीत होने लगेगा।"

"महापंडित नाकेश कहते थे कि इन्द्रियों को कुण्ठित करने से आनन्द फीका पड जाता है और ईश्वरादिक परोक्ष की बातों की ओर ध्यान लगाने से इन्द्रिया कुण्ठित ही होती हैं।"

"ऐसा नहीं है महाराज! ईश्वर-ध्यान से इन्द्रिया कुण्ठित नहीं होतीं, प्रत्युत वे तीव्र और बलवान् हो जाती हैं। अंतर केवल यह आ जाता है कि इनके नियत्रणकर्त्ता के मन म इन पर नियंत्रण करने की शक्ति आ जाती है जिससे ये इधर-उधर भाग नहीं सकतीं। इन्द्रियों के अनियमित प्रयोग से तो जहा वे दुर्बल पड़ जाती हैं, वहा वे मन के नियत्रण से भी बाहर हो जाती है। आपको तो इसका अनुभव हो चुका है। महापंडित नाकेश के सुपुत्र इन्द्रियों को इतना तीव्र कर बैठे कि उनको स्वामी और

महारानी में भेद भी भूल गया। वे अपने अधिकार की सीमा को भी देख नहीं सके। मुझको श्वेतांग जी की प्रिय दासियों से पता चला है कि वे और उनके पूज्य पिता जी भूल जाया करते थे कि उनके पिता की सहवासिन अथवा पुत्र की सहवासिन कौन है।

"आप भी तो महापंडित जी के कथनानुसार इन्द्रियों को तीव्र करने के विचार से अविचार में विचरते रहे हैं। इस प्रसाद से ही आपकी कितनी प्रियतमा रही हैं। यहां की दासियों से क्या संतोष हुआ है आपको ?"

कुमारदेव को काशी की एक रात्रि, जो उसने नाकेश के भवन में व्यतीत की थी, स्मरण आ गयी। उसने श्वेतांग को अपनी सौतेली मा से सहवास करते देखा था और उसने नाकेश को इस पर हंसते हुए देखा था। आज अनुराधा के सुझाने पर उसका इसके अनौचित्य की ओर ध्यान गया तो वह कांप उठा। उसने कहा, "मुझको तुम्हारे कहने में कुछ तथ्य तो प्रतीत होता है, परन्तु इससे यह कैसे सिद्ध हो गया कि कहीं कोई ईश्वर है और उसकी आराधना से इन्द्रियों पर नियन्त्रण बढ़ जाता है।"

"अभ्यास कर देखिये महाराज!"

यह छोटा-सा वार्तालाप कुमारदेव के जीवन में क्रान्ति उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ। वह विचार करने लगा कि क्या ठीक है और क्या गलत। क्या श्वेतांग का व्यवहार अनुकरणीय है अथवा किरण और पालकदेव का? वह समाचार पा चुका था कि किरण महर्षि वामदेव के आश्रम में तपस्या का जीवन व्यतीत कर रही है। जो दूत उसका संदेश लेकर उसके पास गया था, उसने बताया था कि वह एक निर्जन वन में चटाई बिछा कर सोती है। उस वन में हिंस्र जन्तु भी रहते हैं, परन्तु उनसे उसको भय नहीं लगता। यह क्या हुआ? अब पालकदेव को हरिद्वार गये तीन वर्ष हो चुके थे। इस पर भी उन्होंने राज्य का मोह ऐसे छोड़ रखा था जैसे फटा-पुराना वस्त्र उतार कर फेंक दिया जाता है। इसके विपरीत श्वेतांग और रेखा का व्यवहार था। श्वेतांग का पूर्ण कार्य-क्रम स्वार्थ की धुरी पर चलता था। उसने अपने स्वार्थ के लिये अपने

परम हितचिन्तक को भी राज्यच्युत करने में सकोच नही किया था। किरण देवी को अपने साथ अन्याय होते दिखाई देता था। इस पर भी उसने उससे बदला लेना तो दूर रहा, उसकी सत्य हृदय से सहायता ही की थी। वह अपने मन में विचार करता था कि क्या इसमें कारण, श्वेतांग का नास्तिक्य और पालकदेव इत्यादि का आस्तिक्य ही है, अथवा कुछ और बात है।

दिन प्रति दिन, जैसे वह इस समस्या पर मनन करता था, वह अनुराधा के व्यवहार से अधिक और अधिक प्रभावित होता जाता था। वह उसकी संगत में अधिक और अधिक आता जाता था। इसका प्रभाव यह हो रहा था कि उसको अपने मन में, अपने भाई के साथ किये दुर्व्यवहार पर, पश्चात्ताप लगने लगा था।

एक दिन उसने अनुराधा को कहा, "तुम्हारी बातों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुझको अपने भाई के पास जाकर, उनसे क्षमा मांगकर उनको वापिस बुला लेना चाहिये और यह राजपाट उनको पुन. सौंप देना चाहिये।"

"मैंने ऐसी बात आपसे कभी नही कही। इस पर भी यदि आप यह सब कुछ करें तो मै इसको आपका एक अति साहसपूर्ण कार्य ही समझूंगी। आपके इस महान् त्याग के लिये मेरा मन आपके लिये अमित श्रद्धा से भर जायेगा।"

"इस काम के परिणाम से भी तुम परिचित हो या नहीं? सम्भव है कि भैया यहां लौट आना पसन्द करें और जब यहां आ जावे तो हमको देश से निकाल दें। तब तुम महल में रहने के स्थान झोपड़ी में ही रह सकोगी। शायद फिर गगरी सिर पर उठा कर इधर से उधर ले जानी पड़े।"

"यह तो बहुत ही साधारण सी बात है। मान लीजिये कि मगध अथवा कौशाम्बी वाले अवन्ति पर आक्रमण कर दें और हम पराजित हो जावें। परिणामस्वरूप हमको परदेश में जाकर मेहनत-मजदूरी

कर अपना पेट भरना पड़े । तब क्या होगा ? हमारे काम की अच्छाई का तो रहस्य यही है कि हम स्वेच्छा से त्याग कर रहे होंगे। हम अपना दोष मान कर, यह सब वैभव छोड़ रहे होंगे। आपके भाई शायद आपको दर-दर का भिखारी बनने नहीं देंगे, परन्तु वे क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे, इससे हमने अपने काम का निर्णय नहीं करना। हमको तो अपने व्यवहार का निर्णय इस बात से करना है कि क्या उचित है और क्या अनुचित।"

"मान लो, वे अपने भविष्य के विषय में निश्चिन्त होने के लिये मुझको प्राणदंड देते हैं, तब क्या होगा ?"

"कुछ भी हो, किसी काम का औचित्य अथवा अनौचित्य हमारे सुख या दुःख के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। प्रत्येक काम की अच्छाई-बुराई उसके अपने न्याययुक्त अथवा अन्याययुक्त होने पर निर्भर है । वे हमारे साथ क्या व्यवहार करते हैं, यह उनके देखने की बात है।"

इस सब जीवन-मीमांसा के कथन ने कुमारदेव के मन में भारी हलचल उत्पन्न कर दी।

प्रकृतिवाद

: १ :

पावा में सेठ सुखचन्द्र सर्वश्रेष्ठ धनी व्यापारी थे। वह महर्षि वामदेव के एक मान्य शिष्य थे। इनकी उज्जयिनी में भी कारोबार की एक कोठी रही थी, जो पहिले युद्धों के कारण बंद हो गयी थी। बीच में जब दैवयात मल्ल राज्य की ओर से राजदूत बन कर उज्जयिनी में गया था, तब वह कोठी खुल गयी थी, परन्तु श्वेताग के षड्यंत्र के समय जब मल्ल राज्य का राजदूत लौट आया तो उसके साथ ही यह व्यापार की कोठी भी बंद हो गयी। इस बार सेठ सुखचन्द्र ने बहुत बड़ी धनराशि लगाकर उज्जयिनी में व्यापार खोला था और मल्ल सेना के अवन्ति में घुस आने पर वह कोठी अवन्ति राज्य ने लूट ली थी।

सेठ सुखचन्द्र को इससे भारी हानि हुई, और वह इस प्रकार बार-बार दोनों राज्यों में युद्ध होने को रोकने के उपायों पर विचार करने लगा। इस विषय में उसने महर्षि वामदेव से भी राय ली और उन्होंने इस रोग का निदान कर उसकी चिकित्सा बता दी। उनका कहना था, "मल्ल राज्य में धर्म का लोप हो चुका है। क्षत्रियों ने इस देश में शुद्ध सेना का राज्य चला रखा है। यही कारण है कि इस देश में उन्नति नहीं हो सकती। जब धर्म का राज्य होगा तब यहां पर सुख, शान्ति और समृद्धि बढेगी।"

"तो गुरुदेव! धर्म की स्थापना इस देश में किस प्रकार हो?"

इस पर महर्षि ने मल्ल राज्य की राजधानी पावा में एक विशाल भगवती देवी के मंदिर की स्थापना करने की योजना बना दी। बहुत विचारोपरान्त सेठ सुखचन्द्र ने गणपति इन्द्रमणि के सामने उपस्थित हो, मंदिर बनाने की योजना उपस्थित कर दी।

"इससे क्या होगा ?" गणपति का प्रश्न था।

"मा भगवती की कृपा से प्रकृति के अन्तरतम रहस्य मनुष्यमात्र के समक्ष स्पष्ट हो जावेंगे। इससे मनुष्य का कल्याण होगा।"

"सेठ जी महाराज ! आपकी बात समझ में तो आती नहीं। इस पर भी ऐसा मन्दिर बनवाने मे मै कोई हानि नहीं मानता। पर इसके लिये धन कहा से आवेगा ?"

"मां भगवती धन उगलेंगी महाराज ! भूगर्भ में उपस्थित सब धन-राशियों की वे स्वामिनी हैं। अपने मन्दिर के लिये वे धन देंगी।"

"तो यह कहां बनवाओगे ?"

"पावा नगर में, गणसभा-भवन के सामने एक बहुत बड़ा खुला स्थान है। वहा यह मन्दिर बनवाने की स्वीकृति देने की कृपा करिये।"

"वह तो बहुत बडा स्थान है। इतना क्या करोगे ?"

"भगवन् ! दे दीजिये। यदि एक वर्ष में इस सब पर मन्दिर नहीं बना, तो स्थान वापिस ले लीजियेगा।"

"मन्दिर की रूप-रेखा विचार की है क्या ?"

"हा महाराज ! गणसभा-भवन के सामने, मार्ग के दूसरी ओर दो सहस्र पग लम्बा-चौड़ा चौंतरा बनेगा। यह चौतरा बीस हाथ ऊचा होगा। चारो ओर से इस पर चढ़ने के लिये श्वेत चिकने पत्थर की सीढ़िया होंगी। इस चौंतरे के बीचो-बीच मा भगवती का मन्दिर होगा। इस मन्दिर का कलश चौतरे की भूमि से पांच सौ हाथ ऊचा होगा। इस कलश के ऊपर एक छत्र ऐसे ढंग से लगाया जावेगा कि वह भगवान् सूर्य की रश्मियो को एकत्र कर मन्दिर के भीतर ले जावेगा। यह प्रकाश सारे मन्दिर को जगमग कर देगा। भगवान् सूर्य की रश्मिया भगवती की स्वर्ण मूर्ति पर पड़ कर उसको देदीप्यमान कर देंगी। भगवती की मूर्ति एक विशाल आगार में होगी, जो सीधा कलश के नीचे होगा और इस आगार के चारों ओर अनेक आगार होंगे। सूर्य की किरणें छत्र से टकरा कर मूर्ति पर पडेंगी और वहां से खण्डित होकर, इन चारों ओर

के आगारों में जायेंगी। यह खंडित किरणें सात प्रकार की होंगी, जो मनुष्य के शरीर के लुप्त धातुओ के निर्माण और पुष्ट करने का कार्य करेंगी । इन सप्त किरणों से मनुष्य के सर्वप्रकार के रोगो की चिकित्सा करने का प्रबन्ध किया जावेगा। सूर्य भगवान् की किरणों के खंडित होने पर सात उपयोगी किरणें सात भिन्न-भिन्न आगारों में चली जावेंगी और इन किरणों का किट्ट रूप मां के चरणों का प्रक्षालन कर एक पात्र में एकत्रित होगा जो ऋद्धि-सिद्धि देने की शक्ति रखेगा।

"इस चौंतरे के चारो कोनो में और मन्दिर होगे। एक मार्तण्ड भगवान् का, दूसरा श्री सोमनाथ का, तीसरा शनि और चौथा शुक्र का। मां के मदिर के पीछे बृहस्पति का और उसके दोनो पार्श्वों में बुध और मंगल का। सब मन्दिर भूगर्भ आगारो से सम्बन्धित होगे। चौंतरे पर जो खुला स्थान बच जावेगा, वहां उपदेश-कीर्तन करने के लिये स्थान होगा। इस प्रकार ससार की प्रत्येक शक्ति का प्रतीक और उसके उपयोग का प्रत्येक उपाय इस मंदिर में एकत्र किया जायेगा।"

"इन सब आयोजनो पर कितना धन व्यय होगा ?"

"पचास लक्ष स्वर्ण का अनुमान है ।"

"और यह सब आयेगा कहा से ?"

"मां भगवती अपने अटूट धन-कोष से निकाल कर देंगी।"

"और वे यह तुमको देंगी ?"

"मैं तो मां का एक तुच्छ सेवक हूं महाराज ! परन्तु अन्य लोग है, जिन पर उनकी अपार कृपा है । वे उनको धन देंगी, जिससे यह सब कुछ एक वर्ष में बन कर तैयार होगा।"

"इसके निर्माण करने वाले कहां से आवेगे ?"

"वे भी मा भेजेंगी। जहां से उपयुक्त लोग मिलेंगे उनको वहा से बुला लिया जावेगा।"

इन्द्रमणि इस सबको सुन कर खिलखिला कर हंस पडा । पश्चात कुछ गम्भीर हो कर कहने लगा, "सुखचन्द्र ! मैं तो समझता

था कि हमारे राज्य में सब से अधिक संतुलित बुद्धि रखने वाले व्यापारी तुम हो, परन्तु तुम्हारी योजना सुन कर तो मुझको अपनी धारणा पर सदेह होने लगा है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने पूर्वजों की सब सम्पत्ति इस व्यर्थ के कार्य में फूंक दोगे और इस पर भी कुछ बनेगा नही।"

"महाराज ! आप शायद ठीक समझते है। इस पर भी आपसे निवेदन है कि मुझको अवसर दीजिये। राज्य के किसी भी प्राणी की एक पाई भी इस प्रयास में नही जायेगी।"

: २ :

गणपति इन्द्रमणि के आग्रह पर मल्ल राज्य की सभा ने सभाभवन के सामने की भूमि इस मन्दिर के लिये देनी स्वीकार कर ली। दैवयात, जो इन्द्रमणि का अभी भी विरोध करता था, इस मन्दिर के बनने का विरोध करने लगा। परन्तु गणसभा में उसके पक्ष में बहुमत नहीं था। इस प्रकार उसके विरोध करने पर भी सेठ सुखचन्द्र को भूमि मिल गयी।

पावा के निवासियों न जब कई सहस्र कर्मकरों को मगध और अवन्ति से आकर काम पर लग गये देखा तो वे चकित रह गये। पलक की झपक में भूमि समतल हो गयी और उसपर निर्माण कार्य आरम्भ हो गया। सैकड़ों मल्ल देश के काम करने वाले भी लगाये गये और सबको पर्याप्त वेतन मिलने लगा। पांच विश्वकर्मा, सेठ सुखचन्द्र के घर पर बैठे दिन-रात विचारपूर्वक उस निर्माण कार्य को चला रहे थे।

दिन-प्रति-दिन, द्रुत गति से उठ रहे इस विशाल भव्य मन्दिर को देख-देख पावा की जनता आश्चर्य कर रही थी। यह कौन कर रहा ह? यह क्यों किया जा रहा है ? इसमें क्या होगा ? कौन इसका संचालन करेगा ? इत्यादि विषयों पर इसके गगनचुम्बी कलश की ओर सिर उठा कर देखते हुए जनता चर्चा करती थी।

गणपति और गणसभा के सदस्य भी, जब सभा का कार्य समाप्त कर सभाभवन से निकलते तो सहस्रो कलाकारो और निर्माण कला में कुशल विश्वकर्माओं को सिरतोड़ मेहनत करते देख घंटो ही खड़े विस्मय करते थे ।

वर्ष व्यतीत होते-होते सेठ सुखचन्द्र का स्वप्न साकार हो गया। एक अद्वितीय मन्दिर बन कर तैयार हो गया। भूमि पर खड़ा हो जब कोई इसके कलश की ऊंचाई देखने लगता तो उसके सिर का मुकुट नीचे लुढक पडता । एक स्वर से लोग कहते थे, "कितना ऊंचा है ? कितना विशाल है ? कितना सुन्दर है ?"

मुख्य मन्दिर के आगे की दीवार खुली थी। इसमें मूर्त्ति स्थापित होनी थी। यह मूर्त्ति तीस हाथ ऊंची विन्ध्याचल से बन कर आ रही थी। इतनी बडी मूर्त्ति को मुख्य आगार में ले जाने के लिये पर्याप्त बडा द्वार बनाने के स्थान, आगे का भाग नही बनाया गया था। जब वह मूर्त्ति आयी और आगार में ले जायी गयी तो सामने की दीवार निर्माण की गयी । इस दीवार में पन्द्रह हाथ ऊंचा द्वार रखा गया।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को मन्दिर का उद्घाटन और मूर्त्ति में प्राणप्रतिष्ठा का समारोह मनाया जाना था। महर्षि वामदेव स्वयं इस समारोह को संवारने के लिये पधारे। इस बात की सूचना पूर्ण मल्ल राज्य में फैल गयी और लाखों की संख्या में जनता इस उदघाटन को देखने के लिये पावा में एकत्रित हो गयी। पावा का सोया हुआ नगर सजीव हो उठा। इसके मार्ग और वीथिकायें जनता के आने-जाने से स्पन्दन करने लगीं। दर्शक लोग, मानो स्वप्न से जागे हो, इस मन्दिर की भव्यता को देख विस्मय में अवाक् मुख रह जाते थे ।

गणसभा के कई सदस्य इन्द्रमणि की निन्दा करने लगे थे। उनका कहना था, "आपने इस मन्दिर के बनने की अनुमति देकर, क्षत्रियों का अपमान करवाया है ।"

"कैसे ?" गणपति का प्रश्न था।

आपत्ति करने वालो का कहना था, "एक वैश्य का ऐसा भव्य मन्दिर बनवाना, जिसके समान हमारा पूर्ण राज्य भी अपना सभाभवन नही बनवा सकता, हमारा अपमान ही तो है।"

"इसमें मान-अपमान की बात नही। अपनी विद्वत्ता के लिये भारत भर में विख्यात, महर्षि हमारे नगर में आयेंगे। इससे हमारे नगर की शोभा बढ़ेगी। लाखों लोग राज्य के बाहर से उनके दर्शन के लिये आ रहे हैं और लाखो प्रतिवर्ष इस मन्दिर के दर्शन के लिये आवेंगे। इससे हमारे देश की आय बढ़ेगी।"

विरोधी लोग इन युक्तियो पर हंसते थे। उनका तो कहना यह था कि क्षत्रिय वंश की अयोग्यता सिद्ध हो गयी है और यह एक अपमान-जनक बात है।

इस विरोधी पक्ष का नेतृत्व भी दैवयात कर रहा था। इस बार फिर दैवयात को मल्ल राज्य की ओर से महर्षि को अभिनन्दन पत्र देने के लिये नियुक्त कर दिया। इन्द्रमणि ने गणसभा में यह प्रस्ताव कर दिया, "मैं यह प्रस्ताव करता हू कि कल जब महर्षि वामदेव इस नगर मे आवे तो उनका अभिनन्दन करने के लिये गणसभा की ओर से दैवयात नेतृत्व करें।" यह प्रस्ताव दैवयात को स्वीकार हो गया। इससे गणसभा ने इस प्रस्ताव को सर्वमत से स्वीकार कर लिया। दैवयात के लिये यह दूसरा अवसर था, जब उसने इन्द्रमणि के प्रस्ताव को स्वीकार किया था। एक बार जब अवन्ति का राजदूत पावा में आया था और दोनों राज्यों में सन्धि की चर्चा चली थी और दूसरी बार अब। अन्यथा दैवयात इन्द्रमणि का विरोध ही करता रहता था।

महर्षि के नगर में आने के दिन इन्द्रमणि दैवयात को अपने रथ पर बैठा कर ले गया और वहा स्वर्ण के थाल में धूप, दीप, फल, फूल, पत्र, नैवेद्य इत्यादि पूजा की सामग्री रख. जा खड़े हुए।

एक ओर क्षत्रिय वर्ग के लोग दैवयात के नेतृत्व में और दूसरी ओर धनिक वर्ग के लोग सेठ सुखचन्द्र के साथ नगर द्वार पर खड़े थे और

महर्षि के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक प्रहर दिन व्यतीत हो जाने पर महर्षि पधारे। दूर उठ रही धूल को देख यह अनुमान लगा लिया गया कि अतिथि आ गये। नगर-द्वार के बाहर एक विशाल मैदान था। वहां बीस सहस्र लोग इस स्वागत-समारोह को देखने के लिये आये हुए थे। इनके अतिरिक्त लाखों लोग द्वार से भगवती के मन्दिर तक मार्ग तट के साथ-साथ खड़े थे।

महर्षि और उनके साथियों के रथ जब समीप आये, तो जनता ने जयघोष किया, "महर्षि वामदेव महाराज की जय हो! जय हो!" लाखों जनो की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। ऊंचे स्थानों पर तथा पेड़ों पर चढ़ कर देखने वालों ने पुष्प-वर्षा की। जब रथ द्वार के समीप पहुंचा तो प्रतीक्षा करने वालों ने हाथ खड़ा कर उसको खड़ा कर लिया।

महर्षि हिमवत् श्वेत दाढ़ी, मूछें और जटा धारी थे। इन बालों के देखने वाले अनुमान लगाते थे कि महर्षि एक सौ वर्ष से ऊपर आयु रखते हैं। इस पर भी उनका ओज और बिना झुर्री का मुखमण्डल, उनको युवा ही प्रकट करता था।

जब रथ खड़ा हुआ तो लोगों ने जहां महर्षि के ओज और सौन्दर्य को देख विस्मय किया, वहां उनके समीप बैठी एक अति सुन्दर युवति को देख आश्चर्य प्रगट किया। सब लोग कानों-कान पूछने लगे, "यह कौन है? महर्षि की धर्मपत्नी है अथवा पुत्री?" इस प्रश्न का उत्तर कोई नहीं जानता था। वह युवति कोई बीस-इक्कीस वर्ष की आयु की अद्वितीय सुन्दरी, महर्षि से कुछ पीछे हट कर पलथी मारे बैठी थी। सिर पर बालों का बड़ा सा जूड़ा, उस पर जूही के फूलों का गजरा, बड़ी-बड़ी आंखें, रक्ताभ अधर, कमल-फूल के समान गुलाबी और कोमल कपोल, दृढ़ चिबुक, लम्बी ग्रीवा, उभरी हुई छाती और पतली कटि सब देखने वालों को मंत्रमुग्ध करने के लिये पर्याप्त थीं।

इस समय सेठ सुखचन्द्र ने आगे बढ़ कर महर्षि के चरणों में

शीश झुका दिया। पश्चात् उसने साथ बैठी युवति के चरण स्पर्श किये। तदनन्तर पुष्पमालायें दोनों के गले में डाली।

इस समय देवयात पूजा की थाली लेकर आगे आया और महर्षि तथा उस युवति की आरती उतारने लगा। जब आरती समाप्त हुई तो वह मन्त्रमुग्ध की भांति युवति को देखता रह गया। उस देवी ने उसको खोया हुआ देख हाथ खड़ा कर आशीर्वाद दिया। इस पर पुनः असंख्य जनता ने महर्षि का जय-जयकार कहा। इस जयघोष को सुन देवयात को चेतनता हुई और वह पीछे हट गया।

सहस्त्रों लोग वहां खड़े उस युवति की ओर एकटक देख रहे थे और वह मृगनयनी अर्धमुंदी आंखों से ही सबको देख रही प्रतीत होती थी।

इस स्वागत के पश्चात् महर्षि की सवारी नगर में प्रविष्ट हुई। महर्षि के रथ के पीछे और भी कई रथ थे, जिनमें महर्षि के शिष्य-शिष्यायें बैठी थीं। लगभग सौ प्राणी थे। इन रथों के पीछे गणपति और अन्य नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों के रथ थे और पीछे सहस्त्रों जन पैदल महर्षि वामदेव की जय-जयकार करते हुए चल पड़े।

: २ :

मन्दिर के सम्मुख, लाखों जनों के गगनभेदी जय-घोष के बीच, सवारी पहुंची। महर्षि और उनके साथ बैठी युवति रथ से उतरे और मन्दिर के चौंतरे पर चढ़ गये। उनके पीछे उनकी शिष्य-शिष्यायें और अन्य मान्य नागरिक जो मंदिर में जाने के लिये आमंत्रित थे, चौंतरे पर चले गये। इस समय महर्षि ने घूम कर सभाभवन और मन्दिर के भीतर खुले स्थान पर अपार भीड़ को देखा और हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया। पश्चात् वे अपने साथियों और आमंत्रित अभ्यागतों के साथ मंदिर के भीतर चले गये।

मंदिर में महर्षि पुरोहित बन पश्चिमाभिमुख बैठ गये और सेठ सुखचन्द्र तथा वह देवी जो महर्षि के साथ आयी थी, पूर्वाभिमुख

यजमान बन बैठ गये। इस समय महर्षि ने मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा करने के लिये अग्निहोत्र कराना आरम्भ कर दिया।

पावा के आमन्त्रित नागरिक महर्षि के पीछे बैठे थे। दैवयात गणपति इन्द्रमणि के साथ महर्षि के साथियो के पीछे बैठा था। उसने इस विशाल आगार को देखा। इसमें पांच सहस्त्र लोग बैठ सकते थे। इस आगार की दीवार के साथ आगार के द्वार के सामने भगवती की मूर्ति थी। यह मूर्ति तीस हाथ ऊँची सर्वथा स्वर्ण की बनी हुई, एक नग्न स्त्री की थी। मन्दिर की छत पर लगे छत्र से भेजी सूर्य किरणो द्वारा, यह मूर्ति ज्योतिर्मय हो रही थी। यह इतनी चमक रही थी कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा था। इससे निकल रहे प्रकाश से पूर्ण आगार जगमगा रहा था और उस आगार की प्रत्येक वस्तु स्पष्ट रूप में दिखाई दे रही थी।

दैवयात ने मूर्ति को देखा और देख कर चकित रह गया। इतना स्वर्ण लगा हुआ था इस मूर्ति में, कि आश्चर्य होता था। वह विचार कर रहा था कि यह कंजूस सुखचन्द्र का स्वर्ण है अथवा मन्त्राधिकारी महर्षि का। इतना स्वर्ण और फिर इतनी सुन्दर बनी हुई मूर्ति! वह चकाचौंध हो, इसको देखता रह गया। आज उसने यह दूसरा चमत्कार देखा था। एक वह युवति थी, जो इस समय सेठ सुखचन्द के पास बैठी थी।

मूर्ति के स्वर्णिल केशों में मणि-माणिक्य जड़े थे। उसके वक्षस्थल पर नील मणि लगी थी। उसके उदर पर पुखराज थे। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न अगों पर भिन्न-भिन्न रत्न जड़े थे। सूर्य की किरणें, इन रत्नो से टकरा कर उस मध्यवर्ती आगार के चारो ओर के आगारो में जा रही थीं। इन आगारो के द्वार इस समय बंद थे और ये किरणें, इन बद द्वारो पर इन्द्र-धनुष के समान प्रकाश डाल रही थीं।

यह सब कुछ इतना सुन्दर और भव्य था कि अनेको अन्य दर्शको की भांति दैवयात भी देख-देख कर चकित हो रहा था। इस सब समय

अग्निहोत्र चल रहा था। महर्षि ऊंचे स्वर में, परन्तु स्वर-ताल-लय के साथ, मन्त्रोच्चारण कर रहा था और सुखचन्द्र आहुति दे रहा था।

मंत्र-गान हो रहा था, "यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मन. शिवसंकल्पमस्तु।"

यह अग्निहोत्र एक प्रहर भर चलता रहा। दर्शकों को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि ज्यों-ज्यों मन्त्रोच्चारण चलता जाता है और ज्यों-ज्यों अग्निहोत्र की अग्नि घी और सामग्री को आत्मसात् करती जाती है, भगवती की मूर्ति में ज्योति बढ़ती जाती है। इस ज्योति के बढ़ने से उस आगार में तापमान भी बढ़ता जाता है। धीरे-धीरे उष्णता इतनी बढ गयी कि दर्शकों के पसीना छूटने लगा। मूर्ति की ओर देखना तो दूर, उसकी ओर से दूर हटने की इच्छा होने लगी।

अंत में पूर्णाहुति हुई, "पूर्णात् पूर्णमिदं पूर्णमुदच्यते....।"

सब खड़े हो गये और अंतिम आहुति, "सर्वं वै पूर्ण स्वाहा।" हो गयी। कुण्ड से लपटें उठ कर मूर्ति के मस्तिक तक गयीं।

अब महर्षि ने अपनी तांत्रिक भाषा में मंत्र पढ़े, 'ओम श्रीं ह्रीं क्लीं नमो नमः।"

इन मंत्रों के साथ मूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा का कार्यक्रम समाप्त हुआ। इस समय मूर्ति में पुनः स्वाभाविक शान्ति आ गयी और पुनः मूर्ति का सौन्दर्य देखने योग्य हो गया। महर्षि ने आशीर्वाद दिया, "मां भगवती की अपार कृपा से आज हम इस देश में यह नया प्रयोग कर रहे हैं। सेठ सुखचन्द्र इस मंदिर के यजमान और देवी कमलायिनी इस मन्दिर की पुरोहितायिन नियुक्त हुई है। यह मन्दिर हमारी संरक्षा में है। यह तान्त्रिक मत का प्रतीक हो, ऐसी हमारी भावना है।

"सूर्य, चन्द्र, तारागण और उनमें यह हमारी पृथ्वी, मां भगवती का चमत्कार ही है। प्रकृति आदि रूप से लेकर इस वर्तमान रूप में सर्वत्र और सदा विद्यमान रही है। इसके वे सब रूप भी, जो कभी भविष्य में प्रकट होंगे, सदैव और सर्वत्र न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान

रहते हैं। इन रूपों को देखने और फिर इनको प्रयोग कर सकने की क्षमता ही मनुष्य की सफलता और सार्थकता है। इसके जानने और करने की क्षमता योग, ध्यान और सिद्धि से प्राप्त होती है। इस सिद्धि का उपयोग अधिक से अधिक जनता को कराने के लिये इस मन्दिर की स्थापना की गयी है। यह अमृत सरोवर आपके मध्य में निर्माण कर दिया गया है। इसका पान करना अब आपके हाथ में है।

"इस मन्दिर पर व्यय किया गया अपार धन मां भगवती की अपनी ही देन है। इसी से यह सब कुछ हमने पाया है और इसी की सेवा में हम यह सब कुछ व्यय कर रहे हैं।

"सब देवता अथवा कहे जाने वाले परमात्मा के रूप, इस प्रकृति के रूप ही हैं। जैसे सोना और सीसा दोनों प्रकृति के रूप होने पर भी, समान गुण और मूल्य की वस्तुएं नहीं हैं, वैसे ही मनुष्य मनुष्य और देवता देवता में भेद है। राम और रावण में वैसा ही अंतर है, जैसे अमृत और सोमल में।

"प्रकृति के विशेष गुणों का स्वामी बनने के लिये मनुष्य को योग, ध्यान और तपस्या का आश्रय लेना चाहिये। उन्हीं गुणों को प्राप्त करने का अवसर प्रस्तुत करने के लिये इस मन्दिर की संस्थापना की गयी है।

"मैं मां भगवती से प्रार्थना करता हूं कि वह अपने अपार गुणों से मल्ल राज्य की जनता को विभूषित करें, जिससे यह निर्धन, साधनहीन देश सुख-समृद्धि से सम्पन्न हो सके।"

इस प्रकार भगवती के मन्दिर की स्थापना पावा में हो गयी।

· ४ ·

वैचयात इस सब समय मन्त्रमुग्ध की भांति बैठा देखता रहा। उसको ऐसा प्रतीत होने लगा था कि उसका अपना कुछ भी अस्तित्व नहीं। वह विशाल संसार में एक अति सूक्ष्म कण के समान है। प्राकृतिक

शक्तियों में वह सागर में एक तृण समान भटक रहा है। मन्दिर की भव्यता, मूर्ति का विशाल रूप, कमलायिनी की अद्वितीय सौन्दर्य, मार्तण्ड की किरणों से देदीप्यमान वह विशाल आगार और अन्य सब कुछ उसको अति विस्मयजनक लगा था।

महर्षि ने उद्घाटन किया, प्राणप्रतिष्ठा की और आशीर्वाद दिया। पश्चात् अतिथि इच्छानुकूल भिन्न-भिन्न आगारों में चले गये। नगर के आमंत्रित व्यक्ति उठ कर मन्दिर के बाहर जाने लगे। दैवयात भी सबको उठता देख उठा। इस समय उसकी दृष्टि पुनः मूर्ति की ओर गई और वह उसके सौन्दर्य को देख स्तब्ध रह गया। वह अभी खड़ा देख ही रहा था कि आगार रिक्त हो गया। उसको ज्ञान ही नहीं रहा कि वह वहां अकेला रह गया है। एकाएक मन्दिर की छत पर से घड़ियाल ने तीसरे प्रहर का घंटा बजाया। इसको सुन कर उसको चेतनता हुई कि वह भूखा है। वह प्रातः काल से इस समारोह में आया हुआ था। वह घूमा और बाहर निकल आया।

मन्दिर के बाहर कुछ लोग अभी भी मन्दिर की भव्यता को देख रहे थे। प्राय. सब गण्य-मान्य सदस्य अपने-अपने रथों में सवार होकर, विदा हो चुके थे। वह अपने निवासगृह पर पहुंचा तो उसके मित्र बैठे हुए उस दिन के समारोह पर टीका-टिप्पणी कर रहे थे। दैवयात उनमें जा बैठा। वह अभी भी मनुष्य की निस्सारता पर विचार कर रहा था। उसके मित्र आलोचना करते रहे।

"वह लड़की महर्षि की स्त्री थी क्या ?" एक ने पूछा।

सब खिलखिला कर हंस पड़े। एक और ने पूछा, "क्यों भैया दैवयात ! तुम तो उसके समीप बैठे थे। कुछ पता चला कि वह कौन है ?"

देवयात दीवार के साथ ढासना लगा बैठा था। उसने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वास्तव में वह उनकी बातें सुन ही नहीं रहा था। उसे चुप देख उक्त प्रश्न पूछने वाले ने कहा, "महर्षि आये हैं और अपने साथ कितियों युवा सेविकायें लाये है।"

इस पर एक व्यक्ति उज्जयिनी में प्रचलित लिंगायतवाद की व्याख्या करने लगा। वहां की उपासना का उल्लेख कर उसने बताया, "अवन्ति की पटरानी भी इन उपासनाओ में सम्मिलित होती है।"

"अब वैसे ही व्यभिचार का प्रचार इस देश में करने के लिये यह तरुणियो का दल यहा लाया गया है।"

"क्यो भैया देवयात! गणसभा में इसका विरोध करोगे तुम?"

"मै तो आज महर्षि और उनकी शिष्या कमलायिनी का स्वागत और आरती उतार चुका हू। अब इनकी निन्दा कर, हंसी का पात्र बन जाऊंगा।" देवयात ने सचेत हो कहा।

"कल तुमको यह कहा विदित था कि यह वेश्याओ का दल महर्षि के साथ आ रहा है?"

"मित्र! किसी के विषय में कोई भी निन्दनीय बात बिना प्रमाण कैसे कही जा सकती है?"

इस बात को देवयात से सुन, सब लोग हसने लगे। वह देवयात से स्त्रियों के लिये इतने आदर के उद्गार सुनने की आशा नही करते थे। अब वे देवयात पर व्यग कसने लगे। एक ने कहा, "कितना सुन्दर मन्दिर बनवाया है सेठ ने।"

एक और बोला, "कितनी भव्यमूर्ति है महर्षि महाराज!"

तीसरा बोला, "हा! और कितनी सुन्दर है महर्षि जी की दासी?"

"क्या?" देवयात ने उनके व्यग के भाव को समझ कर कहा। "मित्र चक्रायुध! तुम समझते हो कि मैं उस लड़की के कारण गणसभा में निन्दा का प्रस्ताव करने से न कर रहा हू? यह बात नहीं मित्र! मैं अब अनुभव कर रहा हू कि मैंने इन्द्रमणि की इतनी निन्दा की है कि अब मेरे कहने में प्रभाव नहीं रहा। यदि एक ही दिन में, मैं किसी की प्रशंसा से निन्दा करने लगूं तो लोग क्या कहेंगे?"

"भैया! पहिले तो तुमने कभी ऐसी बात नहीं विचार की थी?"

"मै समझता हू कि अब मुझको बचपन छोड इस जीवन के

उत्तरदायित्व की ओर विचार करना चाहिये ।"

चक्रायुध ने मुख गोल कर कहा, "ओह ! समझ गया भैया ! क्या आयु हो गयी है तुम्हारी ?"

"हंसी छोड़ो चक्रायुध ! पावा में इस मंदिर की स्थापना से एक नवीन युग का श्रीगणेश किया गया है । इस युग में हमने अपना उचित स्थान लेना है । यह स्थान इन बचपन की बातों से नहीं मिल सकता। मैंने उज्जयिनी के हृदय के स्पन्दन को देखा है । उसमें तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों को भी देखा है। वहां के नर-नारी को स्वच्छंदता से जीवन-संघर्ष में अग्रसर होते देखा है। वहां के इस होने वाले परिवर्तन को रोकने का यत्न महाराज पालकदेव ने किया था, परन्तु उनके सब प्रयत्न विफल गये और उनका अपना कहीं पता नहीं चला । मैं यहां का पालकदेव बनना नही चाहता। वेग से बहती नदी के बहाव का विरोध कर उसको पार नही किया जा सकता। बहाव के साथ-साथ बहना ही बुद्धिमत्ता है ।"

चक्रायुध इस उपदेश को सुन गम्भीर हो बोला, "उज्जयिनी की बात सुना कर हमको चकाचौंध मत करो देवयात ! यह मत समझो कि वहा समाज में लगे घुन को हम जानते नहीं । यहां के लोग अपनी बहु-बेटियों को नगी हो रग-मच पर नाचने नही देंगे। उज्जयिनी एक सार्वभौमिक नगर है । वहा भांति-भांति की सस्कृतियों में सघर्ष पहिले ही हो रहा था। इस कारण वहां यह सब अनाचार भले ही न अखरता हो, परन्तु इस देश मे तो ऐसी बात हो जाने से विप्लव खड़ा हो जावेगा।"

"तो तुम मुझसे क्या चाहते हो ?"

"यह नग्न स्त्री की मूर्ति जनता में कामुकता बढ़ायेगी। इसको गणसभा की ओर से वर्जित कर देना चाहिये।"

"मित्र ! मैं तो समझता हूँ कि इसका प्रभाव तुम्हारे कहने के विपरीत होगा। लोग इस मूर्ति को देख-देख स्त्रियों के सम्पर्क में आने पर उत्तेजित होना भूल जावेंगे।"

"और ये स्त्रियां जो इस मंदिर में पूजा-पाठ के लिये आयी हैं, क्या वे सती-साध्वी बन बैठी रहेंगी ?"

"बिना उनमें कोई खराबी देखे कैसे उनकी निन्दा कर सकता हूं ?"

"इसके अर्थ यह हुए कि जब काम बिगड़ जावेगा तब तुम व्यवस्था दिलवाने का यत्न करोगे ! वह आग लगने पर कूंआ खोदने की बात होगी।"

"यह आज क्या हो गया है हमारे नेता को ?" एक और वहां बैठे मित्र ने कहा।

दैवयात का कहना था, "इसका कारण समझने के लिये भी समय की आवश्यकता है। मैं स्वयं अभी अपने मन के भावों का विश्लेषण नहीं कर सका।"

बात यहीं समाप्त हो गयी। अगले दिन गणसभा में दैवयात ने मंदिर की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

दैवयात के मित्रों का अनुमान असत्य सिद्ध हुआ। दो मास के पश्चात् ही दैवयात का मित्र चक्रायुध दैवयात को कमलाक्षिनी के विषय में बता रहा था, "देवी साक्षात् प्रकृति का रूप है। वह अति सुन्दर, स्वच्छ और निष्कलंक है। नगर के लोग उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते।

"सायंकाल दो घड़ी भर मंदिर के बाहर चौंतरे पर मृगछाला का आसन लगा वह बैठती है। लोग झुंड के झुंड उसके दर्शन करने आते हैं और गद्-गद् हो लौट जाते हैं।"

"पर मित्र !" दैवयात ने पूछा, "दो मास पूर्व तुम कुछ दूसरी बात कहते थे।"

"हां, पर मेरे विचार बदल गये हैं। सेठ सुखचन्द्र उसको मां कह कर पुकारता है। मंदिर के सब निवासी उसको मां भगवती कहते हैं और उसके तेज के सम्मुख व्याकुल हो उठते हैं।"

"तो तुम वहां जाने लगे हो ?"

"हां भैया ! वह केवल बीस-इक्कीस वर्ष की लगती है। बहुत

सुन्दर लम्बे बाल हैं, जो सिर पर कुछ दाहिनी ओर एक बड़े से जूड़े में बंधे रहते हैं। उन पर जूही के फूलों का गजरा, जिसकी सुगन्ध दूर-दूर तक फैलती रहती है, बंधा होता है। मस्तक पर त्रिपुड़ का चिह्न, गले में रुद्राक्ष की माला और उस पर पाटल पुष्पों की सघन गूँथी हुई मालाएं होती हैं।

"रक्तवर्ण कौशेय साड़ी और उसी रंग की चोली पहिन तो वह साक्षात् दुर्गा दिखाई देती है। लम्बी गर्दन, भरा हुआ लम्बा मुख, गोल नाक, ऊंचा मस्तक, मोटी-मोटी रसीली आंखें, लता समान कोमल भुजाएं, उन्नत स्तन, यह कुछ थोड़ा सा वर्णन है देवी का। बहुत कम बोलती है और जब बोलती है तो रक्ताभ अधरो में मोती की लड़ी के समान श्वेत दांत दिखाई देते हैं।"

यह सब वर्णन सुन दैवयात में उसको देखने की कामना जाग उठी और उसी सायंकाल दैवयात भगवती के मंदिर में जा पहुंचा। बहुत से लोग चौंतरे पर आ-जा रहे थे। इससे वह भी वहां चौंतरे पर चढ़ गया। मंदिर-द्वार के एक ओर, एक ऊंचे आसन पर मृगचर्म बिछाये कमलायिनी बैठी थी। सौ दो सौ भक्त उसके चारो ओर बैठे थे और अन्य लोग आते थे, श्रद्धा से शीश झुका नमस्कार कर चले जाते थे। वह चुपचाप आंखें मूंदे बैठी थी।

कितने ही काल तक दैवयात कमलायिनी के मुख पर देखता रहा। इस सब समय उसका हृदय धक-धक करता रहा। वह सत्य ही अति आकर्षण रखने वाली लड़की थी। दैवयात के मन में इच्छा हुई कि वह उससे एकान्त मे मिल कर, उसके रहस्य को जानने का यत्न करे। वह भक्त जनो के पीछे बैठ गया।

नियमानुसार देवी के उठ कर भीतर जाने का समय हो गया। भक्त-जन उठ खडे हुए और उसके लिये मार्ग छोड़ एक ओर हो गये। दैवयात भी इस मार्ग के एक ओर खडा हो उसको जाते देखने लगा।

जब कमलायिनी इस मार्ग से जाने लगी तो उसकी आंखें भक्त जनो

के पावों की ओर झुकी हुई थीं। इस पर भी जब वह दैवयात के समीप से निकली तो रुक गयी। उसने दैवयात के मुख को देखा और कहा, "भक्त दैवयात! आओ। तुम्हारी चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम संशय निवारण करना चाहते हो न?"

दैवयात इस बात को सुन कर चकित रह गया। वह समझ नहीं सका कि पुजारिन कैसे उसको और उसके नाम को जानती है। फिर कैसे वह उसके मन की अभिलाषा को समझ गयी है।

"आओ।" यह कह कमलायिनी भीतर चली गयी। जैसे चुम्बक के पीछे लोहा खिंच जाता है, वैसे ही कमलायिनी के पीछे दैवयात खिंचा हुआ मंदिर के भीतर चला गया। जिधर वह गयी, उधर ही वह चलता गया। कमलायिनी मूर्ति वाला आगार लांघ कर, मूर्ति के बगल में, एक आगार में चली गयी और दैवयात उसके पीछे-पीछे चलता गया।

कमलायिनी वह आगार भी लांघ गयी और उसमें से एक अन्य आगार में चली गयी। दैवयात वहां पहुंचा तो इस आगार का द्वार बंद हो गया और वहां घटाटोप अंधेरा हो गया।

दैवयात एक दम खड़ा हो गया। वह नहीं जानता था कि आगे मार्ग किधर है? उसको अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वह आगार धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्ण छत जगमगा उठी है। दैवयात ने देखा कि सामने एक ऊंचे आसन पर पुजारिन विराजमान है। जब पर्याप्त प्रकाश हो गया तो उसने कहा, "दैवयात! बैठो।"

वह आसन के समीप नीचे बैठ गया। कमलायिनी ने कहा, "धन्यवाद है भगवती का कि उसने भक्त के मन में शीघ्र ही प्रेरणा कर दी है। उसकी प्रेरणा के बिना यहां कोई नहीं आता।"

"आप मुझको कैसे जानती है?"

"इसके जानने की आवश्यकता नहीं। इतना पर्याप्त जानो कि मैं

तुमको जानती हूं और यह भी जानती हूं कि मल्ल राज्य का भविष्य तुम्हारे साथ सम्बद्ध है। तुमको अपने में विश्वास नहीं। इसी कारण तुम इसके भाग्य के प्रेरक अभी तक नही बने।"

"आत्म-विश्वास कैसे उत्पन्न होगा?"

"योग, ध्यान और तपस्या से।"

"कौन दीक्षा देगा मुझको इन बातो की?"

"भगवती मा देंगी।"

"आप दीक्षा नहीं देंगी क्या?"

"मा की प्रेरणा होगी तो मै भी दे सकती हूं।"

"तब तो मै यह कर सकूंगा। वास्तव में भगवती इत्यादि को तो मै कुछ समझता नही। मै तो देवी के आकर्षण से खिचा चला आया हूं।"

"वह भी तो मा की ही कृपा है। वे मेरी मां है। उन्होंने ही मेरा निर्माण किया है। उनकी दया से ही मै जीवित हूं और उनकी कृपा से ही मै कुछ समझ सकी हू।"

"क्या समझा है आपने?"

"यह बताने की बात नहीं। वह केवल अनुभव ही किया जा सकता है। तुम यत्न करो, तुम्हें भी अनुभव होगा।"

"परन्तु मै तो आपको ही समझना चाहता हूं।"

"पूछो, क्या पूछना चाहते हो?"

"यह सौन्दर्य का भण्डार, जिसकी आप स्वामिनी है, कहां से पाया है आपने?"

"किस सौन्दर्य की बात करते हो? इस हाड़-चाम के शरीर की अथवा मेरे मन और बुद्धि की।"

"मै तो इस हाड़-चाम की ही बात कर रहा हू। मन-बुद्धि तो दिखाई नहीं देती।"

"यदि बाहरी सौन्दर्य ही देखना है, तो बाहर आगार में खडी स्वर्ण-मूर्ति को ही देख लो। मुझसे अधिक सुन्दर बनी है।"

"वह देखी है । बहुत सुन्दर है । परन्तु कितनी देर तक देखूं उसको । वह तो इतनी विचित्र होते हुए भी एकरस, एकरूप है और इसके विपरीत आपको दो घड़ी भर में बीस वार बदलते देखा है और प्रत्येक बार आपको पहिले से अधिक सुन्दर ही देखा है ।"

कमलायिनी मुस्कराई और पूछने लगी, "भला बताइये। अब कैसी दिखाई देती हूं ?"

"इस समय तो आपमें स्त्री-सुलभ कोमलता विराजमान प्रतीत होती है। इससे पहिले जब आप हाड़-चाम के सौन्दर्य की बात कह रही थीं, तब आप तार्किक विद्वान् ही दिखाई देती थीं। उससे भी पहिले जब आप मुझको भीतर आने का आदेश दे रही थी, तब आपमें स्वामित्व प्रधान दिखाई दिया था। उससे भी पहिले, जब आप बाहर बैठी थीं, तब एक पुजारिन के रूप में थीं।"

"यह सब स्वाभाविक ही है । मैं चेतनावस्था में हूं। मेरे में चित्त होने से अनेक विचारों अथवा कार्यों के साथ मेरा रूप बदलता रहता है। परन्तु यह मेरे बाहरी रूप से सम्बन्ध नहीं रखता।"

"कुछ भी हो देवी! नारी में नारीत्व ही सौन्दर्य की खान है ।"

"यह तो है ही। प्रकृति का सतोगुण नारी में अधिक मात्रा में रहने से वह अधिक चेतना की स्वामिनी होती है । यही कारण है कि हमने प्रकृति को साकार दिखाने के लिये नारी का रूप लिया है ।"

"पुरुष तथा स्त्री में आत्मा तो एक समान है न ?"

"हम मनुष्य में आत्मा कोई पृथक् वस्तु नहीं मानते। प्रकृति का एक विशेष रूप सात्विक अहकार है । नारी में वह अधिक मात्रा में रहता है। इसी से वह पुरुष से अधिक कोमल और चेतनायुक्त होती है ।"

"पर आप एक बात बताइये । यह नग्न मूर्ति बना कर और अपने साथ पुजारिनो की एक सेना रख कर, जनता की वासना में वृद्धि नहीं की क्या ?"

"नहीं। नग्न मूर्ति तो स्त्री को देखने का अभ्यास डालती है,

जिससे स्त्री देख कर वासना को उत्तेजना का मिलना कम होगा। आरम्भ में जो हमारे पास आते हैं, वह प्रायः इस मूर्ति को देख कर विचलित हो जाते हैं, परन्तु शीघ्र ही वह मूर्ति तो मूर्ति रही, नग्न नारी को देख कर भी विचलित नहीं होते।

"कभी तुमने ऊंचे कलश को बनाने वाले राजगीरों को देखा है? इतनी ऊंचाई पर भी वे निर्भीकता से कार्य करते रहते हैं, मानो वे भूमि पर ही काम कर रहे हों। यह ऊंचे स्थानों पर कार्य करने का अभ्यास हो जाने के कारण है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध की बात है। जब कोई स्त्री अथवा पुरुष पहिली बार एक-दूसरे को नग्न देखते हैं, तो देखने का अभ्यास न होने से पथभ्रष्ट हो जाते हैं। इसी बात का अभ्यास कराना सिद्धि का प्रथम चरण है।"

दैवयात इस कथन को युक्तियुक्त मानता हुआ भी सर्वथा सत्य नहीं मानता था। उसको इसके ठीक होने में संदेह बना रहा। कमलायिनी उसके मन में संशय का आभास पा, मुस्कराई और बोली, "संदेह नहीं मिटा न? देखो भक्त, जो बात करके देखने की है, वह युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकती। जाओ, भगवती की आराधना करो। वह मन में प्रकाश उत्पन्न करेगी।"

"देवी! मैं यह करना जानता नहीं। क्या करूं? कैसे करूं? मैं जानना चाहता हूं।"

: ५ :

दैवयात तीस वर्ष की आयु का युवक था। आठ वर्ष से वह गणसभा का सदस्य निर्वाचित हो रहा था और तब से ही उसके मन में यह लालसा थी कि वह गणपति बने। वह अपने को वर्तमान गणपति इन्द्रमणि से अधिक सबल, बुद्धिशील और चतुर मानता था। कभी-कभी तो गण-सभा में इन्द्रमणि का नाक में दम कर दिया करता था। इस पर भी जब गणपति के निर्वाचन का समय आता था, लोग इन्द्रमणि को ही निर्वाचित

करते थे। पिछली बार एक सौ सदस्यो में से चालीस सदस्यो ने देवयात के पक्ष में सम्मति दी थी और साठ ने इन्द्रमणि के पक्ष में। देवयात को बहुत आशा थी, परन्तु अंतिम समय में इन्द्रमणि ने ऐसा चक्र चलाया कि देवयात मुख देखता रह गया।

देवयात के विवाह के लिये कई युवतियो और उनके माता-पिताओ ने यत्न किया था, परन्तु उसकी एक धारणा थी कि गणपति बनने के पीछे ही विवाह करेगा। वह अपना सारा समय लोकसेवा में लगाता रहता था। इससे वह आशा करता था कि आगामी निर्वाचन के समय वह गणपति चुन लिया जावेगा। उसका विचार था कि विवाह हो जाने पर वह अपना पूर्ण समय लोकसेवा में नहीं लगा सकेगा।

वह रहने वाला तो देहात का था, परन्तु जब से गणसभा का सदस्य बना था, वह प्रायः पावा में रहता था। गाव में उसके माता-पिता और भाई-बन्धु रहते थे। उसने पावा में एक मकान बनवा लिया था और उसमें अपने मित्र चक्रायुध और कुछ दल के साथियो के साथ रहता था।

उस दिन देवयात मन्दिर मे गया तो सर्वथा अव्यवस्थित-मन हो लौटा। गृह पर सेवक भोजन तैयार कर प्रतीक्षा कर रहा था। चक्रायुध भोजन पर बैठा हुआ था। देवयात भोजनालय में आकर बैठा, तो चक्रायुध ने पूछा, "कहा गये थे भैया?"

"भगवती के मंदिर में। तुम्हारे कथन की परीक्षा करने गया था।"

"सत्य? तो देवी से बात हुई?"

"हा।"

"तो ध्यान लगाने के लिये अभ्यास करने जाओगे?"

देवयात ने आश्चर्य में मित्र के मुख को देखते हुए पूछा, "तो तुम यह भी जानते हो?"

"हा भैया! मै भी वहां के उपासको में एक हूं। मै जो कुछ आज मध्याह्न के समय कह रहा था अपने अनुभव से ही कह रहा था।"

"तो मुझको बताओ क्या होता है वहां ?"

चक्रायुध भोजन करता रहा। वह अपने सामने रखे थाल की की ओर देख रहा था। जब वह कुछ नही बोला तो दैवयात ने पूछा, "क्या बताना नहीं चाहते ?"

"यह बात नहीं। वास्तव में अभी बताने को कुछ है ही नहीं। जो कुछ था वह मध्याह्न के समय बता दिया था।"

"उससे तो कुछ भी पता नही चला। देखो, एक पृथक् आगार में वह मुझसे मिली थी। हम दोनों अकेले थे। वह बहुत सुन्दर है, इस पर भी मैं कोई ऐसी बात नहीं कर अथवा कह सका, जिससे उसका अनादर होता।"

"दैवयात! उसमें मातृभावना अति प्रबल है। जैसे बालक अपनी मां का अनादर नही कर सकता, वैसी ही हमारी उसके सम्मुख गणना है। अब तुम जा रहे हो। स्वयं अनुभव करोगे।"

दोनो मित्र मध्य रात्रि के समय अपने बिस्तर छोड़ मन्दिर की ओर चले गये। मन्दिर में दोनो भिन्न-भिन्न आगारो में ले जाये गये। प्रातःकाल जब दैवयात नींद से व्याकुल लौटा तो चक्रायुध अभी नही आया था। इस कारण वह अपने बिस्तर में जाकर सो रहा।

एक प्रहर दिन गये पर जागा, तो स्नानादि से निवृत्त हो सीधा भोजन पर जा बैठा। उसे गणसभा में जाना था। गणसभा में साधारण कार्य ही हुआ। वहां से लौटा तो राज्य-कार्यालय में एक कार्यविशेष से जाना हो गया। वहां का कार्य समाप्त कर घर आया तो उसके गांव के कुछ लोग आगे हुए थे। उनकी बातचीत सुनते-सुनते रात के भोजन का समय हो गया। भोजन के पश्चात् वह पिछली रात, कम सो सकने के कारण नीद अनुभव कर रहा था। इस कारण जा कर सो रहा।

इस पर भी वह मध्य रात्रि के समय जाग उठा और उसको उपासना में जाने की बात स्मरण हो आई। वह वस्त्र पहिन जाने लगा तो उसको चक्रायुध की याद आयी। उस दिन उसने उसको

देखा तो था, परन्तु एकान्त न मिलने के कारण वह बात नहीं कर सका था। अब उसकी याद आने पर उसने उसके पलग को देखा तो वह वहा नहीं था। उसको उपासना में गया समझ वह भी मन्दिर को चला गया।

इस प्रकार नियमपूर्वक वह नित्य रात को उपासना में जाने लगा। पहिले कुछ दिन एक उपासिका उसका हाथ पकड़ कर भगवती की मूर्ति के सम्मुख ले जाकर भगवती की अर्चना कराती थी। इन दिनो कभी कभी इस अर्चना के समय कमलायिनी इस मूर्ति के समीप खड़ी दिखाई दी। उसे देखते ही उसके मन में व्याकुलता, चचलता और वासना उत्पन्न हो जाती थी, परन्तु इस अवस्था में जब भी कमलायिनी उसकी ओर देखती, वह सर्वथा शान्त हो जाता और उसका चित्त स्थिर हो उपासना में लग जाता था।

कुछ दिन पश्चात् उसको ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह स्वर्ण-मूर्ति हाड और चाम की बनी हुई है। उसकी आखो में सजीवता और अगो में चपलता दिखाई देने लगी। एक दिन दैवयात ने मूर्ति की ओर देखा। उसे उसका मुख मुस्कराता हुआ दिखाई दिया। उसने उसके हाथो की ओर देखा। वे उसको आशीर्वाद देते प्रतीत हुए। उसने समझा कि उपासिका, जो उसकी सहायतार्थ वहा रहती है, वह उसको कुछ कह रही है। इससे वह घूम कर उसकी ओर देखने लगा तो उसने देखा कि वह सदा की भाति आंखें मूदे माला फेर रही है और मत्र बोलने से उसके होठ फड़क रहे हैं।

दैवयात चकित रह गया। वह फुसफुसाहट अभी भी चालू थी। उसने मूर्ति के मुख की ओर देखा। उसके ओष्ठ फडक रहे थे। अब उसने ध्यान लगाकर समझने का यत्न किया। उसको फुसफुसाहट का अर्थ समझ आने लगा। कोई उसके कान में कह रहा था, "दैवयात बेटा! समझो और शीघ्र तैयार हो जाओ। देश तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। यह महान् कार्य तुम्हारे हाथ से सम्पन्न होने वाला है। अन्तर्ध्यान हो

विचार करो। समय अधिक काल तक प्रतीक्षा नहीं करेगा।"

यह बात कई बार उसके कान में पड़ी। वह इसका अर्थ समझने में लगा रहा। एक बात उसने अनुभव की कि कई रातें लगातार जागते रहने पर और पहिले से बहुत कम सो सकने पर भी उसके शरीर में थकावट अथवा दुर्बलता नहीं आ रही। इसके विपरीत वह अपने मस्तिष्क को भलीभांति कार्य करता हुआ पाता था।

इन सबसे उसमें आत्मनिर्भरता की भावना उत्पन्न हो रही थी। कभी उसकी सहयोगिन उपासिका नहीं भी आती थी, तब भी वह उपासना, ध्यान, जप इत्यादि कर सकता था।

इसके पश्चात् उसको पृथक् आगार में उपासना करने के लिये कहा गया। अकेले में ध्यान करने पर उसमें एक नवीन शक्ति का संचार होने लगा। अब वह गणसभा में जब भी खड़ा हो जाता और बोलता, तो पूर्ण सभा उसकी बात सुनने में चित्त लगाती और प्रायः उसकी बात की प्रतिष्ठा करती। इन्द्रमणि की अनेको बाते अस्वीकार हुईं। तीन-चार मास में ही देवयात को ऐसा अनुभव होने लगा कि साक्षात् सरस्वती उसकी वाणी में आ विराजमान हुई है और जो कुछ वह कहता है, उसमें रस, युक्ति और प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

पहिले भी वह अपने विचार से बात तो ठीक ही कहता था, परन्तु बोलने के समय अपने भावों को भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता था। परिणाम यह होता था कि उसके कथन के बीच में ही लोग उसको रोक, उसका खंडन करने लग जाते थे। अब वह जब अपने विचारों को व्यक्त करता था तो लोग सुनते थे, समझते थे और फिर उसकी युक्ति से प्रभावित हो जाते थे।

इन्द्रमणि यह समझने लगा था कि उसका गणपति पद रह नहीं सकता। वह अपनी ओर से बहुत यत्न करता था कि गणसभा के सदस्य देवयात का कहना न मानें, परन्तु जब देवयात खड़ा होकर, अपनी बात समझाता तो सबके संशय दूर हो जाते और उसका कहना स्वीकृत हो जाता।

एक दिन वह मन्दिर के एक आगार में, उपासना में लीन, आंखें मूंदे बैठा था कि उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि आगार में उसके सामने भगवती की एक छोटी सी मूर्ति खड़ी है और एक भक्त बहुत ही छोटे से आकार में, उस मूर्ति के चरणों में बैठा उपासना कर रहा है। उसने ध्यान से देखा तो उसको भगवती की स्वर्ण-मूर्ति का छोटा रूप ही वह दिखाई दी। वह अभी देख ही रहा था कि यह क्या है कि वह मूर्ति धूंए के समान धुंधली होती प्रतीत हुई। वह धूंए का एक स्तम्भ बन गयी और धीरे-धीरे वह स्तम्भ सामने खड़े भक्त में समा गया।

देवयात इस चमत्कार को देख चकित रह गया। उसने उस भक्त को ध्यानपूर्वक देखा। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह भक्त उसका अपना ही प्रतिरूप है। वह आश्चर्यान्वित हो अपनी ही मूर्ति की ओर देखने लगा। वह मूर्ति उसके अपने हृदयस्थल में आकर बैठ गयी। वह समझ रहा था कि वह आज पूजा करता हुआ सो गया है और यह एक स्वप्न देख रहा है, परन्तु उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि उसके सामने कमलायिनी मुस्कराती हुई खड़ी है। वह उससे इस सबका अर्थ समझना चाहता था, परन्तु उसके मुख से बात नहीं निकल रही थी। उसने देखा कि कमलायिनी उसके मन में उठ रहे भावों को समझ, उसको समझाने लगी है। वह कहने लगी है, "मैं भक्त को बधाई देने आयी हूं। मां भगवती की भक्त पर अपार कृपा है। जो बात अन्य लोग वर्षों में नहीं कर पाते, वह भक्त कुछ मास में ही प्राप्त कर सका है।

"आजसे भक्त यह आराधना अपने घर पर ही कर सकता है। यद्यपि यहां आने में उसको मनाई नहीं है, तो भी यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। आगामी निर्वाचन में उसको सफलता मिलेगी और यदि मा की प्रेरणा को वह समझने का यत्न करता रहा तो जहां उसकी अपनी उन्नति होगी, वहां मल्ल राज्य भी धन-धान्य से सम्पन्न होगा।"

देवयात इस आशीर्वाद से चकित हो कमलायिनी के मुख की ओर देख, उसका धन्यवाद करना चाहता था, परन्तु वह वहां नहीं थी। इसको

वह अपने मस्तिष्क का विकार मान, ठीक करने के लिये पुनः आराधना में लग गया।

अगले दिन जब वह सोकर उठा तो उसको चक्रायुध अपनी शय्या में सोया हुआ मिला। दैवयात ने उसको उठाया। चक्रायुध उठा तो दैवयात को अपने समीप खड़ा देख, विस्मय में पूछने लगा, "क्या बात है भैया ?"

दैवयात प्रसन्नवदन उसकी ओर देख रहा था। इससे चक्रायुध बिस्तर से बाहर निकल पूछने लगा, "भैया ! मां का संदेश आया है क्या ?"

"हां।"

"तुम्हारा विवाह हो रहा है क्या ? किससे हो रहा है ?"

"तुम से। तुम गधे से। भला इसमें विवाह की कौन बात हो गयी ?"

"मुझको ऐसा स्वप्न आ रहा था कि तुम्हारा कमलायिनी से विवाह हो रहा है।"

"चुप ! ऐसी बात मुख से मत निकालो। उससे कोई मनुष्य विवाह नहीं कर सकता। उसका तेज सहन करने की शक्ति किसी में नहीं है।"

"तो फिर इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हो ?"

"यह तो मैं नही जानता। मैंने तो तुमको इसलिये जगाया है कि कई मास व्यतीत हो गये है और हमने अपने मन्दिर के अनुभव एक-दूसरे को बताये नहीं। दिन भर तो अवकाश मिलता नहीं। इस कारण आज घड़ी भर, इस समय बातचीत करना ठीक नही क्या ?"

"क्या कोई नवीन बात हुई है ?"

"हा। जब पिछली बार तुमसे बात हुई थी कि मां भगवती ने तुमको वर मांगने के लिये कहा था। तुमने वर मांगा था कि तुम्हारा विवाह उस उपासिका से हो जावे, जो तुम्हारी आराधना में तुम्हारी सहायता करती है। पश्चात् तुमने कुछ नही बताया।"

"हां दादा ! बहुत भद्द हुई मेरी। तुम मेरे परम मित्र हो, इस कारण

तुमको बताता हूं। किसी से कहना नहीं। सब मेरी हंसी उडायेंगे। जब मैंने यह वर मागा तो मा ने कहा, 'भक्त विचार कर लो। कल तक का अवसर दिया जाता है।' अगली रात पुनः मूर्ति सजीव हो उठी और पूछने लगी, 'क्या वर चाहते हो?' मैंने वही कहा, 'मेरी उपासना में सहायक मेरी सहवासिन हो।' मां भगवती हंस पड़ी और कहा, 'स्वीकार है।'

"वसुधा, वह उपासिका, मेरे समीप बैठी, विस्मय में मेरे मुख की ओर देखने लगी। मैंने उससे पूछा, 'क्या बात है वसुधा?'

'आपकी बुद्धि पर विस्मय होता है।'

'क्यो?'

'क्या देखा है आपने मुझमें?'

'स्वर्ग-सुख।'

"वह खिलखिला कर हस पड़ी। मैंने उसका हाथ पकड कर अपनी छाती से लगाया। उसने न नहीं की। मै उसको पकड़ कर, मन्दिर के दूसरे आगार में ले गया। वह चली गयी। परन्तु भैया वह स्त्री तो थी ही नहीं। वह एक युवा पुरुष सिद्ध हुई। मै तुरत ही आगार से बाहर निकल घर आ गया और कई दिनो तक मन्दिर नहीं गया।

"कुछ दिन हुए मुझको मां भगवती स्वप्न में दिखाई दीं। मैंने पूछा, "मां! यह क्या मुझसे तुमने हसी की है?"

"मा का उत्तर था, 'जो तुमने मांगा वही पाया। मांगने से पूर्व तुमने यह जानने का भी यत्न नही किया कि तुम मांग क्या रहे हो? अपनी उपासना में साथिन के विषय में जानकारी प्राप्त किये बिना, तुमने उससे विवाह मांग लिया। जाओ, अपनी मूर्खता के लिये पश्चात्ताप करो। अपनी उतावली के लिये प्रायश्चित्त करो। तुमको मन-वांछित फल मिलेगा।"

"मैंने अपनी भूल मानी और अब मै फिर उपासना करने लगा हूं। विस्मय की बात यह है कि वसुधा अब भी मेरी सहायता करती है।"

"तो तुमने उससे पूछा नहीं, कि वह स्त्री वेष में क्यों रहती है?"

"पूछा था। उसने बताया है कि उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह स्त्री हो जावे। इस कारण कमलायिनी के कहने पर वह इस वेष मे रहती है और उसकी चिकित्सा कर उसको स्त्री बनाने का यत्न किया जा रहा है। मां भगवती की कृपा हुई तो वह स्त्री हो जावेगी और तब वह मुझसे विवाह कर लेगी।"

"पर वह स्त्री बनना क्यों चाहती है ?"

"उसके मन मे यह बात बैठ गयी है कि नारी में सतो-गुण अधिक होता है। इससे वह पुरुष से श्रेष्ठ है। वह अपने विचार से एक निकृष्ट योनि से श्रेष्ठ योनि में जा रही है।"

: ६ :

दैवयात की ख्याति दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। जब तक निर्वाचनो का समय आया, देश में उसकी धूम मचने लगी। निर्वाचनों के पूर्व वह मन्दिर में गया और भगवती के सम्मुख खड़ा हो प्रार्थना करने लगा। यह दिन का समय था और पूजा करने वाले तथा दर्शक आ-जा रहे थे। इस पर भी दैवयात मूर्ति के सम्मुख खड़ा आराधना कर रहा था। वह भगवती से कुछ संकेत पाना चाहता था।

इस प्रकार एक प्रहर से अधिक बीत गया और कुछ भी संकेत नहीं मिला। निराश हो वह जाने के लिये द्वार की ओर घूमा, तो उसको अपने पीछे कमलायिनी खड़ी दिखायी दी। उसने दैवयात को उदास देखा और कहा, "भक्त! उदास क्यों हो ? अपने कार्य में लग जाओ। तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी।"

"मैं मां से कुछ संकेत पाने के लिये आया था।"

"जब मां, स्वयं तुममें सूक्ष्म रूप धारण कर समा गयी है, तो यह संकेत तो तुम्हारे में स्वयं उत्पन्न होना चाहिये। तुमको कोई परास्त नहीं कर सकता।"

"सत्य कहती है, देवी ?"

"मैं यही देख रही हूं।"

दैवयात अति प्रसन्न हो मन्दिर से निकला और अपना रथ ले, पूर्ण देश में घूम गया। जहां-जहां वह गया, उसका स्वागत किया गया। उसको पुष्प-मालाओं से सुशोभित किया गया, उसकी पूजा हुई और उसकी स्थान-स्थान पर आरती उतारी गयी। परिणाम यह हुआ कि दैवयात के पक्ष वालों की भारी विजय हुई और दैवयात गणपति निर्वाचित होगया।

निर्वाचन के पश्चात् दैवयात गणसभा-भवन से निकला तो नगर की पूर्ण जनता को अपने स्वागत के लिये देख भगवती देवी के लिये श्रद्धा और भक्ति से भर गया। वह सभाभवन की सीढ़ियों से उतरा, तो जनता ने उसको कंधो पर उठा लिया और उसकी जय-जयकार करने लगी। लोग उसको नगर भर में घुमाना चाहते थे। उसने इसके लिये जाने से पूर्व, मन्दिर में जा भगवती की चरण-रज मस्तक पर चढाई। उस समय कमलायिनी भगवती की मूर्ति के पास खड़ी थी। दैवयात ने उसको भी हाथ जोड नमस्कार किया। उसने यथावत् कह दिया, "तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

गणसभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ। इन्द्रमणि गणसभा का सदस्य तो था, परन्तु वह सभा में उपस्थित नहीं था। उसको अपनी पराजय पर भारी शोक हुआ था और वह मन बहलाने के लिये तीर्थाटन के लिये चला गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दैवयात के प्रस्ताव विना विरोध के स्वीकार होने लगे।

कई सौ वर्ष के पश्चात् मल्ल राज्य में एक वैश्य, सेठ सुखचन्द्र, अर्थमंत्री नियुक्त हुआ। दैवयात की देश को उन्नत करने की योजनाएं विना धन के चल नहीं सकती थीं। इसके लिये सुखचन्द्र को अर्थमंत्री बनाना अनिवार्य हो गया। दैवयात का विचार था कि जो मन्दिर के लिये इतना धन पैदा कर सकता है, वह राज्य के कार्यों के लिये भी धन लाने का उपाय बता सकेगा।

यह विचार था कि विन्ध्याचल में निर्बन्ध्या नदी पर बांध बांधा जाये,

तो मल्ल राज्य की बहुत सी भूमि उपजाऊ हो सकती है। अस्तु, बांध लगाने के लिए विश्वकर्मा बुलाये गये और उनके कहने के अनुसार गणसभा में योजना उपस्थित की गयी। इस योजना के लिये दस कोटि स्वर्ण की आवश्यकता थी। जब गणसभा में इस धन के आने के स्रोत के विषय में पूछा गया, तो सेठ सुखचन्द्र ने कह दिया कि कौशाम्बी के सेठों से ऋण लिया जायेगा। इस पर भारी हल्ला हुआ, परन्तु दैवयात के समझाने पर, कि एक बार यह बांध बन गया, तो इतना धन तो पांच वर्ष में कर के रूप में प्राप्त हो जावेगा, यह योजना स्वीकार हो गयी।

इस पर भी इस धन का प्रबन्ध नहीं हो सका। मल्ल की लड़ाकेपन की ख्याति थी। कोई भी महाजन मल्ल राज्य में अपना धन लगाना नहीं चाहता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब धन का प्रबन्ध न हो सका तो दैवयात अधीर हो उठा। जब गणसभा में धन के विषय में बार-बार प्रश्न होने लगे और दैवयात कुछ उत्तर नहीं दे सका तो वह सेठ सुखचन्द्र के घर पर पहुंचा और इस विषय में विचार-विनिमय करने लगा। सेठ ने सुझाव दिया कि वह मां भगवती से मांगे।

"मा भगवती से?" विस्मय करते हुए दैवयात ने सेठ जी से पूछा।

"हां। मैं समझता हूं कि वे आपको निराश नहीं करेंगी।"

"पर उनके पास धन आयेगा कहां से?"

"जहां से उनके पास मंदिर के लिये आया था।"

"यही तो पूछ रहा हूं कि उनके पास धन आता कहां से है?"

"यह उनसे ही पूछ लीजियेगा।"

दैवयात आश्चर्य में डूबा हुआ मन्दिर में जा पहुंचा और मां की मूर्ति के सम्मुख हाथ जोड़ निवेदन करने लगा। उसका कहना था, "मा! जब तुमने करने को कार्य दिया है, तो उस कार्य के लिये साधन भी दो। साधनहीन मनुष्य को कोई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंप देना अन्याय हो जावेगा, मां!"

उसने अधीर हो मां की ओर देखने के लिये आंखें खोलीं तो उसको सदा

की भांति कमलायिनी मा के चरणों में खड़ी दिखाई दी। पूर्व इसके कि दैवयात कुछ कहे कमलायिनी ने कहा, "कितना धन चाहते हो?"

दैवयात के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। वह समझ नहीं सका कि वह कैसे जान गई है कि वह धन मांगने आया है। इस पर भी उसने यह बताने के लिये कि वह, अपने निजी काम के लिये धन नहीं चाहता, उसने कहना आरम्भ किया, "निर्धन प्रजा के पालन के लिये निर्वन्ध्या पर... ....।"

कमलायिनी ने हाथ खड़ा कर उसको कहने से रोक कर कहा, "हम सब कुछ जानते हैं। हमारा प्रश्न है कितना चाहिये?"

"दस कोटि स्वर्ण लग जायेगा।"

"बस?"

"हां देवी!"

"मिल जावेगा।"

दैवयात कमलायिनी को यह इतनी सरलता से कहते देख विस्मय में डूब गया। वह उसकी ओर मुख देखता रह गया। कमलायिनी समझ गयी कि उसको विश्वास नहीं हो रहा। इस कारण उसने कहा, "विश्वास नहीं आता न?" कल सायंकाल बैल-गाड़ियां भेज, धन लाद कर ले जाना।"

दैवयात अभी भी आश्चर्य कर रहा था। कमलायिनी कह कर भीतर जाने वाली थी कि उसने धन्यवाद कर दिया। देवी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया।

सेठ ने जब यह वृत्तान्त सुना तो प्रसन्नता से उठ कर नाचने लगा। दैवयात ने अचम्भा प्रकट करते हुए कहा, "सेठ जी! क्या हुआ है? अभी तो वचन मात्र ही है।"

"दैवयात जी! यह वचन व्यर्थ नहीं जायेगा। मैं देवी जी को जानता हूं। उन्होंने आधी घड़ी में मन्दिर के लिये धन का ढेर लगा दिया था।"

"देवी जी ने कहा है कि कल सायंकाल धन मिलेगा। कल गणसभा में मुझको यह आश्वासन देना है कि धन मिल जायगा।"

"देखिये गणपति महोदय! धन तो मिल गया समझिये। वह योजना पूर्ण कराने के लिये कार्य किस प्रकार करना होगा, विचार करने की बात रह गई है।"

दैवयात के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब अगले दिन एकाएक इन्द्रमणि ने गणसभा में उपस्थित हो, इस बांध का विरोध करना आरम्भ कर दिया। उसका कहना था कि इसके लिये इतना धन ऋण लेना पड़ेगा कि देश एक सौ वर्ष तक उऋण नहीं हो सकेगा। इन्द्रमणि को आया देख कुछ अन्य सदस्य भी उत्साहित हो इस योजना का विरोध करने लगे।

दैवयात ने उत्तर में कहा, "इस बाध के बन जाने से नदी अपने राज्य में बहने लगेगी। इससे देश की दस सहस्र वर्ग की भूमि हरी-भरी हो जावेगी। इतनी भूमि में जो उपज होगी उसका मूल्य, प्रतिवर्ष दस-कोटि स्वर्ण से कम नहीं होगा। इससे भूमि-कर एक कोटि स्वर्ण मिल सकेगा। इस प्रकार हम जो कुछ व्यय करेंगे वह दस वर्ष में प्राप्त कर लेंगे। इसके अतिरिक्त हमारे भूमिपति धन-धान्य सम्पन्न हो जावेंगे।"

इस पर इन्द्रमणि ने बात बीच में ही काट कर कहा, "प्रश्न तो यह है कि यह धन आयेगा कहां से?"

"यह धन हमको भगवती की पुजारिन देवी कमलायिनी देंगी। वह धन आज सायंकाल तक हमको मिल जावेगा।"

"मैं इसका घोर विरोध करता हूं। इसके साथ ही एक रहस्य की बात बताता हूं। भगवती के मंदिर की पुजारिन, अवन्ति के महाराज कुमार-देव की क्रीतदासी, किरण है और वह यह धन अवन्ति से ला कर दे रही है। इस प्रकार हमारे गणपति दैवयात महोदय अपने देश को दस कोटि स्वर्ण पर अवन्ति के पास बेच रहे हैं।"

दैवयात ने इस बात को असत्य सिद्ध करने के लिये कहा, "यह कमला-यिनी किसी की क्रीतदासी है अथवा कुछ और, इससे मेरा कोई सम्बन्ध

नहीं। मैं इस स्वर्ण के लिये किसी प्रकार का उत्तरदायित्व देश पर नहीं डाल रहा। देश को किसी प्रकार का सूद इस धन पर नहीं देना पड़ेगा। धन भी जब हमारे पास होगा हम देंगे।"

"हमको इस बात का विश्वास नहीं।"

"जब धन आवेगा, श्री इन्द्रमणि स्वयं देख सकते हैं कि किसी प्रकार का बंधन हम पर नहीं होगा।"

इसके पश्चात् मत ले लिया गया और इन्द्रमणि के बहुत कहने-सुनने पर भी देवयात की बात बहुमत से मान ली गयी।

: ७ :

उस सायंकाल भगवती के मन्दिर से बैल-गाड़ियों पर लाद-लाद कर स्वर्ण गणसभा-भवन के भूगर्भ आगारों में लाकर रख दिया गया। इन्द्रमणि का देवयात को नीचा दिखाने का प्रयास सर्वथा विफल गया। वह गणसभा-भवन के बाहर खड़ा धन लाया जाता देखता रहा। उसने कई थैले खोल कर देखे भी और उनमें चमचमाते सोने के टुकड़े देख, निराश हो अपने घर लौट आया।

घर पर एक व्यक्ति उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। यह व्यक्ति काशी के महापंडित नाकेश का सुपुत्र श्वेतांग था। इन्द्रमणि देशाटन के लिये चला गया था। वहां से लौटा तो काशी में श्वेतांग उसको मिल गया। श्वेतांग को अवन्ति से वचनानुसार 'वार्षिक' मिल रहा था। इस कारण वह मल्ल राज्य में आना नहीं चाहता था, परन्तु इन्द्रमणि ने ऐसी आशायें दिलायीं कि वह गुप्त रूप में उसके पथ-प्रदर्शन के लिये चला आया। पावा में आने के दूसरे दिन ही उसने भगवती के मन्दिर की पुजारिन को चौंतरे पर बैठे, भक्तों को दर्शन देते देख लिया और उसने ही किरण को पहिचान इन्द्रमणि को सुझाव दिया था, जिसके अनुसार इन्द्रमणि ने गणसभा में बांध का विरोध किया था।

जब इन्द्रमणि आया तो उसने पूछा, "क्या हुआ है ठाकुर महोदय?"

"सब चौपट हो गया है। भगवती के मन्दिर से धन दिया जा रहा है। बिना लिखत-पढ़त के यह धन मिला है और इसका कोई सूद नही देना पड़ेगा।"

"भगवती के मन्दिर मे इतना धन आया कहा से ?"

"यह मै नही जान सका।"

"यही तो जानना आवश्यक है।"

"मै भोजन से निवृत्त होकर उस मन्दिर मे जाऊंगा और यदि सम्भव हुआ तो इस बात को जानने का यत्न करूंगा।"

"मै भी तनिक उस मन्दिर को देखना चाहता हू। वह मन्दिर है अथवा कुवेर का धनकोष ? दस कोटि स्वर्ण निकाल कर निस्संकोच दे दिया ! अति आश्चर्य की बात है। इस समय भरत-खण्ड में केवल दो राज्य है, जो इतना धन निस्संकोच दे सकते है—एक मगध राज्य है और दूसरा अवन्ति। इन दोनो मे से किसी के साथ इस मन्दिर का सम्बन्ध अवश्य है। यह पुजारिन तो अवन्ति के साथ ही सम्बन्ध रख सकती है।"

"सम्भव है कि इस मन्दिर के द्वारा अवन्ति इस राज्य में कोई षड्यंत्र करना चाहता हो। इसका पता कर हमको अपना कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिये।"

सायंकाल इन्द्रमणि और श्वेतांग मन्दिर मे पहुंचे। उस समय कमलायिनी चौतरे से उठ भीतर अपने आगार मे जा चुकी थी। इन्द्रमणि की सूचना मिलने पर वह पुनः मूर्ति वाले आगार मे लौट आयी और भूतपूर्व गणपति को बुला भेजा। वह स्वयं मूर्ति के चरणो में खड़ी उनकी प्रतीक्षा करने लगी। श्वेतांग मूर्ति के आगार को किसी अदृश्य स्थान से आरहे प्रकाश से जगमग करते देख चकित रह गया। उसने अपने सामने स्वर्ण की एक विशालकाय मूर्ति देखी और मन्दिर की धनाढ्यता पर विस्मय करने लगा। मूर्ति की भव्यता के साथ-साथ किरण के सौन्दर्य को, जो पहिले से सैकडो गुणा अधिक हो गया था, देख रहा था। श्वेतांग कभी किरण को देखता था और कभी भगवती की मूर्ति को। उसको इस प्रकार

अवाक् अपनी ओर देखते रहने पर, किरण उनके आने का प्रयोजन जानने के लिये बोली, "ठाकुर! कहां पा गये है इस धूर्त को आप ?"

"तो देवी इनको जानती है ? ये महापडित नाकेश के सुपुत्र महापडित श्वेतांग है। मेरे मित्र है। देश-भ्रमण के लिये आये थे। मेरे घर पर ही ठहरे है।"

कमलायिनी ने आवेश में कहा, "जहां ये जाते है वहा अपने साथ घोर अंधकार लिये जाते है। आप नहीं जानते कि ये अवन्ति के महामात्य थे और जितना घोर अन्याय, अत्याचार, अनाचार इनके महामात्य-काल में वहां चला था, वह अवर्णनीय है।"

श्वेताग ने इस आलोचना पर चटपटा कर, अपना मुख खोला, "और श्रीमती जी कुमारदेव के रणवास से भागी हुई एक क्रीतदासी है। अब पुजारिन बन शायद कुमारदेव के लिये गुप्तचर का कार्य करती है। क्या जाने जो धन आज श्रीमती जी ने मल्ल राज्य को दिया है, वह अवन्ति के हाथ, इस राज्य को बेचने के लिये ही है।"

"तो ठाकुर! इस अपने मित्र की बात पर न्यायालय में अभियोग चला दो। यदि मै दोषी हूंगी तो दड पा जाऊगी।"

"जनता के बड़े न्यायालय में अपना अभियोग उपस्थित करने जा रहा हू। अब तुम भाग कर, यहां से जाना चाहो तो रात-रात में भाग जाओ। कल तुम्हारे लिये जाना कठिन हो जायेगा।"

"अच्छी बात है। जनता ही इस बात का निर्णय करेगी कि यह तुम्हारा मित्र धूर्त्त है अथवा सत्यवादी। अब जाओ। विश्वास रखो कि मै यहा हूं और भाग कर नही जा रही। मा भगवती इसको भस्म किये बिना नहीं छोड़ेगी।"

"भगवती? यह स्वर्ण की मूर्ति? यह इस राज्य के कोष की वृद्धि में काम आयेगी।" श्वेतांग ने मुस्कराते हुए कहा, "पडित भूदेव का यह षड्यत्र यहा चल नही सकेगा।"

"अब तुम जा सकते हो। मां भगवती परीक्षा लेना चाहती है,

तो दूंगी।"

श्वेतांग को समझ नहीं आया कि किरण कैसे इतने धन की स्वामिनी बन गयी है। बहुत विचार करने पर भी वह यही समझा कि अवश्य अवन्ति का हाथ इसमें है। वह पंडित भूदेव की चतुराई से परिचित था और उसका ही षड्यंत्र इसमें समझता था।

उनके चले जाने के पश्चात् कमलायिनी ने मन्दिर की एक उपासिका वसुधा को दैवयात के घर, उसको बुलाने भेज दिया। जब वह आया तो उसने बताया, "इन्द्रमणि काशी से श्वेतांग को अपने साथ लाया है। उसने अवन्ति में बहुत ऊधम मचाया था। राज्य में प्रत्येक प्रकार का ऊधम, अत्याचार और दुराचार उसने फैलाया था और उसने राज्य को हथियाने के लिये मल्ल राज्य के साथ जो षड्यंत्र किया था, वह तो आप जानते ही हैं। वह अभी यहां आया था और देश में जनता को उभारने की धमकी दे गया है।"

दैवयात को, गणसभा में लगाये गये आरोपों की याद आ गयी। वह समझ गया कि इन्द्रमणि से लगाये गये आरोप श्वेतांग द्वारा बताये गये हैं। इससे उसने कहा,

"देवी! चिन्ता की कोई बात नहीं है। परन्तु क्या यह सत्य है कि देवी महाराज कुमारदेव की क्रीतदासी, किरण ही है?"

"हां! मैं वही किरण हूं। परन्तु मुझ को महाराज ने मुक्त कर दिया है? मैं वहां से मुक्त होकर महर्षि जी के आश्रम में चली गयी थी और जो कुछ मैं अब हूं, वह महर्षि जी की कृपा से ही है।"

"क्या देवी को किसी प्रकार का भय है कि श्वेतांग उसका किसी प्रकार से अनिष्ट कर सकता है?"

"नहीं! मुझको उससे किसी प्रकार का भी भय नहीं। उसने अभी मां भगवती की शक्ति का चमत्कार देखा नहीं। यदि देखा होता तो वह यहां आता ही नहीं। मेरा आपको सचेत करने का प्रयोजन केवल मल्ल राज्य के विषय में है।"

देवयात इससे एक गम्भीर विचार में पड गया। कमलायिनी उस को बहुत ध्यान से देखती रही। जब वह विचार में लीन चुप बैठा रहा, तब कमलायिनी ने मुस्करा कर कहा, "भक्त! मन में किसी बुरी बात को छिपा कर रखना ठीक नहीं है। तुम्हारे मुख पर देखने से यह प्रतीत हो रहा है कि कुछ अवांछित बात तुमने की है और उसको बताने में अब संकोच अनुभव कर रहे हो।"

"हां देवी! मैं छिपाने के लिये चुप नहीं था। मैं यह सोच रहा था कि अब उसको बताने में कोई लाभ है या नहीं। मैंने उस बात से अपना सम्पर्क त्याग दिया है। अब आप कहती हैं तो बताता हूं।

"जब मैं उज्जयिनी में राजदूत का काम करता था, तब मैं श्वेताग के सम्पर्क में था और उस समय के गणपति की अनुमति से मैंने श्वेताग की सहायता करने का वचन दिया था। उस समय ही महारानी रेखा से मेरा सम्पर्क उत्पन्न हो गया था। जब महारानी महाराज से पृथक् कर दी गयी, तभी से वे यत्न कर रही हैं कि किसी प्रकार महाराज को मार्ग से दूर कर अपने पुत्र को महाराज घोषित करवा दें। इस बात के लिये, जहां तक मुझको विदित है, वे एक षड्यंत्र कर रही हैं। इसमें मुझको भी वे सम्मिलित समझती हैं। उन्होंने एक समय मुझको दस सहस्र स्वर्ण भी दिया था। जब से मैं अपने को मा भगवती के उपासकों में समझने लगा हूं, मैंने उस स्त्री से व्यवहार त्याग दिया है। मेरे गणपति बन जाने के पश्चात् उनके कई पत्र आये हैं, परन्तु मैंने उनका उत्तर नहीं दिया।"

कमलायिनी इस समाचार को सुन चकित रह गयी। कुछ विचार कर, उसने कहा, "मैं समझती हूं कि आपको महामात्य भूदेव से सम्पर्क उत्पन्न कर इस षड्यंत्र के विषय में उनको बता देना चाहिये।"

"मैंने इस विषय में बहुत सोचा है, परन्तु मैं इस विषय में किसी दूसरे राज्य में अनधिकार हस्तक्षेप करना अनुचित मान चुप हूं।"

"अच्छी बात! अब आपको मैंने श्वेताग के विषय में सचेत कर

दिया है। श्वेतांग का महारानी रेखा से बहुत गहरा सम्बन्ध रहा है। यहां तक कि रेखा का लड़का श्वेतांग से माना जाता है। ऐसी अवस्था में श्वेतांग का इस देश में आना, सम्भव है, उसी प्रयोजन से हो, जिसमें महारानी रेखा आपको लपेटना चाहती थीं।"

: ८ :

दैवयात ने कुछ गुप्तचर इन्द्रमणि और उसके घर में आये अतिथि के पीछे लगा दिये। वे नित्य के समाचार लाकर देते थे, परन्तु क्षत्रियों से सचालित यह राज्य बुद्धिमानों से रहित हो गया था। यही कारण था कि लाख यत्न करने पर भी दैवयात कुछ बात समझ नही सका। उसको यह पता चला कि इन्द्रमणि के घर से, प्रति दूसरे-तीसरे दिन अश्वारोही विदेशों को आते-जाते रहते है। इसके अतिरिक्त कुछ देहातों के लोग भी अब उसके घर में भीड डाले रहते थे, परन्तु बात इतनी गुप्त रहती थी कि इन समाचारों का कुछ सिर-पैर समझ नहीं आता था। इस प्रकार कई मास निकल गये।

एक दिन मन्दिर के पंथागार में दो पथिक, स्त्री-पुरुष, एक बच्चे के साथ आये और अपना काशी से आना लिखा कर, एक आगार में ठहर गये। रात भर विश्राम कर अगले दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर, कुछ जलपान कर वे मन्दिर देखने आये। ये यात्री मनोज और उसकी स्त्री लोला अपने बच्चे के साथ थे। जब ये चौतरे पर चढ रहे थे, तो इनको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि एक व्यक्ति उनके कुछ आगे जा रहा है, जिसको वह पहिचानते हैं। मनोज वही ठहर गया और उसने लोला की बांह पकड कर, उसको भी खड़ा कर, उस जाते हुए की ओर संकेत कर कहा, "देवी! देखो, वह कौन जा रहा है?"

"यह तो श्वेतांग प्रतीत होता है।"

"हां, हमारी सूचना के अनुसार तो वह काशी जी में है।"

"आर्य! कुछ दाल में काला अवश्य है। हमको सतर्क रहना चाहिये।"

इस समय तक वह पुरुष एक स्त्री के साथ मंदिर में प्रवेश कर गया। मनोज और लीला चौतरे पर चढ गये और दर्शकों के एक झुंड में छिपे हुए वे मंदिर में जा पहुचे। वहा मूर्ति वाले आगार में पहुच, उन्होने देखा कि श्वेतांग एक बगल वाले आगार के बाहर खड़ा है और उसके साथ वाली स्त्री वहा नहीं है। मनोज ने समझा कि वह भीतर पुजारिन को श्वेतांग की सूचना देने गयी है! वे दोनो आगार के दूसरे कोने में जाकर दर्शको की भीड़ में खड़े हो मूर्ति को देखने का बहाना करने लगे। इस समय वह स्त्री, पुजारिन के आगार से आयी और श्वेतांग को लेकर उस आगार में प्रविष्ट हो गयी।

मनोज आया तो राज्य कार्य से था, परन्तु गुप्त रूप में आने के कारण, वह यात्री बन कर विचर रहा था। इसी कारण वह लीला को साथ लाया था। लीला की गोदी में बच्चा भी था। जब श्वेतांग भीतर चला गया, तब वह निश्चिन्त हो, मन्दिर की शोभा देखने लगा। उसको भगवती की मूर्ति अति सुन्दर और प्रभावशाली प्रतीत हुई। कलश पर के छत्र से प्रतिबिम्बित प्रकाश से मूर्ति जाज्वल्यमान हो रही थी। इससे भी अधिक बात जिस पर मनोज को विस्मय हो रहा था, वह सूर्य-रश्मियो से निकली सप्त वर्ण की किरणो से चिकित्सा का आयोजन था। मंदिर के मूर्ति वाले आगार की दीवारो को इन्द्र-धनुष के रंगो में रंगा देख, वह कितनी ही देर तक इसका अर्थ समझने का यत्न करता रहा। वह किसी से इसका अर्थ समझना चाहता था। साथ ही वहां की पुजारिन से भेंट का प्रबन्ध करना चाहता था।

वह इस के प्रबन्ध के विषय में विचार कर ही रहा था कि श्वेतांग और कमलायिनी उस दासी के साथ बाहर निकले। मनोज उनकी ओर पीठ कर खड़ा हो गया। लीला उसके सामने आ गयी। इस प्रकार वे दोनों श्वेतांग की दृष्टि से ओझल हो गये।

मनोज ने कहा, "यह तो सत्य ही किरण है। हमारी सूचना ठीक है। शायद वह श्वेतांग को द्वार तक छोड़ने गयी है। वह लौट कर आये तो

तुम उसके सामने आकर मां भगवती का आशीर्वाद मांगो। देखो वह तुमको पहिचानती है अथवा नही।"

किरण श्वेतांग को द्वार पर छोड़ कर आयी और अपने आगार की ओर घूम पड़ी। लोला इस समय की प्रतीक्षा मे थी। वह भीड़ में से आगे वढ, कमलायिनी के सामने खड़ी हो गयी। किरण ने पहिले तो समझा कि कोई दर्शिका उसके चरण स्पर्श करने आयी है, परन्तु अगले ही क्षण वह पहिचान गयी। फिर उसकी गोदी मे बच्चे को देख हंस पड़ी।

लोला ने सुन रखा था कि उसको मा कह कर संबोधन किया जाता है। अतएव उसने झुक कर उसके चरण स्पर्श करने चाहे, तो किरण दो पग पीछे हट गयी। इस पर लोला ने मुस्कराते हुए कहा, "मां! क्या अपराध हुआ है हम वालको से?"

किरण ने बच्चे को गोदी मे ले लिया और पूछा, "इसके पिता कहां है?"

"आपकी प्रतीक्षा में खडे है। दर्शन दोगी मां?"

"हट! वुला लाओ उनको। मै इसको लिये जा रही हूं।" इतना कह वह बच्चे को लेकर अपने आगार में चली गयी। इस अभिनय को देखने के लिये दर्शक एकत्रित हो गये थे। सब कमलायिनी को, बच्चे को गोदी में ले, आगार में जाते देख विस्मय कर रहे थे।

"तो इसके कोई अपने भी है?" लोग कहने लगे।

"क्या वह हाड-चाम की नहीं वनी?"

"कहते है कि वड़ी तपस्विनी है।"

"तपस्विनी होने से मानवता मर जाती है क्या?"

इस प्रकार की वाते करते हुए लोग किरण के पीछे लोला और मनोज को जाते हुए देखते रहे।

किरण मनोज और लोला को अपने आगार में आया देख, प्रसन्नता प्रकट कर वोली "ये है तुम्हारे पतिदेव! सुनाइये मनोज जी, यहा आना कैसे हुआ है?"

"आज प्रातःकाल ही यहां पहुंचे हैं। हमने पथागार में 'काशी से आने वाले' लिखाया है। इस कारण हमारा परिचय यहां एक यात्री के रूप में है। वास्तव में, मैं यहां एक विशेष कार्य से आया हूं। उस विषय में आपसे भी मिलने का प्रयोजन था।"

"तो बताइये क्या बात है?"

"इस समय नहीं। सब भक्तों के सामने भीतर आया हूं। अब शीघ्र ही बाहर चला जाना ठीक होगा। क्या पुन: गुप्त भेंट हो सकेगी?"

"यत्न करूंगी। यहां कई मास से श्वेतांग आया हुआ है और वह मुझको बदनाम कर यहां विप्लव उत्पन्न करना चाहता है। अभी-अभी........।"

"हमने उसको देखा है। शायद हमारी बात भी उससे ही सम्बन्ध रखती है। यों तो मैं बिना विलम्ब के बात करना चाहता हूं, परन्तु मैं उसको अभी गुप्त रखना चाहता हूं।"

"आज मध्य रात्रि में वह मेरे द्वारा कुछ बात दैवयात से कहलवाना चाहता है। यदि आपकी बात उससे ही सम्बन्ध रखती है, तब तो उस समय से पहिले ही हो जानी चाहिये।"

"मैं भी यही चाहता हूं। मैं नहीं जानता कि वह आपसे क्या चाहता है, परन्तु मैं अवन्ति राज्य की ओर से एक प्रस्ताव लेकर आया हूं और उस पर बातचीत करना चाहता हूं।"

"तो सायंकाल सूर्यास्त होते ही मेरी सह-उपासिका वसुधा आपके आगार में आपको बुलाने आयेगी।"

: ६ :

"हमारे गुप्तचर विभाग ने यह सूचना दी है कि महारानी रेखा और इन्द्रमणि में एक लम्बा पत्र-व्यवहार चला है। उस पत्र-व्यवहार में यह तो निश्चय हो चुका है कि दोनों राज्यों की विद्रोही सेनायें मिल कर दोनों राज्यों में विप्लव कर देंगी। यहां सेना में एक भारी संख्या

में सैनिक यह वचन दे चुके हैं कि सेठ सुखचन्द्र और कमलायिनी के चंगुल से राज्य को बचाने के लिये पुनः शुद्ध क्षत्रियों का राज्य स्थापित करेंगे। वहां अवन्ति में उनको विद्रोह करने के लिये यह कहना पड़ा है कि महारानी रेखा के पुत्र को युवराज घोषित किया जायेगा। महाराज कुमारदेव एक अनुराधा ग्वालिन के पंजे में फंस, महारानी का अपमान कर रहे हैं। साथ ही अवन्ति में शैव-पंथियों पर हो रहे अन्याय और अत्याचारों को दूर किया जाये।

"कुछ काल हुआ है महाराज ने यह घोषणा कर दी थी कि उनके पीछे राज्याधिकारी अनुराधा का लड़का होगा। इस घोषणा को आधार बना, वहां झगड़ा आरम्भ कर दिया है। महारानी रेखा अपने को सूर्यवंशीय क्षत्रियों में से बताती है और अनुराधा को शूद्र जाति की अहीरन। इस प्रकार इन दोनो राज्यों में क्षत्रिय-विद्रोह होने जा रहे हैं।

"फाल्गुण की पूर्णिमा इस विद्रोह का अवसर नियत किया गया है। इस अवसर पर महारानी अनुराधा के पुत्र का नामकरण संस्कार होने जा रहा है और उसी दिन विद्रोह प्रारम्भ हो जावेगा।"

मनोज ने अपने वहां आने के प्रयोजन की भूमिका में यह सब कुछ कहा। इससे कमलायिनी विस्मय में मनोज का मुख देखती रह गयी। जब उसने कुछ नहीं कहा, तो मनोज ने पूछा, "किरण देवी! क्या बात है? मैं तो इस कारण आया हूं कि हमारी सूचना के अनुसार आप यहां के गणपति पर भारी प्रभाव रखती हैं और आपके विषय मे हमारा मत यह है कि आप उचित और अनुचित में अंतर जान सकती हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं मनोज जी! मै तो आचार्य भूदेव और महर्षि वामदेव में अंतर अनुभव कर, विचार कर रही थी कि किसकी बात मानूं। मैंने महर्षि जी से यहां की परिस्थिति का वर्णन कर उनसे आदेश मांगा था। उनका आदेश आया है। उनका कहना है कि मै भक्त दैवयात को कह दूं कि आत्मोन्नति के लिये, इस प्रकार के झगड़ों में पड़ना अच्छा नहीं। यदि

जनता समझाने से भी न समझे, तो हम दोनो, सब कुछ छोड-छाड़ कर, उनके आश्रम में चले आवे और अपने मोक्ष के लिये यत्नशील हो जावें।

"इसके विपरीत आचार्य जी ने आपको भेजा है। मैं इन दोनो महा-पुरुषो में अंतर पर विचार कर रही थी।"

"किरण देवी! यह अंतर तो है ही। तांत्रिक पथ सामाजिक धर्म के विषय में कुछ मत नहीं रखता। यही कारण है कि व्यक्तिगत उन्नति पर बल देता हुआ भी, यह पथ सामाजिक झगड़ो से पृथक् रहना चाहता है। वेदो में प्रतिपादित आर्य मत तो जहां एक व्यक्ति के लिये मार्ग दिखाता है, वहा समाज के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है। व्यक्ति और समाज में सामंजस्य रखना ही इस पंथ की श्रेष्ठता है।"

"तो आप क्या चाहते है?"

"मैं यहां के गणपति से विचार-विनिमय करने आया हूं। मैं उससे जानना चाहता हूं कि दोनो राज्यो के विद्रोहात्मक तत्व तो मिल गये हैं परन्तु क्या इन दोनों राज्यो के सत्ताधीश तत्व भी मिल सकते है?"

"मैं इस विषय में अपने आप तो कुछ कह नहीं सकती। यह एक अति गम्भीर राजनीतिक विषय है। इसके लिये तो गणपति से आपको मिलना ही चाहिये। आज रात इन्द्रमणि और देवयात मिलने वाले हैं। लगभग इसी विषय पर ही दोनो में बात होने वाली है। इस कारण आप की उनसे भेंट पहिले ही करा दूंगी। मैं समझती हूं कि आपकी बातचीत का प्रभाव उनकी अपनी बातचीत पर भी होने वाला है।"

"तो आप इसका प्रबन्ध करिये।"

"मैं तो यह आश्चर्य कर रही हूं कि आपके गुप्तचर यहां की बातें कैसे जानते है?"

"किरण देवी! राज्य करना एक कला है। इसको जानने के लिये समाज-धर्म का जानना अति आवश्यक है। हमारे गुप्तचरो का तो यह भी कहना है कि इन्द्रमणि के वैतनिक सहायक आपको देवयात की प्रेमिका कहते है, आपको अवन्ति का गुप्तचर कहते है और वह धन, जो न जाने

आपने कहां से लाकर यहां के राज्य को दिया है, अवन्ति से आया बताया जाता है। यह सब हमको मालूम है, परन्तु इसके साथ ही हमारी सूचना यह है कि न तो आपका दैवयात से किसी प्रकार का सम्बन्ध है और न ही वह धन देश के बाहर से आया है।"

किरण यह बात सुन क्रोध से लाल हो गयी। उसने कहा, "मेरे विजय मे यह असत्य भाषण भी किया जा रहा है क्या? यह सब श्वेतांग की बदमाशी है।"

"देवी! हम भली भांति जानते हैं कि ऐसी कोई बात नहीं, इस पर भी यह विस्मय करने का विषय तो है ही कि इतना धन आप कहां से लाकर दे सकी है?"

"स्वर्ण तो हम यहां निर्माण करते हैं। प्रकृति के गूढतम रहस्यों को जानने से हम ऐसा कर सकते हैं।"

"हमको, और भी कई बातें, इस मंदिर के विषय में विदित हैं।"

"वे भी बहुत बुरी है क्या?"

"बुरी तो नहीं। इस पर भी विस्मयजनक अवश्य है। एक बात तो हमारे आचार्य जी को पागल बना रही है। वे इस रहस्य को जानने के लिये व्याकुल हो रहे हैं। उनका कहना है कि यदि इस रहस्य को जान सकें तो हम पुरुष-स्त्रियों की सख्या में संतुलन रख सकते हैं। सुना है कि आप ने एक वासुदेव को वसुधा देवी बना दिया है।"

किरण हंस पड़ी। उसने कहा, "आपके गुप्तचर विभाग की प्रशंसा तो करनी ही होगी। वे इतनी गुप्त बातों तक की टोह रखते हैं। वह उपासिका जो आपको बुलाने गयी थी, वही अंग देश का रहने वाला एक वासुदेव था। अब वह एक स्त्री है। उसका विवाह एक ठाकुर चक्रायुध से होने वाला है। यह कैसे हो गया? यह भी प्रकृति के इस रहस्य के ज्ञान हो जाने के कारण है।"

"तो अब गणपति जी से कब भेंट हो सकेगी?"

कमलायिनी ने वसुधा को बुलाकर देवयात को बुला लाने के लिये भेज दिया। इस समय तक दोनों अवन्ति के विषय में और महाराज कुमारदेव के विषय में बातें करते रहे। इस बातचीत में मनोज ने पूछा, "देवी! क्या यह सत्य है कि गणपति देवी से प्रेम करते हैं?"

"यह मैं कैसे जान सकती हूं। गणपति ने मुझसे कभी ऐसी बात नहीं कही। इतना तो मैं जानती हूं कि श्वेतांग अभी भी मुझको नहीं भूला। इसका परिणाम मुझको कुछ अच्छा प्रतीत नही होता।"

"क्या हो सकता है इसका परिणाम?"

"यह तो आजसे कितना काल पूर्व ही हो जाता। परन्तु जीवन वृथा न गंवाने के लोभ में ही मै यहां पड़ी हूं।"

"क्या अभिप्राय है देवी का? मैं समझा नहीं।"

"दो मार्ग हैं। एक तो वह जो मैं अवन्ति में स्वीकार करने वाली थी, अपने आपको स्वाहा कर देना और दूसरा मार्ग है युद्ध होने देना। इससे लाखों और सैनिक मृत्यु के घाट उतर जावेगे। मैं भी आज ही इन्द्रमणि और देवयात के परस्पर वार्तालाप के पश्चात् निर्णय करने वाली थी कि भगवती के चरणो में बैठ कर अपने को भस्म कर दूँ अथवा इस देश के नगर-नगर और गांव-गाव को धू-धू करते हुए जलने दूँ।"

"यह फिर आप मिथ्यावाद में फंस गयी प्रतीत होती हैं। हमारा प्राचीन आर्य सिद्धांत तो यह है कि एक भी भले पुरुष की रक्षा के लिये सहस्रो लोग बलिदान हो जावे तो भी हानि नही। भले लोगों की रक्षा होनी ही चाहिये। तुम अपनी हत्या क्यो करोगी? यदि ऐसी परिस्थिति यहां पर है कि तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती, तो मै अवन्ति राज्य की ओर से पूर्ण अधिकारों के साथ यहां आया हूं। मै आज ही इस देश को युद्ध की ज्वालाओं में झोंक सकता हूं।"

किरण के मन में प्रकाश होने लगा। उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न होने लगा। वह, जो श्वेतांग से बातचीत करने पर निराशा अनुभव कर रही थी, पुनः आशा में भर गयी। उसने कहा, "यह नहीं मनोज जी! मै तो अकेली

ही यहां पर अपनी रक्षा में समर्थ अनुभव करती हूं। मुझको भय तो यहां की जनता का था।"

"देवी को भगवान् कृष्ण के कथन को स्मरण कराना ठीक प्रतीत होता है।"

इस समय दैवयात आ गया। कमलायिनी ने मनोज का परिचय कराया और उनको बात करने के लिये कहते हुए, उसने कहा, "ये महाराज कुमारदेव के अति विश्वस्त दूत हैं। आपसे कुछ गोपनीय बात करने के लिये आये हैं।"

इस पर मनोज ने अपने आने का प्रयोजन, जैसा उसने कमलायिनी को बताया था, दैवयात को भी बताया। उसने कहा, "दोनो राज्यों में पापमय शक्तियां संगठित हो रही हैं। ऐसी अवस्था में क्या दोनों राज्य बारी-बारी से इनके सम्मुख परास्त हों अथवा दोनों राज्यों की श्रेष्ठ शक्तियां भी संगठित हो जावें और पापियों को परास्त करें ?"

दैवयात इस षड्यंत्र की सूचना पर विश्वास नही कर सका। उसने कहा, "यह तो मैं जानता हूं कि हमारे राज्य में क्षत्रियों को यह कह कर भड़काया जा रहा है कि एक वैश्य को मंत्री पद पर नियुक्त किया गया है, जो यहां की प्रथा के अनुकूल नही है।"

"और क्या यह नहीं कहा जा रहा," मनोज ने कहा, "कि कमलायिनी देवी अवन्ति की गुप्तचर है ?"

"और आपका आकर इनके द्वारा मुझसे बातचीत करना क्या यही बात सिद्ध नही करता ?"

"मैं आपको अधिकृत रूप से कहता हूं कि इन देवी जी का हमारे राज्य से कोई सम्बन्ध नही है। इस पर भी यदि आप कोई सम्बन्ध मानते हैं, तो वह सम्बन्ध आपके और आपके देश के हित में ही काम कर रहा है। आप यह बताइये कि इन देवी जी का कौन कार्य ऐसा है, जिससे आपको अथवा आपके देश को हानि पहुंची है ?"

"मैं तो इस बात को मानता हूं कि ये देवी जी हमारे देश के साथ हित

ही कर रही है, परन्तु इनका महाराज कुमारदेव की क्रीतदासी होना मात्र ही जनता के मन में संदेह उत्पन्न कर रहा है ।"

मनोज इस राज्याधिकारी की मनोवृत्ति को देख निराश हुआ। इस पर भी वह अपनी ओर से पूर्ण यत्न करना चाहता था कि देवपाल को पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हो जावे। इस कारण उसने कहा, "देखिये गणपति महोदय! विद्रोहियों की योजना यह है कि होली के अवसर पर हमारे सैनिक एक भारी संख्या में इस मंदिर को देखने के लिये छुट्टी मांग रहे हैं। उनकी संख्या दस सहस्र से कम नहीं। वे लोग एक निश्चित तिथि को एक नियत स्थान पर एकत्रित हो जावेंगे और उसी दिन यहां की सेना विद्रोह करेगी। परिणाम यह होगा कि उस दिन पावा को जला कर भस्म कर दिया जावेगा। यहां इन्द्रमणि राजा घोषित हो जावेंगे। पश्चात् यही सेना हमारी सेना की सहायता से हमारे देश में विप्लव खड़ा कर देगी। यहां की सेना हमारे यहां तब जावेगी, जब वहां झगड़ा हो रहा होगा। जैसे यहां के लिये इन्द्रमणि को राजा बनाने का निश्चय है, वैसे ही अवन्ति के लिये महारानी रेखा और श्वेतांग महामात्य नियत किये गये हैं।"

"आपकी इस सूचना के लिये मैं आपका धन्यवाद करता हूं।"

"इस सूचना के लिये मैं आपके धन्यवाद का प्रत्याशी नहीं हूं। मैं इस कारण आया हूं कि आप से निवेदन करूं कि हम इस परिस्थिति का विरोध करने के लिये एक योजना चलाना चाहते हैं। अब आपके पास इस सूचना के पहुंच जाने पर, आप भी कोई योजना प्रतिकार के लिये बनायेंगे। हम चाहते हैं कि हम दोनो अपनी योजनाओं का समन्वय कर सकें तो ठीक होगा।"

देवपाल इस प्रश्न से घबराया। फिर कुछ विचार कर कहने लगा, "मैं इस बात का वचन नहीं दे सकता। राज्यों के रहस्य कभी बताये जा सकते हैं और कभी नहीं भी बताये जा सकते। मैं इस विषय पर विचार करूंगा।"

"अच्छी बात है। आप को कष्ट देने के लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। इसका एक ही अर्थ निकलता है कि आप अवन्ति की वर्तमान राज्य-सत्ता पर विश्वास नहीं करते। इसके उत्तर में मैं एक ही बात कह सकता हूं कि भगवान् आपका भला करे।"

इतना कह मनोज उठ खड़ा हुआ। किरण ने दैवयात की ओर देखा और कहा, "आप इनको अभी अंतिम उत्तर न दीजिये। मां भगवती से सम्मति लीजिये। पहिले भी कई बार मां ने आपको मार्ग दिखाया है। इस विषय में मां वे आपको सम्मति देंगी।"

"मेरा विश्वास अब भगवती में नहीं रहा। वह केवल मात्र भ्रम था। अब सब कुछ समझ में आ गया है।"

"क्या समझ में आया है ?"

"यह पता चला है कि देवी जी कुमारदेव की क्रीतदासी है और श्वेतांग की अविवाहित पत्नी है और.. ..।"

"तो आप भी मुझको अवन्ति की एक गुप्तचर मानते हैं ?"

"आज इसमें भी कोई सन्देह नहीं रहा।"

"तो दंड का विधान कर दीजिये।"

"वह भी हो जावेगा।"

"मैं आपसे दंड दिये जाने की प्रतीक्षा करूंगी।"

"देवी ने रात्रि को मुझे इन्द्रमणि से बातचीत करने के लिये बुलाया है ?"

"मैं आपको बुलाने वाली कौन हूं ? मैंने केवल मात्र इन्द्रमणि की इच्छा आप तक पहुंचा दी है। उसमें आना अथवा न आना आपके अधीन है।"

"मैं समझता हूं कि देवी जी राजनीति में हस्तक्षेप न करें तो ठीक रहेगा।"

"यदि आपकी यह आज्ञा है, तो ऐसा ही होगा।"

"मैं रात नहीं आऊंगा।"

कमलायिनी चुप रही। दैवयात उठ कर बाहर चला गया। जब वह गया तो मनोज उसके पीछे-पीछे, उसके जाने की टोह लेने गया। जब उसने देखा कि वह चौंतरे से नीचे उतर गया तो वह वापिस आकर किरण से कहने लगा, "इस मूर्ख को आपने गणपति बनवा कर कुछ अच्छा नहीं किया।"

"मैंने कुछ नहीं किया। मां भगवती ने ही किया है। शायद इसके हाथ से ही मल्ल राज्य का विध्वंस कराने के लिये ही यह सब कुछ हुआ है।"

"देखो किरण देवी! मैं तो अविलम्ब यहां से चला जाना चाहूंगा। आचार्य भूदेव जी का एक संदेश है। उनका कहना है कि यहां आपका जीवन भय में है। जब भी आप चाहें अवन्ति में आकर मानयुक्त जीवन व्यतीत कर सकती हैं। महर्षि जी से कहियेगा कि वे अपने वैज्ञानिक परीक्षण हमारे यहां कर सकते हैं।"

इतना कह मनोज ने कहा, "मैं चाहता हूं कि यहां से उसी गुप्त द्वार से जाऊं, जिससे वसुधा मुझको लायी थी।"

: १० :

दैवयात कमलायिनी से झगड़ा कर प्रसन्न नहीं हुआ था, परन्तु उसके गुप्तचर और साथी उसको ऐसी सूचनायें दे रहे थे कि उसके मस्तिष्क की शान्ति भंग हो गयी थी। वास्तव में उसके वे साथी, जो उसके गणपति होने के कारण लाभ उठा रहे थे, यह देख कि उसके कमलायिनी से सम्पर्क के कारण उसका गणपति रहना भय में हो गया है, उसको डरा कर अथवा झूठी बातें बता कर, उससे लड़ा देना चाहते थे। मन से वह इससे अति दुःखी हुआ था। आज वह मनोज को वहां देख यह समझ बैठा था कि वह उसका प्रेमी है। इससे उसके मन में भारी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। वह इस ईर्ष्या में जलता हुआ ही मन्दिर से बाहर निकला और रथ पर सवार होकर अपने घर को चल पड़ा। वह अभी मंदिर से बीस पग ही गया था कि उसको नगरपाल, नगर

में निरीक्षण करता हुआ मिल गया। उसके मन मे एक विचार आया। इससे उसने नगरपाल को अपने पास बुला कर कहा, "देखो ! मंदिर में एक युवक, लम्बा, गोरा, तीखी नाक वाला, ब्राह्मणों के वेष में पुजारिन से मिलने गया है। वह निकले तो उसको पकड़ कर बंदी बना लो। शायद वह रात भर वहां ही रहेगा। तो रात भर के लिये प्रहरी बैठा रखो।"

नगरपाल ने विस्मय में गणपति का मुख देख कर पूछा, "श्रीमान् ! इस विवरण के कई युवक हो सकते है।"

"सबको पकड़ रो। प्रात.काल देख लेंगे कि वास्तविक अपराधी कौन है।"

नगरपाल ने झुक कर नमस्कार किया और देवयात ने रथ चलवा दिया। वह घर पहुंचा तो उसने सेवक भेज कर इन्द्रमणि को बुला भेजा। उसने यह कहला भेजा कि वह मन्दिर में बात करना नहीं चाहता, यदि बात करनी है तो उसके घर मे आजावे। इस संदेश को पाकर इन्द्रमणि आया और अपने साथ श्वेतांग को ले आया।

देवयात ने इन्द्रमणि से पूछा, "क्या आप अपनी बात इनके सामने करना चाहते हैं ?"

"इनकी अनुपस्थिति में तो अब बात हो ही नहीं सकती।"

"अच्छी बात है। बताओ, किसलिये आपने मिलने को कहा है ?"

"मैं यह बताने आया हूं कि देश भर में क्षत्रिय लोग भड़क उठे हैं। यदि आप मल्ल राज्य में रक्त की नदियां बहाना नही चाहते, तो हमारे कुछ सुझाव हैं, वह आप मान जावें। हमारा विचार है कि उनके मान जाने से जनता शान्त हो जावेगी।"

"क्या सुझाव हैं आपके ?"

"प्रथम, भगवती का मन्दिर राज्याधिकार में कर दिया जावे। द्वितीय, सेठ सुखचन्द्र को देश से निर्वासित कर दिया जावे। तृतीय, मन्दिर की पुजारिन हमारे अधिकार में कर दी जावे। चतुर्थ, क्षत्रियों के मनोद्गारों को शान्त करने के लिये अवन्ति पर आक्रमण की आज्ञा दे दी जावे।

पंचम, इन्द्रमणि को मन्त्रिमडल में सम्मिलित कर लिया जावे।"

दैवयात इन सुझावो को सुन गम्भीर हो गया। कुछ काल तक उसने विचार कर उत्तर दिया, "मन्दिर को राज्य अपने अधिकार में क्यो ले? यदि जनता इस मन्दिर के विरुद्ध है तो वह इसमें न जाये। जनता को यदि इसमें किसी बुराई का विश्वास है तो वह इसकी ईंट से ईंट बजा दे। अधिक से अधिक राज्य यह कर सकता है कि इस सबको देख कर, आंखें मूंद ले। पुजारिन के विषय में यह हो सकता है कि वह इस समय अवन्ति के एक युवक अधिकारी से वार्तालाप कर रही है। मैंने मन्दिर द्वार पर प्रहरी बैठा दिये हैं। तुम जाकर उसको रगे हाथ पकड़ लो और कल उसके विरुद्ध अभियोग चला दो। यदि अभियोग में न्यायालय का निर्णय उसके विरुद्ध हुआ, तब हम पुजारिन को दंड दिलवा सकते हैं और मदिर पर राज्य का अधिकार कर सकते हैं। बिना न्यायालय के निर्णय के, मैं इस विषय में कोई कार्य नही करूंगा। सेठ सुखचन्द्र ने अभी तक कोई गडबड़ नही की। मै उसको देश से निर्वासित कैसे कर सकता हू? अधिक से अधिक मैं उसको निजी रूप में कह सकता हूं कि एक-दो वर्ष के लिये वह किसी अन्य देश में चला जावे।"

"देश-निर्वासन की आज्ञा के साथ हम चाहते है कि उसकी सम्पत्ति को राज्याधिकार में कर लिया जाये।"

"किस अपराध में?"

"उसने मन्त्री पद स्वीकार किया है। एक वैश्य के लिये यह ठीक नही है।"

"विधान में ऐसी कोई बात नही है।"

"जनता नया विधान बनाना चाहती है।"

"यह नहीं होगा। मैं अन्याय नहीं कर सकता। मै अवन्ति पर आक्रमण करने के लिये पर्याप्त तैयारी नही समझता। हां, इन्द्रमणि जी को मंत्री नियुक्त कर सकता हू।"

"यह तो कुछ नहीं।" श्वेतांग ने माथे पर त्योरी चढा कर कहा।

"यह कुछ है या कुछ नहीं, मैं नहीं जानता। जो कुछ न्याय से कर सकता हूं, कर दूंगा। अन्याय का राज्य चलाने में, मैं सहायता नहीं कर सकता।"

"अच्छी बात है। हम देख लेंगे।" इतना कह इन्द्रमणि तथा श्वेतांग वहां से चले गये।

दैवयात के कहने के अनुसार नगरपाल से नियुक्त सैनिक अभी तक मन्दिर के मुख्य द्वार पर बैठे थे। इस समाचार को पाकर दैवयात के मन में यह विचार बैठ गया कि कमलायिनी ने मनोज को अपने पास ही रख लिया है, इस कारण वह उसको रंगे हाथ पकड़ने की इच्छा करने लगा। उसके मन में इस विचार के आते ही, वह अभी उसके शयनागार में जा धमकने का विचार करने लगा। वह जानता था कि मन्दिर के बाहर का द्वार तो खुला ही रहता है। वहां उपासक बैठे उपासना किया करते हैं। कमलायिनी का शयनागार तो बंद होगा। उसको खुलवाने के लिये वह वसुधा से सहायता लेने का विचार कर, चक्रायुध के पास गया और कहने लगा, "मित्र! मुझको यह पता मिला है कि कमलायिनी इस समय अपने एक प्रेमी के साथ विहार कर रही है। मैं उसको रंगे-हाथ पकड़ कर जनता के सामने, उसके चरित्र की घोषणा करना चाहता हूं। इससे मेरे साथ आओ और वसुधा को साथ लेकर उसके शयनागार में चलो।"

"मित्र दैवयात! तुमको किसी ने बहका दिया प्रतीत होता है और फिर किसी स्त्री के शयनागार में घुस जाना, किसी भांति भी उचित नहीं। मैं इस काम के लिये नहीं जाऊंगा।"

"चक्रायुध! राज्य-कार्य में सब बातें की जाती हैं। इसमें किसी बात का औचित्य और अनौचित्य उससे होने वाले लाभ-हानि से किया जाना चाहिये।"

"मैं आपके साथ इस कार्य पर नहीं जाऊंगा।"

"मित्रता का यह प्रमाण दे रहे हो चक्रायुध?"

"मानवता मित्रता से ऊंची वस्तु है। देखो भैया! मैं तुमको सम्मति

देता हूं कि कमलायिनी से झगड़ा मोल लेने के स्थान, देवी के चरणों में बैठ भजन करो। वे तुमको सुबुद्धि देंगी।"

"देवी सर्वथा ढोंग नहीं है क्या? मन्दिर दुराचार का अड्डा नहीं है क्या? यह कमलायिनी की इच्छाओं के चलाने के लिए एक षड्यन्त्र नहीं है क्या?"

चक्रायुध हंस पडा। पश्चात् कुछ गम्भीर हो कहने लगा, "एक बात मैं जानता हूं। वासुदेव एक पुरुष था। वह अब सुन्दर दसुधा बन गयी है। आगामी होली के दिन मेरा उससे विवाह होने वाला है। इस बार मैंने भली प्रकार परीक्षा कर ली है और मैं धोखा नहीं खा रहा। यह भ्रम नहीं। यह कमलायिनी की इच्छाओं की पूर्ति के लिये षड्यंत्र भी नहीं। एक और बात का मुझको ज्ञान है। सवा तीन हजार मन सीसा दो घडी भर में स्वर्ण में बदल दिया गया था। उस स्वर्ण से बन रहा निर्विन्ध्या नदी का घाट भी भ्रम नहीं है। बीसियों कुष्ठ के रोगी नीलवर्ण रश्मियों के प्रभाव से स्वस्थ हो चुके हैं। यह भ्रम नहीं है।"

"मेरे मन का संशय तो इस बात से ही निवारण होगा कि मैं देखूं कि उसका अवन्ति के न्यायाधीश मनोज से क्या सम्बन्ध है?"

चक्रायुध अति दुःखी मन से मित्र का मुख देखता रह गया।

: ११ :

जब मनोज चला गया तो किरण देवयात के अपमान-युक्त वचनों को स्मरण कर विक्षुब्ध-मन हो उठी और अपने पूजा के आगार में चली गयी। वह रात के समय ही ध्यान लगाया करती थी। वह यह समझने का यत्न कर रही थी कि देवयात के मन में यह विकार क्योंकर उत्पन्न हो सका है। वह महर्षि जी के कहने से उस देश में मानवता का विकास करने के लिये आयी थी। उसने सेठ सुखचन्द्र के कहने पर देवयात को ही उपयुक्त माध्यम बना कर अपनी योजना चलाने का आयोजन किया था। परन्तु श्वेतांग के वहां आ टपकने से उसकी योजनाओं में

बाधा आ खड़ी हुई थी। इस पर भी वह यह नहीं समझती थी कि श्वेतांग का प्रभाव दैवयात पर हो जावेगा। दैवयात भली भांति जानता था कि वह निष्कलक है। इस पर भी वह उसके व्यवहार पर संदेह कर बातें कर गया था। इससे वह व्याकुल हो उठी और उसकी आंखें आंसुओं से भर गयीं।

सामने पूजा का सामान जुटा कर रखा था और उसको देख, वह भगवती की उपासना के लिये लगे आसन पर बैठ गयी। जब वह ध्यानावस्थित हुई, तो उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। वह विह्वल हो रोने लगी। कितनी ही देर तक वह बैठी रही। इस सब समय वह अपने मन को नियंत्रण में करने का यत्न करती रही। धीरे-धीरे उसके आंसू बहने बंद हो गये। उसके कपोलों पर ढुलके आंसू सूख गये। उसका मलिन मुख पुनः जाज्वल्यमान हो गया। उसके अंगों में स्पन्दन होने लगा। उसकी मुट्ठियाँ कस गयी और ओष्ठ भिच गये।

इस समय उसकी आंखें खुली और उनमें से चिन्गारियां निकलती प्रतीत होने लगीं। वह यह कहती हुई, उठ खड़ी हुई, "मां! तेरी इच्छा पूर्ण हो! मां! तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

ये शब्द अभी उसके मुख से निकल ही रहे थे कि उसके शयनागार का द्वार खुला और उसमें वसुधा का सिर दिखाई दिया। वह देवी को खड़े देख चिल्लाई, "देवी! श्वेतांग....।" इसके आगे वह कह नहीं सकी। श्वेतांग उसको एक ओर धकेल कर भीतर आ गया। कमलायिनी अभी भी अपने पूजा के आसन पर खड़ी थी। धूप और दीप जल रहा था। नैवेद्य-फल-फूल-पत्र सामने धरे थे। श्वेतांग ने उस सबको देखा और समझ गया कि आखेट पंजे से निकल गया है। इस पर भी उसने कड़क कर पूछा,

"तुम्हारा प्रेमी कहां गया है?"

"कौन प्रेमी?"

"मनोज।"

"चले गये हैं।"

"वह मुख्य द्वार से नहीं निकला। सैनिक उसको पकड़ने के लिये द्वार पर खड़े हैं।"

"खडे रहने दो। तुम क्या चाहते हो?"

"दैवयात से मेरी बात हुई है। उसने तुमको मेरे अधिकार में दे दिया है।"

"मै उसके अधिकार में नहीं हू।"

"वह यहां का गणपति है और उसकी आज्ञा का उल्लघन नहीं हो सकता।"

"तो उसकी आज्ञा पालन करो। मैं उसकी प्रजा नहीं हूं। मै उसकी आज्ञा पालन करने के लिये बाध्य नहीं हू।"

"वह तो मै कर लूंगा।" इतना कह वह उसको पकड़ने के लिये आगे बढा। इस समय दैवयात भी आ गया और उसने देखा कि श्वेताग कमलायिनी को दोनों भुजाओ में पकड़, आलिगन करने का यत्न कर रहा है। दैवयात ठिठक कर द्वार में ही खड़ा रह गया। कमलायिनी ने कहा, "अरे दुष्ट, नीच, अधम, पापी! हट।" इतना कह उसने कहा, "नहीं हटता तो........! तो ले।"

ज्यो ही उसने यह कहा, श्वेताग भूमि पर कटे वृक्ष की भांति गिर पड़ा और अपस्मार के रोगी की भाति कम्प वायु से पीडित हो कापने लगा। फिर वह अचेत हो गया।

कमलायिनी अभी भी पूजा के आसन पर खड़ी थी। इस समय दैवयात भीतर आ कर श्वेतांग को देखने लगा। कमलायिनी ने उसको देखा तो क्रोध में कहा, "मनोज के विषय में तुमने इसको बताया था और तुम ही शायद इसको यहां लेकर आये हो?"

"हां, क्या हानि हुई है?"

"हानि पूछते हो? चले जाओ यहा से नीच कहीं के। चले जाओ। कहीं तुम्हारी भी यही अवस्था न हो जावे।"

"जाओ....।" इतना कह उसने हाथ से द्वार की ओर सकेत किया।

दैवयात को ऐसा अनुभव हुआ कि कोई उसको पकड़ कर बाहर की ओर धकेल रहा है। उसने देखा कि कमलायिनी अभी दूर खड़ी है, इस पर भी वह किसी अदृश्य शक्ति से धकेला जा रहा है। जब वह आगार के बाहर आ गया तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उसको बांह से पकड़ कर मंदिर से बाहर ले जा रहा है। उसने देखा कि कोई है नहीं, इस पर भी वह अपनी इच्छा के विरुद्ध बाहर ले जाया जा रहा था और जब वह सीढ़ियों से नीचे पहुंच गया, तब उसको अनुभव हुआ कि उसको पकड़ कर लाने वाला उसको छोड़ गया है।

यह क्या था, उसको समझ नहीं आया।

श्वेतांग मंदिर के रुग्णालय में ले जाया गया और कई दिन की चिकित्सा के बाद वह चेतनता प्राप्त कर सका। उसको पक्षाघात हो गया था। जब उसको चेतनता हुई, तो कमलायिनी ने उसको उठवा कर इन्द्रमणि के घर, यह कहला कर भेज दिया कि इससे अधिक ठीक यह नहीं हो सकता।

उसी रात दैवयात जब अपने घर आया तो उसने चक्रायुध को अपनी प्रतीक्षा करते पाया। उसने चक्रायुध को कहा, "अभी सोये नहीं?"

"तो तुम आ गये हो? भगवान् का धन्यवाद है।"

"क्यों क्या हुआ है?"

"भैया तुम जीते आ गये। यह क्या धन्यवाद की बात नहीं?"

"तो तुमने देखा है सब कुछ?"

"नहीं। मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो तब से यहां ही बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं।"

"मित्र! बहुत ही विचित्र बात देखी है। ज्यों ही श्वेतांग ने पुजारिन से आलिंगन करने का यत्न किया कि वह किसी अदृश्य शक्ति से मर गया है। मैंने उसको डांटने का यत्न किया तो मुझको ऐसा प्रतीत हुआ है कि कोई मुझको धकेल कर मन्दिर के बाहर कर गया है।"

"श्वेतांग वहां किस काम से गया था?"

"यह तो मैं नहीं जानता। जब मैं वहां पहुंचा तो वह उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे आलिंगन करने का यत्न कर रहा था। इस पर क्या हुआ, कुछ समझ नहीं आया। वह ऐसे नीचे गिरा, जैसे उसको पक्षाघात मार गया हो।"

"बड़ा धूर्त्त है श्वेतांग। लोगों को कह रहा है कि वह दुराचारिन, पापिन है और स्वयं ही-उसको पतित करने चल पड़ा था। तुम भले-चंगे लौट आये हो, ईश्वर का धन्यवाद है।"

"चक्रायुध ! मैं जानता हूं कि वह निर्दोष है, परन्तु इस समय पूर्ण राज्य उसके विरुद्ध हो रहा है।"

"यह भी किसी ने असत्य बात बता दी है। तुम प्रातःकाल जा कर देखो तो पता चलेगा कि कितने लोग भगवती का दर्शन करने, उसका आशीर्वाद लेने और वहां से स्वास्थ्य लाभ करने आते हैं। देखो, भैया दैवयात ! जल्दी में कुछ न कर बैठना, पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

श्वेतांग को मार डालने का अभियोग कमलायिनी पर लगाया गया, परन्तु दैवयात के अपने शपथपूर्वक दिये वक्तव्य पर अभियोग चल नहीं सका। इन्द्रमणि ने जब बहुत बल दिया तो न्यायाधीश ने कहा, "अच्छी बात है। यह अभियोग चल सकता है, परन्तु पुजारिन के विरुद्ध नहीं, श्वेतांग के विरुद्ध। उसने उस सती-साध्वी पर बलात्कार करना चाहा है।"

: १२ :

चक्रायुध नित्य रात को उपासना के लिये मन्दिर में जाने लगा था। वह कमलायिनी के विषय में दैवयात से सुनने के पश्चात् उसमें और भी अधिक श्रद्धा करने लगा था। एक रात, वह उपासना से उठ घर जाने लगा तो वसुधा उसके पास आकर बोली, "ठाकुर ! क्या विवाह की बात छोड़ दी है?"

"नहीं तो ! होली के उत्सव पर होगा। मां ऐसा ही कहती थीं।"

"तो तुम्हारे मित्र तुमको बता नहीं रहे कि इस वर्ष होली के अवसर पर भारी झगड़ा होने वाला है ?"

"सुना तो है, परन्तु इसका हमारे विवाह से क्या सम्बन्ध है ?"

"मां कहती है कि विवाह आज ही हो जाना चाहिये। उस दिन विवाह का अवसर नही रहेगा।"

"तो चलो मां के पास। मै तो अभी ही तैयार हू।"

दोनों कमलायिनी के पास चले गये और उसने उनको आज्ञा दे दी कि विवाह तुरत हो जाना चाहिये।

उसी दिन विवाह वहीं मन्दिर में हो गया। विवाह के पश्चात् कमलायिनी ने उनको एकान्त में ले जाकर कहा, "देखो चक्रायुध ! पावा विध्वंस होने जा रहा है। इस कारण मै आप से कहती हूं कि आप यहां से चले जावे। यह मै वसुधा की रक्षा के लिये कह रही हूं। तुम तो ठाकुर हो और मृत्यु से नहीं डरते, परन्तु वसुधा तांत्रिक विज्ञान का प्रयोग है और इस प्रयोग की परीक्षा अभी समाप्त नहीं हुई। इसकी रक्षा विज्ञान के लिये आवश्यक है।"

"मां ! अब तो यह मेरी धर्मपत्नी है। एक क्षत्रिय की धर्मपत्नी अपने पति को समर से भाग कर जाने के लिये नहीं कह सकती।"

वसुधा ने आंखें नीचे किये हुए कह दिया, "ठाकुर ठीक कहते हैं।"

यह विवाह होलिका-उत्सव से दो दिन पूर्व ही हुआ था। इस कारण चक्रायुध का मन अभी वसुधा से भरा नहीं था कि फाल्गुन पूर्णिमा आ गयी। मध्यरात्रि में चक्रायुध सो कर उठा तो उसने देखा, दैवयात अपने शयनागार में नहीं था। वह घर से सायकाल में ही चला गया था। दैवयात, जब से उसका विवाह हुआ था, उससे बातचीत नहीं करता था। चक्रायुध ने वसुधा को जगाया और उसको दैवयात के विषय मे बताया तो उसने कहा, "क्या युद्ध छिड़ गया है ?"

"मै नही जानता।"

"आपके मित्र आपको साथ नहीं ले गये ?"

वास्तव में मल्ल सेना में इन्द्रमणि का जादू चल गया था। गणपति की आज्ञा के बिना सेना एक भारी अंश में पावा के बाहर खुले मैदान में एकत्रित हो गयी थी। गणपति को सायंकाल ही पता चला था कि सेना ने अस्थायी-शिविर पावा के बाहर लगा दिया है। दैवयात उसी समय ही सेनापति से मिलने गया तो उसको पता चला कि सेना के मन में यह बात बैठा दी गयी है कि दैवयात, अवन्ति राज्य की गुप्तचर विभाग की कर्मचारिणी, भगवती के मन्दिर की पुजारिन से सम्बन्ध रखता है। इस कारण वह देश को अवन्ति राज्य के पास बेच रहा है।

"सेना आपसे इस बात का उत्तर लेना चाहती है। इस कारण आज रात मध्य रात्रि के पूर्व सेना आपसे अपने संशयों का उत्तर मांगने आयी है।"

"सेनापति! देश ने मुझको गणपति चुना है और मैं गणसभा के सम्मुख उत्तरदायी हूं। सेना मेरे अधीन है। वह मुझसे उत्तर नहीं मांग सकती।"

"यदि आप आज रात उत्तर देने नहीं आये तो हम कल गणसभा को तोड़ देंगे और आपसे उत्तर मांगेंगे।"

इस पर दैवयात ने सेना-नायकों से पृथक्-पृथक् मिलना आरम्भ कर दिया। इससे उसको पता मिला कि सब नायक उसके विरुद्ध नहीं, कुछ उसके पक्ष में भी हैं। इस पर भी सबके सब यह चाहते थे कि रात को गणपति उनकी सभा में आकर बात करे और वे उसके पक्ष का समर्थन करेंगे।

इस कारण मध्य रात्रि के समय दैवयात सेना शिविर में गया और वहां सेना-नायकों की सभा में उसने अपनी बात उपस्थित कर दी। सेना में बहुत वाद-विवाद हुआ। दैवयात ने पूर्ण बात समझा दी। सेनानायक एक भारी संख्या में दैवयात के पक्ष में हो गये थे, परन्तु इस पर भी वे चाहते थे कि दैवयात सुखचन्द्र को मन्त्री पद से निकाल दे और पुजारिन को देश से निर्वासित कर दे।

दैवयात ने कहा, "मैं आपका प्रस्ताव गणसभा में रख दूंगा।"

इस पर सेना एक मत थी कि गणसभा को वे विवश कर देंगे कि वह उनका प्रस्ताव मान ले।

देवयात तीसरे प्रहर रात को घर लौट कर आया तो चक्रायुध और वसुधा उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनको वहां देख, वह खड़ा हो गया और प्रश्नभरी दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। चक्रायुध ने पूछ ही लिया, "भैया! क्या हुआ है?"

"मै सेना-शिविर से आ रहा हूं। अभी भी सेना में बहुमत मेरे साथ है, परन्तु कमलायिनी और सेठ सुखचंद्र के पक्ष में एक भी सेनानायक नहीं और सेनापति तो इन्द्रमणि का सम्बन्धी है ही।"

"तुमने, क्या कहा है भैया?"

"मैंने उनसे कहा था कि मै उनका प्रस्ताव गणसभा में रख दूंगा, परन्तु वे सब कहने लगे कि गणसभा को वे विवश कर अपने पक्ष में कर लेंगे।"

"तो क्या होगा?"

"मै समझता हूं कि वे मध्याह्नोत्तर गणसभा-भवन के बाहर एकत्रित होंगे और सदस्यों को, जो वहां आवेंगे, विवश कर उनसे मांगेंगे कि मन्दिर लूट लिया जावे और पुजारिन को देश से निर्वासित कर दिया जाये।"

"बस?"

"साथ ही वे यह चाहते है कि सेठ सुखचन्द्र को मंत्री पद से हटा दिया जावे।"

"तो तुम क्या करने जा रहे हो?"

"मैं इसमें निष्पक्ष रहूंगा। जो भी गणसभा निर्णय करेगी मै उसके अनुसार कार्य करूंगा।"

"न्याय-अन्याय का विचार नहीं होगा क्या?"

"न्याय वही है, जो गणसभा करे।"

"देवयात भैया! यह देश प्रलय को प्राप्त होगा। इसमें जो रहेगा वह नष्ट हो जावेगा।"

"तो तुम मुझको क्या करने को कहते हो ?"

"मेरा तो यह कहना है कि मूर्ख जनता के साथ रहने में कल्याण नहीं है। कमलायिनी को तुम जानते हो। उसकी शक्ति को तुम जान चुके हो। उसके पास चलो और उससे प्रार्थना कर, देश के उद्धार के लिये सहायता मांगो।"

"मित्र ! यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं देश की जनता के विरुद्ध किसी से भी सहायता स्वीकार नहीं कर सकता। देखो, मैं सच्चा हूं। यह देश मेरा है और इस समय मैं ही देश हूं। मैं अपना गला आप घोंट नहीं सकता।"

"पर भैया ! सत्य देश से भी ऊपर है। हमारा देश वही है, जहां न्यायाचरण होता हो।"

"तो ?"

"हमारा मार्ग दूसरा है, मैं," उसने मन्दिर की ओर संकेत कर कहा, "उधर जा रहा हूं।"

"ठीक है। मैं तो," दैवयात ने गणसभा की ओर उंगली कर कहा, "इधर ही अपना मार्ग देखता हूं।"

दोनों मित्र एक दूसरे का मुख देखते रह गये। इसके आगे और कुछ कहने को नहीं था। चक्रायुध की आंखों से अश्रुधारा बह रही थी। दोनों बचपन के साथी थे। चक्रायुध जानता था कि यह अन्तिम घड़ी है। दैवयात इतना निराश नहीं था। उसका अनुमान था कि जनता मन्दिर का धन-दौलत लूट कर शान्त हो जावेगी और तब वह फिर देश में शान्ति उत्पन्न कर सकेगा।

चक्रायुध उससे गले मिला और वसुधा को लेकर मन्दिर की ओर चला गया। मार्ग में वसुधा ने कहा, "मुझको आपके मित्र पर दया आती है।"

"इस पर भी मैं उसको स्वच्छ कुन्दन ही मानता हूं।"

"हां, केवल समझ का फेर है।"

"मैं उसके मनोद्गारों की प्रशंसा करता हूं।"

"और अपने भावों की नहीं। आपके मित्र, देश के बहुसंख्यक लोगों के पीछे जाते हुए, मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, और आप, सत्य पथ के राही, अपने विचार से, मृत्यु के मुख में।"

इस पर दोनों गम्भीर विचार में लीन बिना बोले चलते गये। जब वे मन्दिर मे पहुंचे तो एक भीड़ उपासकों की वहां एकत्रित हो गयी थी। सब भयभीत थे। वे यह सुनकर वहां आये थे कि दिन चढ़ने पर क्षत्रिय लोग मन्दिर को लूटने आ रहे हैं। वे इसको बचाना चाहते थे। कमलायिनी उनको समझा रही थी कि वे सब भीतर जाकर उपासना में लीन हो जावें। उनको यह बताया गया था कि मन्दिर लूटने से पहिले क्षत्रिय लोग उपासकों की हत्या करेंगे। पश्चात् इसको लूटेंगे। इससे उपासक कमलायिनी के कहने पर भीतर जाते थे और फिर भयभीत हो बाहर आ जाते थे और चौंतरे पर खड़े होकर परस्पर बातें करते थे। कुछ धीरे-धीरे खिसक भी रहे थे।

इस समय चक्रायुध और वसुधा वहां पहुंच गये। कमलायिनी उनको लेकर भीतर चली गयी। वह जानना चाहती थी कि देवयात क्या करने जा रहा है।

चक्रायुध ने बताया, "मैं मित्र से लड़ आया हूं। वह यह जानता हुआ भी कि आप निर्दोष हैं, आपके विरुद्ध गणसभा का निर्णय मानने जा रहा है। मैं यह जानता हुआ भी कि आप अकेली हैं और सत्य के पक्ष में हैं, अपनी सेवा देने आ रहा हूं।"

"पर तुम यह कैसे कह सकते हो कि मैं एक हूं?"

"देवी! इन उपासकों के होने पर भी मैं तो आपको अकेला ही समझता हूं।"

"पर भक्त! तुम एक को भूल रहे हो। भगवती प्रकृति को तो तुमने गिना ही नहीं। और वह एक होती हुई भी कोटि-कोटि जनसमूह के बराबर है।"

"उसका स्वर्ण शरीर तो सहायक होने के स्थान एक भय का कारण हो जावेगा।"

कमलायिनी हंस पड़ी। उसने कहा "भक्त! यह तो एक प्रतीकमात्र है। वास्तव में भगवती तो सर्वत्र व्यापक है! वह सर्वज्ञ है और सर्व-शक्तिमान् है। वह उनकी सहायता करती है जो उसको समझते है।"

: १३ :

मध्याह्न से पूर्व ही सैनिकों ने गणसभा-भवन को घेर लिया। केवल सदस्यों के लिये भीतर आने को मार्ग छोडा हुआ था। दैवयात भवन की छत पर खड़ा सदस्यों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। समय हो रहा था, परन्तु सदस्य आ नहीं रहे थे। सभाभवन के खुलने का समय हो गया था। बीस सहस्र सेना सभाभवन के चारों ओर खड़ी थी। इन्द्रमणि के पक्ष के सदस्य भवन के भीतर बैठे थे। कुछ दैवयात के पक्ष के लोग भी आ गये थे, परन्तु वे भीतर न जा कर दैवयात के पास छत पर खडे थे। समय हो जाने पर सेनापति दैवयात के पास आया और कहने लगा, "चलिये, समय हो गया है।"

"कितने सदस्य उपस्थित है?"

"दस के लगभग है और बीस आप यहां खड़े है।"

"सभा का अधिवेशन होने के लिये यह सख्या बहुत कम है।"

"इस पर भी आप निर्णय को रोक नहीं सकते। देखिये पूर्ण सेना आपकी ओर देख रही है। सेना के पीछे एक लक्ष के लगभग जनता भी आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।"

"यह ठीक है। परन्तु एक सौ सदस्यों में दस के निर्णय को निर्णय नहीं माना जा सकता।"

"आपके साथी जो बीस की संख्या में यहा खड़े हैं।'

"तो इनको भीतर ले चलो।"

"ये आपके कहने पर जायेंगे।"

"मैं इनको कुछ नहीं कहूंगा।"

"यह तो देशद्रोह होगा।"

दैवयात इस लांछन से क्रोध में भर गया और अपनी खड्ग निकाल कर बोला, "तुम गणपति का अपमान कर रहे हो। चले जाओ नीचे। नहीं तो ठीक नहीं होगा।"

सेनापति नीचे जाने के स्थान भवन की मुंडेर पर चढ़ गया और हाथ ऊंचा कर बाहर खड़े सैनिकों को सम्बोधन करने लगा। परन्तु वह कुछ कहता, इससे पूर्व ही सेनापति का सिर धड़ से पृथक् हो भवन के नीचे जा गिरा। भवन के चारों ओर खड़ी सेना ने सेनापति की हत्या होते देखी और इनको सेना का अपमान समझा। दैवयात के साथियों ने समझ लिया कि उनकी अंतिम घड़ी आ गयी है। इस कारण सबने अपने खड्ग निकाल लिये और अपने जीवन को बिना मूल्य के जाने न देने का निश्चय कर लिया। सेना ने नीचे से देखा था कि दैवयात ने सेनापति की हत्या की है, इस कारण लगभग पांच सौ सैनिक अपने खड्ग निकाल कर भवन की छत की ओर लपके। दूसरे सैनिक गण सभाभवन के भूगर्भ आगारों की ओर लपके जिससे वे पुजारिन द्वारा दिया हुआ स्वर्ण लूट सकें। सहस्रों की भीड़ ने, जो भूगर्भ आगारों में नहीं जा सकी, भवन को आग लगा देना ही उचित समझा। इस प्रकार इतनी घमासान मची कि किसी को गणसभा-भवन से भाग निकलने का मार्ग ही नहीं मिला।

जब यह सब ऊधम मच रहा था, कमलायिनी मन्दिर के चौंतरे पर खड़ी यह सब कुछ देख रही थी। उसके समीप खड़ा चक्रायुध, भवन की छत पर सैंकड़ों सैनिकों से घिरे हुए, वीरतापूर्वक लड़ रहे दैवयात को देख रहा था। उसने एक बार कहा भी कि उसको भारी शोक है कि वह अपने मित्र के कंधे से कंधा लगा लड नहीं रहा।

"ठीक है, परन्तु उसके लड़ने का स्थान यह था न कि सभाभवन। वहां जा कर वह किस बात के लिये लड़ रहा है? उसको यह बात विदित थी कि पूर्ण जनता उससे अन्याय कराना चाहती है और वह भवन उस

जनता की भावनाओं का प्रतीक है। यदि वह अन्याय नहीं करना चाहता तो उसको भवन का आश्रय छोड, यहा आजाना चाहिये था।"

यह युक्ति थी। परन्तु चक्रायुध मित्र के प्रति भावना से प्रेरित हो कह रहा था। इससे वह चुप रहा। इस समय भवन को आग लग गयी थी और भवन की छत पर लडते हुए बहादुर अग्नि के धूंए में आंखो से ओझल हो गये।

कमलायिनी ने चक्रायुध का ध्यान दूसरी ओर करने के लिये कहा, "भक्त! देखो वह इन्द्रमणि क्या कह रहा है।" चक्रायुध ने उधर देखा। वह भवन के बाहर आ सेना और जनता के बीच खडे होकर कह रहा था, "गणसभा ने यह निर्णय कर दिया है कि वह मन्दिर देशद्रोह का अड्डा है। इस कारण उसको गिरा कर भूमि के समतल कर देना चाहिये।"

इन्द्रमणि के इस घोषणा करने पर भीड़ मन्दिर की ओर लपकी। चक्रायुध ने अपना खड्ग निकालने के लिये उसकी मूठ पर हाथ रखा ही था कि कमलायिनी ने कहा, "भक्त नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।"

"नहीं पड़ेगी? पर देवी वे आ रहे है।"

"आने दो।" इतना कह उसने अपनी उंगली खडी कर कहा, "बस, और नहीं आवेंगे।" उमड़ती हुई भीड एकाएक ऐसे खड़ी हो गयी, जैसे उनके सामने दीवार है। इन्द्रमणि उसी ऊंचे स्थान पर खड़ा पुकार कर लोगों को कह रहा था, "गिरा दो इस मन्दिर को। इसकी ईंट से ईंट बजा दो। यह देशद्रोहियों का अड्डा है। इसको आग लगा दो।"

इस पर भी भीड़ एक सीमा को पार नहीं कर सकी। पीछे से लोग आगे बढ़ रहे थे और आगे वाले उस सीमा से पार नहीं हो सकते थे। चक्रायुध विस्मय में देखता रह गया। उसने पूछा भी, "देवी! यह क्या हो रहा है?"

"मां भगवती की शक्ति का चमत्कार।"

सैकड़ों उस सीमा पर, पीछे से आने वालो के पावो के नीचे आकर

दब गये। अंत में आनेवालों ने हल्ला करना आरम्भ कर दिया, "मत आओ। आगे स्थान नहीं है।" दो घड़ी भर के आर्तनाद के बाद लोगों को कुछ समझ आया कि क्या हो रहा है। वे खड़े हो गये और एक पंक्ति के बाहर सहस्रों को पांवों के नीचे कुचला देख बितर-बितर देखते रह गये। इस सबको देख इन्द्रमणि भीड़ को चीरता हुआ शवों के ढेर के पास आकर खड़ा हो गया। उसने समझा कि किसी मंत्र के बल पर पुजारिन ने लोगों को मूर्ख बना कर मार डाला है। उसने कुछ धनुषधारियों को उस घेरे के बाहर खड़ा कर, कमलायिनी पर तीर चलाने के लिये कहा। तीर चलाये गये, परन्तु वे भी उसी स्थान पर ऐसे आकर गिरे, जैसे वे किसी लोहे की दीवार से टकरा कर गिर जाते हैं। यह चमत्कार सबने देखा और भय से कांपते हुए लोग वहां से खिसकने लगे। इन्द्रमणि विवश हो अपने घर की ओर चल पड़ा।

जो लोग गणसभा-भवन से धन लूट कर ले गये थे, वे अपने-अपने घरों को भाग जाना चाहते थे, परन्तु दूसरों ने, जो कुछ नहीं लूट सके थे, उनसे अपना भाग मांगा। इसमें झगड़ा हो गया। परिणाम यह हुआ कि वे लोग जो देवयात के साथियों से लड़ने के लिये तैयार होकर आये थे, परस्पर लूटे स्वर्ण के लिये, लड़ने लगे। यह लड़ाई यही समाप्त नही हुई, प्रत्युत पावा के घर-घर में फैल गयी। लोग सभाभवन को छोड़ कर मन्दिर की ओर गये थे। वहां से भी कुछ न पा, परस्पर लड़ने लगे थे और इस पर भी किसी परिणाम तक न पहुँच सकने के कारण पावा के घरों को आग लगाने लग गये थे।

देखते-देखते पूर्ण पावा नगर धू-धू करता हुआ जलने लगा। नागरिक जलते मकानों से इधर उधर भागते दिखाई देने लगे। चीखते-पुकारते बच्चों को कधों पर उठाये हुए, कही आश्रय पाने के लिये भागते फिरते थे। लोग मंदिर की ओर आश्रय पाने की आशा में आते थे परन्तु वहां शवों की दीवार खड़ी देख, घबड़ा कर भाग जाते थे।

: १४ :

मनोज, भूदेव और पंडित सुखदर्शन के अनथक प्रयत्नों से कुमार-देव को अपनी नीति में दोषों का भास होने लगा। इस भास के कराने में महारानी रेखा के षड्यंत्रों ने भी भारी भाग लिया।

जब श्वेतांग पावा में आ गया तो इन्द्रमणि ने रेखा के पास एक दूत भेजा। उस दूत के द्वारा उसने महारानी रेखा को अपनी सहायता के लिये आमंत्रित किया। उस दूत ने यह भी बताया कि श्वेतांग उसकी पिछली बातों को भूल कर, पुनः उसकी सहायता करने के लिये तैयार है। इस प्रकार इन्द्रमणि ने अपने षड्यन्त्र का एक सूत्र अवन्ति में चलाना आरम्भ कर दिया। यह निश्चय हो गया कि वे सैनिक, जो महारानी रेखा के पक्ष में हैं, छुट्टी लेकर पावा का मन्दिर देखने के बहाने अवन्ति राज्य से निकल मल्ल राज्य में, सीमा के समीप ही एक निश्चित स्थान पर एकत्रित होकर होली के दिन पावा पर धावा बोल दें।

यह सब सूचना आचार्य भूदेव को मिल गयी थी। इससे सचेत हो उसने मनोज को पावा भेज दिया। वहां अपने प्रयोजन में असफल हो मनोज लौटा, तो राज्य-परिषद् में मनोज के अनुभवों पर विचार होने लगा। मनोज ने अपने पावा के अनुभवों को लिख कर दिया था। वह लिखित वर्णन राज्य-परिषद् में पढ़ कर सुनाया गया। इस पर पंडित भूदेव ने अपने विचार बताये। उसका कहना था, "दैवयात एक उजड्ड गवार व्यक्ति ही प्रतीत होता है। उससे मैत्री करने से हम लाभ के स्थान हानि ही उठावेंगे। इन्द्रमणि श्वेतांग का मित्र होने से हमारे साथ मैत्री कर नहीं सकता। इस कारण हमको जो कुछ करना है, अपने बुद्धि-बल पर ही करना चाहिये।

"इस कारण मेरा प्रस्ताव यह है कि जो सैनिक छुट्टी मागें, उनको छुट्टी दे दी जावे। जब वे मल्ल राज्य में चले जावें, तो अपनी पूरी सेना से राज्य पर आक्रमण कर दिया जावे। वहां पर दैवयात के

पक्षपातियों से जब झगड़ा हो रहा हो, हम जा झपटे और दोनों पक्षों को परास्त कर मल्ल राज्य का काटा सदा के लिये निकाल देवे।"

इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया और बहुत ही गुप्त रूप से इस आक्रमण की तैयारी करनी आरम्भ हो गई। सेनापति बलभद्र को सब तैयारी गुप्त रखने की बात कह कर, उसको यह भी कह दिया गया कि सब छुट्टी मांगने वाले सैनिकों को छुट्टी दे दी जावे।

मल्ल राज्य और अवन्ति की सीमा के समीप रथ, अश्व और अन्य युद्ध की सामग्री, बहुत ही गुप्त रूप में एकत्रित कर दी गयी। पचास सहस्त्र सेना के खाने के लिये रसद भी एक और गुप्त स्थान पर जमा कर दी गयी। इस प्रकार की तैयारी कर यह घोषित कर दिया गया कि अनुराधा के पुत्र, राजकुमार, का नामकरण संस्कार होली के दिन बड़ी धूम से किया जावेगा।

होली की शुक्ला चतुर्दशी को गणना कर देखा गया कि दस सहस्त्र से ऊपर सैनिक छुट्टी पर है। यह भी पता किया गया कि नीरा गाव के समीप, सीमा के पार ये सब सैनिक एकत्रित हो रहे है। आचार्य भूदेव से भेजी जाने वाली सेना कुछ घूम-घुमाव से मल्ल राजधानी पावा जानेवाली थी। इस कारण सेना रात के समय ही मल्ल राज्य में प्रवेश कर गयी और द्रुत गति से अपने-अपने लक्ष्य स्थान की ओर चल पड़ी। योजना के अनुसार इस सेना को पूर्णिमा के तीसरे प्रहर पावा के बाहर पहुंच जाना था। अनुमान से कुछ देरी हो गयी और यह सेना सायंकाल से कुछ पूर्व ही अपने निश्चित स्थान पर पहुंची।

पावा पहुंचने से पूर्व उस ओर से एक रथ और कुछ अश्वारोही आते दिखाई दिये। वे रोक लिये गये। सेनापति बलभद्र के पास वे सब लोग लाये गये तो पता चला कि रथ में पक्षाघात का एक रोगी और उस के संरक्षक पावा नगर से भागे हुए जा रहे है। प्रश्न करने पर पता चला कि रोगी श्वेतांग है और रक्षक इन्द्रमणि के अपने निजी सेवक हैं।

बलभद्र ने उनको बंदी बना, उज्जयिनी भेजने का प्रबन्ध कर दिया।

जब सेना पावा द्वार के बाहर पहुंची तो नगर को धू-धू करते जलते देख विस्मय में खड़ी रह गयी। नगर के लोगो को पता नही था कि अवन्ति से कोई सेना आने वाली है। इस कारण वे इसको अपने देश की ही सेना मान, यह समझे कि यह भी नगर को लूटने आयी है। सेना के लोगो ने, भागते हुए नागरिको को पकड कर सेनापति के सम्मुख उपस्थित किया और उनके भय को दूर कर उनको यह बता दिया कि अवन्ति से पावा के नागरिको की रक्षा के लिये वह सेना आयी है। इस पर उन्होने उस दिन की पूर्ण कथा बता दी। राजधानी में और देश में अराजकता फैली देख बलभद्र को भारी शोक हुआ। इस पर उसने सामने खड़े नागरिको से पूछा, "इन्द्रमणि कहां है?"

"भाग गया है। वह और काशी का पडित श्वेताग दोनो एक प्रहर हुए रथो में और घोड़ो पर सवार हो चले गये है।"

"भगवती के मदिर की पुजारिन कहा है?"

"अपने मदिर में सुरक्षित विद्यमान है।"

"गणपति दैवयात कहा है?"

"गणसभा-भवन में जल कर भस्म हो गये है।"

बलभद्र सेना को यह आज्ञा दे कि नगर की आग बुझाने का यत्न करें, कुछ सैनिको को लेकर भगवती के मदिर की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच उसने सहस्रो की सख्या में जनता के मृत शवों को देख विस्मय में पूछा, "यह कैसे हुआ?" एक जानकार ने उस घटना का सविस्तार वर्णन कर दिया। इस पर बलभद्र ने कमलायिनी से भेंट करने के लिये एक सैनिक के हाथ सदेशा भेजा और सेनापति को अकेले में मन्दिर में आने की स्वीकृति मिल गयी। कमलायिनी ने बलभद्र को पूर्ण परिस्थिति से परिचित कर दिया तो उसने घोषणा कर दी कि मल्ल राज्य में महाराज अवन्ति का राज्य स्थापित किया जाता है।

अभी यह घोषणा हो ही रही थी कि एक अश्वारोही, सिर से पांव तक धूल से भरा हुआ, सेना शिवर में पहुचा और सेनापति से मिलने की

इच्छा प्रकट करने लगा। उसको सेनापति के शिविर में लाया गया। अश्वारोही उज्जयिनी से आया था और एक पत्र आचार्य जी का लाया था। उस पत्र में लिखा था, "बलभद्र जी ! दस सहस्र विद्रोही सेना को लेकर रेखा पावा में जाने के स्थान वापिस उज्जयिनी पर चढ़ आयी है। उसका विचार था कि हमने सब सेना पावा भेज दी है और राजधानी बिना सेना के है। ऐसा तो था नहीं, परन्तु उसका यह आक्रमण अकस्मात् होने के कारण प्रारम्भिक सफलता प्राप्त कर गया। वह एक समय तो नगर पर अधिकार कर बैठी थी। इस समय उसने महाराज के भवन पर आक्रमण कर दिया। महाराज स्वयं भवनरक्षकों को लेकर लड़ने के लिये उद्यत हो गये। घमासान युद्ध होता रहा। विद्रोही सेना भवन में घुस गयी और महाराज कुमारदेव, पग-पग पर लड़ते हुए पीछे हटने लगे। विद्रोही बहुत अधिक संख्या में थे और उनका उद्देश्य महारानी अनुराधा और उसके राजकुमार को पकड़ कर, उनकी हत्या करना था। महाराज कुमारदेव लड़ते हुए अपने आगार के सम्मुख मारे गये और उनके मरने के पश्चात् महारानी अनुराधा हाथ में खड्ग लेकर निकल आयी और कुछ देर तक लड़ती रही। वह बुरी भांति घायल हो गयी है। इस समय तक सेना-शिविर से भक्त सेना आ गयी और वह लड़ती हुई वहां पहुंच गयी। राजकुमार की जान बचायी जा सकी है। महाराज की मृत्यु तो भवन में लड़ते हुए ही हो गयी है। महारानी मरणासन्न रुग्णालय में पड़ी है। इस समय भक्त-सेनाओं का अधिकार महाराज के भवन पर हो चुका है। कलाभवन और अन्य मंत्रियों के गृह सुरक्षित हो गये हैं, परन्तु नगर के मार्गों पर और नगर की वीथिकाओं में लड़ाई हो रही है।

"यह सब परिस्थिति आपको लिख कर भेज दी है, जिससे वहां का समर समाप्त कर शीघ्रातिशीघ्र चले आयें। वहां एक बलशाली सेना की टुकड़ी छोड़ आना। इस समय पांच सहस्र सैनिक पहिले भेज दो। जिससे नगर की व्यवस्था रह सके और महारानी रेखा को, जो पकड़ी गयी

है, दंड दिया जा सके।"

: १५ :

अवन्ति में विद्रोह उज्जयिनी तक ही सीमित रहा। इस विद्रोह में, जब तक तो रेखा के पक्षपाती सेना की जीत होती रही, तब तक रेखा अपने पक्ष वालो को प्रोत्साहन देने के लिये नगर में घूम-घूम कर सेना का नेतृत्व करती रही, परन्तु आचार्य भूदेव और मनोज के बच कर भाग जाने से उसकी पराजय हो गयी। जब सेना ने इनके गृह पर आक्रमण किया, ये दोनो घर में नही थे। परिणाम यह हुआ कि जब इनको पता चला कि विद्रोही सेना पावा जाने के स्थान उज्जयिनी पर चढ़ आयी है, तब ये दोनो सेना-शिविर में गये और वहां से सेना को तैयार कर लाये और महाराज के भवन और अन्य मंत्रियों के गृहो की सुरक्षा का प्रबन्ध कराने लगे। विद्रोह को शान्त करने में पूर्ण दिन लग गया। विद्रोहियों को जब यह बात समझ आ गयी कि उनकी योजना असफल गयी है, तो उन्होने भागना आरम्भ कर दिया। भागने वालो में रेखा सबसे पहिले थी, परन्तु वह नगर के द्वार से निकलती हुई पकड़ ली गयी।

आचार्य भूदेव ने ज्यो ही महाराज के भवन को आक्रमणकारियों से मुक्त कराया, महाराज के शव को और अनुराधा के घायल शरीर को रुग्णालय में पहुचा दिया। वहा अनुराधा की तो चिकित्सा होने लगी और महाराज के शव की परीक्षा कर, उसको भवन में लौटा दिया गया।

अभी फुटकर लड़ाइयां हो ही रही थीं कि महारानी रेखा पकड़ कर आचार्य के सामने लायी गयी। आचार्य ने आज्ञा दे दी कि इसको बंदीगृह में रखा जावे। आधी रात के समय श्वेतांग और इन्द्रमणि को सैनिक ले आये। श्वेतांग को पक्षाघात मार गया था। उसका दाहिना अग तो सर्वथा बेकार हो गया था। उसका मस्तिष्क भी ठीक रूप में काम नहीं करता था। इन्द्रमणि स्वस्थ था, परन्तु उसको अपने पक्षपातिओ को अपने ही पक्ष के लोगों से लड़ते देख भारी दुःख हुआ था। इस कारण पावा

के मार्ग में जब वह श्वेतांग के साथ पकड़ा गया, तो उसने अपना नाम तक नहीं बताया। परन्तु जब उसको एक सैनिक ने पहिचाना तो वह अपनी भूलों पर रो उठा। अगले दिन बलभद्र सेना की एक सुदृढ़ टुकड़ी को पावा में छोड़, शेष सेना के साथ लौट आया। इस समय तक उज्जयिनी में शान्ति स्थापित हो चुकी थी। आचार्य भूदेव ने राज्य-परिषद् को बुलाकर राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने राज्य का उत्तराधिकारी अनुराधा के लड़के को घोषित कर दिया। अनुराधा के घाव को देख, नगर के प्रमुख भिषगाचार्य ने यह बताया कि वह बच जावेगी। इस कारण उसको राजमाता प्रसिद्ध कर दिया गया। महाराज कुमारदेव का सत्कार कर, उनको वीर गति प्राप्त हुआ मान, उनका स्मारक बनाने का आयोजन कर दिया गया। महारानी रेखा को मृत्यु दंड की आज्ञा दे दी। इन्द्रमणि को तब तक बंदी रखने की आज्ञा दे दी, जब तक मल्ल राज्य में कोई स्थायी राज्य स्थापित नहीं हो जाय। श्वेतांग के विषय में यही उचित समझा गया कि उसके रुग्ण शरीर को काशी में उसके पिता के पास भेज दिया जावे। यह भी निश्चय हुआ कि उसके रुग्ण शरीर के साथ आचार्य भूदेव एक पत्र लिख दें, जिससे उसके रुग्ण होने का कारण उन पर प्रकट हो सके।

आचार्य भूदेव ने उस पत्र में श्वेतांग के व्यवहार और कमलायिनी पर बलात्कार करने के प्रयत्न का पूर्ण विवरण लिख दिया। अन्त में खेद प्रकट कर लिखा, "मनुष्य तो क्षमा कर सकता है और उसने किया भी था, परन्तु भगवान ने क्षमा करना उचित नहीं समझा।"

"इतना अवश्य है कि उस बेचारे का इतना दोष न हीं, जितना उसको मिथ्या जीवन-मीमांसा सिखाने वालों का है। उसने तो आपकी शिक्षा पर कि मनुष्य में स्वार्थ परम साध्य वस्तु है और इसके आधार पर ही संसार का इतिहास चलता है, के अनुसार संसार को चलाने का यत्न किया और उसका स्वाभाविक परिणाम आपके पास भेज रहा हूं।"

॥ समाप्त ॥